इसी ढँगसे आप "शृङ्गार शतक"का भी अनुवाद कीजिये।" क़द्र-दान और सहृदय सज्जनोंके बारम्बार ऐसा लिखनेसे मेरा उत्साह बढ़ा और मैंने, असमर्थ और अयोग्य होनेपर भी, "शृङ्गारशतक" का भी अनुवाद करके छपा डाला है। यह कह देनेमें हर्ज नहीं कि, मैं अपनी सभी पुस्तकें द्वितीय और तृतीय श्रेणीके सज्जनों के लिए लिखा करता हूँ; क्योंकि मैं भी उन्हीं श्रेणियोंमें हूँ*। लाख-लाख धन्यवाद है, परम करुणामय जगदीशको, जिनकी प्रेरणा और कृपासे उक्त श्रेणियोंके सज्जनों के सिवा, प्रथम श्रेणी के सज्जन भी मेरी लिखी पुस्तकोंको अत्यन्त श्रद्धा और चाव से पढ़ते हैं। यही वजह है कि, विना किसी प्रकारकी विज्ञापन-बाज़ीके, मेरी लिखी पुस्तकोंके संस्करण-पर-संस्करण होते हैं। ऐसा होते देखकर, किस लेखकको प्रसन्नता न होती होगी?

---

* हमारे इन शब्दों को पढ़ कर, हिन्दी के धुरन्धर विद्वान्, "कर्मवीर"—सम्पादक, २९ मार्च, १९३२ के "कर्मवीर" में लिखते हैं—मोटी पुस्तकों-जैसा मोटा और सुनहली जिल्दों-जैसा सुनहला गर्व लेखक अपने उद्योग का नहीं करते। "शृङ्गारशतक" की भूमिका में श्री हरिदास जी ने लिखा है—'यह कह देने में हर्ज नहीं, कि मैं अपनी सभी पुस्तकें द्वितीय और तृतीय श्रेणी के सज्जनों के लिए लिखा करता हूँ, क्योंकि मैं भी उन्हीं श्रेणियों में हूँ।' किन्तु जिस व्यक्ति को अपनी सीमाओं का इस तरह विवेक होता है, उस सज्जन को तीसरी श्रेणी में कौन मानेगा?" मैं इन शब्दों के लिए चतुर्वेदी जी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, उन्होंने मेरे लिए जो कुछ लिखा है, वह उनकी सज्जनता का परिचायक है।

—अनुवादक।

"नीतिशतक" और "वैराग्यशतक"में, मैंने महाराजा भर्तृहरि की संक्षिप्त जीवनी लगा दी है। प्रत्येक शतकमें ही, उसी जीवनी का होना बहुतसे सज्जन पसन्द नहीं करते; इसीसे मैंने "शृङ्गारशतक"में महाराजकी जीवनी नहीं दी है। जिन्हें महाराजाकी जीवनी पढ़नी हो, वे "नीतिशतक" और "वैराग्यशतक" में उसे पढ़ लें। उन शतकोंमें, भर्तृहरि महाराजका सारा वृत्तान्त चित्रों-सहित छापा गया है और उसे सर्वसाधारण और अनेक विद्वानोंने पसन्द करके, उसकी प्रशंसा भी मुक्त-कण्ठसे की है।

यद्यपि इस वर्ष मैंने अपने सिरसे प्रेसका झंझट हटा दिया है; तथापि मेरे सिर पर कामोंका बड़ा बोझ रहता है, इससे जो काम दूसरा कोई अच्छे-से-अच्छा लेखक एक सालमें करेगा, वही मुझे, मजबूर होकर, २-३ महीनेमें ही करना पड़ता है। फिर; ऐसी झटापटीके काममें ग़लतियों और त्रुटियोंका रह जाना नितान्त सम्भव है। यों तो मनुष्यमात्र ही ग़लतियों के पुतले हैं। उन ग़लती करने वालों में भी मेरा दर्जा सब से ऊँचा है, मैं सब से गया—बीता हूँ। अतः मेरी ग़लतियों का क्या ठिकाना? इसलिए, मैं विद्वानोंसे अत्यन्त विनीत भावसे क्षमा माँगता हुआ प्रार्थना करता हूँ, कि वे मेरी ग़लतियों से नज़र हटा लें और इन ग्रन्थों में जो ज़रा-बहुत अच्छा हो, उस पर ध्यान दें। आशा है, कि उदारहृदय सज्जन मुझे क्षमा प्रदान करते हुए, मेरी विनीत प्रार्थना पर ध्यान देकर मुझे अनुग्रहीत करेंगे।

इस शतकके अनुवादमें भी, मैंने श्रीमान् पण्डितवर ज्वालादत्त जी शर्मा, मुरादाबादके "महाकवि दाग़" "जौक़" और और "ग़ालिब" तथा बाबू रघुराजसिंहजी बी० ए० के "महाकवि-नज़ीर"से बहुत कुछ सहायता ली है; अतः मैं उक्त दोनों उदार-हृदय सज्जनोंको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। स्माल काज़ कोर्ट, कलकत्ता, के वकील बाबू छोगमलजी चोपड़ा महोदयने मुझे, इस पुस्तकके अनुवादमें भी, मौक़े-मौक़े पर, बहुत कुछ सहायता दी है; अतः मैं बाबू साहब मज़कूरका अतीव आभारी हूँ। वकील साहब बड़े विनम्र और सुशील सज्जन हैं। आपसे जिस समय जिस काममें सहायता माँगी जाती है, आप अपना हर्ज करके भी, फौरन् साहाय्य प्रदान करते हैं।

कलकत्ता
अगस्त, सन् १९२३ ई०

विनीत—
हरिदास।

——::#::——

द्वितीय संस्करण पर वक्तव्य।

मेरे जैसे अल्पज्ञ लेखकका अनुवाद किया हुआ 'शृङ्गारशतक' भी जनताने उसी चाहसे ख़रीदा, जिस चाहसे कि उसने "नीति-शतक" और "वैराग्यशतक" ख़रीदे थे। पबलिककी क़द्रदानीसे ही, अभी इसी मासमें, "वैराग्य शतक" का तीसरा और "शृङ्गार-शतक" का दूसरा संस्करण हुआ है। मेरे लिखे ग्रन्थोंको हिन्दी-भाषा-भाषी इतने चावसे ख़रीदते और पढ़ते हैं, इसका कारण मेरी विद्वत्ता या मेरी लेखन-शैलीकी उत्तमता नहीं, किन्तु दयामय कृष्णकी कृपा है।

इस आवृत्तिमें, मैंने "शृङ्गार शतक" में बहुत कुछ फेरफार किया है। अनेकों नई बातें बढ़ा दी हैं, तभी तो यह ग्रन्थ २६३ सफोंसे ४२१ सफों पर जा पहुँचा है। चित्र भी दूने कर दिये गये हैं। पहले १५ चित्र थे, अब प्रायः २६ हैं। काग़ज़ भी पहलेसे बहुत बढ़िया लगाया गया है। इतने पर भी मूल्य नहीं बढ़ाया, वही पहलेका मूल्य रक्खा है। आशा है, जगदीशकी दयासे, क़द्रदाँ पबलिक "शृङ्गार शतक" के इस संस्करणको पहलेसे भी बहुत जियादा पसन्द करेगी।

इस संस्करणमें भी, मैंने बाबू रघुराजकिशोर बी०ए०के "महा-कवि अकबर" और पण्डित ज्वालादत्तजी शर्माके 'मौलाना हाली'से जहाँ-तहाँ मदद ली है, अतएव मैं उन दोनों सज्जनोंका आभारी हूँ।

कलकत्ता
जुलाई, सन् १६२४ ई०

विनीत—
हरिदास।

वर्तमान संस्करण
पर
निवेदन

भगवान् कृष्णचन्द्र की असीम कृपा से आज हम अपने जीवन में ही "शृङ्गार शतक" का तीसरा और "वैराग्य शतक" का चौथा ऐडीशन देख रहे हैं, एतदर्थ भक्तवत्सल भगवान् कृष्ण को अशेष धन्यवाद हैं।

हमारे अनुवाद किये हुए तीनों शतक सुशिक्षित, अर्द्धशिक्षित सभी तरह के सज्जनों ने ख़ूब पसन्द किये हैं। प्रायः सभी—सौ फ़ी सदी—पत्र-सम्पादकोंने उनकी हद से जियादा तारीफें की हैं। उनमें से चन्द प्रतिष्ठित-से-प्रतिष्ठित पत्रों की सम्मतियाँ हमने इस शतक में ही छपा भी दी हैं। सर्व साधारण ने भी शतकों की खूब क़द्र की, तभी तो इनके तीन-तीन और दो-दो हज़ारी चार-चार संस्करण तक हो गये।

पर किसी भी चीज के सभी प्रशंसक नहीं होते। एकाध निन्दक भी निकल ही आता है। प्रयागके एक पण्डित मोहनलाल जी नेहरू महोदय को उनमें कई दोष दिखाई दिये हैं। जैसे, इनमें

स्त्री-जाति की घोर निन्दा लिखी है; इनमें दृष्टान्त देने के लिए अनुवादक ने मनगढ़न्त कहानियाँ लगा दी हैं; भर्तृहरि की कहानी कल्पित है, और अङ्गरेज़ों की तारीफ़ करते हुए, देशी राजाओं की मिट्टी-पलीत की गई है, वगैरः।

हमारी इच्छा थी, कि हम नेहरू महोदय की प्रत्येक वेबुनियाद दलील का जवाब शृङ्गार शतक में देते; पर हमारे सौभाग्य से "गङ्गा" और "माधुरी" जैसी उच्च श्रेणीकी पत्रिकाओं में विद्वानों ने स्वतः ही नेहरूजी को मुँहतोड़ जवाब दे दिये हैं। हाल में, हमारे एक सच्चे हितैषी, विद्वान् मित्र, हिन्दी के सुविख्यात लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श महोदय ने भी नेहरू महाशय की प्रत्येक दलील का जवाब बहुत ही ख़ूबसूरती से दे दिया है। दुराग्रही को तो स्वयं विधाता भी नहीं समझा सकता, हमारी और श्रीयुत ज़हूरबख़्श जी की क्या सामर्थ्य है? पर अगर कोई सचाई, ईमानदारी और न्याय पर चलने वाला हो, तो वह श्री ज़हूरबख़्शजी की प्रत्यालोचना देख-पढ़कर, अपनी ऊलजलूल बातों के लिए फौरन खेद प्रकाश करे और उन्हें वापिस ले ले। पर हमें ऐसी आशा नहीं, इसके लिए बहुत बड़े दिल की जरूरत है।

हिन्दुओं के प्रायः अनेक पुराणादि ग्रन्थों में नारी-निन्दा-व्यंजक अनगिन्ती श्लोक भरे पड़े हैं। राम-चरित-मानस में ही स्त्री अतीव तुच्छ मानी गई है। नेहरूजी जब हमारे शतकों का पढ़ा जाना हानिकर समझते हैं और बालकों को उनके पढ़ने से रोकते हैं; तब हिन्दुओं के उन सब ग्रन्थों के प्रकाशकों को उन्हें अग्निदेव के

हवाले कर देने की आज्ञा क्यों नहीं देते ? हमने अपनी टीका या भाष्य में जो भी लिखा है, वह सब उन्हीं ग्रन्थों का मसाला ही तो है। नेहरूजी पत्तों का नाश करके अपने ध्येय या मंजिले मक़सूद तक पहुँचा चाहते हैं, पर काम तो होगा, मूल के नाशकरने से। पहले उन्हें उन सब ग्रन्थों का प्रकाशन बन्द करवाना चाहिये।

नेहरू जी एक आँख से सब को नहीं देखते। इन्साफ़ के दो आँखें नहीं होतीं। हम से पहले एक और विद्वान्, जयपुर स्टेट की कौन्सिल के सीनियर मैम्बर, रायबहादुर पुरोहित गोपीनाथ जी एम० ए० ने शतकत्रय का अनुवाद किया है। हमारी उनकी शैली मिलती-जुलती है। उन्होंने भी वही किया है जो हमने। फ़र्क़ इतना ही है कि, उन्होंने प्रायः पाँचसौ सफों पर दम लिया है और हमने १४५० पर। नेहरू जी शतकों का अनुवाद पचास सफों में ही चाहते हैं। नेहरूजी ने उन पर, न जाने क्यों, आक्रमण नहीं किया ?

न्याय पर चलना बड़ा कठिन है। उसमें ईर्षा-द्वेष आदि की गुञ्जाइश नहीं है। अँगरेजों में फिर भी न्याय-बुद्धि है, चाहे नौशेरवाँ से कम हो, पर हम हिन्दुस्तानियों की अपेक्षा बहुत जियादा है। इसीसे हमने 'नीतिशतक' में अँगरेज़-जात की तारीफ़ में चन्द लाइनें या एक दो सफे लिख दिये। क्या बुरा किया ? असल में तो नेहरू जी हम पर अँगरेज़-प्रशंसा से ही चिढ़े हैं और हमें वृद्धावस्था में वृथा—बे सिर-पैर की बातों के लिए, कष्ट दिया है। परमात्मा से प्रार्थना है, वह उन्हें शतंजीवि करे, ताकि उनसे देश की भलाई हो।

हम समझते हैं, नेहरू जी हमारी "शृङ्गारशतक" में लिखी स्त्री-प्रशंसा से भी सन्तुष्ट न होंगे। शायद कहेंगे, कि वह प्रशंसा तो नारी-जाति को पुरुष जाति की दासी या भोग्य वस्तु समझ कर ही लिखी गई है, अतः वह अपर्याप्त है। हमें उतने से सन्तोष नहीं हो सकता।

यद्यपि हम भी उनकी तरह ही स्त्री को पुरुष की दासी या पैर की जूती अथवा भोग्य वस्तु नहीं मानना चाहते, स्त्री को हर तरह से पुरुष की बराबर की मानते हैं। पर यह काम, अभी, कम-से-कम एक सदी तक, हमें तो असम्भव जान पड़ता है, क्योंकि हिन्दुओं की शिक्षा-दीक्षा ही ऐसी है। उनके सारे ग्रन्थों में स्त्री पुरुष की दासी ही मानी गई है। हाँ, अगर नेहरू महोदय हिन्दुओं के सभी वेद, पुराण और शास्त्रों को अलाउद्दीन खिलजी या औरङ्गज़ेब की तरह भस्मीभूत करा सकें, और नये सिरे से अपने मत के ग्रन्थ लिखवावें, तब तो कामयाबी जल्दी हो सकती है। असम्भव बात कहना या लिखना बुद्धिमानी नहीं, इसीसे हमने स्त्रियों की तारीफ में जितना इस समय, जमाने को देखते हुए, उचित समझा, लिखा। अगर हम स्त्री-निन्दक होते, तो खामख्वाह सैकड़ों पेज नारी-प्रशंसा से क्यों भर देते ? और जियादा लिखना फ़िजूल है। "अक़्लमन्दाँ रा इशारा काफ़ी अस्त"।

मथुरा। } विनीत

ता० १-१०-१९३३ ई०। } हरिदास।



चित्र-सूची

—:o:—

भर्तृहरि-कृत शतकत्रय

(लेखक—श्री मुन्शी जहूरबख़्शजी, 'हिन्दी-कोविद')

गत अप्रैल की 'सरस्वती' देखी, तो मालूम हुआ, कि उसमें पण्डित मोहनलाल नेहरू-लिखित "नीति शतक और वैराग्य शतक" शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है; जिस में प्रातःस्मरणीय महाराज भर्तृहरि-रचित और हिन्दी के धुरन्धर विद्वान् बाबू हरिदासजी वैद्य द्वारा अनुवादित 'नीति शतक' और 'वैराग्य शतक' नामक ग्रन्थों की आलोचना की गई है। अभी तक हमें यही मालूम था, कि नेहरू जी कहानी-लेखक हैं, और यदा-कदा 'गदाधर प्रसाद' की ओट में हिन्दी पर दया कर दिया करते हैं। परन्तु इस लेख से मालूम हुआ, कि अब आप समालोचकों की श्रेणी में भी जा बैठे हैं। अतः हमने आपके लेख को अत्यन्त ध्यान-पूर्वक पढ़ा और यह जान कर हमारे आश्चर्य की सीमा न रही, कि इन प्राचीन और चिर-प्रसिद्ध ग्रन्थों में नेहरूजी को एक भी गुण न मिला; मिले केवल दोष-ही-दोष। बात यह, कि हम सदा से इन ग्रन्थों को अत्युच्च कोटि का समझते आए हैं, और जब-जब हमारे चित्त

में खिन्नता हुई, तब-तब इनके पाठ से हमें सन्तोष-लाभ हुआ है। इसके सिवा अब तक हिन्दी के सभी पत्र इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते आ रहे थे, इनमें उन्हें गुण-ही-गुण दिखाई देते थे—दोष एक भी नहीं। इस में सन्देह नहीं, कि इन सर्व-प्रशंसित ग्रन्थों में दोष-ही-दोष निकाल कर नेहरू जी ने अपनी अपूर्व विद्या-बुद्धि का परिचय दिया है, और इसके लिये उन्हें बधाई भी दी जा सकती है। अस्तु—

नेहरूजी का लेख पढ़ने के बाद कई दिन तक हमारे हृदय में हलचल-सी मची रही। तबियत में बार-बार यह ख़याल आता था, कि यदि इस लेख का उत्तर दिया जाय तो ? मैं बार-बार नेहरूजी का लेख पढ़ता था, और हृदय से एक ध्वनि उत्थित होती थी—इस लेख का उत्तर देना, मानो ग्रन्थों का महत्त्व कम करना होगा। दूसरी ध्वनि तुरन्त ही इस ध्वनि को दबा देती थी—नहीं, उत्तर देना आवश्यक है। एक तो उत्तर न देने से अनधिकारी आलोचकों का हौसला बढ़ जाता है, दूसरे अच्छे ग्रन्थों के विषय में, जनता में भ्रम फैलने की भी संभावना रहती है। इस अन्तर्द्वन्द्व में, अन्तिम ध्वनि ने ही विजय प्राप्त की; और उसी की प्रेरणा का फल इन पंक्तियों का यह समूह है।

यों तो नेहरूजी ने अपने लेख में इन ग्रन्थों के विरुद्ध बहुत-कुछ रोना रोया है, परन्तु जिन दलीलों के आधार पर

आपने आँसुओं की यह धारा बहाई है, वे उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार हैं—

१—"एक पुराने ग्रन्थ के अनुवाद की आड़ में बाबू हरिदासजी वैद्य ने बहुत-सी मनगढ़न्त कहानियाँ रची हैं, यहाँ तक कि यह कहानी तक रच डाली है, कि भर्तृहरि चक्रवर्ती राजा थे। वे महाराजा विक्रमादित्य के बड़े भाई थे, उनके बहुत-सी रानियाँ थीं, जिनमें सब से प्यारी रानी पिंगला थी। रानी के कुलटा साबित होने पर राजा को वैराग्य हो गया। मुझे ऐसा मालूम होता है, कि अनुवादक महोदय ने अलिफ़ लैला में जो कहानी पढ़ी थी वह आपने भर्तृहरि के सिर मढ़ दी। और + + + अनुवादकजी ख़ुद भर्तृहरि की कहानी का कल्पित होना स्वीकार करते हैं।

२—"अगर असली ग्रन्थ का ही अनुवाद होता तो मुशकिल से पचास पृष्ठ की ज़रूरत होती। मगर ख़ाली नीति और वैराग्य की बातें पढ़ता कौन ? शायद यही सोचकर, उन्हें रोचक बनाने को, अनुवादक महोदय ने भर्तृहरि की कहानी रच डाली और उनके कुल श्लोकों पर, टीका करते समय, तरह-तरह की कहानियाँ भी सुनाते गए। आपको १६१६ में 'परचित मित्रों और नातेदारों की नाराज़गी से वैराग्य-सा हो गया था और आप वैराग्यशतक पढ़ा करते थे, इसी से आपने "वैराग्य शतक" का अनुवाद भी कर डाला। मगर इस वैराग्य में भी आपने

ऐसी गढ़न्त की, कि भावी पाठकों को पढ़ने में कुछ आनन्द आवे, जिस में वे अपनी-अपनी थैलियों के मुँह खोल दें।"

३—"वैराग्यशतक में तो अनुवादक महोदय ने दिल खोल कर स्त्रियों को गालियाँ दी हैं। जिस किसी लेखक ने स्त्री के विरुद्ध कुछ भी लिखा है, उसे आप विद्वान् की पदवी देते हैं और उसके वाक्य को अक्षर-अक्षर या राई-रत्ती सच्चा बताते हैं, मानो वह विक्रमादित्य के मुँह से ही कहा गया है। + + + अगर किसी ग़रीब परिवार में अनुवादक महोदय बच्चों को भूखा देखते हैं और उन्हें अपनी माँ से भूख-भूख कहते सुनते हैं तो उनकी यह सम्मति होती है कि, "संसार में स्त्री ही सब दुखों का कारण है।"

४—"अपनी बुद्धि के अनुसार आपने श्लोकों पर टीका-टिप्पणी की हैं। कहीं कहीं तो ऐसी टिप्पणियाँ हैं, कि अगर भर्तृहरि की आत्मा कहीं भ्रमण करती हुई, वास्तव में, यहाँ आ जाय और इस पुस्तक को पढ़े तो एक दम काँप उठेगी और कहेगी, कि अगर मुझे मालूम होता कि मेरी रचना का इस तरह तोड़-मरोड़ करने वाले पैदा होंगे, तो मैं कभी नहीं लिखता।"

५—नीति-शतक के छयालीसवें और सैंतालीसवें श्लोक में भर्तृहरि ने राजा के धर्म और राजनीति के स्वरूप पर कुछ प्रकाश डाला है। इन श्लोकों की व्याख्या करते समय, अनु-

वादक महोदय ने अंग्रेज सरकार की कुछ प्रशंसा करदी है, पर इसके साथ ही देशी राजाओं की कर्त्तव्य-शिथिलता के विषय में भी दो एक वाक्य लिख दिए हैं। इस पर नेहरूजी बहुत असन्तुष्ट हुए हैं। आपको इन श्लोकों पर तो आपत्ति है ही, इसके साथ ही आपको यह बात बहुत नागवार गुज़री है, कि भूमिका में भूतपूर्व वाइसराय लार्ड चेम्सफ़ोर्ड और बंगाल-सरकार के प्राइवेट सेक्रेटरी मिस्टर गोरले एम० ए०, सी० आई० ई०, आई० सी० एस० तो प्रशंसा के पात्र ठहराए गए हैं, पर उनके मुक़ाबले में देशी राजाओं की मिट्टी-पलीत की गई है।

६—इसके बाद नेहरूजी अत्यन्त भयभीत हो उठे हैं, और आपने अपने भय को इस प्रकार प्रकट किया है—"आप कहते हैं कि वैराग्यशतक या किसी और शतक के प्रत्येक श्लोक लाख लाख रुपए के हैं। आप के वास्ते वे ज़रूर हैं, क्योंकि प्रत्येक पर आपने कहानियाँ गढ़ी हैं, जिनको पढ़ाकर आप प्रत्येक मनुष्य को वैराग्य प्रदान करना चाहते हैं। योंही इस मुल्क के लोग, पुराने ज़माने से, इस लोक की फ़िक्र छोड़कर परलोक के ही सँभालने में लग रहे हैं और इसका जो परिणाम हमें मिल रहा है वह प्रकट ही है। मुद्दत से हम परतंत्रता में पड़े हुए हैं। + + + हम पूछते हैं कि अगर आप की बात मानकर सब लोग वन को चले जायँ, तो आप के अनुवादों को + + + पढ़ेगा कौन ?"

७—परन्तु नेहरूजी बुद्धिमान आदमी हैं। इस भय का परिहार करने के लिये आपने युक्ति भी बड़ी सरलता से ढूँढ़ निकाली है, और वह इस प्रकार—

क—"इन पुस्तकों का मूल्य बेहद ज्यादा है," और—

ख—"इस समय वे गलत रास्ते पर ले जाने की कोशिश करती हैं। हम यह सलाह नहीं दे सकते। कि हमारे बच्चे जिन पर देशोद्धार का भार है, इन्हें पढ़ें।"

बस, नेहरूजी ने अपने इन्हीं तर्कों के खंभों के सहारे, इन ग्रन्थों की समालोचना की छत तैयार की है। अब देखना चाहिए, कि ये खंभे कितने टिकाऊ हैं, कितने धक्के खा सकते हैं, और समालोचना की छत के भार को सँभाल भी सकते हैं या नहीं ?

१—एक पुराने ग्रन्थ की ओट में यदि बाबू हरिदासजी वैद्य ने बहुत-सी मन-गढ़न्त कहानियाँ रची हैं, तो इसमें हानि ही क्या हुई ? आखिर आप भी तो, सामाजिक बुराइयों की ओट में, कहानियाँ रचते आ रहे हैं, यह किस मतलब से—किस अधिकार से ? भला यह भी कोई इंसाफ है, कि आप तो मनगढ़न्त कहानियाँ रचने का अधिकार रक्खें और दूसरे के अधिकार पर कुठाराघात करें ? फिर साहित्य में कोई चीज़ आप-से-आप तो पैदा होती नहीं, मनगढ़न्त के सहारे ही रची जाती है। यदि सच पूछा जाय, तो कहना पड़ेगा कि संसार के बड़े-बड़े धर्म-शास्त्र, क़ानूनी-ग्रन्थ, महाकाव्य, उपन्यास आदि मनगढ़न्त ही हैं और यह मनगढ़न्त

लोक-कल्याण की कामना से—साहित्य-सेवा की पवित्र भावना से ही की गई है। तब वैद्य जी ने भी, जनता के आचरण पर प्रभाव डालने की ग़रज़ से, कुछ कहानियाँ रच डालीं, तो क्या पाप हो गया ? और यदि इस 'मनगढ़न्त' का आश्रय न लिया जायगा, तो साहित्य की सृष्टि कैसे होगी, यह तो बतलाइए ?

फिर वैद्य जी ने मनगढ़न्त कहानियाँ रची कहाँ हैं ? पंचतंत्र, दृष्टान्तसागर, आदि संस्कृत-ग्रन्थों में जो नीति-विषयक कहानियाँ हैं, उन्हीं में से कुछ सुन्दर कहानियाँ चुनकर, उनको अपने ढँग पर श्लोक वग़ैरः से सजाकर, उन्होंने अपने शतक-त्रय में रखदी हैं। और वह भी इस ग़रज़ से, कि दृष्टान्तों-द्वारा मूल-भावों का स्पष्टी-करण भली-भाँति हो जाय; जो दोष नहीं, एक सुन्दर गुण ही है। हाँ,–यदि ये कहानियाँ मौज़ूँ न होतीं, प्रसंग-विरुद्ध होतीं, तो अवश्य ही दोष की बात होती; परन्तु शतक-त्रय में बहुत ढूँढ़ने पर भी यह दोष दिखाई नहीं देता। नेहरू जी अँगरेजी के जानकार भले ही हों, पर संस्कृत से तो बिलकुल ही कोरे जान पड़ते हैं, संस्कृत की बात जाने दीजिए, हिन्दी-दुनियाँ की भी आपको पूरी खबर नहीं है; यदि यह बात न होती, तो आप कदापि वैद्य जी पर मनगढ़न्त कहानियाँ रचने का दोषारोपण न करते। अस्तु।

बाबू हरिदास जी वैद्य तो कहीं भी भर्तृहरि की कहानी का कल्पित होना स्वीकार नहीं करते। यह तो नेहरू जी का ही ख़याल

है, कि अनुवादक महोदय ने अलिफ़लैला में जो कहानी पढ़ी थी, वह भर्तृहरि के सिर मढ़ दी है। परन्तु उनके इस ख़याल से कुछ बनता विगड़ता नहीं। संस्कृत-साहित्य में भर्तृहरि के इन शतक-त्रय का अत्युच्च स्थान है, और संस्कृत के पण्डितों ने भर्तृहरि को जो सम्माननीय स्थान दे रक्खा है, वह कभी टस-से-मस नहीं हो सकता। नेहरू जी लाख कहें, लाख तर्क उपस्थित करें, लाख आपत्तियाँ पेश करें, संस्कृत के पण्डित उन्हें मानने वाले नहीं। वे तो बराबर यही कहेंगे, कि भर्तृहरि महाकवि थे, और उनकी कविता अत्यन्त सुन्दर हुई है। यह सच है, कि इतिहास भर्तृहरि और विक्रमादित्य के अस्तित्त्व पर विशेष सन्देह-शील है; पर बुन्देलखंड और मालवे के एक-एक ग्राम के निरक्षर निवासी तक यह जानते हैं, कि महाराज भर्तृहरि उज्जैन के राजा थे, उनकी प्यारी रानी पिंगला अत्यन्त कुलटा थी, और अन्त में उसी के कारण उन्होंने राज-पाट त्याग कर संन्यास ले लिया। जन-श्रुति के आधार पर उत्पन्न हुए, इस अमर विश्वास पर कौन पानी फेर सकता है? एक बात और। यदि भर्तृहरि अलिफ़लैला की कहानी के रूपान्तर मात्र हैं, तो फिर उनके नाम से किस भले आदमी ने शतक-त्रय जैसे अमर और लोक-वन्द्य ग्रन्थ रच डाले? मालूम नहीं, नेहरू जी इस सवाल का क्या जवाब देंगे।

अफ़सोस तो है, उस प्रवृत्ति पर, जो नवीन रोशनी की चकाचौंधी में, अपने पूर्वजों और उनकी कृतियों के अस्तित्त्व पर इतना घोर सन्देह प्रकट करने लगी है। वास्तव में भर्तृहरि और

उनके ग्रन्थ भारतीय साहित्य के लिये गर्व के पदार्थ हैं। परन्तु नेहरूजी भर्तृहरि को काल्पनिक व्यक्ति और उनके ग्रन्थों को निस्सार और निरुपयोगी बतलाते हैं। यदि उनका मत समीचीन माना जाय, तब तो भारत के प्राचीन साहित्य का सर्वनाश ही समझिए। कितने ही महान् नाम साहित्य-सेवियों की सूची से खारिज कर दिए जायँगे, और उनके बहुमूल्य ग्रन्थ कूड़े-करकट के समान अग्नि में झोंक दिए जायँगे। आज भगवान् मनु और वेदव्यास, महर्षि वाल्मीकि, कवि-कुल-किरीट कालिदास, महाकवि भारवि और माघ, आदि के अस्तित्त्व के पुष्ट प्रमाण कहाँ पाए जाते हैं? तब क्या हम इनके अस्तित्त्व में सन्देह करने लगें, और इनके ग्रन्थों को निस्सार और निरुपयोगी समझकर हिन्द-महासागर में फेंक दें? हम नेहरूजी और उनके समान ही विचार रखने वाले सज्जनों से स्पष्ट शब्दों में कह देना चाहते हैं, कि यदि पूर्वजों का आदर न किया जायगा, उनकी कृतियों की रक्षा न की जायगी, तो आपका नीचा मस्तक और भी नीचे झुकेगा, और अन्त में आपके हाथ में केवल ढाक के तीन पात ही रह जायँगे।

२—नेहरूजी का ख़याल है, कि "अगर असली ग्रन्थ का ही अनुवाद होता, तो मुश्किल से पचास पृष्ठों की ज़रूरत होती।" तब इतने ज्यादा पृष्ठ रंगकर अनुवादक महोदय ने बेशक बड़ा पाप किया है, उन्हें पृष्ठ गिन-गिन कर अनुवाद करना चाहिए था। परन्तु यथार्थ बात यह है, कि महाकवि तो दो शब्द कह कर अलग हो जाते हैं। अब यह काम अनुवादक या भाष्यकार

का है, कि वह उन शब्दों का अर्थ स्वयं समझे और लोगों को समझावे। यदि वह समर्थ होगा, तो अवश्य ही उन शब्दों का रहस्य खोल कर प्रकट कर देगा, और ऐसा करने में उसे निश्चय ही अगणित शब्दों का सहारा लेना पड़ेगा। चूँकि भर्तृहरि की कविता अत्यन्त गम्भीर है, और उसका वास्तविक मर्म समझ लेना अत्यन्त मुश्किल है। इसी मुश्किल को आसान करने के लिये—कवि के अन्तर्भाव को स्पष्ट करने के लिये, यदि अनुवादक महोदय ने इतने पृष्ठ खर्च डाले, तो क्या अनुचित किया ? परन्तु नेहरूजी की राय है, कि अनुवाद पचास पृष्ठ के भीतर ही होना चाहिए था। भर्तृहरि की कृति को कोई समझे, चाहे न समझे, उनकी बला से।

एक बात और। इतने ज्यादा पृष्ठों में अनुवाद करने का पाप अकेले बाबू हरिदास जी वैद्य ने ही नहीं किया है। समर्थ अनुवादकों को जब कभी धार्मिक या नैतिक ग्रन्थों के अनुवाद करने की आवश्यकता पड़ी है, तब उन्होंने वैद्यजी के समान ही, या उससे भी ज्यादा पाप किया है। इसके उदाहरण भारत में ही नहीं, विदेशों में भी पाये जाते हैं, और इतनी अधिक संख्या में पाये जाते हैं, कि उनकी गिनती कर सकना भी असम्भव है। केवल वेदों पर ही बेशुमार ग्रन्थ लिखे गए हैं। उनके भाष्य या टीका-टिप्पणियों का मूल्य और परिमाण देख-सुनकर तो दाँतों तले उँगली दबा लेनी पड़ती है। यदि पचास रुपए मूल्य तक के ग्रन्थों की ही नामावली लिखी जाय, तो एक छोटा-सा सूची-पत्र

बन जायगा। इसलिये हम यहाँ ऐसे ही ग्रन्थों के नाम देंगे, जिनका मूल्य पचास रुपए या पचास रुपए से अधिक है—

ऋग्वेद—

(१) सायणाचार्य—शाकल शाखा। संस्कृत भाष्य। प्रोफे॰सर मैक्डानल्ड और पशुपति आनन्द गजपतिराय द्वारा सम्पादित और प्रकाशित। चार भाग। मूल्य ३००)

(२) राजाराम शिवराम शास्त्री—सायण-भाष्य। मूल्य१५०)

(३) दुर्गादास लाहिड़ी—सायण-भाष्य। एक अष्टक का स्वतंत्र वंगानुवाद। १६ भाग। मूल्य २५०)

(४) ए॰ लुड्विग—जर्मन अनुवाद। छः भाग। मूल्य २००)

(५) एच॰ एच॰ विल्सन—अँगरेजी अनुवाद। छः भाग। मूल्य—१२५)

(६) एस॰ पी॰ पंडित—केवल तीन मंडल। मराठी और अँगरेजी अनुवाद। मूल्य—७५)

(७) प्रसन्न कुमार विद्या-रत्न—सायण-भाष्य। मूल्य—१००)

कृष्ण यजुर्वेद—

(८) दुर्गादास लाहिड़ी—सायण तैत्तिरीय-संहिता वंगानुवाद। नौ भाग। मूल्य—१४४)

(९) भट्ट भास्कर मिश्र—१० भाग। अपूर्ण। मूल्य—८०)

(१०) ए॰ बेवर—मैत्रायणी-संहिता। मूल्य—६५)

(११) एल० श्रोडर—मत्रायणी-संहिता। चार भाग। मूल्य ६०)

शुक्ल यजुर्वेद—

(१२) जे० एगलिंग—शतपथ ब्राह्मण। अँगरेज़ी अनुवाद। पाँच भाग। मूल्य—७५)

(१३) ए० वेबर—संपादित। शतपथ ब्राह्मण। सायण, हरिस्वामी और द्विवेदी गंग की टीका। मूल्य ६०)

सामवेद—

(१४) दुर्गादास लाहिड़ी—कौथुम शाखा। सायण-भाष्य। वंगानुवाद। मूल्य—१२८)

अथर्ववेद—

(१५) दुर्गादास लाहिड़ी—शौनक-शाखा। सायण-भाष्य वंगानुवाद। मूल्य—८०)

(१६) डब्ल्यू० कलेण्ड—(उट्रिज, हालैण्ड में प्रकाशित) मूल्य—६०)

(१७) एम० ब्लूमफील्ड और आर० गार्वे—पिप्पलाद। चार भाग। (महाराजा काश्मीर की लाइब्रेरी से प्राप्त) मूल्य—३५०)

वैदिक साहित्य-सम्बन्धी अन्य ग्रन्थ—

(१८) राथ और वोह्ट्लिंग्क—(पीटर्सबर्ग) संस्कृत-जर्मन महाकोष। सात भाग। पृष्ठ-संख्या १००००। मूल्य—१०००)

(१६) एच० ग्रासमान—ऋग्वेदिक कोष। जर्मन भाषा। मूल्य—५०)

(२०) ए० हिलेब्राण्ड्ट्—वैदिक डिक्शनरी। तीन भाग। मूल्य ६०)

(२१) एम० ब्लूमफ़ील्ड—वैदिक कंकार्डेन्स। ११६ ग्रन्थों के आधार पर यह 'मंत्र-महासूची' बनाई गई है। मूल्य—६०)

(२२) मैक्डानल्ड और कीथ—वैदिक इंडेक्स। मूल्य ५०)

(२३) एच० टी० कोलब्रुक—एसे ऑन दि वेदाज़। अँगरेज़ी भाषा। आठ भाग। मूल्य—५०)

इसमें शक नहीं, ये सब लोग विद्वान् नहीं, एक-दम पागल थे, तभी तो क़ाग़ज़, क़लम और स्याही पर इस क़दर अत्याचार करते रहे। राथ और वोह्टलिंग्क को तो देखिये, भले आदमी क़लम लेकर बैठे, तो न दस-पाँच, न सौ-पचास, पूरे दस हज़ार सफ़े पर जाकर रुके। नेहरू जी से सलाह भी न ली। क्या कहें, न हुआ स्वराज्य, नहीं तो इन लोगों को सेना भेज कर पकड़ बुलाते, और एक दम फाँसी के फन्दे से लटका देते।

नेहरूजी अच्छी तरह जानते हैं, कि अनुवादक महोदय ने क्यों इन शतकों के अनुवाद को इतना वृहत् रूप दिया है। यह बिल्कुल सच है, कि ख़ाली नीति और वैराग्य की बातों को कोई नहीं पढ़ना चाहता। परन्तु ये विषय ऐसे हैं, कि इनकी शिक्षा-

प्राप्त किये बिना, मनुष्य मनुष्य बन ही नहीं सकता। इसीलिए इनकी शिक्षा देने के लिए, दुनियाँ के सभी विद्वानों ने एक ही तरीक़ा ईजाद किया है, और वह है—कहानियों की शरण लेना। ग्रीस देश के प्राचीन विद्वान् ईसप ने नीति-शिक्षा देने के विचार से ही छोटी-छोटी कहानियों की रचना की थी, जो आज सम्पूर्ण पृथ्वी में मान पा रही हैं। भारतीय पण्डितों ने भी इसी उद्देश्य से दश-कुमार-चरित्र, पंच-तंत्र, हितोपदेश, भोज-प्रबन्ध, आदि ग्रन्थों की रचना की थी। आज पाठशालाओं में भी इसी साधन-द्वारा बालकों को नैतिक शिक्षा दी जाती है। स्वयं नेहरू महाशय, सामाजिक बुराइयाँ दिखाने और स्थानों के हृदय पर प्रभाव डालने के लिए, कहानियों के चरण चूमते और तिल को ताड़ बनाया करते हैं। तब बाबू हरिदासजी वैद्य ने भी, यदि परमोपयोगी शिक्षा देने के लिये, कहानियों का यह साधन अपनाया, तो क्या बुरा किया? जो बात सारी दुनियाँ में गुण समझी जाय, वही वैद्यजी के लिए दोष हो—यह बहुत बड़ी ज़बर्दस्ती है। और इसका कारण यह बतलाना, कि "पाठकों को पढ़ने में कुछ आनन्द आवे, जिसमें वे अपनी-अपनी थैलियों के मुँह खोल दें", जले पर नमक छिड़कना है—घृणित रूप से अनुवादक का अपमान करना है। नेहरू महाशय वर्षों से रोचक और अतिरञ्जित कहानियाँ लिखते आ रहे हैं, क्या वे कृपाकर बतला सकते हैं, कि उनके सामने कितने पाठकों ने अपनी-अपनी थैलियाँ उडेल दी हैं?

वैद्यजी ने अपने अनुवादों को उपयोगी वनाने के लिये केवल क़हानियों को ही नहीं अपनाया है, वरन उस्ताद ज़ौक़, महाकवि ग़ालिव, दाग़, मियाँ नज़ीर, महात्मा तुलसीदास, सुन्दरदास, कवीर, आदि की रचनाओं से भी सहायता ली है; गुलिस्ताँ, वोस्ताँ, महाभारत, कुमार सम्भव, किराताज्र्जुनीय, रघुवंश; हितोपदेश, पंचतंत्र, आदि ग्रन्थों से भी सुन्दर-सुन्दर वाक्य उद्धृत किये हैं, इनके सिवा सैकड़ों विदेशी-विद्वानों के वचनों से भी काम चलाया है; और ये सव मौक़े-ब-मौक़े ऐसे सज रहे हैं, जैसे हरी-भरी वाटिका में मनोहर पुष्प। फलतः अनुवाद और भी सुन्दर, मनोहर, रोचक और हृदयग्राही हो गए हैं। परन्तु इनकी यह ख़ूवी भी नेहरूजी की दृष्टि में छोटा नहीं, बहुत मोटा दोष है। और तो और, आपकी समझ में यह भी दोष है, कि अनुवादक महोदय को १६१६ में परिचित मित्रों और नातेदारों की नाराज़गी से वैराग्य-सा हो गया था और आप "वैराग्य शतक" पढ़ा करते थे, इसी से आप ने वैराग्य शतक का अनुवाद भी कर डाला। भला परिचित मित्रों तथा नातेदारों की नाराज़गी और वैराग्य शतक के अनुवाद का क्या सम्वन्ध? अनुवादक महोदय "वैराग्य-शतक" पढ़ते थे, तो उनकी आत्मा तृप्त होती थी— उससे आनन्द प्राप्त होता था, इसीलिए उन्होंने सोचा, कि यदि और लोग भी मेरे इस आनंन्द में शरीक हो सकें, तो अच्छा। उस समय हिन्दी में "वैराग्य शतक" के अच्छे अनुवाद का अभाव था ही; वस, वैद्यजी ने यह कार्य कर डाला। भला



न्याय-विधान की किस धारा के अनुसार यह कार्य, जुर्म कहा जा सकता है ? आखिर दुनियाँ में जितने भी अनुवाद निकलते हैं, उनका कारण यही होता है, या कुछ और ? जब उनके अनुवादक दोषी नहीं ठहराए जाते, तब "वैराग्य शतक" के अनुवादक ने ऐसी क्या घोड़े की जीभ काटी है, कि वह पद-पद पर दोषी ठहराया जा रहा है।

३—नेहरू महाशय इस बात पर तो बहुत ही बिगड़े हैं, कि वैराग्य शतक में अनुवादक महोदय ने स्त्रियों को दिल खोलकर गालियाँ दी हैं। यथार्थ बात यह है, कि प्रत्येक ग्रन्थ की रचना देश, काल और पात्र के अनुकूल हुआ करती है। समालोचक का यह कर्तव्य है, कि वह किसी भी ग्रन्थ की समालोचना करने के पूर्व, उसकी रचना के देश, काल और पात्र की परिस्थिति पर एक बार अवश्य ही विचार करले; तभी वह ग्रन्थ-विशेष की यथार्थ समालोचना कर सकेगा। यदि नेहरूजी ने "नीति शतक" और "वैराग्य शतक" की समालोचना करते समय इस सिद्धान्त को सामने रख लिया होता, तो उनकी लेखनी से शायद इस प्रकार की समालोचना न निकलती।

भर्तृहरि ने नीति-शतक और वैराग्य-शतक की रचना उस समय की थी, जब पिंगला की बेवफ़ाई और बेहयाई ने उनके हृदय को टुकड़े-टुकड़े कर दिया था, और वे संसार का सम्पूर्ण माया-मोह त्याग कर संन्यासी हो गए थे। ऐसी हालत में यदि

उन्होंने स्त्रियों की निन्दा की, तो वह कदापि अस्वाभाविक नहीं कही जा सकती। फिर भर्तृहरि वैराग्य का ग्रन्थ लिखने बैठे थे, और यदि वे विषय के अनुकूल कामिनी और काञ्चन की निन्दा न करते, तो क्या प्रशंसा लिखते? भला वैराग्य के संसार में कामिनी या काञ्चन की गुज़र कहाँ? वहाँ तो वही बात कही जायगी, जो इनके प्रति कठोर-से-कठोर घृणा उत्पन्न कर दे; क्योंकि ये वस्तुएँ वैराग्य की जानी दुश्मन हैं, उसे रह-रह कर प्रलोभन देतीं, और खींचकर गड्ढे में डालना चाहती हैं। वैराग्य-शतक ही क्यों, वेदान्त-विषयक सभी ग्रन्थों में स्त्रियों की कड़ी-से-कड़ी निन्दा पाई जाती है। सभी मतों के साधु-संन्यासी सदा से स्त्रियों की निन्दा करते आए हैं, और करते रहे हैं*।

स्त्री वास्तव में चाहे जो हो, पर वह सदा ही पिता की दृष्टि में पुत्री, भाई की दृष्टि में बहिन, पति की दृष्टि में पत्नी, पुत्र की दृष्टि में माता, विषयी की दृष्टि में उपभोग की वस्तु और योगी की दृष्टि में मिट्टी का ढेला रहेगी। दृष्टि-कोण की यह विभिन्नता इतनी स्वाभाविक है, कि उसे बदलने की चेष्टा करना ही व्यर्थ है। चूँकि भर्तृहरि संसार से धोखा खाए हुए, दिल-जले

---

* संस्कृत में तो इस आशय के अगणित पद्य मिलेंगे। हिन्दी-कवियों ने भी स्त्रियों की बहुत निन्दा की है। तुलसी, कबीर, गिरिधर, देव, आदि, कवियों के बहुतेरे पद्यों में स्त्रियों की घृणित-से-घृणित निन्दा पाई जाती है। विदेशी भाषाओं के ग्रन्थ भी इस दोष से मुक्त नहीं है।

—लेखक।

पर सच्चे संन्यासी थे। यदि उन्होंने स्त्रियों की निन्दा की, तो क्या हानि हुई ? रहे बेचारे अनुवादक जी, सो वे तो भर्तृहरि की रचना का अनुवाद करने बैठे थे, न कि उनकी समालोचना लिखने। अनुवादक का कर्त्तव्य है, कि वह अनुवाद करते समय सब से पहले अपने सिद्धान्तों पर लात मार दे, और तब मूल लेखक के क़दम-ब-क़दम चले और उसके मूल-भावों को अपनी भाषा में स्पष्टता-पूर्वक व्यक्त करे। वैद्य जी ने इसी उचित कर्त्तव्य का पालन बड़ी ईमानदारी से किया है। जहाँ भर्तृहरि ने जैसा लिखा है, वहाँ वैद्यजी ने वैसी ही क़लम चलाई है, और वह भी इस मतलब से, कि पाठक भर्तृहरि के मूल-भाव को भली भाँति हृदयंगम कर सकें। नहीं तो उन्हें कुछ पागल कुत्ते ने थोड़े ही काटा था, कि खामख़ाह स्त्रियों की निन्दा करने बैठ जाते।

"वैराग्य शतक" में एक कहानी दी गई है, जिसका मतलब है—"एक पुरुष ने अपनी स्त्री के प्रेम की परीक्षा लेनी चाही। उसने पत्नी से कहा—आज तो खीर खाने को तबियत चाहती है। इसके बाद वह साँस रोक कर पड़ रहा। खीर तैयार करने के बाद पत्नी ने आकर देखा, कि पति मरा पड़ा है। स्त्री ने मन में सोचा, चलो पहले खीर खालूँ, फिर तो रोना-पीटना है ही, न जाने कितनी देर बाद ठिकाना पड़ेगा। यह सोच कर वह खीर खाने लगी।" इस कहानी को लेकर नेहरूजी ने बड़ी हाय-तोबा मचाई है। कहा है—यह कहानी

ग़लत है, काल्पनिक है, और यह तो बिल्कुल ही नामुमकिन है, कि हिन्दू का मुर्दा घर में पड़ा रहे, और कोई खाए-पिए। पड़ौसी तक तो खाते पीते नहीं। मुमकिन है, कि यह कहानी काल्पनिक और ग़लत हो। पर हम तो नेहरूजी से यही कहेंगे, कि मित्रवर, अभी आपको दुनियादारी की बहुत थोड़ी खबर है। दुनियाँ को जरा आँखें खोलकर देखिए, समझ-बूझकर देखिए, आपको ऐसे-ऐसे दृश्य दिखाई देंगे, कि आँखें खुल जायँगी। अजी भाई जान! यहाँ स्वार्थ के वशीभूत होकर बाप बेटे को, बेटा बाप को, और भाई भाई को भी मार डालता है; और स्त्री, पति को ही नहीं, अपने उदर से उत्पन्न किये बच्चे को भी मार डालती है और फिर गुलछर्रे उड़ाती है। खीर खाने को बैठ जाना तो कोई बात ही नहीं। ऐसी व्यभिचारिणी स्त्रियों की कमी नहीं है, जो अपने पति और बच्चों को त्यागकर दूसरे का घर बसा लेतीं, और अपने बच्चों को एक-एक दाने के लिए कल-पते देखकर भी नहीं पसीजतीं, एवं, ख़ुद माल छकतीं हैं। ऐसी स्त्रियाँ मरे हुए पति को देखकर यदि खीर खाने लगें, तो किसी को ताज्जुब न होना चाहिये।

इसी सिलसिले में नेहरू जी ने अनुवादक महोदय पर यह दोषारोपण किया है, कि यदि किसी दीन परिवार में अनुवादक महोदय भूखे बच्चे देखते और उन्हें माँ के सामने भूख-भूख चिल्लाते सुनते हैं; तो उनकी यह सम्मति होती है, कि संसार में स्त्री ही दुखों की मूल है। अफ़सोस! नेहरू जी ग्रन्थ को ठीक



से पढ़ते नहीं, और अनुवादक जी को व्यर्थ ही काँटों में घसीटते हैं। वैराग्य-शतक के आठवें श्लोक में भर्तृहरि जी ने कहा है—

"दीना दीनमुखैः सदैव शिशुकैराकृष्टजीर्णाम्बरा।
क्रोशाद्भिः क्षुधितैर्निरन्नविधुरा दृश्येत चेद्गेहिनी॥
याञ्चाभङ्गभयेन गद्गदगलत्त्रुट्यद्विलीनाक्षरं।
को देहीति वदेत्स्वदग्धजठरस्यार्थे मनस्वी जनः॥"

अर्थात्—"स्त्री के फटे हुए कपड़ों को दीनातिदीन बालक खींचते हैं, घर के और मनुष्य भूख के मारे उसके सामने रोते हैं—इससे स्त्री अतीव दुःखित है। ऐसी दुःखिनी स्त्री यदि घर में न होती, तो कौन धीर पुरुष, जिसका गला माँगने के अपमान और इन्कारी के भय से रुका आता है, अस्पष्ट भाषा या टूटे-फूटे शब्दों में, गिड़-गिड़ाकर 'कुछ दीजिये' इन शब्दों को अपने पेट की ज्वाला शान्त 'करने' के लिये, कहता?

आश्चर्य तो यह है, कि नेहरूजी स्वयं पढ़े-लिखे हैं, और इस श्लोक का सारा उत्तर-दायित्व अनुवादक-महोदय के सिर डालकर न्याय की दुहाई देते हैं। जो बात भर्तृहरिजी कहें, उसके लिये अनुवादक महोदय क्यों दोषी-ठहराए जायँ? फिर उक्त श्लोक का जो भाव नेहरूजी ने निकाला है, वह ग़लत है—सोलह आने ग़लत है। भर्तृहरिजी ने उस भाव को लेकर उक्त श्लोक रचा ही नहीं और न इसके द्वारा उन्होंने स्त्री-निन्दा ही

की है, बल्कि नादान पुरुष को ही खाली फटकार दी है। श्लोक की ध्वनि स्त्री-जाति की उस तीव्र आकर्षण-शक्ति का परिचय देती है, जिसके सामने पुरुष अपने सामर्थ्य, हिताहित और भविष्य को एक-दम भूलकर खिंचा चला जाता है। पतन के पश्चात् ऐसे पुरुष का परिणाम क्या होता है? यही न, कि वह न तो स्त्री को सन्तुष्ट रख सकता है, न बच्चों का ही पोषण कर सकता है, और पद-पद पर ज़लील और अपमानित होता है। ऐसे पुरुष के लिये स्त्री दुःखका कारण होगी ही। तब यदि वह इस माया में न फँसे, ईश-चिन्तन कर अपना परलोक ही बनावे, तो इसमें उसका कल्याण ही होगा। खेद की बात है, कि श्लोक के इस पवित्र भाव को नष्ट कर नेहरूजी ने ऐसे गन्दे मतलब की कल्पना कर डाली, और ऊपर से न्याय के लिये भी पुकार मचाने लगे। अस्तु—

संभव है, कि नेहरूजी की आलोचना पढ़ने के बाद बहुत से भले आदमियों ने यह ख़याल कर लिया हो, कि महाराज भर्तृहरि ने स्त्रियों की बड़ी निन्दा की है, और अनुवादक महोदय ने अपनी टीका-द्वारा वह निन्दा और भी विषैली कर डाली है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। भर्तृहरि ने गृहस्थजनों के लिये 'शृंगार-शतक' की रचना की है और उसमें स्त्रियों की प्रशंसा की है। बाबू हरिदास जी वैद्य ने इस शतक का भी अनुवाद कर डाला है और भर्तृहरि के क़दम-ब-क़दम चलते हुए, स्त्रियों की प्रशंसा करने में अपनी शक्ति-भर कोई कसर नहीं रक्खी। इस शतक में लगभग

डेढ़ सौ पृष्ठ ऐसे हैं, जिनमें स्त्रियों की प्रशंसा भरी पड़ी है। और वह प्रशंसा भी ऐसी सरल, सरस एवं आकर्पक भापा में लिखी गई है, कि उसे पढ़ कर बड़े-बड़े धीर, गम्भीर और शान्त हृदय व्यक्ति भी संभवतः विचलित हो उठेंगे। हाथ कंगन को आरसी क्या, कुछ प्रमाण लीजिए।

महाराज भर्तृहरि लिखते हैं—

"केशाः संयमिनः श्रुतेरपि परं पारङ्गते लोचने
चान्तर्वक्त्रमपि स्वभावशुचिभिः कीर्णं द्विजानां गणैः॥
मुक्तानां सतताधिवासरुचिरं वक्षोजकुम्भद्वयं—
चेत्थं तन्वि वपुः प्रशान्तमपि ते क्षोभं करोत्येव नः॥"

अर्थात्—"हे कृशाङ्गि! ऐ नाज़नी! तेरे बाल साफ़-सुथरे और सँवारे हुए हैं, तेरी आँखें बड़ी-बड़ी और कानों तक हैं, तेरा मुख स्वभाव से ही स्वच्छ और सफेद दन्त-पंक्ति से शोभायमान है, तेरे कुचों पर मोतियों के हार झूल रहे हैं, पर तेरा ऐसा शीतल और शान्तिमय शरीर भी मेरे मन में तो विकार ही उत्पन्न करता है, यह अचंभे की बात है!" (पृष्ठ ३१. ३२)

इस पर अनुवादक महोदय का वक्तव्य भी सुन लीजिये—

"इस श्लोक में जो "संयमिन, श्रुतेरपि, द्विजानां और मुक्तानां" शब्द आए हैं, उनके दो-दो अर्थ हैं। यथा—संयमिन = सँवारे हुए और जितेन्द्रिय। श्रुतेरपि = कानों तक पहुँचे हुए और वेदशास्त्र-पारङ्गत, काननचारी और वनचारी। द्विजानां = दाँत,

ब्राह्मण। मुक्तानां=मोती और मुक्त पुरुष। इन शब्दों के प्रयोग से कवि महोदय ने श्लोक में अपूर्व चमत्कार दिखाया है, जिससे उसके दो अर्थ हो गए हैं। पहला अर्थ ऊपर लिखा ही है. दूसरा इस प्रकार है—

"हे कृशाङ्गि! ऐ नाज़नी! तेरे बाल जितेन्द्रिय हैं, तेरे नेत्र वेद-शास्त्र-पारङ्गत और काननचारी हैं, तेरा मुख पवित्र है और उसमें ब्राह्मणों का निवास है, तेरी छातियों पर मुक्त पुरुषों का निवास है; इसलिये तेरा शरीर सतोगुण का धाम है; अतः उसे शीतल और शान्तिमय होना चाहिए; पर है, उल्टी बात। तेरे सतोगुणी शरीर से मुझे शान्ति मिलनी चाहिए; पर उससे मेरे मन में उल्टी अशान्ति या क्षोभ अथवा अनुराग उत्पन्न होता है, यह आश्चर्य की बात है।"

सारांश—"स्त्री का शरीर, सब तरह से सतोगुणी, शीतल और शान्तिमय होने पर भी, पुरुष के मन में क्षोभ ही उत्पन्न करता है।" (पृष्ठ ३२-३३)

भर्तृहरि जी ने बड़े ही कौशल से केवल दो लकीरों में स्त्री की महिमा का वर्णन इस प्रकार किया है—

"सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु तारारवीन्दुषु।
विना मे मृगशावाक्ष्या तमोभूतमिदं जगत्॥"

अर्थात्—"यद्यपि दीपक, अग्नि, तारे, सूर्य और चन्द्रमा सभी प्रकाशमान् पदार्थ मौजूद हैं, पर मुझे एक मृगनयनी



सुन्दरी बिना सारा जगत् अन्धकार-पूर्ण दीखता है।" (पृष्ठ ३६)

परन्तु भर्तृहरि के इस भाव को स्पष्ट करने के लिये, अनुवादक महोदय ने पूरे छब्बीस पृष्ठ खर्च किए हैं, और देशी-विदेशी विद्वानों की सम्मतियाँ देकर स्त्री-महिमा का वर्णन इतनी विदग्धता से किया है, कि पढ़ते ही बनता है। ऐसा सुन्दर वर्णन शायद कुशल-से-कुशल स्त्री-लेखिका भी न करती। परन्तु, स्थानाभाव से, हम यहाँ थोड़े से अवतरण देकर ही संतोष करेंगे। देखिए—

"सच है, घर में चाहे पुत्र हों, पुत्र-वधुएँ हों, नौकर-चाकर और दास-दासी हों, हाथी-घोड़े और रथ-पालकी प्रभृति सभी ऐश्वर्य्य के समान हों, पर एक हिरनी के से नेत्रों वाली प्यारी न हो, तो वह घर, सर्व सम्पदाएँ होने पर भी, निर्जन वन की तरह शून्य है। संसार में घर-गृहस्थी का सच्चा आनन्द सुन्दरी प्राण-प्यारी से ही है।" (पृष्ठ ३६)

"जिन्होंने स्त्री का सुख नहीं भोगा है, जिन्हें स्त्री-रत्न की क़ीमत नहीं मालूम, जो नारी-रहस्य को नहीं जानते, जो स्त्री को पैर की जूती मात्र समझते हैं, वे हमारी इन बातों को पढ़ कर हँसेंगे—हमें स्त्री-दास या स्त्रैण कहेंगे। जो जिसकी क़ीमत जानता है, वही उसकी क़दर करता है। मोती बहुमूल्य होता है, पर भीलनी उसे पाकर फेंक देती है और जौहरी उसे हृदय से लगा लेता है। जो जिसके रहस्य को जानता है, वहीं उसके सम्बन्ध में कुछ कह सकता है।" + + + "हमें भी स्त्रियों



के सम्बन्ध में थोड़ा-बहुत अनुभव है, हमने उनके संयोग और वियोग दोनों ही देखे हैं, उनकी सेवा-शुश्रूषाओं से सुखी और उनकी मंत्रणाओं से लाभान्वित हुए हैं, अतः हम भी जोर के साथ कहते हैं:—निश्चय ही स्त्री-बिना संसार के सभी सुखैश्वर्य अलौने, फीके और बेमजे हैं। स्त्री, ईश्वर के संसार-रूपी बग़ीचे का, सर्वोत्तम फूल है। उसी से ईश्वर की सृष्टि की शोभा है। अगर स्त्री न होती, तो यह जगत् अन्धकार-पूर्ण, निर्जन और भयानक होता। जिस करोड़पति के घर में सती स्त्री नहीं है, उसका घर साक्षात् श्मशान है और जिस दरिद्री के घर में पतिव्रता, लज्जावती और मधुरभाषिणी स्त्री है, उसका घर नन्दन-कानन है। (पृष्ठ ३७–३८)

"स्त्री इस संसार का रमणीक प्रदेश है। इस प्रदेश में विश्वास-तरु लहलहा रहे हैं, आनन्द के फूल खिल रहे हैं, हर्ष-विहग कलरव कर रहे हैं तथा निवृत्ति और विश्वास की नदियाँ बह रही हैं। यहाँ शोरोगुल का नाम भी नहीं है।" (पृष्ठ ३९)

"हे स्त्री ! तू रात का तारा और प्रातःकाल का हीरा है। तू ओस का क़तरा है, जिससे काँटे का मुँह भी मोतियों से भर जाता है। वह रात अँधेरी और वह दिन फीका मालूम होता है, जब कि तेरी आँखों की रोशनी दिल को ठण्डा नहीं करती। हृदय का घाव बिना तेरे मधुर ओंठों के अच्छा हो नहीं सकता। विपत्ति में तू सहायक होती है।" + + + "हे अबला ! तेरे शरीर

और आत्मा में एक जादू है। जिधर हम जाते हैं, उधर तेरी ज्योति हमें राह दिखाती है। चाहे गरम-से-गरम देश हो, और चाहे शीतल-से-शीतल देश हो, अगर तू वहाँ मौजूद है, तो वहाँ भी आनन्द ही है।" (पृष्ठ ४०)

"पतिव्रता स्त्री ईश्वर की सृष्टि की उत्तम-से-उत्तम औषधियों में सर्वश्रेष्ठ है। वह पति के लिये देवता और सारे गुणों की मूर्ति है। वह पति का बहुमूल्य हीरा और जवाहिरात का ख़जाना है। उसकी आवाज में मधुरता और उसके मुस्कराने में आनन्द है। उसकी भुजा उसकी शरण और तन्दुरुस्ती की दवा है। उसकी मिहनत उसकी दौलत और उसकी किफ़ायतशारी उसका लायक़ मुन्तज़िम है। उसके होठ उसके मंत्री और उसकी प्रार्थना उसकी सर्वोत्तम सहायिका है। (पृष्ठ ४१)

"पुरुष के जीवन का सोता स्त्री की छाती है। वही उसे बात करना सिखाती और वही उसके आँसू पोंछती है। बुरे समय में जब सब उसे छोड़कर अलग हट जाते हैं, तब वही उसकी खबर लेती और गरम निःश्वासों को शीतल करती है।" (पृष्ठ ४२)

"स्त्रियाँ संसार में देवताओ की तरह घूमती हैं। स्वार्थपरता या ख़ुदग़र्ज़ी का तो उनमें नाम भी नहीं। प्रत्युपकार का उन्हें ध्यान भी नहीं। स्त्री पर चाहे जितना भार डालो, अत्याचार करो, और उसे हैरान करो, वह न बोलेगी। ऊँट तो ज़ियादा बोझ होने से चीख़ता और बलबलाता है, पर स्त्री चूँ नहीं करती। हे ईश्वर ! तूने स्त्री को पुरुष का योग्य साथी बनाया। सच पूछो

तो ईश्वर की सृष्टि में स्त्री ही सर्वश्रेष्ठ है। उसके चेहरे से गौरव टपकता एवं सम्मान और स्नेह उसके शासन में चलते हैं। तूने अपनी अद्भुत शक्ति से उसे पुरुषों के हृदय कोमल करने को बनाया, ताकि पुरुषों के हृदय उसे देखकर तेरे भक्ति-भाव से पूर्ण हो जावें।" (पृष्ठ ४६)

कुछ ठिकाना है, स्त्री की इस महिमा का; वह पुरुष के हृदय में ईश्वर के प्रति भक्ति-भाव उत्पन्न करने के लिये प्रतीक तक ठहरा दी गई है। मातृ-शक्ति के प्रति इससे अधिक और क्या सम्मान प्रकट किया जा सकता है? ख़ैर, स्त्री-प्रशंसा के दो-एक नमूने और देखिए। भर्तृहरि कितनी ख़ूबसूरती से उसमें ग्रह-कल्पना करते हैं—

"गुरुणा स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता।
शनैश्चराभ्यां पादाभ्यां रेजे ग्रहमयीव सा॥"

अर्थात् वह स्त्री गुरु स्तनों के भार से, भास्कर के समान प्रकाशमान मुखचन्द्र से और शनैश्चर के सदृश मन्दगामी दोनों चरणों से ग्रहमयी-सी जान पड़ती है।

परन्तु अनुवादक महाशय इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हुए। आप इस श्लोक की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

"गुरु, भास्वान् प्रभृति शब्दों के दो-दो अर्थ हैं; जैसे—गुरु= भारी और बृहस्पति। चन्द्रमा=चन्द्रवत् और चन्द्रमा।



भास्वान्=प्रकाशमान और सूर्य । शनैश्चर=मन्दगामी और शनैश्चर मन्दगामी प्रसिद्ध ही है ।

खुलासा यह, कि वह स्त्री अपने पूर्णोन्नत बृहस्पति के समान दोनों कुचों से, सूर्य के समान प्रकाशमान् मुखचन्द्र से और मन्दगामी शनैश्चर के समान धीरे-धीरे चलने वाले दोनों चरण-कमलों से ग्रह-पुञ्ज-सी जान पड़ती है ।

बृहस्पति, चन्द्रमा, सूरज और शनैश्चर—इन तेजस्वी ग्रहों के चिह्न स्त्री में पाए जाते हैं। इसी से कवि महोदय कहते हैं, कि वह नाजनी ग्रहमयी-सी शोभित होती है । उसके स्तन-द्वय गुरु—भारी हैं, मुख सूरज और चाँद-सा है और चरण मन्दगामी शनैश्चर की तरह मन्दगामी हैं। अतः स्पष्ट है, कि उसके शरीर में सभी तेजस्वी ग्रहों का निवास है, अथवा नवग्रह उसके सेवक हैं। अतएव स्त्री के होते हुए नवग्रहों के पूजने की जरूरत नहीं; क्योंकि एक मात्र उसकी पूजा—आराधना से सभी फलों की प्राप्ति हो सकती है। (पृष्ठ ६४-६५)

और लीजिये, भर्तृहरि महाराज स्त्री को संसार का सर्वोत्तम सुन्दर पदार्थ बतला रहे हैं—

> "भवन्तो वेदान्तप्रणिहितधियामाप्तगुरवो
> विदग्धालापानां वयमपि कवीनामनुचराः ॥
> तथाऽप्येतद्भूमौ नहि परहितात्पुण्यमधिकं ।
> न चाऽस्मिन्संसारे कुवलयदृशो रम्यमपरम् ॥"

अर्थात्—"आप वेदान्तवेत्ताओं के माननीय गुरु हो और हम उत्तम काव्य-रचयिता कवियों के सेवक हैं; तोभी हमें यह बात कहनी ही पड़ती है, कि इस संसार में परोपकार से बढ़कर पुण्य नहीं है, और कमलनयनी सुन्दरी स्त्रियों से बढ़ कर और सुन्दर पदार्थ नहीं है।"

अनुवादक महोदय ने इस भाव को ख़ुलासा करते हुए लिखा है—

"आप वेदान्त-पारङ्गत पण्डितों के मान्य गुरु हैं। आप में अपार विद्या-बुद्धि है। हम कुछ पढ़े-लिखे विद्वान् नहीं, केवल काव्यशास्त्र-विनोदी कवीश्वरों के अनुचर हैं। तो भी; हमें अपनी समझ के अनुसार कहना पड़ता है, कि इस जगत् में 'परोपकार' से उत्तम पुण्य नहीं है और 'मृगनयनी कामिनियों' से बढ़ कर दूसरी सुन्दर वस्तु नहीं है। इसलिये बुद्धिमानों को, धन उपार्जन कर के, तन-मन-धन से परोपकार-पुण्य सञ्चय करना और सुलोचना कामिनियों के साथ भोग-विलास करना चाहिये। संसार में रहने वालों के लिये, ये दोनों ही परमोत्तम कर्म हैं। सारांश यह, कि परोपकार से बढ़कर पुण्य नहीं है और स्त्री-भोग से बढ़ कर सुख नहीं है।" (पृष्ठ १७२)

नेहरूजी का ख़याल है, कि महाराज भर्तृहरि और अनुवादक महोदय केवल वैराग्य के ही पक्षपाती हैं और स्त्रियों की निन्दा-द्वारा पुरुषों के हृदय को उनकी ओर से बिल्कुल फेर देना चाहते

हैं, पर यथार्थता यह है, कि वे भोग को भी उतना ही महत्त्व देते हैं, जितना योग को। भर्तृहरि ने ५३ वें श्लोक में कहा है—

"किमिह वहुभिरुक्तैर्युक्तिशून्यैः प्रलापै—
र्द्वयमिह पुरुपाणां सर्वदा सेवनीयम् ॥
अभिनवमदलीलालालसं सुन्दरीणां।
स्तनभरपरिखिन्नं यौवनं वा वनं वा ॥"

अर्थात्—युक्ति-शून्य वृथा प्रलाप से क्या प्रयोजन ? इस जगत् में दो ही वस्तुएँ सेवन करने-योग्य हैं—(१) नवीन मदान्ध लीलाभिलाषिणी और स्तन-भार से खिन्न सुन्दरी स्त्रियों का यौवन, अथवा (२) वन।

ख़ुलासा यह, कि वाहियात और बे-सिर-पैर की बकवाद से कोई फ़ायदा नहीं। हमारी समझ में तो इस जगत् में दो ही चीज़ें पुरुषों के सेवन करने योग्य हैं:—नव-यौवना स्त्रियाँ, अथवा वन। + + + मन में एक बात स्थिर कर लेनी चाहिये। इस जगत् में, स्थिरबुद्धि का ही सदा भला होता है; चञ्चल-बुद्धि का सर्वनाश होता है। बुद्धि को स्थिर कर के, किसी एक बात पर जम जाना चाहिये। चाहे भोग ही भोगे जायँ अथवा योग ही साधा जाय। 'रसिक' कवि ने भी क्या ख़ूब कहा है—

"रसिक सुनहु तुम कान दे, सब ग्रन्थन को सार।
योग भोग में इक बिना, यह संसार असार ॥

सुनो और हू बात पै, मुख्य बात ये दोय।
कै तिय-जोवन में रमैं, कै वनवासी होय ॥"

(पृष्ठ १७३, १७४, १७६, १७७)

स्त्रियों की प्रशंसा करते-करते एक वार तो भर्तृहरि इतने जोश में आ गए हैं और यहाँ तक कह बैठे हैं, कि—

"स्वपरप्रतारकोऽसौ निन्दाति योऽलीकपण्डितो युवतीः।
यस्मात्तपसोऽपि फलं स्वर्गस्तस्यापि फलं तथाऽप्सरसः॥"

अर्थात्—"जो विद्वान् युवतियों की निन्दा करता है, वह निश्चय ही झूठा पण्डित है। उसने पहले आप धोखा खाया है और अब दूसरों को धोखा देता है; क्योंकि अनेक प्रकार की तपस्याओं का फल स्वर्ग है; और स्वर्ग का फल अप्सरा-भोग है।"

कुशल अनुवादक महोदय ने भी कवि के इस कथन का समर्थन बड़े ही मजेदार ढंग से किया है—

"जो विद्वान् पण्डित नवयौवना कामिनियों की निन्दा करते हैं, उनमें अनेक दोष बताते हैं, वे पागल हैं। वे, स्वर्ग की प्राप्ति के लिये, अनेक प्रकार की तपश्चर्या और जप-तप करते हैं। तपःसिद्धि होने पर स्वर्ग में जाना चाहते हैं। वहाँ उनको भोगने के लिये अप्सराएँ मिलेंगी; तब यहीं उनके भोगने में कौनसी बुराई है? यह तो सीधी-सी बात है कि, तपस्या का फल स्वर्ग है और स्वर्ग का फल अप्सराएँ।"



"आप पाण्डे ज़ी बैंगन खावें, औरों को परमोध बतावें" ऐसे परोपदेशक दुनियाँ में बहुत हैं। आप वही काम करते हैं, पर औरों को मना करते हैं। ऐसे महापुरुषों के सम्बन्ध में ही महा कवि 'दाग़' कहते हैं—

"हूर के वास्ते, ज़ाहिद ने इबादत की है।
सैर तो जब है, कि जन्नत में न जाने पावे॥"

भक्त महाशय ने स्वर्गीय अप्सराओं या हूरों के भोगने के लिये ईश्वर की उपासना की है। बड़ा मज़ा हो, अगर यह स्वर्ग में जाने ही न पावे।

महाकवि 'ज़ौक़' कहते हैं—

"कब हक़ परस्त है, ज़ाहिदे जन्नत-परस्त है।
हूरों पै मर रहा है, यह शहवत-परस्त है॥"

कौन कहता है, भक्तजी ईश्वर-उपासक हैं? ये तो घोर कामी और इन्द्रिय-दास हैं। स्वर्ग की अप्सराओं पर मर रहे हैं। जो स्वर्ग की कामना से तप करते हैं, उनकी स्त्री-निन्दा ध्यान देने योग्य नहीं; वे वृथा निन्दा करते हैं। आप स्वर्ग में जाकर स्त्री ही भोगेंगे और करेंगे क्या? स्वर्गीय अप्सराएँ या हूरें भी तो आख़िर स्त्रियाँ ही हैं न? ऐसे धोखेबाज़ों की बातों में न आना चाहिए।

उस्ताद 'ज़ौक़' फिर फरमाते हैं—

"रेशे सफ़ेद शेख़ में, है ज़ुल्मते फ़रेब।
इस मक्र चाँदनी पै, न करना गुमान-ए सुबह॥"

शेखजी की सफ़ेद दाढ़ी में कपट का अन्धकार छिपा हुआ है। इस झूठी चाँदनी पर प्रातःकाल की सफेदी का धोखा मत खाना; यानी इनकी बात मान, कामिनियों को भोगना न छोड़ना। ऐसे घोंघा-बसन्त अपनी सिद्धाई जमाने को कपट से ऐसी बेतुकी बातें कहते हैं और कुछ ऐसे भी होते हैं, जिनको इन नारी-रत्नों की क़द्र ही नहीं मालूम; इससे इनकी निन्दा करते हैं। जिसे जिसकी क़द्र ही नहीं मालूम, वह तो उसकी निन्दा ही करेगा। सारांश यह, कि स्त्रियों की निन्दा करने वाला पाखण्डी है। आप उन्हें भोगना चाहता है, पर दूसरों को रोकता है।" (शृंगारशतक पृष्ठ १८९-९२)

कहाँ तक कहें, शृंगार शतक में स्त्रियों की ऐसी महिमा गाई है, कि तबियत पढ़ने के बाद फड़क उठती है। ये तो उसके चन्द नमूने ही हैं। परन्तु नेहरूजी ने इतने प्रचुर प्रमाणों के रहते हुए भी, कवि और अनुवादक को जबरदस्ती स्त्री-निन्दा के अपराध में दुनियाँ-भर की खरी-खोटी सुना डालीं। एक बार भी इस बात पर विचार न किया, कि क़लम विषय के अनुकूल ही चलाई जाती है, जहाँ जैसी गुञ्जाइश होती है, वहाँ वैसी ही बातें लिखी जाती हैं। वैराग्यशतक में इतनी गुञ्जाइश ही कहाँ थी, कि स्त्रियों की तारीफ़ के पुल बाँधे जाते? शृंगार शतक में गुञ्जाइश थी, तो स्त्रियों की ऐसी महिमा गाई गई, कि ज़मीन-आसमान के कुलावे मिला दिये गये। वास्तव में 'शृंगार शतक' साहित्य-संसार की

एक अनूठी वस्तु है। जिसने इसका पाठ न किया, उसने कुछ भी न पढ़ा। अस्तु—

४—नेहरूजी को इस बात का बड़ा दुःख है, कि अनुवादक महोदय ने इन शतकों में अपनी बुद्धि के अनुसार श्लोकों पर टिप्पणियाँ की हैं। यदि कहीं भर्तृहरि की आत्मा घूमती-फिरती हुई यहाँ आ जाय और यह शतक देखे, तो काँप उठे और कहने लगे, कि जो मैं ऐसा जानता, कि मेरी रचना इस प्रकार तोड़ी-मरोड़ी जायगी, तो मैं कभी न लिखता। नेहरू जी के हृदय में भर्तृहरि के प्रति इतनी सहानुभूति है, इसके लिये उन्हें बहुत-बहुत धन्यवाद। परन्तु हम उनसे पूछना चाहते हैं, कि यदि अनुवादक महोदय श्लोकों पर अपनी बुद्धि के अनुसार टीका-टिप्पणी न करते, तो क्या किसी की बुद्धि उधार लेकर करते? उन्होंने तोड़-मरोड़ का भी कोई उदाहरण नहीं दिया। भला यह तो ख़याल रखना चाहिए था, कि यह बीसवीं सदी का ज़माना है, जब कि छोटी-से-छोटी बात पर प्रमाण तलब किये जाते हैं, तब इतनी बड़ी बात को कोई बिना प्रमाण कैसे मान लेगा? यदि अनुवादक महोदय ने कहीं तोड़-मरोड़ की है, तो उदाहरण देकर सिद्ध करना चाहिए, कोरी बात कह देने से काम नहीं चल सकता। हमारा तो ख़याल यह है, कि भर्तृहरि जैसे प्रतापी थे, बाबू हरिदास जी ने उनके ग्रन्थ वैसे ही ठाट-बाट से प्रकाशित किये हैं। अगर उनकी मुक्त आत्मा कहीं भ्रमण करती हुई वास्तव में यहाँ आ जाय और अपने इन ग्रन्थों की यह शान-बान देखे, तो वह एकदम खिल

उठेगी और कहेगी, कि अगर मुझे मालूम होता, कि मेरी रचना का इस तरह सम्मान करने वाले पैदा होंगे, तो मैं बहुत कुछ लिख जाता।

५—अब नीति-शतक के छयालीसवें और सैंतालीसवें नम्बर के उन श्लोकों को देखिये, जिनपर नेहरूजी की तबियत नाराज़ है, और वे चाहते हैं, कि न तो अँगरेज़-सरकार और उसके ऑफ़िसरों की प्रशंसा की जाती और न देशी राजाओं की ही मिट्टी-पलीत की जाती। राजा के विषय में भर्तृहरि का विचार इस प्रकार है—

"राजन्दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेतां,
तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण।
तस्मिश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे,
नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः॥"

अर्थात्—"हे राजा! यदि तुम इस पृथ्वी-रूपी गाय को दुहना चाहते हो, तो प्रजा-रूपी बछड़े का पालन-पोषण करो। यदि तुम प्रजा-रूपी बछड़े का अच्छी तरह पोषण करोगे, तो पृथ्वी स्वर्गीय कल्पलता की तरह, तुम्हें नाना प्रकार के फल देगी।"

अनुवादक महोदय ने इस भाव को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया है—

"जो राजा प्रजा का पालन ख़ूब अच्छी तरह करता है, उसके सारे मनोरथ पूरे होते हैं। राजा के धन-वैभव की वृद्धि प्रजा से ही

होती है। अगर राजा अत्याचारी या अन्यायी होता है—प्रजा के पालन-पोषण की फ़िक्र नहीं रखता, उस राजा की प्रजा निश्चय ही नाश हो जाती है। प्रजा के नष्ट होने या दरिद्र होने से राजा भी नष्ट हो जाता है। उसके भाण्डार धन-धान्य-शून्य पड़े रहते हैं और ख़ज़ानों में चूहे दण्ड पेलते हैं। जो राजा अपनी समृद्धि की वृद्धि करना चाहें, वे प्रजा-पालन में दत्त-चित्त हों और प्रजा-पालन को ही अपना मुख्य कर्तव्य समझें। 'शुक्र-नीति' में लिखा है—

"सदानुरक्त प्रवृत्तिः प्रजापालन-तत्परः।
विनीतात्माहि नृपतिर्भूयसी श्रियमश्नुते ॥"

जो राजा प्रजा से अनुराग रखता है, प्रजा-पालनमें तत्पर रहता है और विनीत होता है—वह राजा लक्ष्मी को ख़ूब भोगता है।

राजा प्रजा का स्वामी नहीं—सेवक है। प्रजा ने ही, अपनी भलाई के लिये, उसे राजा बना रक्खा है; पर राज्य की लगाम हाथ में आते ही राजा लोग इस बात को भूल जाते हैं। वे अपने तईं स्वामी और प्रजा को अपना सेवक समझ कर उनका सर्वस्व हरण करने और आनन्द मनाने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं। राजा का काम तो पिता की तरह प्रजा को पालना और उनकी समृद्धि बढ़ाना है।"

नेहरूजी लाख कहें, पर कवि और अनुवादक का उक्त मत इतना स्पष्ट और समीचीन है, कि उसकी सत्यता से कभी

भी इनकार नहीं किया जा सकता। मालूम नहीं, नेहरूजी के विचार में राजा का कर्तव्य क्या है।

इसी सिलसिले में अनुवादक महोदय ने महाराज दिलीप का उदाहरण देते हुए लिखा है—"वे धन जमा करने के लिये कर न लेते थे। जो धन लेते थे, वे उसे अपने काम में न लाते थे; पर उसे प्रजा की भलाई में ख़र्च कर देते थे। सूर्य जिस तरह पृथ्वी से रस लेता है, पर उसे वृष्टि के रूप में हज़ार गुणा करके वापिस दे देता है, उसी तरह वे भी करते थे। + + + कहिये पाठक! ऐसे राजा आपकी नज़रों में कहाँ-कहाँ और कितने हैं? कितने राजा आजकल एक गुणा लेकर सहस्र गुणा प्रदान करते हैं? कितने राजा पिता की तरह प्रजा-रूपी पुत्र का पालन-पोषण और फ़िक्र करते हैं? सच कहने में भय नहीं, हमारे देशी राजाओं से विदेशी अँगरेज़ लाख दर्जे भले हैं; औरों की अपेक्षा ये अपनी प्रजा का पालन अच्छा ही करते हैं। प्रजा से जो लेते हैं, उसे यदि सम्पूर्ण रूप से लौटा नहीं देते, तोभी बहुत कुछ हमारी ही भलाई में लगा देते हैं। जितनी फ़िक्र प्रजा की ये रखते हैं, उतनी हमारे भाई-राजे नहीं रखते। जितनी जल्दी दीन-दुखियों की पुकार ये सुनते हैं, उतनी जल्दी हमारे भाई-राजे नहीं सुनते। देशी राज्यों की प्रजा जब अत्याचारियों से पीड़ित होती है, बारम्बार पुकारती है, अर्जियों-पर-अर्जियाँ देती है पर हमारे भाइयों के कानों पर जूं नहीं रेंगती। इस राज्य में आप उन वायसराय से—जिन के

मुक़ाबले में सारे राजा भी कोई चीज़ नहीं—पुकार कीजिए; फौरन सुनाई होगी। यह बात हमने सुनकर नहीं, वरन् स्वयं देखकर लिखी है।"

यही वह बात है, जिस पर नेहरूजी का ख़याल है, कि "देशी राजाओं की खासी मिट्टी-पलीत की गई है।" पर, उन्होंने यह नहीं बतलाया, कि इस में असत्यता क्या है? क्या यह सच नहीं है, कि देशी राजे अँगरेज़-सरकार के समान अपनी प्रजा की पुकार नहीं सुनते? और जब उनकी प्रजा अत्याचार सहते-सहते ऊब उठती है, तब वाइसराय की ही शरण में दौड़ी जाती है? क्या यह सच नहीं है, कि देशी राजे प्रजा की फ़िक्र को ताक़ पर रख, रात-दिन अपनी रंगरेलियों में मस्त रहते हैं? क्या यह सच नहीं है, कि कई राजे बारहों मास विदेशों की हवा खाया करते हैं, कई पेरिस की परियों के चरण-चुम्बन करते रहते हैं, कई अफ्रिका के जङ्गलों में बन्दूक़ें सँभाले घूमा करते हैं. और कई अपने कुत्तों और मोटरों को ही सँभालने में व्यस्त रहते हैं? यदि नहीं, तो फिर अख़बारों में नित्य ही उनके खिलाफ़ यह चिल्ल-पौं क्यों मची रहती है? अब रही वाइसराय चेम्सफ़ोर्ड और मिस्टर गोखले की प्रशंसा की बात। सो इस पर हमारा तो यही निवेदन है, कि यदि गुण शत्रु में भी होंगे, तो, इन्सानियत के नाते, हमें उनकी प्रशंसा ही करनी पड़ेगी। फिर आज अँगरेज़ों के गुणों की प्रशंसा, अकेले बाबू हरिदास वैद्य ही नहीं; सारी दुनियाँ करती है। यदि

चेम्सफ़ोर्ड और गोरले साहब ने बाबू हरिदासजी की कुछ भलाई करदी, और बाबू हरिदासजी ने, कृतज्ञता प्रकट करने के विचार से, उनकी प्रशंसा में दो शब्द लिख दिये, तो इसमें नेहरूजी को क्या हानि पहुँच गई ? आखिर वे इन्सानियत के किस क़ायदे से किसी को कृतज्ञता प्रकट करने के अधिकार से वंचित करना चाहते हैं ? और ताज्जुब की बात यह है, कि इस बीसवीं सदी के जमाने में, जब कि मनुष्य बात-बात में स्वतन्त्रता चाहता है। वास्तव में, अपराधी तो थे चेम्सफ़ोर्ड और गोरले साहब ही। न वे बाबू हरिदास जी की प्रार्थना सुनते, न वे बाबू हरिदास जी के दुःख-दर्द में शरीक़ होते, न बाबू हरिदासजी को उनकी प्रशंसा करने का मौक़ा मिलता। अस्तु—

राजनीति के विषय में भर्तृहरि का मन्तव्य है—

"सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंसा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या ॥
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च
वारांगनेव नृपनीतिरनेकरूपा ॥"

अर्थात्—राजनीति वेश्या की नाईं अनेक-रूपिणी होती है। कहीं वह सत्यवादिनी और कहीं असत्यवादिनी, कहीं कटु-भाषिणी और कहीं प्रियभाषिणी, कहीं हिंसा करने वाली और कहीं दयालु, कहीं लोभी और कहीं उदार, कहीं अपव्यय करने वाली और कहीं धन-संचय करने वाली होती है।

अब इस पर अनुवादक महोदय की व्याख्या सुन लीजिए—

"राजा सदा एक नीति पर नहीं चलते। उनकी नीति वेश्या की तरह अनेक रूप धारण करने वाली होती है। कहीं राजा सत्य बोलता है, तो कहीं मिथ्या बोलता है; कहीं कठोर भाषण करता है, तो कहीं मधुर भाषण करता है; कहीं निष्ठुरता करता है, तो कहीं दयालुता दिखाता है; कहीं लोभी का-सा व्यवहार करता है, तो कहीं उदारता दिखाता है, कहीं बिना विचारे अँधाधुन्ध खर्च करता है, तो कहीं संग्रह करता है।"

'राजाओं का काम एक नीति से चल भी नहीं सकता। कूट-नीति-बिना राज का काम चलना कठिन है और कूटनीति में केवल सत्य दया, उदारता प्रभृति सद्गुणों से काम नहीं चल सकता। मौक़े-मौक़े पर रंग बदलना ही कूटनीति है। राजा अगर सदा दयालु-स्वभाव रहे, तो उसे कोई न गिने। जब कोई उसका भय ही न माने, तो वह किस तरह प्रजा की रक्षा करे, किस तरह दुष्टों का दलन करे और किस तरह शत्रुओं को परास्त करे? राजा के अति दयालु होने में भी बड़ी भारी हानि है। नीति में कहा है—"अति दयालु राजा, सर्वभक्षी ब्राह्मण, निर्लज्ज स्त्री, दुष्टमति सहायक, प्रतिकूल सेवक, असावधान अधिकारी और काम न जानने वाला ये सब त्यागने-योग्य हैं।" बिना उपद्रव किए कोई बड़े-से-बड़े को नहीं मानता। देखिए मनुष्य सर्पों को पूजते हैं, पर सर्प को खा जाने वाले गरुड़ को नहीं पूजते; क्योंकि सर्प उपद्रवी हैं और गरुड़ उपद्रवी नहीं। "गुलिस्ताँ" में भी

लिखा है—"तीन चीजें तीन चीजों के विना क़ायम नहीं रहतीं—दौलत बिना सौदागरी के, इल्म विना बहस के और वादशाहत विना दहशत के।" बहुत लिखने से क्या ? जो राजा वेश्या की तरह अनेक रूप बदलते हैं, उनका ही राज्य रहता और बढ़ता है। हमारे वर्तमान राजा अँगरेज भी इसी तरह की नीति पर चलते हैं, कहीं सत्य बोलते हैं और कहीं मिथ्या; कहीं प्रतिज्ञा-पालन करते हैं, और कहीं प्रतिज्ञा-भंग।"

इस वेश्या-रूपिणी राजनीतिके सिद्धान्त पर नेहरूजी जितना चाहें आक्रोश प्रकट करें, पर इसकी सत्यता और महत्ता सभी विद्वान् स्वीकार करेंगे। राजनीति वास्तव में सभ्यता के आवरण में छिपी हुई उच्च-कोटि की धूर्त्तता है; परन्तु चतुर राजाओं को यही धूर्त्तता धर्म के रूप में ग्रहण करनी पड़ती है। यदि वे ऐसा न करें, तो दुनियाँ में कहीं उनका ठिकाना ही न रहे। यथार्थ में, वर्तमान संसार के लिए, ब्रिटिश-सरकार की राजनीति वेश्या-रूपिणी राजनीति का एक बहुत ही सुन्दर उदाहरण है; और इसी वेश्या-रूपिणी राजनीति के सहारे आज ब्रिटिश-राज्य उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँच गया है। सारी दुनियाँ इस बात को जानती और मानती है। यदि नेहरूजी की दृष्टि में, ब्रिटिश-सरकार का यह उदाहरण प्रशंसा-योग्य नहीं है, तो न रहे। यदि किसी को सत्यता में भी असत्यता दिखाई दे, तो क्या किया जाय ?

६—नेहरूजी का यह भय तो बिल्कुल ही काल्पनिक है, कि वैराग्य-शतक का यह अनुवाद पढ़कर सब लोग वैरागी हो

जायँगे। सच बात कहने में क्या डर; सैकड़ों हज़ारों वर्ष से हिन्दुओं के घर-घर में रामायण, महाभारत, भगवद्गीता, भागवत, रामचरितमानस आदि पवित्र ग्रन्थों का पाठ होता आ रहा है, पर दस-पचास की तादाद में भी राम-लक्ष्मण, श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम, भीष्म-पितामह, आदि उत्पन्न न हुए। तब यह आशा कैसे की जा सकती है, कि 'वैराग्य-शतक' की दो-चार हज़ार प्रतियों के अत्यल्प प्रचार ही से तेईस करोड़ हिन्दू एकदम वैरागी हो जायँगे ? अनुवादक महोदय भी इस बात को भली भाँति समझते हैं, वे यह चाहते भी नहीं, कि आप एकदम लँगोटी बाँधकर जंगल में चले जावें और धूनी रमाकर बैठ जावें। इसीलिये उन्होंने भूमिका में स्पष्टतया कह दिया है—"प्रत्येक पढ़े लिखे सज्जन इस 'वैराग्य-शतक' को रोज़-रोज़ या हफ़्ते में एक बार अवश्य देखा करें, ताकि इस मिथ्या जगत् की असारता को समझें, विषय-वासनाओं को त्यागें, परोपकार में मन लगावें और अपनी आगे की लम्बी सफ़र का सामान करें अथवा परमात्मा की निष्काम भक्ति करते हुए परमपद या मोक्ष-प्राप्ति की चेष्टा करें।" तब आप किस हैसियत से इन पवित्र उद्देश्यों का विरोध करने की हिम्मत करते हैं ? क्या विषय-वासनाओं को त्यागना, परोपकार में मन लगाना और ईश्वर की भक्ति करना भी आपकी दृष्टि में मनुष्यता का पतन करने वाले कार्य हैं ?

अब रहा जाति की परतन्त्रता का सवाल; सो महाराज, भारतीय जाति परलोक की चिन्ता के कारण पराधीन नहीं हुई।

उसकी पराधीनता का कारण यह हुआ कि, उन दिनों उसमें राष्ट्रीयता की भावना रह ही नहीं गई थी, और प्रत्येक सम्प्रदाय या राजा अपने आस-पास के थोड़े से भूभाग को ही अपना देश समझता और अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने के लिये, दिन-रात अपने ही भाइयों से युद्ध करने में व्यस्त रहता था। इतना होने पर भी, उसमें लोक-परलोक के भाव समझने की क्षमता थी, इसीलिये वह अब तक जीवित है, और उसे जीवित रखने में निश्चय ही 'वैराग्य-शतक' तथा 'नीति-शतक' जैसे बहुमूल्य ग्रन्थों ने चन्द्रोदय की मात्रा का काम किया है। यही कारण है, जिससे अनुवादक महोदय उनके एक-एक श्लोक को लाख-लाख रुपये का बतलाते हैं।

७—(क) नेहरूजी की यह दलील कोई क़ीमत नहीं रखती, कि इन शतकों का मूल्य बेहद ज़ियादा है, प्रत्येक भाषा के साहित्य में ऐसी अगणित पुस्तकें पाई जाती हैं, जो अपने बेहद ज़ियादा मूल्य के कारण बदनाम की जा सकती हैं। बहुत ही आसानी से ऐसी पुस्तकों का एक विशाल सूचीपत्र तैयार किया जा सकता है, जिनका मूल्य, क्या पृष्ठ-संख्या, क्या चित्र-संख्या, क्या जिल्दबन्दी और क्या छपाई-सफ़ाई के लिहाज़ से, इन शतकों की अपेक्षा बेहद ज़ियादा है। दूर जाने की बात नहीं; हिन्दी-भाषा के साहित्य में ही ऐसी सैकड़ों पुस्तकें विद्यमान हैं। प्रमाण लीजिये—

पुस्तक	प्रकाशक	चित्र-संख्या	पृष्ठ-संख्या	मूल्य
समाज की चिनगारियाँ	चाँद कार्यालय, प्रयाग	+	२४६	३)
विवाह और प्रेम	”	+	१५५	२)
सफल माता	”	+	१४९	२)
विदूषक	”	+	११४	१)
प्रेम-प्रमोद	”	+	२५०	२॥)
मालिका	”	+	५००	४)
अनाथ पत्नी	”	+	१७०	२)
मोरध्वज	”	३	११०	१॥)
लम्बी दाढ़ी	”	१०	२१५	२॥)
लाल बुझक्कड़	”	६	१९१	२)
साधना	साहित्य सदन, चिरगाँव	+	१११	१)
प्रेम-पूर्णिमा	हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता	२	२२५	२)
प्याला	भारत पुस्तक भंडार, प्रयाग	२	९१	१)
प्रेम-पत्र	”	२	६८	१)

* भर्तृहरिकृत *

पुस्तक	प्रकाशक	चित्र-संख्या	पृष्ठ-संख्या	मूल्य
पंथिक	हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग	६	८०	१)
वेश्या-पुत्र	साहित्य-मण्डल, दिल्ली	+ (अजिल्द),	२७५	२॥)
खवास का ब्याह	गंगा-पुस्तक माला, लखनऊ	१	१३५	१॥)
कागज़ी करतब	"	+	१६२	२।)
प्रसादजी के दो नाटक	"	+	१५०	१॥)
प्राणायाम	"	+	१२५	१।=)
कोतवाल की करामात	"	+	१४६	१॥)
भाग्य	"	+	१४५	१॥।)
मुस्लिम-महिला रत्न	वर्मन कम्पनी, कलकत्ता	१३	१८७	२॥।)
सुहराब-रुस्तम	"	६	१७०	२)
नादिरशाह	"	५	२००	२।)
सीता	"	१५	२४६	३)
हरिश्चन्द्र-शैव्या	"	१५	२२०	३)
सती-पार्वती	"	१२	१५०	२॥)

पुस्तक	प्रकाशक	चित्र-संख्या	पृष्ठ-संख्या	मूल्य
वीर-चरितावली	”	३	१००	१॥)
श्रीराम-चरित्र	”	३०	४७५	६)
चुम्बन-मीमांसा	काशी का कोई प्रकाशक	+(अजिल्द)	१२०	२)

यह तो हुई हिन्दी-पुस्तकों की बात; अँगरेज़ी-पुस्तकें तो और भी महँगी होती हैं। देखिए—

पुस्तक	पृष्ठ-संख्या	मूल्य
प्रैक्टिकल बेङ्गाली ग्रामर	५३६	१०)
दि हिन्दू लॉ ऑव् मैरिज ऐण्ड स्त्री-धन	५५०	१०)
फ़ादर इंडिया; सी०-एस० रंगा ऐयर	२०५	४॥)
फ़ॉरबेसस हिन्दुस्तान मेनुअल	१८२	३।=)

अब इनके मुक़ाबिले में "शतक-त्रय" को रखिये—

शृंगार-शतक	चित्र-संख्या २६	पृष्ठ-संख्या ४२५	मूल्य ३॥)
नीति-शतक	” २७	” ५४४	” ५)
वैराग्य-शतक	” ३८	” ५८७	” ५)

अतः तुलना करने के वाद यही कहना पड़ता है, कि उपरोक्त हिन्दी-अँगरेजी पुस्तकों के सामने "शतक-त्रय" का मूल्य कम ही है। क़ाग़ज़, छपाई-सफ़ाई और वाइंडिंग के लिहाज़ से भी शतक-त्रय उपरोक्त पुस्तकों से वढ़े-चढ़े हैं। जव और लोग, शतक-त्रय से छोटी और अचित्र पुस्तकों का मूल्य भी कस कर रखते हैं, तव वावू हरिदास जी से ही क्यों कहा जाता है, कि आपके शतक-त्रय का मूल्य वेहद ज्यादा है। यदि वात कही जाय, तो उसका कुछ मतलव भी होना चाहिये। यह नहीं, कि माल तो परखा नहीं. और दाम सुनकर लगे चकराने। फिर यह भी तो सोचना चाहिए, कि इसी मूल्य के अन्दर कितने ख़र्चे हैं। कहिये तो वतला दें; आर्टिस्ट का पारिश्रमिक, व्लाकों का चार्ज, काग़ज़ और छपाई-वँधाई का ख़र्च, विज्ञापनों के विल, वीस प्रकार के कमीशन, पूँजी का व्याज, कर्मचारियों के वेतन और न जाने क्या-क्या। एक वात और। वैद्यजी ने शतक-त्रय का जैसा अनुवाद किया है. वैसा नेहरूजी ज़रा कर तो देखें. मालूम हो जायगा, कि कितने परिश्रम का कार्य है। यदि संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अँगरेज़ी आदि के सौ-दो-सौ ग्रन्थों के पन्ने उलटते-पुलटते जी न थक जाय, तो कहिए।

ख—नेहरूजी अपना जजमेण्ट लिखते-लिखते अन्त में इन शतकों को वड़ी समझदारी से दण्ड देते हैं—"इस समय ये ग़लत रास्ते पर ले जाने की कोशिश करते हैं। हम यह सलाह नहीं दे सकते, कि हमारे वच्चे, जिन पर देशोद्धार का भार है, इन्हें

पढ़ें।" मालूम नहीं, नेहरूजी को किसने जज बना दिया है, जो वे हिन्दी-ग्रन्थों को इस प्रकार की सज़ा देने के लिये तत्पर हो उठे हैं। अव्वल तो अनुवादकजी ने इन ग्रन्थों का अनुवाद, बच्चों के लिये नहीं, जज महोदय जैसे वृद्धों के लिए ही किया है; दोयम, यदि बच्चे भी इन्हें पढ़ें, तो क्या हानि है? क्या ये उन्हें कुमार्ग पर ले जायँगे? यदि बच्चों को नीति और त्याग का उपदेश दिया जाय, तो क्या वे मनुष्य बनने के बजाय पशु बन जायँगे? मालूम नहीं, नेहरूजी नीति और त्याग की बातों से क्यों इतना चिढ़ते हैं? यह पहला ही अवसर है, जब हमने नीति और त्याग का ऐसा तर्क-शून्य विरोध देखा है। परन्तु हम जानते हैं, कि अभी भारत में सौ-में-सौ ही आदमी ऐसे हैं, जो ऐसे उपदेशों को मनुष्य-जीवन के लिए उपयोगी ही नहीं, अत्यन्त आवश्यक भी समझते हैं; क्योंकि बिना इनके समावेश के मनुष्य-जीवन खोखला और अपरिपक्व रहता है। हमारे पाठक कृपाकर बतलावें, कि वे निम्न-लिखित उपदेशों को कैसा समझते हैं, और यदि उनके बालक इन उपदेशों को ग्रहण कर लेंगे, तो उन्हें क्या हानि पहुँचेगी।

(१)

"यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं,
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चित्किञ्चिद्बुधजनसकाशादवगतं,
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥"

अर्थात्—"जब मैं कुछ थोड़ा-सा जानता था तब मैं, मदोन्मत्त हाथी की तरह, घमण्ड से अन्धा हो कर, अपने तईं सर्व्वज्ञ समझता था। लेकिन ज्योंही मैंने विद्वानों की संगति से कुछ जाना और सीखा, त्योंही मुझे मालूम होगया, कि मैं तो निरा मूर्ख हूँ। उस समय मेरा मद ज्वर की तरह उतर गया।"

कहावत है—"अल्प विद्यो महागर्वी।" थोड़ी विद्या वाला बड़ा अभिमानी होता है। अल्पज्ञ, अपने सिवा, सारे संसार को मूर्ख समझता है। जब तक वह विद्वानों की सुहबत नहीं करता—अनेक प्रकार के ग्रन्थों को नहीं देखता, तब तक वह अपने तईं सर्वज्ञ समझता है और उतनी-सी विद्या के घमण्ड से मतवाला रहता है, लेकिन ज्योंही वह पण्डितों की संगति करता है, उनसे कुछ सीखता है, उसकी आँखें खुल जाती हैं—उसका सारा नशा किरकिरा हो जाता है— उसका मद-ज्वर फ़ौरन् उतर जाता है।

अल्पज्ञ की दशा कूपमण्डूक-की-सी होती है। कुए का मैंडक सदा कुए में रहता है और कुए के सिवा और किसी जलाशय को नहीं देखता। उस दशा में, वह उस कुए को ही सर्वश्रेष्ठ जलाशय समझता है; लेकिन जब वह सरोवरों, नदियों अथवा सागर को देखता है, तब उसकी आँखें खुल जाती हैं। इसी तरह जो लोग थोड़ा-सा इल्म रखते हैं; अनेक विषयों से अनजान रहते हैं, वे अपने साधारण ज्ञान को ही सर्वश्रेष्ठ समझते हैं और उस पर अभिमान करते हैं; किन्तु जब वे विद्वानों की संगति से कुछ

और देखते और जानते हैं, तब उनको होश होता है, तब वे समझते हैं, कि हम तो कुछ भी नहीं जानते (नीति-शतक पृष्ठ २२)।

कहने की आवश्यकता नहीं, कि उक्त उपदेश विद्यार्थियों के लिये कितना लाभदायक हो सकता है।

(२)

जो लोग सोच-विचार कर काम नहीं करते, उनके लिये निम्नलिखित उपदेश कितना मार्मिक हो सकता है—

"शिरः शार्वं स्वर्गात्पतति शिरसस्तत्क्षितिधरं,
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम् ।
अधोऽधोगंगेयं पदमुपगता तोकमथवा,
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥"

अर्थात्—"गंगा पहले स्वर्ग से शिव के मस्तक पर गिरी, उनके मस्तक से हिमालय पर्वत पर गिरी,वहाँ से पृथ्वी पर गिरी, और पृथ्वी से बहती-बहती समुद्र में जा गिरी। इस तरह ऊपर से नीचे गिरना आरम्भ होने पर, गंगा नीचे-ही-नीचे गिरी और स्वल्प होती गई। गंगा-की-सी ही दशा उन लोगों की होती है, जो विवेक-भ्रष्ट हो जाते हैं; उनका भी अधःपतन गंगा की ही तरह सौ-सौ तरह होता है।"

गंगा-जैसी पतित-पावनी सुरनदी, अभिमान के कारण,विष्णु-चरणों में लोप हुई। वहाँ से शिव के मस्तक पर गिरी। वहाँ से

भी हिमालय की चोटी पर आई। हिमालय की चोटी से पृथ्वी पर आई। पीछे हरिद्वार, प्रयाग, काशी प्रभृति स्थानों में बहती-बहती समुद्र में जा गिरी। जो गंगा एक दिन सर्वोच्च स्थान—स्वर्ग में थी, वही ज्ञान-मार्ग से भ्रष्ट होने के कारण, बार-बार नीचे ही गिरती-गिरती, सब से नीचे स्थान समुद्र में जा गिरी। वहाँ पहुँच कर उसका अस्तित्व ही लोप हो गया—नाम ही मिट गया। इतना अधःपतन क्यों हुआ? केवल विवेक—विचार-शक्ति से काम न लेने या विवेक के खो देने से। जो संसारी लोग विवेक या विचार-शक्ति-से काम नहीं लेते, जो कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार खो बैठते हैं, उनकी भी दशा गंगा-की-सी होती है। उन पर नाना प्रकार की विपत्तियाँ पड़ती हैं। जिस तरह एक बार अधःपतन आरम्भ होकर गंगा फिर ऊँची न उठ सकी; उसी तरह वे भी जब नीचे गिरने लगते हैं, तब ऊँचे नहीं उठते और एक दिन मिट्टी में ही मिल जाते हैं। सारांश यह, कि विचार-शक्ति ही हमारी सच्ची रक्षिका और मार्ग-प्रदर्शिका है। जो लोग प्रत्येक बुरे और भले काम में इसकी सलाह नहीं लेते अथवा इसका कहना नहीं मानते, उनकी दुर्गति निश्चय ही होती है। (नीति-शतक; पृष्ठ २७)

(३)

"साहित्यसंगीतकलाविहीनः,

साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।

तृणं न खादन्नपि जीवमान-
स्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥"

अर्थात्—"जो मनुष्य साहित्य और संगीत-कला से विहीन है; यानी जो साहित्य और संगीत-शास्त्र का ज़रा भी ज्ञान नहीं रखता या इनमें अनुराग नहीं रखता, वह बिना पूँछ और सींग का साक्षात् पशु है। वह घास नहीं खाता और जीता है, यह इतर पशुओं का परम सौभाग्य है।"

जो मनुष्य काव्य, अलङ्कार और न्याय प्रभृति का ज्ञान नहीं रखता—इनसे अनुराग नहीं रखता, गान-विद्या में रुचि नहीं रखता, उसका मर्म नहीं जानता, वह मनुष्य होने पर भी मनुष्य नहीं; किन्तु बिना दुम और सींग का जानवर है। वह घास नहीं खाता और जीता है, यह अन्य पशुओं का सौभाग्य है। अगर वह भी कहीं घास खाता होता, तो बेचारे पशुओं को अपना पेट भरना कठिन हो जाता—बेचारे घास-बिना भूखों मर जाते। (नीतिशतक; पृष्ठ ३४)

जो लोग ललित कलाओं से द्वेष रखते हैं, उनके प्रति कितना तीव्र व्यङ्ग्य है।

(४)

अब मनुष्य की अपूर्णता पर भर्तृहरि का धार्मिक व्यङ्ग्य देखिए—

"येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥"

अर्थात्—"जिन्होंने न विद्या पढ़ी है, न तप ही किया है, न दान ही दिया है, न ज्ञान ही उपार्जन किया है, न सच्चरित्रों-का-सा आचरण ही किया है, न गुण ही सीखा है, न धर्म का अनुष्ठान ही किया है—वे इस लोक में वृथा पृथ्वी का बोझा बढ़ाने वाले, मनुष्य के रूप में मृगों की तरह पशु हैं।"

जिन्होंने न्याय, नीति, वेदान्त आदि शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया है, जिन्होंने मधुसूदन की भक्ति नहीं की है, जिन्होंने समाधि लगा कर मकुन्द के चरण-कमलों का ध्यान नहीं किया है, जिन्होंने सत्पात्रों को दान नहीं दिया है, जिन्होंने ग़रीब और मुहताजों के कष्ट निवारण नहीं किए हैं, जिन्होंने शास्त्रीय और लौकिक ज्ञान सम्पादन नहीं किया है, जिन्होंने कर्तव्य और अकर्तव्य का ज्ञान लाभ नहीं किया है, जिन्होंने भले आदमियों का-सा आचरण नहीं किया है, जिन्होंने शीलव्रत धारण नहीं किया है, जिन्होंने गुणों का उपार्जन नहीं किया है, जिन्होंने धर्म-कार्य नहीं किए हैं—उन्होंने इस दुनियाँ में, वृथा पृथ्वी का भार बढ़ाने के लिये, पशुओं की तरह जन्म लिया है। वे सूरत-शकल या आकृति से मनुष्य हैं, पर वास्तव में पशु हैं। (नीतिशतक; पृष्ठ ४०-४१)

(५)

विद्या की महत्ता के विषय में भर्तृहरि ने कहा है—

"विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं, प्रच्छन्नगुप्तं धनं ।
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी, विद्या गुरूणां गुरुः ॥
विद्या बन्धुजनो विदेशगमनं, विद्या परं दैवतं ।
विद्या राजसु पूजिता न हि धनं, विद्याविहीनः पशुः ॥"

अर्थात्—"विद्या मनुष्य का सच्चा रूप और छिपा हुआ धन है; विद्या मनुष्य को भोग, सुख और यश की देने वाली है; विद्या गुरुओं की भी गुरु है; परदेश में विद्या ही बन्धु का काम करती है; विद्या ही परम देवता है; राजाओं में विद्या का ही मान है, धन का नहीं। जिसमें विद्या नहीं, वह पशु के समान है।"

निस्सन्देह, विद्या मनुष्य का सर्वोपरि रूप है। विद्या कुरूपों को भी रूपवान करने वाली है। मनुष्य कैसा ही ख़ूबसूरत और नौजवान क्यों न हो, पर विद्या-बिना उसकी ख़ूबसूरती पलाश के फूल की तरह वृथा और निकम्मी है। विद्या मनुष्य का गुप्त धन है। उसे चोर चुरा नहीं सकते, डाकू लूट नहीं सकते, राजा छीन नहीं सकता, भाई-बन्धु और कुटुम्बी बँटा नहीं सकते। विद्या से विनय की, विनय से सुपात्रता की और सुपात्रता से धन की प्राप्ति होती है। धन को उत्तम कार्यों में लगाने और सत्पात्रों को देने से धर्म की प्राप्ति होती है। निस्सन्देह विद्या—धन, धर्म, सुख और सुयश की देने वाली है। इसमें यह बड़ा भारी

गुण है, कि यह महानीच को भी राजा तक पहुँचाकर, उसे धन और मान से परिपूर्ण कर देती है। (नीति-शतक; पृष्ठ ६६)

(६)

सत्संगति के गुणों का वर्णन भी देखने-योग्य है—

"जाड्यं धियो हरति, सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति, पापमपाकरोति।
चेत: प्रसादयति दिक्षु, तनोति कीर्त्तिं,
सत्संगति: कथय, किं न करोति पुंसाम् ?"

अर्थात्—"सत्संगति बुद्धि की जड़ता को हरती है, वाणी में सत्य सींचती है, सन्मान की वृद्धि करती है, पापों को दूर करती है, चित्त को प्रसन्न करती है और दशों दिशाओं में कीर्त्ति को फैलाती है। कहो, सत्संगति मनुष्य में क्या नहीं करती ?"

इसका .खुलासा अर्थ यह है, कि सत्संगति से बुद्धि की मन्दता नाश होती है, बुद्धि तीव्र होती है, सत्य बोलने में अनुराग होता है, सम्मान बढ़ता है, पाप नाश होते हैं, चित्त प्रसन्न रहता है और हर तरफ़ सुयश फैलता है। ऐसी कोई बात ही नहीं, जो सत्संगति से न हो। (नीति-शतक; पृष्ठ ६२)

युद्ध या विग्रह किस से करना चाहिए। इस विषय को भर्तृहरि ने कितने सुन्दर उदाहरण-द्वारा समझाया है—

"सत्यन्येऽपि बृहस्पतिप्रभृतय: संभाविता: पंचपा-
स्तान्प्रत्येष विशेषविक्रमरुची राहुर्न वैरायते ॥

द्वावेव ग्रसते दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ भासुरौ
भ्रात: पर्वणि पश्य दानवपतिः शीर्षावशेषीकृत: ॥"

अर्थात्—"आकाश में बृहस्पति प्रभृति और भी पाँच-छः ग्रह श्रेष्ठ हैं, पर असाधारण पराक्रम दिखाने की इच्छा रखने वाला राहु इन ग्रहों से बैर नहीं करता। यद्यपि दानवपति का सिर मात्र अवशेष रह गया है, तोभी वह अमावस्या और पूर्णिमा को दिनेश्वर—सूर्य और निशानाथ—चन्द्रमा को ही ग्रसता है।"

इसका ख़ुलासा मतलब यह है—महापुरुषों का स्वभाव होता है, कि वे छोटों से वैर-भाव नहीं करते; क्योंकि छोटों से जीतने में नेकनामी नहीं मिलती, पर हार जाने में बदनामी होती है—छोटों से जीतने में भी हार और हारने में भी हार। महापुरुष, इसीलिये, अपने समान या अधिक बलवालों से ही युद्ध करते हैं।

कहा भी है—

"निबल जान कीजे नहीं, कबहुँ वैर-विषाद।
जीते कछु शोभा नहीं, हारे निन्दावाद॥
कै सम सों कै अधिक सों, लरिये करिये वाद।
हारे जीते होत है, दोऊ भाँति सवाद॥"

(नीति-शतक; पृष्ठ १७१)

(८)

तेजस्वी पुरुप कभी अपमान नहीं सह सकते; क्योंकि—

"यदचेतनोऽपि पादै:स्पृष्ट: प्रज्वलति सवितुरिनकांत:।
तत्तेजस्वी पुरुप: परकृतविकृतिं कथं सहते ?"

अर्थात्—"जब चेतना-रहित सूर्यकान्त-मणि भी सूर्य-किरण-रूप पैरों के लगने से जल उठती है, तब चेतना-सहित तेजस्वी पुरुष पर-का किया अपमान कैसे सह सकते हैं ?

सूर्यकान्त मणि बेजान चीज़ है, पर वह भी सूर्य के किरण-रूपी पैरों के लगने से, अपने तईं अपमानित समझ कर, मारे क्रोध के, जल उठती है; तब जानदार तेजस्वी पुरुप दूसरों के किए अपमान को कैसे सह सकते हैं ? अर्थात् नहीं सह सकते। मानियोंको अपमान से क्रोध आए बिना नहीं रह सकता। उन्हें अपमान मृत्यु-यन्त्रणा से भी अधिक भयङ्कर यन्त्रणा-दायक बोध होता है। चन्दन का स्वभाव शीतल है, पर घिसने से उसमें भी आग निकल आती है। (नीति शतक; पृष्ठ १७८)

(९)

अब ज़रा प्रश्नोत्तर के रूप में कुछ अमूल्य उपदेश लीजिए—

"को लाभो गुणिसङ्गम: किमसुखं प्राज्ञेतरै: सङ्गति:
का हानि: समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्त्वे रति:।
क: शूरो विजितेन्द्रिय: प्रियतमा कानुव्रता किं धनं
विद्या किं सुखमप्रवासगमनं राज्यं किमाज्ञाफलम् ॥"

अर्थात्—'लाभ क्या है ? गुणियों की संगति। दुःख क्या है ? मूर्खों का संसर्ग। हानि क्या है ? समय पर चूकना। निपुणता क्या है ? धर्मानुराग। शूर कौन है ? इन्द्रिय-विजयी। स्त्री कैसी अच्छी है ? जो अनुकूल और पतिव्रता हो। धन क्या है ? विद्या। सुख क्या है ? प्रवास में न रहना। राज्य क्या है ? अपनी आज्ञा का चलना।" (नीति-शतक; पृष्ठ ४५३)।

(१०)

विद्वानों और धनवानों की असलियत क्या है, और उन से संसार को कौन-सी विशेष हानि पहुँचती है; इस विषय में भर्तृहरि का मत सुनने-योग्य है।

"बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
अबोधो पहताश्चान्ये जीर्णमंगे सुभाषितम् ॥"

अर्थात्—"जो विद्वान् हैं, वे ईर्षा से भरे हुए हैं, जो धनवान् हैं, उन को अपने धन का गर्व है; इनके सिवा जो और लोग हैं, वे अज्ञानी हैं; इसलिये विद्वत्तापूर्ण विचार, सुन्दर-सुन्दर सार-गर्भित निबन्ध या उत्तम काव्य शरीर में ही नाश हो जाते हैं।"

इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है—"जो विद्वान् हैं, पण्डित हैं, जिन्हें अच्छे-बुरे का ज्ञान या तमीज़ है, वे तो अपनी विद्वत्ता के अभिमान से मतवाले हो रहे हैं, वे दूसरों के उत्तम-से-उत्तम कामों में छिन्द्रान्वेषण करने या नुक़्ताचीनी करने में ही अपना पाण्डित्य समझते हैं; अतः ऐसों से कुछ कहने में लाभ की ज़रा

भी सम्भावना नहीं। दूसरे प्रकार के लोग जो धनी हैं, वे अपने धन के गर्व से भूले हुए हैं। उन्हें धन-मद के कारण कुछ सूझता ही नहीं, उन्हें किसी से बातें करना या किसी की सुनना ही पसन्द नहीं; अतः उनसे भी कुछ लाभ नहीं। अब रहे तीसरे प्रकार के लोग; वे नितान्त मूर्ख या अज्ञानी हैं; उन गँवारों में अच्छे-बुरे की तमीज नहीं, अतः उनसे कुछ कहने या अपनी कृति दिखाने-सुनाने को दिल नहीं चाहता; इसलिये हमारे मुँह से निकल सकने वाले उत्तमोत्तम विचार, निबन्ध, काव्य या सुभाषित, संसार के सामने न आकर, हमारे शरीर में ही नष्ट हुए जाते हैं, हमारा परिश्रम व्यर्थ जाता है और संसार हमारे कामों के देखने और लाभान्वित होने से वञ्चित रहता है।"

(वैराग्यशतक; पृष्ठ २-३)

(११)

मनुष्य-जीवन वास्तव में कितना खोखला है, इस विषय में भर्तृहरि कहते हैं:—

"न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं
विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः।
महद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्च विषया
महान्तो जायन्ते व्यसनमिव दातुं विषयिणाम् ॥"

अर्थात्—"मुझे संसारी कामों में जरा भी सुख नहीं दीखता। मेरी राय में तो पुण्यफल भी भयदायक ही हैं। इसके सिवा,



बहुत से अच्छे-अच्छे पुण्यकर्म करने से जो विषय-सुख के सामान प्राप्त किये और चिरकाल तक भोगे गए हैं, वे भी विषय-सुख चाहने वालों को, अन्त समय में, दुःखों के ही कारण होते हैं।"

मतलब यह, कि इस जीवन में सुख का लेश भी नहीं है। जिनके पास अक्षय लक्ष्मी. धन-दौलत, गाड़ी-घोड़े, मोटर, नौकर-चाकर, रथ-पालकी प्रभृति सभी सुख के सामान मौजूद हैं, राजा भी जिनकी बात को टाल नहीं सकता, जिनके इशारों से ही लोगों का भला या बुरा हो सकता है, ऐसे सर्व-सुख-सम्पन्न लोग भी, चाहे ऊपर से सुखी दीखते हों पर, वास्तव में सुखी नहीं हैं; भीतर-ही-भीतर उन्हें भी घुन खाये जाता है; किसी न किसी दुःख से वे जर्ज्जरित हुए जाते हैं। (वैराग्य-शतक; पृष्ठ ५-६)

भर्तृहरि का यह मत इतना समीचीन है, कि उस पर किसी के दो मत हो ही नहीं सकते।

(१२)

तृष्णा कितनी प्रबल है और उसके चक्कर में पड़ कर मनुष्य अपने हाथों अपनी कैसी दुर्गति करता है, इसका चित्र भर्तृहरि ने बहुत ही सीधे पर मार्मिक ढँग से खींचा है। देखिये—

"भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किञ्चित्फलं,
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला।

भुक्तं मानविवर्जितं परगृहेष्वाशंकया काकवत्तृष्णे
दुर्मतिपापकर्मनिरते नाद्यापि संतुष्यसि ॥"

अर्थात्—"मैं अनेक दुर्गम और कठिन स्थानों में डोलता फिरा, पर कुछ भी नतीजा न निकला। मैंनें अपनी जाति और अपने कुल का अभिमान त्याग कर, पराई चाकरी भी की; पर उससे भी कुछ न मिला। शेष में, मैं कव्वे की तरह डरता हुआ और अपमान सहता हुआ, पराये घरों के टुकड़े भी खाता फिरा। हे पाप कर्म कराने वाली और कुमतिदायिनी तृष्णे! क्या तुझे इतने पर भी सन्तोष नहीं हुआ?"

तात्पर्य यह, कि धन के लालच में, मैं अपना देश और घर-द्वार छोड़ कर ऐसे-ऐसे स्थानों में गया, जहाँ मनुष्य बड़ी कठिनाई से पहुँच सकते हैं; पर वहाँ जाने पर भी मुझे एक पाई न मिली। मैंने अपने द्विजत्त्व या ऊँची जाति के अभिमान को त्याग कर पराई नौकरी भी की और मालिक ने जो-जो नीच कर्म कराये वही किये, लेकिन उससे भी मुझे धन न मिला। शेष में, मैं मान-अपमान को छप्पर पर रख कर, बिना बुलाये ही लोगों के घर गया और कव्वे की तरह डरते-डरते खाता रहा। मुझे इन सब कामों से बड़ी ठेस लगी। मैंने अनेक प्रकार के कष्ट उठाए, मान खोया, लोगों के कुवचन सहे, पर फिर भी मेरी कामना सिद्ध न हुई। इसलिये कम्बख़्त तृष्णा! मैं तुझसे पूछता हूँ, कि इतने

कुकर्म करा कर भी, तुझे सन्तोष हुआ या नहीं ? (वैराग्य-शतक; पृष्ठ १६-१७)

आशा भी मनुष्य को क्या-क्या नाच नचाती है ?

"खलोल्लापा: सोढा: कथमपि तदाराधनपरै—
र्निगृह्यान्तर्वाष्पं हसितमतिशून्येन मनसा ।
कृतश्चित्तस्तम्भ: प्रहसितधियामञ्जलिरपि;
त्वमाशे मोघाशे किमपरमतो नर्त्तयसि माम् ॥"

अर्थात्—"मैंने दुष्टों की सेवा करते हुए उनकी तानेज़नी और ठट्ठेबाजी सही, भीतर के दुःख से आए हुए आँसू रोके, और उद्विग्न चित्त से उनके सामने हँसता रहा। उन हँसने वालों के सामने, चित्त को स्थिर करके, हाथ भी जोड़े। हे झूठी आशा ! क्या अभी और भी नाच नचाएगी ?"

भाव यह, कि मैंने नीचों की नौकरी करली। उनकी सेवा करते हुए मैंने उन दुष्टों के अवाज़े-तवाज़े गाली-गलौज और दिल्लगी सभी कुछ बर्दाश्त की। उनके वाग्बाणों से मेरे कलेजे में छेद हो जाते थे और हृदय रोने लगता था। उसके कारण से जो आँसू आते थे, उन्हें मैं रोक लेता था। भीतर से मेरा दिल एक दम मुर्झा गया था; पर फिर भी मैं उनके सामने हँसा करता और क्रोध को दबा कर और चित्त को स्थिर और शान्त करके उन मसखरों को मैंने हाथ भी जोड़े; पर फिर भी उनसे

मुझे कुछ न मिला ! हे आशा ! निष्फला आशा ! इतने नाच तो नचाए, अब और तेरे दिल में क्या है ? (वैराग्य शतक; पृष्ठ १८-१६) ।

(१४)

तृष्णा कभी वृद्धा नहीं होती, सदा तरुणी बनी रहती है,और मनुष्य को शान्ति से नहीं बैठने देती। इसीलिये भर्तृहरि ने कहा है—

"भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।
कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥

अर्थात्—"विषयों को हमने नहीं भोगा, किन्तु विषयों ने ही हमारा भुगतान कर दिया; हमने तप को नहीं तपा, किन्तु विषयों ने हमें ही तपा डाला। काल का खात्मा न हुआ, किन्तु हमारा ही खात्मा हो चला। तृष्णा का बुढ़ापा न आया, किन्तु हमारा ही बुढ़ापा आ गया ।"

मतलब यह, कि हमने बहुत-कुछ भोग भोगे, पर भोगों का अन्त न आया; हाँ, हमारा अन्त आ गया। काल या समय का अन्त न आया, किन्तु हमारा अन्त आगया—हमारी उम्र पूरी हो चली। हमें जो धर्म-कार्य करने थे, वह हम न कर सके। हमने तप तो नहीं तपा, किन्तु संसारी तापों ने हमारे तईं तपा डाला—संसार के जञ्जालों में फँस कर, हम ही शोक तापों से तप गए। हमारा अन्त आ पहुँचा, हम निर्बल और वृद्ध हो

गए; पर तृष्णा बूढ़ी और कमज़ोर न हुई—हमें संसार से विरक्ति न हुई।

ऐसी ही बात उस्ताद 'ज़ौक़' ने कही है—

"दुनिया से ज़ौक़ ! रिश्तये उल्फ़त को तोड़ दे।
जिस सर का है यह बाल, उसी सर में जोड़ दे॥
पर ज़ौक़ न छोड़ेगा, इस पीरा ज़ाल को।
यह पीरा ज़ाल, गर तुझे चाहे तो छोड़ दे॥"

(वैराग्य-शतक; पृष्ठ ३६)

"वलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरंकितं शिरः।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते॥"

अर्थात्—"चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गईं, सिर के बाल पक कर सफ़ेद हो गए, सारे अङ्ग ढीले हो गए—पर तृष्णा तो तरुण होती जाती है !"

ख़ुलासा यह, कि बुढ़ापा आ गया है; क्योंकि चेहरे का चमड़ा सुकड़ गया है, झुर्रियाँ पड़ गई हैं, रंग-रूप हवा हो गया है, हाथ-पैर आदि अङ्ग शिथिल या ढीले हो गए हैं, किसी काम की सामर्थ्य नहीं रही है। शरीर की तो यह दशा हो गई; पर तृष्णा का न तो बुढ़ापा आया, न बल घटा, वह तो उल्टी तेज़ हो रही है। हमारे शरीर का बुढ़ापा आ गया, पर तृष्णा की तो जवानी चढ़ रही है।

(वैराग्य-शतक; पृष्ठ ४३)

(१५)

यदि मनुष्य तृष्णा को त्याग कर, आत्म-चिन्तन में मग्न हो जाय, तो उसे किसी वस्तु का अभाव त्रस्त ही न करने पावे। इस विषय को लेकर भर्तृहरि कहते हैं:—

"परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहु हा,
प्रसादं किं नेतुं विशसि हृदयक्लेशकलितम्।
प्रसन्ने त्वय्यन्तः स्वयमुदितचिन्तामणिगुणे,
विमुक्तः संकल्पः किमभिलषितं पुष्यति न ते॥"

अर्थात्—"हे मलिन मन! तू पराये दिल को प्रसन्न करने में किस लिए लगा रहता है? यदि तू तृष्णा को छोड़ कर सन्तोष करले, अपने में ही सन्तुष्ट रहे, तो तू स्वयं चिन्तामणि-स्वरूप हो जाय। फिर तेरी कौनसी इच्छा पूरी न हो?"

वास्तव में, मन ही सब कामों का कर्त्ता है। सभी इन्द्रियाँ मन के ही अधीन और मन की ही अनुगामिनी हैं। मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है। मनुष्य मन से ही पाप-पुण्य और दुःख-सुख प्रभृति का भागी होता है। मन ही मनुष्य को बुरा-भला, साधु-असाधु सब कुछ बना देता है। मन की वृत्ति सुधरने से ही, मन के वासना-हीन होने से ही, सब कुछ त्यागने से ही, वह आत्म-साक्षात्कार के योग्य हो जाता है; इसीलिये कोई ज्ञानी पुरुष मन को सम्बोधन करके कहता है:—

"अरे मन! तू स्वयं तो मलिन और दुःख के भार से दबा हुआ है; फिर तू औरों के दिल ख़ुश करने की इतनी कोशिशें क्यों करता है, क्यों आफ़तें उठाता है, क्यों मान खोता है और क्यों अपमान सहता है? इससे तुझे क्या लाभ होगा? मेरी बात

माने, तो तू इच्छा को त्याग दे, किसी भी चीज की इच्छा मत रख; तब तुझे शान्ति मिलेगी—परमानन्द की प्राप्ति होगी। जब तू चिन्तामणि की भाँति स्वच्छ हो जायगा, जब तू अपने स्वरूप को पहचान जायगा; तब तुझे आत्म-साक्षात्कार हो जायगा, तू ब्रह्म के प्रेम में लीन हो जायगा, हर्ष-विषाद और शोक-मोह तेरे पास न आवेंगे, अष्ट-सिद्धि और नव-निद्धि तेरे सामने हाथ बाँधे खड़ी रहेंगी। उस समय तेरी कोई अभिलाषा पूरी हुए बिना बाक़ी न रहेगी। इसीलिये कहता हूँ, कि तू दूसरों को राज़ी करने की अपेक्षा अपने तईं ही राज़ी कर, इससे तुझे निश्चय ही उसकी प्राप्ति होगी, जिसके समान त्रिलोकी में और कोई नहीं है। (वैराग्यशतक; पृष्ठ १०७-१०८)

चापलूसों के लिये इससे उत्तम उपदेश और क्या हो सकता है ?

(१६)

सन्तोष ही आत्म-सुख का प्रधान कारण हो सकता है, इसलिये योगिराज भर्तृहरि कह गए हैं—

"वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या
सम इह परितोषो निर्विशेषावशेषः।
स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान्को दरिद्रः ? ॥"

अर्थात्—"हम वृक्षों की छाल पहन कर सन्तुष्ट हैं; आप लक्ष्मी से सन्तुष्ट हो। हमारा तुम्हारा दोनों का सन्तोष समान है, कोई भेद नहीं। वही दरिद्र है जिसके दिल में तृष्णा है। मन में

सन्तोष आने पर, कौन धनी और कौन निर्धन है ? अर्थात् सन्तोषी के लिये धनी और निर्धन दोनों बराबर हैं।

जिसे सन्तोष है, वह सदा सुखी है। उसे कोई सुख नहीं, जिसकी इच्छाएँ बड़ी-बड़ी हैं। जिसे सन्तोष नहीं है, वह सदा दुःखी है। सन्तोष बड़ी-से-बड़ी दौलत से भी अच्छा है। जो सुखी होना चाहे, वह तृष्णा को त्यागे, और परमात्मा जो दे, उसी में सन्तोष करे। सन्तोषी के लिये कोई व्याधि नहीं है। सन्तोषी के चित्त, मन और काया सदा सुखी रहते हैं। सन्तोषी किसी की ख़ुशामद नहीं करता।

उस्ताद 'जौक़' कहते हैं—

"जो कुंजे क़नाअत में, हैं तक़दीर पर शाकिर।
है ज़ौक़ बराबर, उन्हें कम और ज़ियादा॥"

जो सन्तोषी हैं, तक़दीर पर भरोसा रखते हैं, उन्हें कम और जियादा सभी बराबर हैं। उन्हें जो मिल जाय, उसी पर सब्र है।

शेख़ सादी ने "गुलिस्ताँ" में लिखा है—

"ऐ क़नाअत तवनूगरम गरदाँ।
के बराये तो हेच नेमत नेस्त॥"

हे सन्तोष ! मुझे धनी बना दे—क्योंकि संसार की कोई दौलत तुझ से बढ़कर नहीं है। (वैराग्य-शतक; पृष्ठ १६६)।

(१७)

अब नित्य-सुख प्राप्त करने के कुछ अचूक मार्ग और देख लीजिए—

"प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणेसंयमः सत्यवाक्यं
कालेशक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम् ।
तृष्णास्त्रोतोविभंगो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा,
सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पन्थाः ॥"

अर्थात्—"किसी भी जीव की हिंसा न करना, पराया माल न चुराना, सत्य बोलना, समय पर सामर्थ्यानुसार दान करना, पर-स्त्रियों की चर्चा में चुप रहना, गुरुजनों के सामने नम्र रहना, सब प्राणियों पर दया करना और भिन्न-भिन्न शास्त्रों में समान विश्वास रखना—ये सब नित्य-सुख प्राप्त करने के अचूक रास्ते हैं।

यदि आप मोक्ष की अचूक राह चाहते हो, यदि आप नित्य सुख-शान्ति चाहते हो, यदि आप चिरस्थायी कल्याण चाहते हो, तो किसी भी प्राणी का विनाश मत करो, अपने पेट के लिए किसी की जान मत मारो। जब मौक़ा आवे, अपनी शक्ति-अनुसार ग़रीबों और मुहताजों को दान दो, उनके दुःख दूर करो, उनके दुःखों को अपना दुःख समझ कर उनका कष्ट निवारण करो। जहाँ पराई स्त्रियों का ज़िक्र होता हो, वहाँ मत बैठो; यदि बैठना ही पड़े, तो तुम अपनी ज़बान से कुछ मत कहो। माता-पिता और गुरु के सामने सदा नम्र रहो; उनकी आज्ञा-पालन करो, उनका मान-सम्मान करो, भूलकर भी उनका अप-मान मत करो। छोटे-बड़े सभी प्राणियों पर दया करो। सभी शास्त्रों को समान समझो; किसी में विश्वास और किसी में अविश्वास न करो; क्योंकि सभी का ध्येय एक ही है, सभी वहीं पहुँचते हैं। जिस तरह नदियाँ टेढ़ी-सीधी बहती हुई समुद्र में ही

मिलती है; उसी तरह सभी शास्त्र अपनी-अपनी राहों से मोक्ष या परमात्मा की ही राह बताते हैं। जो ऐसा विश्वास नहीं रखते, तर्क-वितर्क के झमेले में पड़ते हैं, वे वृथा भटकते और अपनी मंज़िल-मक़सूद—परम पद तक नहीं पहुँचते। (वैराग्यशतक; पृष्ठ २३६)।

अस्तु—हम शतक-त्रय के किस-किस श्लोक को उद्धृत करें, सभी में कुछ-न-कुछ अनूठापन है, सभी में उत्तमोत्तम शिक्षाएँ भरी हुई हैं, और सभी में एक-न-एक गम्भीर तथ्य विद्यमान है? हमें ताज्जुब है, कि नेहरूजी ने किस बुद्धि के फेर में पड़कर यह बात कह डाली, कि ये पुस्तकें ग़लत राह बतलाने वाली हैं, अतएव पढ़ने-योग्य नहीं हैं। आज, जबकि पाश्चात्य देश नीति को विज्ञान का रूप दे रहे हैं और भौतिक सभ्यता से ऊबकर, आध्यात्मिकता की तलाश में व्याकुल हो रहे हैं; तब नेहरूजी हमारे उन ग्रन्थों का अपमान करते हैं, जिनमें सैकड़ों-हज़ारों वर्ष पूर्व नीति को विज्ञान का रूप दिया जा चुका है, और जो आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत हैं। परन्तु पाठक ऊपर दिए हुए कुछ उद्धरणों से भली भाँति समझ गए होंगे, कि ये ग्रन्थ कितने तथ्य-पूर्ण हैं, इनमें ज्ञान की कितनी सामग्री भरी हुई है, और ये केवल पढ़ने-योग्य ही नहीं हैं, वरन लोक और परलोक को बनाने वाले भी हैं। मनुष्यता को ऊपर उठाने में इन ग्रन्थों से जो सहायता मिल सकती है, उसका वर्णन नहीं हो सकता—यही क्यों? इस प्रकार के लोकोपयोगी ग्रन्थ संसार की किसी भी भाषा में बहुत कम होते हैं। शतक-त्रय का स्थान साहित्य में सदा अचल रहेगा, इनकी वाणी अमर है, और सारे संसार को एक-सा सन्देश देती रहेगी।



एक बात और। इस लेख में हमने शतक-त्रय से जो उद्धरण दिए हैं, उनसे पाठकों को अनुवाद की पूरी-पूरी .खूबी का पता कदापि नहीं चल सकता। ये उद्धरण तो बतौर चित्रों की आउट-लाइन या पैन्सिल-स्कैच के हैं। स्थान की कमी के कारण, हम इनकी रंगीन और मनोहर प्रतिमाएँ, जो अनुवाद में हैं यहाँ उपस्थित करें, तो कैसे करें? वास्तव में, अनुवादक महोदय ने अपनी सरस, सरल और हृदयग्राही लेखन-शैली द्वारा शतक-त्रय के एक-एक श्लोक को मनोहर प्रतिमा के रूप में परिवर्त्तित कर दिया है। पृष्ठ-पर-पृष्ठ पढ़ते जाते हैं और आत्मा आनन्द-विभोर होती जाती है; ऊबना क्या है, सो जानती भी नहीं। पाठकों से हमारा आग्रह है, कि वे हरिदास एण्ड को०, गंगा-भवन, मथुरा, से ये शतक अवश्य मँगाएँ, .खुद पढ़ें और अपने बालको को पढ़ाएँ। उन्हें अपूर्व लाभ होगा। जो पाठक पैसा ख़र्च करने में असमर्थ हों, वे, जैसे भी हो सके, कहीं से एकाध शतक प्राप्त कर पढ़ें और तब स्वयं ही फ़ैसला करें, कि नेहरूजी की आलोचना कहाँ तक ठीक है*।

सागर
१७ अगस्त, १९३३ ई०

ज़हूरबख़्श



---

* यह लेख प्रयाग की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका "सहेली" से लिया गया है। लेखक और सम्पादक महोदय को हार्दिक धन्यवाद है।

भर्तृहरिकृत

शतकत्रय पर

विद्वान् पत्र-सम्पादकों की सम्मतियाँ

श्रीमान् पण्डितवर रामगोविन्दजी त्रिवेदी, वेदान्तशास्त्री-द्वारा सम्पादित "गंगा" में साहित्याचार्य श्री "मग" महोदय लिखते हैं:—

राजा भर्तृहरि ने नीतिशतक, शृङ्गारशतक तथा वैराग्यशतक नामक तीन शतकों की रचना की है। ये तीनों शतक निस्सन्देह संस्कृत साहित्य के उज्ज्वल रत्न हैं। इनका रसास्वादन, अकेले संस्कृतवाले ही, बहुत दिनों से कर रहे थे; किन्तु बेचारे हिन्दी के जानकार आज तक केवल ललच-ललच कर ही रह जाते थे—उनका कोई चारा ही नहीं था। यह सोच कर बाबू हरिदास जी वैद्य ने, इन हिन्दी वालों के लिये, बहुत परिश्रम से, इन तीनों शतकों का सुन्दर अनुवाद किया है। अनुवाद करती वेर, तत्सम भाव वाले पद्यों या कथानकों का भी चयन, बड़ी



मुस्तैदी से किया है, जिससे रोचकता बहुत अधिक मात्रा में बढ़ गई है। एक ही विषय पर कितनों के उद्गार, एकत्र पढ़ने से यद्यपि आम्रेडन-सा होता है सही; तथापि वक्तव्य वस्तु पर इसके द्वारा अत्यधिक प्रकाश भी पड़ता है। कवि तो गागर में सागर भर देता है; लेकिन उसे यथावत रूप में प्रकट करने का काम भाष्यकारों या अनुवादकों का ही होता है। बृहदाकार इन तीनों पुस्तकों के अनुवाद की शैली सचमुच इसी भाव को लिए हुई है। जड़ बुद्धि वाले पाठक भी, इस अनुवाद के द्वारा, भर्तृ-हरि के यथार्थ आशय को समझ जायँगे। अनुवाद की भाषा टकसाली, सरस और बोधगम्य है।

मैंने पहले इन तीनों शतकों का पारायण, मूल मात्र का ही, किया था; किन्तु इस बार इस बृहत् अनुवाद को भी देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुझे इसमें, भर्तृहरि की भित्ति पर, नए नए बेल-बूटे देखने को मिले; और मूल में जो सहृदय-हृदय-संवेद्य व्यंग्य-निहित थे, उनके भी दर्शन अनायास होने लगे। मैं भावों की बाढ़ में बहने लगा; और वैद्यजी को हृदय से धन्य-वाद देने लगा। इसी समय मेरे एक मित्र ने, मेरे आगे अप्रेल की "सरस्वती" रख दी। वे बोले—"इस में नीतिशतक तथा वैरा-ग्यशतक की समालोचना निकली है, जिसे श्रीयुत मोहनलाल नेहरूजी ने लिखी है। मुझे तो अच्छी नहीं लगी, तुम भी पढ़ लो।" उसे पढ़ने पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा! नेहरू जी की रुचि और उनकी रसिकता पर मुझे तरस आने

लगा तथा उनकी प्रत्येक पंक्ति मेरे लिए कौतूहल की एक सामग्री हो गयी ! भला, इतनी सुन्दर पुस्तक पर ऐसा विचार उन से क्योंकर प्रकट किया गया !

यों तो उनकी छोटी-मोटी बहुत सी दलीलें हैं; लेकिन उन में दो ही दलीलें मुख्य हैं। एक तो स्त्रियों की निन्दा क्यों की गई है; और दूसरी मनगढ़न्त कहानियों को गढ़ कर इन का आकार वृहत् क्यों बनाया गया है। लेकिन ये दोनों ही बातें निःसार हैं; क्योंकि स्त्रियों की निन्दा करना यदि दोष है, तो इस दोष के भागी मूल पद्यकार ही हो सकते हैं, अनुवादक ने तो केवल मूलपद्य के आशय को ही पल्लवित किया है। स्त्रियों की निन्दा में तो संस्कृत के अनगिन्ती पद्य पड़े हुए हैं; उन्हें भला कोई कैसे हड़प लेगा ? देखिए, "मधु तिष्ठति वाचि योषितां, हृदि हालाहल-मेव केवलम्।" "विश्वासो नैव कर्तव्यः, स्त्रीषु राजकुलेषु च।" "गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ति नवं नवम्।" "सुवेशं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतं, योनिः क्लिद्यति नारीणाम्।" इत्यादि।

मतलब यह कि, जहाँ जैसी जरूरत पड़ती है, वहाँ वैसा लिखा ही जाता है। वैराग्यशतक में अगर कनक-कामिनी की निन्दा न की जायगी, तो इनकी निन्दा कहाँ होगी ? इस में तो इस भाव के श्लोकादि रहेंगे ही—त्वं किमिच्छसि मन्दात्मन् मूत्रागारस्य सेवनम्। लोहबद्धो विमुच्येत स्त्रीबद्धो न मुच्यते।" वेदान्त-ग्रन्थों और योगवासिष्ठ आदि में स्त्रियों के विरुद्ध कितना कहा गया है, इसका कुछ शुमार है ? वैराग्य में तो वे ही बातें



कही जायँगी, जिन से कनक, कामिनी और माया से घृणा हो जाय। औरतों की सिफ़ारिश के लिए कहीं वैराग्य का ग्रन्थ नहीं होता है! अगर इन ग्रन्थों में स्त्रियों की तारीफ़ की जाय, ख़ूबियाँ दिखायी जायँ, तो क्या वे ग्रन्थ वैराग्य के कहलायँगे? मेरे ख़याल से, तब तो वे ग्रन्थ "मायाशतक" या "स्त्रीशतक" हो जायँगे!

मैं स्त्री को मातृशक्ति मानताहूँ, पूज्यतम मानता और भी इसी प्रकार से बहुत कुछ मानताहूँ; लेकिन इससे क्या? एक ही स्त्री, कइयों की दृष्टि से, कई प्रकार की देखी जाती है—"कुणपः कामिनी मांसः योगिभिः कामिभिः श्वभिः।" योगी उसे शव समझते, कामी उपभोग की वस्तु समझते और कुत्ते मांस का लोथड़ा समझते हैं। समय, स्थान और व्यक्ति-विशेष के द्वारा ही निन्दा या प्रशंसा हुआ करती है। वैराग्यशतक और नीतिशतकमें स्त्रियोंके विरुद्ध कविताएँ तथा कथा-कहानियों को खुले-आम उद्धृत करने वाले इन्हीं वैद्यजी ने अपने "शृङ्गारशतक" के ३६ से ६७ पेजों तक में, स्त्रियोंकी तारीफ़ में, जमीन-आसमान के कुलावे मिला दिये हैं। वहाँ गुँजाइश थी; अतः वहाँ वैसा ही लिखना उपयुक्त था। लेकिन इसका मतलब यह कभी भी नहीं हो सकता कि, ऐसे अवसरों पर लेखक अपने स्वाधीन सिद्धान्तों को बेच डालता है। अनुवादक या भाष्यकारका कार्य बड़ा ही दुरूह होता है। जिसने इस ओर कभी हाथ बढ़ाया है, वही इसकी कठिनाइयों को जान सकता है। अवतुदा

करती वेर अपने सिद्धान्त को ताक़ पर रख देना पड़ता है; और, मूल लेखक के एक दम पाँव-पीछे चलना पड़ता है। वैद्यजी ने भी इसी नियम को अपनाया है, जो किसी भी तरह से बेजा नहीं कहा जा सकता; लेकिन नेहरूजी इस प्रणाली को क्यों दूषित बता रहे हैं, मुझे पता नहीं।

मनगढ़न्त कहानियोंके द्वारा अनुपयुक्त विस्तारवाली बात जो नेहरूजी कहते हैं, वह भी बे-सिर-पैरकी ही है। इन्होंने उस समालोचनामें लिखा है कि "बाबू हरिदासजी वैद्यने बहुतसी मनगढ़न्त कहानियाँ रची हैं।...मुझे ऐसा मालूम होता है कि, अनुवादक महोदयने अलिफ़लैलामें जो कहानी पढ़ी थी, वह आपने भर्तृहरि के सिर मढ़ दी!" यह भी कोई बात है ? मनगढ़न्त बातें तो स्वयं भर्तृहरिने ही रची हैं, और क्या, चारों वेद ही पहले मनगढ़न्त हैं ! वैद्यजीकी अनुवादवाली कहानियाँ यदि मनगढ़न्त भी हैं, तो इससे कौन-सी हानि है ? संस्कृत-साहित्यका गम्भीर अध्ययन करने वाला व्यक्ति वैद्यजीकी इन कहानियोंको कभी भी उनकी रचना माननेको तैयार नहीं हो सकता। दृष्टान्तसार आदि अनेक प्रामाणिक ग्रन्थोंके आधारपर ही वे कहानियाँ पल्लवित की गयी हैं। अलिफ़लैला या सहस्र-रजनी-चरित्रसे ही, यदि दृष्टान्तके तौरपर, कोई कहानी उद्धृत की गयी है, तो क्या वह दोषावह है ? मूलके भावको विशद करती वेर, दृष्टान्तके लिये, कहींसे अगर किसी कहानीका उद्धरण दोषकी कोटिमें स्थान पाता है, तो पहले प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथके ऊपर ही कोई



दफ़ा ठोकनी चाहिये। हाँ, यदि वे कहानियाँ समय, स्थान और क्रमके विरुद्ध लिखी जाती हैं, तो वे अवश्य दोषका स्थान पाती हैं; लेकिन इस शतकत्रयके अनुवादमें ऐसा तो कहीं मेरी नज़रमें नहीं आया।

नेहरूजी जिसे असंगत और दूषित बताते हैं, वह कहानी भी, प्राचीन ग्रन्थोंसे ही, वैराग्यशतकमें उद्धृत की गयी है—किसी 'औरतका पति, अपनी स्त्रीके सच्चे प्रेमकी परीक्षाके लिये, साँस खींचकर पड़ जाता है। वह अपनी स्त्रीसे पहले खीर बनानेको कह देता है। स्त्री पतिको, खानेके लिये, बुलाती है; लेकिन वह नहीं आता है। स्त्री जाकर देखती है, तो उसे मरा हुआ पाती है। वह मनमें कहती है—चलो, पहले खीर खालूँ। खीर खानेके बाद वह रोती-पीटती है।' नेहरूजीके ख़यालसे यह मनगढ़न्त है और ग़लत है। हिन्दूका मुर्दा घरमें पड़ा रहे और कोई खाये-पिये, यह नामुमकिन है। लेकिन मेरे ख़यालसे तो नेहरू-जीका, दुनियादारीका, अनुभव बहुत कम दीखता है। कोर्टमें रोज़ ही ऐसे मुकदमे दायर होते हैं; जिनसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि, लोग अपने ही नातेदारको मारकर सब कुछ करते हैं। फिर, केवल खीर खायी गयी, यह कौनसी बड़ी बात है? स्त्रियों के तो ये स्वभावजात दोप हैं—"असत्यं साहसं माया मात्सर्यं चातिलुब्धता, निर्गुणत्वमशौचत्वं स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः।"

इसी तरह रानी पिङ्गला और भर्तृहरिकी कहानी कल्पित बतायी गयी है। जनश्रुति भी तो कोई चीज़ है! मैंने जहाँ तक

पढ़ा है, मुझे भी ऐसी ही कहानी मिली है। इसी आशयका मुझे एक सवैया भी मिला है—"जिनको नित मैं चितसे चितवौं, तिनके मनमें यह आन रती ना। वह आन पुमानके संग सखी, वनिता मनमें गनिकागृह चीना।" इत्यादि।

नेहरूजीने यह भी लिखा है कि 'अगर असली ग्रन्थका ही अनुवाद होता, तो मुश्किलसे ५० पृष्ठकी जरूरत होती।······" पन्ने गिन-गिनकर अनुवाद करते, तो मैंने किसीको नहीं देखा है! षड्दर्शनोंके सूत्र कितने संक्षिप्त हैं; परन्तु उनके ऊपर जितनी टीका-टिप्पणियाँ तथा भाष्य-अनुवाद हुए हैं, वे सबके आगे हैं। अगर यह भी दोषकी कोटिमें ही है, तो आचार्य आनन्दवर्द्धनसे पूछें कि, "भम धम्मिअ···" आदि दो लाइनों वाले श्लोकोंका अर्थ पूरे दो सफ़ों में क्यों किया जाता है? मूल ऋग्वेदका मूल्य ४) रुपये है; लेकिन उसके सायण-भाष्यका मूल्य ६०) रुपयोंसे भी अधिक है! आपकी नीतिसे, तब तो, यह भाष्य भी दूषित हुआ! विद्या-गुणको दोष बतानेकी नई परिपाटी तो अच्छी रही! विद्या-व्यासङ्गमें स्वल्पता ही निकृष्ट समझी जाती है। कहा है—"अधिकस्याधिकं फलम्।" जितना गुड़ दीजियेगा, उतना मीठा होगा।

नेहरूजी ने वैरागी होने की भी बात कही है; लेकिन इसके पहले उन्हें यह जान लेना चाहिये कि, आध्यात्मिक जगत् में संस्कृत-साहित्य सब साहित्यों में उन्नत है। वैराग्योत्पादन करने के लिये संस्कृत में अनगिन्ती ग्रन्थ हैं। उन्हें पढ़ने से भी यदि

किसी को वैराग्य उत्पन्न न होगा, तो क्या वे इस अनुवाद के पढ़ने से ही वैरागी हो जायँगे? थोड़ी देर के लिये, यदि यह भी मान लिया जाय कि, इस अनुवाद के पढ़ने से बहुतों को वैराग्य उत्पन्न हो जायगा, तो इससे क्या अनर्थ होगा। भर्तृहरि ने "वैराग्य शतक" का प्रणयन भी तो इसी कामना को रख कर किया था?

वीतराग मनीषियों का निरादर करना, हमारा कर्त्तव्य नहीं हो सकता है। उनकी कृतियों की रक्षा हमें सब तरह से करनी चाहिये। इस हिन्दी के युग में, उनके ग्रन्थों का, बिना हिन्दी-अनुवाद हुए, उनका आदर नहीं हो सकता है। हिन्दी-साहित्य का भाण्डार एक तो यों ही इतना श्रीहीन है कि, विश्व के उन्नत साहित्य में इसका कोई स्थान ही नहीं दीखता; फिर भी इसमें जो दस-पाँच अच्छे ग्रंथ निकले हैं, उनके ऊपर इस तरह छींटा मारना अच्छा नहीं।

इसमें एक जगह अँग्रेजी सरकार और उसके ऑफिसर लार्ड चेम्सफोर्ड एवं मिस्टर गोखले वगैरह की कुछ तारीफ लिखी गई है, जो कोई अपराध नहीं कहा जा सकता। "शत्रोरपि गुणा वाच्या, दोषा वाच्या गुरोरपि" के अनुसार, सच्ची तारीफ सबकी करनी चाहिये। अँग्रेजों में जितने गुण हैं, उतने गुण देशी राजाओं में, लेखक को नहीं मिले होंगे। सत्यता के परमोपासक महात्मा गांधीजी ने भी तो, कई स्थलों पर, कई बार अँग्रेजों के वास्तविक गुणों की प्रशंसा की है। शत्रु के गुणों की प्रशंसा करना पाप नहीं, यदि उनमें यथार्थता हो।

हिन्दी की सुप्रतिष्ठित मासिक पत्रिका "माधुरी" में, श्रीमान् श्यामापति जी पाण्डेय (एम० ए०,) महोदय लिखते हैं:—

भर्तृहरि के तीनों शतक—शृङ्गार, नीति तथा वैराग्य—संस्कृत-साहित्य के अमूल्य ग्रन्थ होते हुए भी हिन्दी में सुलभ नहीं थे। संस्कृत-साहित्य में इन शतकों का विशेष स्थान है। वैद्य हरिदासजी ने मूल-संस्कृत के साथ हिन्दी-गद्य-पद्य तथा अँगरेजी में इनका सुन्दर अनुवाद किया है। अनुवाद के साथ-ही-साथ हिन्दी, उर्दू, संस्कृत तथा अँगरेजी के अन्य विद्वानों की उक्तियाँ भी उद्धृत की गयी हैं। साथ में संस्कृत-पद्यों से सम्बन्ध रखने वाले मनोहर चित्र और अनुवादक की अपनी अनुभूत तथा लोकप्रसिद्ध कहानियाँ भी दी हुई हैं। कहने का सारांश यह है कि शतक सर्वांग रूप से सुन्दर, आकर्षक, रोचक और बोधगम्य बनाये गये हैं।

किसी पत्रिका में एक सज्जन ने शृंगार-शतक पर कुछ आक्षेप किये थे। वह आक्षेप वास्तव में मूल-ग्रन्थ पर ही समझा जाना चाहिये, क्योंकि अनुवादक ने जो कुछ भी किया है, वह संस्कृत के मूल-पद्यों के आधार पर ही। लेकिन हमारे विचार से मूल-ग्रन्थ पर भी आक्षेप करना उचित नहीं है। मनुष्य-जीवन के लिए ब्रह्मचर्य के अतिरिक्त गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास यह तीन अवस्थाएँ हमारे धर्माचार्यों द्वारा निर्द्धारित की गयी हैं। इन तीनों शतकों का भी क्रमशः इन्हीं तीनों आश्रमों से सम्बन्ध है—



कहना नहीं होगा कि इन तीनों आश्रमों के साथ लगे हुए समस्त नियमों का पूर्ण रूप से पालन ही जीवन की सार्थकता है। इस प्रकार गार्हस्थ्य-जीवन के लिए शृंगार-रसयुक्त रचनाओं का प्रादुर्भाव होना किसी प्रकार का पाप नहीं है। इसी अवस्था में वैराग्य अथवा जीवन में शुष्कता की सृष्टि, निर्द्धारित नियमों का उल्लंघन और एक प्रकार से सामाजिक विपर्यय है। फिर हमारे यहाँ ही नहीं, समस्त संसार में कौन-सा ऐसा साहित्य है जिसमें शृंगार-रस की रचनाएँ नहीं भरी पड़ी हैं? यह भी जीवन का एक अंग है और इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

प्रसंगवश यहाँ एक बात पर और लिखना पड़ता है। किसी-किसी ने अनुवादक पर स्त्री-निन्दक होने का भी ज़बर्दस्ती ही दोषारोप किया है। परन्तु यदि वे शृङ्गार-शतक के पृष्ठ २८-६२ तक पढ़ने का कष्ट स्वीकार करें, तो उन्हें मालूम होगा कि अनुवादक स्त्री निन्दक नहीं, प्रत्युत स्त्री-जाति के प्रशंसक ही हैं। हमारी समझ में भर्तृहरि के शृङ्गारशतक के नाम से जैसे लोग अश्लीलता की कल्पना करते हैं, ठीक वैसे ही वैराग्यशतक में स्त्री-निन्दा की अनुभूति करने लगते हैं, पर उन्हें शतक-लेखक भर्तृहरिजी के दृष्टि-बिन्दु के दोनों सीमान्तों को सब से पहले ध्यान में रखना और तब ग्रन्थों पर विवेचना करनी चाहिए। ऐसी दशा में अनुवादक का भी यथास्थान स्त्री-जाति का प्रशंसक अथवा निन्दक बना रहना स्वाभाविक है। सत्य तो यह है कि हम आदर्शों की उज्ज्वल झाँकी में इतना अधिक चौंधिया

जाते हैं कि, यथार्थ को अपनी मूर्खतावश अवमाननीय समझ बैठते हैं। मनोवैज्ञानिक विवेचना की यह शैली दूषित है।

जहाँ तक अनुवाद का सम्बन्ध है, अनुवादक महोदय को नीति-शतक में अन्य शतकों की अपेक्षा कुछ अधिक सफलता मिली है। हिन्दी-गद्यानुवाद सर्वत्र ठीक और बोध-गम्य है··· ·····················।

·········ये तीनों शतक बहुत ही सुन्दर और संग्रहणीय हैं। शृंगारशतक नयनाभिराम चित्रों से सुसज्जित, हिन्दी गद्य-पद्य और अँगरेजी-अनुवाद के साथ अनूठा ग्रन्थ बन गया है। अन्य कवियों की उद्धृत उत्कृष्ट रचनाएँ तो जैसे अँगूठी में नगीने का काम दे रही हैं। यही बात नीति और वैराग्यशतक के सम्बन्ध में भी लागू है। इन ग्रन्थों की लोकप्रियता का यही प्रमाण है, कि इतने ही दिनों में शृंगार-शतक के दो और नीति तथा वैराग्य-शतक के तीन-तीन संस्करण हो चुके हैं।

तीनों ही शतक प्रत्येक व्यक्ति के लिए बुद्धिपूर्वक पठनीय तथा संग्रहणीय हैं। छपाई-सफ़ाई, चित्र तथा सामग्री आदि पर ध्यान देने से इन शतकों का मूल्य भी ठीक जान पड़ता है।

'वर्त्तमान' की राय—

अनेक ग्रन्थों के रचयिता, सुप्रसिद्ध कानपुरी "प्रताप" के जॉइन्ट ऐडीटर और वर्त्तमान के सम्पादक और सर्वस्व पण्डितवर रमाशङ्करजी अवस्थी महोदय लिखते हैं:—



संसार की हर एक भाषा में तीन हिस्से उपन्यास और एक हिस्से में शेष अन्य विषयों की पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। लेकिन जब भाषा के साहित्य की सम्पन्नता पर विचार किया जाता है, तब उन उपन्यासों की संख्या देख कर यह नहीं कह दिया जाता कि, अमुक भाषा समुन्नत हो गई है। धर्म, नीति, दर्शन, विज्ञान, इतिहास, अनुशीलन आदि-आदि विषयों पर लिखी गई मौलिक पुस्तकों के आधार पर ही प्रायः यह कहा जाता है कि, उक्त भाषा में प्रत्येक विषय का पुष्ट साहित्य प्रस्तुत हो चुका है।

जब ऐसा ही प्रश्न अपनी मातृ-भाषा हिन्दी के सम्बन्ध में आ उपस्थित होता है, तब हम सकपका उठते हैं, क्योंकि इनी-गिनी ही पुस्तकें अभी तक प्रकाशित हो पाईं, जिन को हमारे भाषा-साहित्य में आदर का स्थान दिया जा सके, सो भी इन पुस्तकों में देव-वाणी संस्कृत से अनुवादित पुस्तकों का ही बाहुल्य है। जिन को हम निश्चय ही अपनी परम्परागत विभूति मानते हैं। यदि संस्कृत-साहित्य से अनुवादित की हुई पुस्तकों को हम हिन्दी-साहित्य का अंग न मानें तो, हिन्दी का वर्त्तमान वैभव और भी अधिक आभाहीन भाषित होने लग जाये।

अतः हिन्दी के जिन प्रेमी सेवकों ने संस्कृत-साहित्य-से महोदधि के अनमोल रत्न संग्रह करके हिन्दी-मन्दिर को सजाया है, उनका उपकार कभी भुलाया नहीं जा सकता। संस्कृत के प्रचलित साहित्य में श्री भर्तृहरि के तीनों शतक बहुत ही आदरणीय स्थान

रखते हैं। इन तीनों शतकों का जैसा सरल, सुबोध, विस्तृत, क्षेपक-सहित, सचित्र अनुवाद बाबू हरिदासजी वैद्य ने किया है, वैसा परिश्रम अन्य लेखकों ने किसी ग्रन्थ के लिखने में किया होगा, उसका हमें आज तक परिचय नहीं मिला है। अनेक शास्त्रों, पंचतन्त्र, हितोपदेश तथा फ़ारसी एवं अँगरेजी भाषा के ग्रन्थों में लिखे गये कथानकों को सजीव अर्थों में समझाने का अद्वितीय श्रेय बा० हरिदासजी ने ही कमाया है। साथ-साथ प्रत्येक श्लोक का अँग्रेज़ी भाषा में उल्था करके, अँग्रेज़ीदाँ लोगों को भी भर्तृहरि के अमूल्य वचनों का ज्ञान प्राप्त कर सकने की सुविधा कर दी है।

संस्कृत के बहुतेरे प्रसिद्ध-ग्रन्थों के अनुवाद भिन्न-भिन्न लेखकों द्वारा हो चुके और भिन्न-भिन्न प्रकाशकों ने उन्हें प्रकाशित करके काफ़ी पैसा बटोरा, लेकिन भर्तृहरि शतक के इस अनुवाद के बाद, आज दिन तक किसी लेखक या प्रकाशक का इतना साहस नहीं पड़ा कि, इन शतकों का अन्य कोई अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित होता। एक तो यह अनुवाद इतना रोचक एवं सरल हुआ है कि, हर एक लेखक इतनी सुबोधता ला ही नहीं सकता है, फिर छपाई और चित्रता आदि ऐसे ढँग से की गई है कि, साधारण श्रेणी के प्रकाशक की सामर्थ्य के बाहर की बात हो गई है। इतना विस्तृत अनुवाद कर लेना हँसी-ठट्ठा नहीं होता है। न जाने कितने ग्रन्थों से संग्रह करके, अनेक कथानकों-द्वारा प्रत्येक बात को सुलझा कर समझाया गया है और कितनी सावधानी से अर्थों



की मर्यादा को निभाया गया है। अक्सर बड़े-बड़े प्रकाशक यह कहते हुए सुने गए हैं कि, भर्तृहरि के शतकों पर तो बाबू हरिदास जी वैद्य की आलमगीरी छाप है।

उनका यह कथन असत्य नहीं है, हरिदासजी ने जान लड़ा कर शतकों का अनुवाद किया है। अपने जीवन की अनेक घटनाओं और अपने अनुभवों को भी चित्रित करके, वैद्यजी ने ग्रन्थ को अधिक उपयोगी बना दिया है। स्वयं प्रकाशक होने के कारण, जिल्दों की छपाई-सफ़ाई का रूप-रंग भी एक नम्बर उभरा है। यही कारण है कि, दूसरों की हिम्मत नहीं पड़ती कि, दूसरे अनुवाद लिखवा कर छापें, इनके आगे बिकें या न बिकें। मुफ्त में पैसा बर्बाद हुआ और ऊपर से समालोचकों ने खिल्ली उड़ाई।

बड़े-बड़े पुस्तकालयों और सुपठित परिवारों की निजी लाइब्रेरियों में रखने योग्य, सुनहले अक्षरों से युक्त, बहुत सुन्दर जिल्दों में ये तीनों शतक दूसरी तथा तीसरी बार छप कर प्रकाशित हो चुके हैं। जिनको उत्तम-उत्तम ग्रन्थों के संग्रह करने का शौक है, वे नये संस्करणों को देख कर और भी अधिक सन्तुष्ट होंगे।

'क्षत्रिय-सेवक' की राय—

हिन्दी लेखकों और पुस्तक-प्रकाशकों में बाबू हरिदास जी वैद्य का एक विशेष स्थान है। आपने हिन्दी के लिये जो काम किया है, वह सचमुच आदरणीय और प्रशंसनीय है। वैद्यकविषयक 'चिकित्सा चन्द्रोदय' के सात भाग लिख कर आपने

हिन्दी को एक बहुमूल्य ग्रन्थ भेंट किया है, जिसका आगे चल कर बड़ा आदर होगा। आपकी 'स्वास्थ्य रक्षा' अपने विषय की एक ही पुस्तक है। 'अँग्रेजी शिक्षा' के चार-पाँच भाग और 'बँगला शिक्षा' के चार भाग लिख कर आपने तद्विषयक ज्ञान हिन्दी वालों को बहुत ही सुविधाजनक कर दिया है। महाराज भर्तृहरि के तीनों शतकों का हिन्दी-अनुवाद कर के भी आपने बड़ा यश अर्जन किया है। इस प्रकार आपने हिन्दी की बड़ी भारी सेवा की है। विशेषता यह है कि, अधिकांश हिन्दी-लेखकों की तरह पुस्तक लिख कर आप स्वयं दरिद्र नहीं रहे हैं। आपने अपनी पुस्तकों को स्वयं प्रकाशित करके, उनके द्वारा यथेष्ट रुपया भी पैदा किया है। आपकी एक-एक पुस्तक के तीन-तीन चार-चार ही नहीं, दस-दस संस्करण हो चुके हैं। इसी से पाठक अनुमान कर सकते हैं कि, आपने साहित्य सेवा के साथ-साथ कितना धन और यश अर्जन किया होगा। इन सब के लिये हम हृदय से वैद्य जी को बधाई देते हैं और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि, वह आपको वृद्धावस्था में आरोग्य प्रदान कर के आप को शतंजीवि बनावे। हमें वैद्य जी से अभी बहुत आशाएँ हैं। हम समझते हैं कि, वैद्य जी के द्वारा हिन्दी का कोई और भी बड़ा हित साधन होगा। अस्तु

महाराज भर्तृहरि ने नीति, शृङ्गार और वैराग्य नाम से तीन प्रसिद्ध शतक लिखे हैं। संस्कृत भाषा में इन शतकों को ऊँची दृष्टि से देखा जाता है और संस्कृत के विद्वान् उनका बड़ा आदर

करते हैं। हिन्दी में भी इन शतकों के कई अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। पर उपर्युक्त वैद्य जी ने इन शतकों के जो संस्करण निकाले हैं, वे अनूठे हैं। हिन्दी में उनके जोड़ की पुस्तकें बहुत कम हैं।

ये तीनों ग्रन्थ प्रत्येक गृहस्थ के घर में रहने आवश्यक हैं। मानव जीवन को सफल बनाने में ये ग्रन्थ-रत्न अपूर्व सहायक होंगे। नीति शतक में नित्य व्यवहारोपयोगी सभी नीतियों का विस्तृत दिग्दर्शन करा दिया गया है। इसमें ११ प्रकरण हैं। प्रथम प्रकरण में भर्तृहरि महाराज की जीवनी दे दी है। बाकी १० में—अज्ञ-प्रशंसा, विद्वानों की प्रशंसा, मानशौर्य-प्रशंसा, धन-महिमा, दुर्जनों की निन्दा, सज्जन-प्रशंसा, परोपकारियों की प्रशंसा, धर्म-प्रशंसा, देव-प्रशंसा, कर्म-प्रशंसा आदि का समावेश है। जगह-जगह पर विभिन्न कथाओं को देने से पुस्तक अत्यन्त रोचक हो गई है।

उदाहरणार्थ भर्तृहरि जी का श्लोकः—

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा, विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः।
विशेषतः सर्वविदां समाजे, विभूषणं मौनमपण्डितानाम् ॥७॥

भावार्थ—मूर्खों को अपनी मूर्खता छिपाने के लिये ब्रह्मा ने "मौन धारण करना" अच्छा उपाय बता दिया है और वह उनके अधीन कर दिया है। मौन मूर्खता का ढक्कन है; इतना ही नहीं, वह विद्वानों की मण्डली में उनका आभूषण भी है।

फिर उपरोक्त श्लोक और भावार्थ की विस्तृत व्याख्या दी है, जिसमें कई कवियों, शायरों की उसी विषय की कविता, शैर और नीति-वचन कहे हैं। जैसे अँग्रेजी कहावत हैं—मौन बुद्धिमानों का गुण और मूर्खों की बुद्धिमत्ता है।'

"चुप रहने की आदत सीखो और उसे अपना मॉटो (आदर्श) बनाओ।"

अब 'शृङ्गार शतक' के विषय देखिये। नाम से तो इसका मुख्य विषय शृङ्गार ही झलकता है। लेकिन इसमें शृङ्गार, वैराग्य और नीति आदि तीनों विषयों का समावेश है।

"वैराग्य शतक" को लीजिये—इसमें संस्कृत श्लोकों के साथ ही श्रीयुत प्रतापसिंह जू की चित्ताकर्पिणी कविताएँ और भी जोड़ दी हैं। इसे पढ़ कर मनुष्य को वैराग्य हो आता है। प्रत्येक आध्यात्म-प्रेमी को इसकी एक प्रति जरूर रखनी चाहिये।

इस प्रकार इन पुस्तकों में मूल संस्कृत श्लोक, हिन्दी-भावार्थ, व्याख्या, अँगरेजी-भाषानुवाद, वैद्यजी (लेखक या अनुवादक) के ५० वर्षों के निजी अनुभव, महाकवि ग़ालिब, उस्ताद जौक़, दाग़, तुलसीदास प्रभृति विद्वानों की कविताएँ, शैर और शायरी और उनके अर्थ तथा व्याख्या और गुलिस्ताँ, महाभारत, कुमार सम्भव, किरातार्जुनीय, रघुवंश, हितोपदेश आदि तथा अन्य ग्रन्थों के उपयोगी श्लोक, काव्य, कविताएँ और कहानियों के उद्धरण दिये गये हैं। तीनों शतक अलग-अलग मनोमोहक मजबूत सुनहरी

जिल्द-युक्त हैं। प्रत्येक में क्रमशः ५०० पृष्ठ २७ चित्र, ४७५ पृष्ठ २६ चित्र और ५५० पृष्ठ ३८ चित्र हैं।

'सेहली' की राय—

हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान्, आयुर्वेद-विशारद श्रीमान् पण्डित महेन्द्रनाथजी पाण्डेय महोदय "सहेली" में लिखते हैं:—

संस्कृत-साहित्य में भर्तृहरि का एक ख़ास स्थान है। विरला ही कोई संस्कृतज्ञ होगा, जिसकी निगाहों से भर्तृहरि के श्लोक न गुज़रे हों। उनकी विद्वत्ता के कायल सभी हैं और उनके श्लोक साहित्यिक दृष्टि से बड़े ही आदरणीय समझे जाते हैं। उन्होंने शृंगार शतक, नीति शतक और वैराग्य शतक नामक ग्रन्थ में केवल तीन सौ श्लोक लिख कर साहित्य-संसार में अपने को अमर कर लिया। एक-एक श्लोक अमूल्य है, जिस विषय को आपने लिखा है उसे पूर्णता को पहुँचा दिया है। विश्व के उन्नत साहित्य में ये ग्रन्थ त्रय सगर्व अपना मस्तक ऊँचा करके भारत-वर्ष की मान-रक्षा कर सकते हैं। संसार की विनश्वरता और माया-जाल की बहुरूपता का वास्तविक, किन्तु शिक्षा-पूर्ण वर्णन पढ़ते ही बनता है।

इस शतक त्रय के कई स्थानों से अनुवाद प्रकाशित हुए और शायद अभी हों भी। एक अनुवाद हरिदास एण्ड कम्पनी, गंगा भवन, मथुरा से प्रकाशित हुआ है। जितने अनुवाद मैंने देखे हैं, यह उन में सब से अच्छा है। ऊपर श्लोक, फिर उसका

अर्थ, मूल श्लोक से समता रखने वाली अन्य कवियों की कवितायें, अन्त में समश्लोकी पद्यमय अनुवाद और अंग्रेज़ी-अनुवाद है। पढ़ते समय अकथनीय स्वर्गीय आनन्द मिलता है और ऐसा जान पड़ता है, मानों सुभाषितों की पावन गंगा में अवगाहन कर शरीर और मन पवित्र हो गया। थोड़ी देर को मनुष्य संसार के क्रोध, मोह, लोभ आदि से मुक्त होकर स्वतंत्र स्वर्गीय उद्यान में विचरण करने लगता है। उसमें से कुछ अंश हम पाठकों के मनोरंजन के लिए नीचे उद्धृत करते हैं। देखिये—

केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं, हारा न चन्द्रोज्ज्वला।
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्द्धजाः॥
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते।
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं, वाग्भूषणं भूषणम्॥

अर्थ—बाजूबन्द, चन्द्रमा के समान उज्ज्वल मोतियों के हार, स्नान, चन्दनादि के लेपन, फूलों के शृंगार और सँवारे हुए बालों से पुरुष की शोभा नहीं होती; पुरुष की शोभा केवल संस्कार की हुई सुन्दर वाणी से है, क्योंकि और सब भूषण निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं किन्तु वाणी-रूपी भूषण सदा वर्तमान रहता है।

समश्लोकी अनुवाद

कंकन छवि नहिं देत, हार उज्ज्वल नहिं सोहैं।
कर उबटन असनान, कुसुम मन को नहिं मोहैं॥

केतिक कसे संमार, नाँहि शोभा दें ऐसी।
वाणी मनहर लसे, एक सुन्दर मुख जैसी॥
जग और अभूषण सब गिरें, टूटें विनसें हैं सही।
पै वाणी जो है एक रस, शुभ भूषण विगड़े नहीं॥

नीति शतक, १६

यदि भूषण-प्रिय महिलायें भर्तृहरि के बचनों पर ध्यान दें तो कितना अच्छा हो।

शील की प्रशंसा में कवि कहता है—

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो,
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः।
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता,
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परम भूषणम्॥

अर्थ—ऐश्वर्य का भूषण सज्जनता, शूरता का भूषण अभिमान-रहित बात कहना, ज्ञान का भूषण शान्ति, शास्त्र देखने का भूषण विनय, धन का भूषण सुपात्र को दान देना, तप का भूषण क्रोध-हीनता, प्रभुता का भूषण क्षमा और धर्म का भूषण निश्छलता है। किन्तु अन्य सब गुणों का कारण और सर्वोत्तम भूषण शील है।

शंकराचार्यकृत प्रश्नोत्तर माला में लिखा है—

किम्भूषणादभूषणमस्ति शीलं, तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धम्।
किमत्र हेयं कनकं च कान्ता, श्राव्यं सदा किं गुरुवेद वाक्यम्॥

किसी कवि ने कहा है—

गिरिते गिरि परवो भलो, भलो पकरिवो नाग।
अग्नि माँहि जरिवो भलो, बुरो शील को त्याग॥

समश्लोकी अनुवाद, कुण्डलिया—

मण्डन है ऐश्वर्य को, सज्जनता सनमान।
वाणी सज्जन शूरता, मण्डन धन को दान॥
मण्डन धन को दान, ज्ञान-मण्डन इन्द्रिय-दम।
तप-मण्डन अक्रोध, विनय-मण्डन सोहत सम॥
प्रभुता-मण्डन क्षमा, धर्म-मण्डन छल-खण्डन।
सबहिन में सरदार, शीलता सब को मण्डन॥

नीति-शतक, ८२

और उद्धरण देने को जी चाह रहा है; किन्तु विस्तार-भय से हम ऐसा करने में असमर्थ हैं। अर्थ के बाद प्रायः प्रत्येक श्लोक का भावार्थ और व्याख्या दी हुई है। कहीं-कहीं विषय को अधिक स्पष्ट और रोचक बनाने के लिये, कुछ कथाएँ भी जोड़ी गई हैं, जिनको हम स्थानाभाव से नहीं दे सकते। प्रत्येक श्लोक का अङ्गरेज़ी-अनुवाद भी दिया गया है, जो सरल और स्पष्ट है। आगे हम वैराग्य शतक और शृंगार शतक के दो एक श्लोक उद्धृत करते हैं, जिसमें पाठक स्वयं पुस्तक की उपयोगिता का अन्दाज़ा लगा सकें। इन श्लोकों के अर्थ और व्याख्या आदि में



आये हुये पद्यों को भी हम उद्धृत करना चाहते हैं। आशा है कविता-प्रेमी पाठकों का उससे विशेष मनोरंजन होगा—

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वाऽपि विषया,
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून्।
व्रजन्तः स्वातंन्त्र्यादतुलितपरितापाय मनसः,
स्वयं त्यक्त्वा ह्येते शमसुखमनन्तं विदधाति॥

वैराग्य शतक, १६

अर्थ—विषयों को हम चाहे जितने दिनों तक क्यों न भोगें, एक दिन वे निश्चय ही हम से अलग हो जायँगे। तब मनुष्य उन्हें स्वयं अपनी इच्छा से ही क्यों न छोड़ दे? इस जुदाई में क्या फ़र्क़ है? अगर वह न छोड़ेगा तो वे छोड़ देंगे। जब वे स्वयं मनुष्य को छोड़ेंगे, तब उसे बड़ा दुःख और मनःक्लेश होगा। अगर मनुष्य उन्हें स्वयं छोड़ देगा, तो उसे अनन्त सुख और शान्ति प्राप्त होगी।

शैया शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं तरूणां त्वचः,
सारंगाः सुहृदो ननु क्षितिरुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः॥
येषां निर्झरम्बुपानमुचितं रत्यैच विद्यांगना।
मन्ये ते परमेश्वराः शिरसियैर्बद्धो न सेवाञ्जलिः॥

अर्थ—मैं उनको परमेश्वर समझता हूँ जो किसी के सामने मस्तक नहीं नवाते, जो पर्वत की शिला को ही अपनी शैया समझते हैं, जो गुफा को ही अपना घर मानते हैं, जो वृक्षों की छालों

को ही अपने वस्त्र और जंगली हिरणों को ही अपने मित्र समझते हैं, वृक्षों के कोमल फलों से ही उदर की अग्नि को शान्त करते हैं, जो कुदरती झरनों का जल पीते हैं, और जो विद्या को ही अपनी प्राणप्यारी समझते हैं।

उस्ताद ज़ौक ने कहा है—

जिस इन्साँ को, सगे दुनिया न पाया।
फ़रिश्ता उसका, हम पाया न पाया॥

क्या ख़ूब कहा है—जो मनुष्य संसार का दास नहीं, वह देवताओं से कहीं ऊँचा है।

महाकवि ग़ालिब कहते हैं—

बे तलब दें तो मज़ा उसमें, सिवा मिलता है।
वह गदा, जिसका न हो ख़ूये सवाल अच्छा॥

विना माँगे मिल जाने में बड़ा आनन्द है। फ़क़ीर वही अच्छा, जिसमें माँगने की आदत न हो।

और भी कहा है—

दस्ते सवाल, सैकड़ों ऐबों का ऐब है।
जिस दस्त में यह ऐब नहीं, वह दस्ते ग़ैब है॥

कबीर साहब ने भी कहा है—

अनमाँग्या उत्तम कह्यो, मध्यम माँगि जो लेय।
कहे "कबीर" निकृष्ट सो, पर-घर घरना देय॥

उत्तम भीख जो अजगरी, सुनि लीजो निज बैन।
कहै "कबीर" ताके गहे, महा परम सुख चैन॥

समश्लोकी अनुवाद—

बसै गुहा गिरि शुचित शिला शैया मन मानी।
वृक्ष-वकल के वसन, स्वच्छ सुरसरि को पानी॥
बन-मृग जिनके मित्र, वृक्ष-फल भोजन जिनके।
विद्या जिनकी नारि, नहीं सुरपति सम तिनके॥
ते लगत ईश-सम मनुज मोहि, तनु शुचि ऐसे जग भये।
जे पर-सेवा के काज को, हाथ नाहिं जोरत नये॥

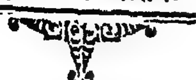
वैराग्य, ६४

................पुस्तक की छपाई सफ़ाई जिल्द आकर्षक है। तीनों शतक ऐलबम की तरह, भावमय सुन्दर चित्रों से सुसज्जित हैं। पुस्तक विद्या-व्यसनी लोगों को अवश्य संग्रहणीय है।

'कर्मवीर' की राय—

हिन्दी के धुरन्धर विद्वान्, हिन्दी केशरी आदि प्रसिद्ध पत्रों के भू० पू० सम्पादक और कर्मवीर के वर्तमान सम्पादक पण्डितवर श्रीमान् माखनलालजी चतुर्वेदी महोदय लिखते हैं:—

हरिदास कम्पनी के स्वामी श्री० हरिदास जी वैद्य, कलकत्ता से पुस्तक-प्रकाशन का काम करते हैं। आज तक हिन्दी में उन्होंने कितनी ही उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। एक समय तो, हिन्दी में उनके द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की धूम थी। इस समय बाबू



हरिदास जी वैद्य ने भर्तृहरि-कृत नीति शतक, वैराग्य और शृंगार शतक का अनुवाद किया है। भर्तृहरि की ये कृतियाँ भारतीय साहित्य में अपना ऊँचा स्थान रखती हैं। भारतीय प्राचीन साहित्य का प्रत्येक पाठक, अपने ज्ञान में, भर्तृहरि की वाणी के बिना, कमी-सी अनुभव करता है। श्री० हरिदास जी ने पुस्तकों का अनुवाद, बड़े ही अच्छे ढङ्ग से किया है। यही कारण है कि इसके दो खण्डों का प्रथम संस्करण शीघ्र बिक गया। शृङ्गार, वैराग्य और नीति शतकों की तीन मोटी-मोटी सुवर्ण वर्णाङ्कित बँधी हुई जिल्दें अवश्य ही विद्यालयों, पाठकों तथा धनियों के पुस्तकालयों की शोभा हैं। इस पुस्तक में, मूल श्लोक, उसका अनुवाद, फिर उस पर भाष्य तथा प्रायः श्लोकों के भावों से मिलते-जुलते हिन्दी-उर्दू और अँग्रेजी के गद्य-पद्य के उदाहरण दिये गये हैं। नीति शतक की चित्र-संख्या २६, पृष्ठ-संख्या ४८६ और मूल्य अजिल्द का ४।) और सजिल्द का ५) है। इसमें हिन्दी की, तरह-तरह की गम्भीर और बाजारू कविताओं का भारी संग्रह अनायास ही मिल जाता है। इन कविताओं को, लेखक महाशय ने, भर्तृहरिजी के मूल विषय को समझाने के लिये, पुस्तक में दे दिया है। किन्तु मोटी पुस्तक-जैसा मोटा और सुनहली जिल्द-जैसा सुनहला गर्व, लेखक अपने उद्योग का नहीं करते। शृङ्गार शतक की भूमिका में श्री० हरिदास जी ने लिखा है—"यह कह देने में हर्ज नहीं कि, मैं अपनी सभी पुस्तकें, द्वितीय और तृतीय श्रेणी के सज्जनों के लिये लिखा करता हूँ; क्योकि मैं भी उन्हीं श्रेणियों में हूँ।" किन्तु



जिस व्यक्ति को अपनी सीमाओं का इस तरह विवेक होता है, उस सज्जन को तीसरी श्रेणी में कौन मानेगा ? अस्तु, हम 'कर्मवीर' के पाठकों से सिफ़ारिश करेंगे कि, ये जिल्दें, शहरों और गाँवों के ज्ञान के प्यासो के लिये उपयोगी हैं।

"प्रेमा" की राय—

अनेक ग्रन्थों के जन्मदाता, हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ और ख्यातिनामा लेखक मुन्शी ज़हूरबख्श जी साहब "प्रेमा" में लिखते हैं—

भारतवर्ष में क्या शिक्षित और क्या अशिक्षित शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा, जो पुण्य-चरित्र महाराजा भर्तृहरि का नाम न जानता हो । लगभग दो हज़ार वर्ष हुए, वह भारत के एक अत्यन्त प्रतापशाली नरेश थे और मालवा प्रान्त के उज्जैन नगर में उनकी राजधानी थी । कहते हैं कि, महाराज गुणों के असीम भण्डार थे। बड़े ही वीर, पराक्रमी, साहसी, उदार, दानी, दयालु, गुण-ग्राहक और अत्यन्त प्रजा-पालक थे। उनके समय में प्रजा को रामराज्य का सुख प्राप्त था। सम्पूर्ण राज्य उनका एक-निष्ठ भक्त था। लोग उन्हें देवता के समान मानने लगे थे और सम्भवतः उनकी इस असीम श्रद्धा-भक्ति का ही यह परिणाम है कि, आज तक असंख्य मनुष्य महाराज को प्रातःस्मरणीय ही नहीं, अमर तक मानते हैं। उनका यह विश्वास-सा हो गया है कि, महाराज की साधना अब तक जारी है, और वह कभी-कभी

अज्ञात रूप में वन-प्रान्तों से निकल कर अपनी दीन-हीन प्रजा को दर्शन दे जाते हैं।

जो हो, महाराज भर्तृहरि जैसे कर्त्तव्य-परायण थे, वैसे ही विद्या-प्रेमी भी थे। उनकी राज-सभा नामी गिरामी पण्डितों, विद्वानों और कवियों से सुशोभित हुआ करती थी। महाराज स्वयं पूर्ण पण्डित, विद्वान् और कवि थे। उनकी प्रतिभा सर्वतो-मुखी थी। उन्होंने समय-समय पर शृंगार-शतक, नीति-शतक और वैराग्य-शतक नामक तीन ग्रन्थों की रचना की थी। इन शतकों का प्रत्येक श्लोक अत्यन्त हृदय-ग्राही, कवित्व-पूर्ण और अनुपम है। सच तो यह है कि, महाराज इन ग्रन्थों की रचना कर वास्तव में अमरत्व लाभ कर गए हैं। जब तक साहित्य की सृष्टि है, तब तक इन ग्रन्थों का महत्त्व अक्षुण्ण रहेगा, और लोग आदर-पूर्वक महाराज का नाम लेते रहेंगे।

यहाँ हम 'शृंगार-शतक' का थोड़ा सा परिचय देने की चेष्टा करेंगे। इस ग्रन्थ में एक सौ तीन श्लोक हैं; जिनमें मानुषी शृंगार का वर्णन किया गया है। यह वर्णन कहीं स्थूल सम्भोगा-त्मक है, कहीं दिव्यादिव्य है, और कहीं मनुष्य-जीवन को अनन्त की ओर ले जाने वाला भी है। जहाँ कवि महोदय ने नारी-प्रेम की उज्ज्वलता लोगों के सामने स्पष्ट की है, वहाँ उन्होंने उसकी श्यामता भी भली भाँति उघार कर रख दी है और विषयान्ध लोगों से, उससे दूर रहने के लिए, पुरजोश अपील भी की है।



इसके अलावा नारी के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन, नर-हृदय पर पड़ने वाला उसका प्रभाव, भिन्न-भिन्न ऋतुओं का वर्णन भी इस ग्रन्थ-रत्न के प्रधान अङ्ग हैं। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में सर्वापेक्षा प्रशंसा की बात यह है कि, इसका प्रत्येक श्लोक रस से सरावोर है और उसके पाठ से हृदय को अतीव आनन्द प्राप्त होता है। अपने कथन को स्पष्ट करने के लिए, हम पाठकों की सेवा में दो-चार नमूने पेश करेंगे..................।

बस! इतने उदाहरणों से ही रसज्ञ पाठक यह समझ गए होंगे कि, महाराजा भर्तृहरि का यह शतक शृंगार-रस का कैसा अनोखा पदार्थ है। सौभाग्य से हिन्दी में इस शतक का एक बहुत ही सुन्दर अनुवाद भी हो गया है। अनुवादक हैं, हिन्दी के पुराने लेखक बाबू हरिदासजी वैद्य। वास्तव में विद्वान् लेखक ने बड़े ही परिश्रम और बड़ी ही विद्वत्ता से यह अनुवाद तैयार किया है। मूल श्लोक के बाद उसकी टीका दी गई है, और फिर उस पर विस्तृत विवेचना की गई है। यह विवेचना अनुवादक की बहुदर्शिता का परिचय तो देती है, साथ ही उसकी भाषा ऐसी सरस, ऐसी सरल और बामुहाविरा है कि बस, पढ़ते ही बनती है। स्थल-स्थल पर संस्कृत, उर्दू, हिन्दी आदि भाषाओं के कवियों की तुलनात्मक उक्तियाँ दे देने से वह और भी हृदयग्राहिणी हो गई है। विवेचना के बाद, महाराजा श्रीप्रतापसिंहजू कृत पद्यानुवाद भी दे दिया गया है। यह पद्यानुवाद भी बड़ा सुन्दर है,

और मूल भाव को बड़ी ही ख़ूबी से अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार बाबू साहब ने इस ग्रन्थ को आदि से अन्त तक उपन्यास से भी अधिक मनोरञ्जक और आकर्षक बना दिया है। पुस्तक एक बार हाथ में लेने पर, फिर खतम किये बग़ैर छोड़ने की तबियत ही नहीं होती। अन्त में अँग्रेज़ी-अनुवाद भी दे दिया गया है, जिससे अँग्रेज़ी पढ़े-लिखे पाठक भी इस ग्रन्थ से पूरा लाभ उठा सकते हैं। इस ग्रन्थ की एक विशेषता और बहुत बड़ी विशेषता यह है, कि कुशल अनुवादक ने मूल-भावों की रक्षा करते हुए भी, टीका और व्याख्या इस ढंग से लिखी है कि, वह लोगों की उद्वेग-जनक प्रवृत्तियाँ भड़काने की अपेक्षा उन पर अच्छा प्रभाव ही डालती है।

प्रकाशन इस ग्रन्थ का बहुत उच्च कोटि का हुआ है। हिन्दी में इतने दिव्य रूप में बहुत कम ग्रन्थ प्रकाशित हुए होंगे। सम्पूर्ण ग्रन्थ बढ़िया उजले कागज़ पर मोती-जैसे सुन्दर अक्षरों में छापा गया है। जिल्द इतनी सुन्दर बनाई गई है कि, देखते ही आँखों की थकावट भाग जाती है। फिर ढाई दर्जन नयनाभिराम रंग-बिरंगे चित्रों ने तो ग्रन्थ की शोभा में चार चाँद ही लगा दिये हैं। इन सब बातों को देखते हुए, यही कहना पड़ता है कि, शृंगार-शतक वास्तव में हिन्दी का शृंगार बन गया है। जो सज्जन चाहें, केवल साढ़े तीन रुपये में, हरिदास कम्पनी, गंगा-भवन, मथुरा से यह मनोहर वस्तु प्राप्त कर सकते हैं………।



'युगान्तर' की राय—

हिन्दी-अंगरेज़ी के सुप्रसिद्ध विद्वान्, अनेक ग्रन्थों के जन्मदाता, लाहौरी "चाँद" के भू० पू० एडीटर-इन-चीफ़ और युगान्तर के वर्तमान सम्पादक और सर्वस्व श्रीमान् बाबू सन्तरामजी बी० ए० महोदय लिखते हैं—

राजा भर्तृहरि ने तीन शतक लिखे हैं। एक में शृंगार का वर्णन है। दूसरे में उत्तमोत्तम नीति-वचन हैं। तीसरा यह वैराग्य शतक है। इसमें संसार की विषय-वासनाओं को हानि-कारक और तुच्छ सिद्ध करके परमात्मा में लौ लगाने का उपदेश है। भर्तृहरि ने जीवन का ख़ूब उपभोग किया था। उसने गरमी-सरदी सब देखी थी। "खाओ, पियो और मज़े उड़ाओ" के जीवन से ऊब कर ही उसने संसार से मुख मोड़ा था। इसलिए उसके वचनों में बड़ी गहरी सचाई पाई जाती है। ऐसे अनुभवी और भुक्तभोगी सज्जन के अनुभव से सब मनुष्यों को लाभ उठाना चाहिये। पुस्तक में पहले मूल संस्कृत श्लोक है। उसके नीचे उसका हिन्दी-अनुवाद है। अनुवाद के आगे उसकी हिन्दी में विशद व्याख्या है। व्याख्या के बाद उसी आशय का हिन्दी पद्य है। पद्य के बाद संस्कृत श्लोक का अँगरेज़ी अनुवाद है। व्याख्या बड़ी रोचक, सरस और सारगर्भित है। इसमें उर्दू और हिन्दी कवियों के बामौक़ा शेर और पद्य भी दिए गये हैं। इस से मूल श्लोक का आशय बहुत साफ़ हो जाता है। अनुवाद का नमूना देखिये—

गतं तत्तारुण्यं तरुणिहृदयानन्दजनकं,
विशीर्णा दन्तालिर्निजगतिरहो यष्टिशरणां ।
जड़ीभूता दृष्टिः श्रवणरहितं कर्णयुगलं,
मनोमे निर्लज्जं तदपि विषयेभ्यः स्पृहयति ॥

तरुणियों के हृदय में आनन्द पैदा करने वाली जवानी चली गई है, दन्त-पंक्ति गिर गई है, लकड़ी का सहारा लेकर चलता हूँ, नेत्र-ज्योति मारी गई है, दोनों कानों से सुनाई नहीं देता, तोभी मेरा बेहया मन विषयों को चाहता है।

छप्पय

गई भोग की चाह, गयो गौरव गुमान सब !
मित्र गये सुरलोक, अकेले आप रहे अब ॥
उठत सु लकड़ी टेक, तिमिर आँखन में छायो,
शब्द सुनत नहिं कान, बचन बोलत बहकायो ॥
यह दशा वृद्ध तन की, तऊ चकित होत मरिवो सुनत ।
देखो विचित्र गति जगत की, दुख हू कों सुख सों लुनत ॥

छपाई-सफ़ाई बहुत अच्छी है। ३८ सुन्दर चित्र हैं। वैराग्यवृत्ति को दृढ़ करने के अभिलाषियों को यह पुस्तक ज़रूर देखनी चाहिए।

'जासूस' की राय—

हिन्दी के पुराने लेखक, अनेक ग्रन्थों के रचयिता, लब्धप्रतिष्ठ विद्वान्, "जासूस" के जन्मदाता और सम्पादक बाबू गोपालरामजी गहमरी लिखते हैं:—



राजा भर्तृहरि को एक सन्त ने अपनी तपस्या से पाया हुआ अमर फल भेट किया था। उन्होंने वह फल अपनी परम प्यारी रानी को दिया कि, वह सदा युवती बनी रहेगी और उससे जीवन भर विहार करेंगे। उस रानी ने वह फल अपने प्यारे यार दारोगा को भेट किया। दारोगा ने उसे अपनी माशूका—एक वेश्या को नज़र कर दिया, किन्तु वेश्या ने वह अमर फल फिर राजा भर्तृहरि को जा कर दे दिया कि, जो न्यायी राजा प्रजा को सन्तानवत् पालता है उसी की नीतिपूर्ण छत्रच्छाया में सदा जीवन बीते। बस, इसी से संसार का कटु अनुभव पाकर, राजा भर्तृहरि ने कमण्डल कोपिन्न धारण किया और सब सुविशाल राज-पाट त्याग कर जगत् से विरागी हो, रमते राम बन कर बन को चले गये।

उन्होंने त्रिगुणमय संसार को देख-सुन लेने पर शृंगार, नीति और वैराग्य नाम के तीन शतक सौ-सौ श्लोकों में बना डाले। उन तीनों शृंगार शतक, नीति शतक, वैराग्य शतक के हिन्दी-अनुवाद बहुतेरे छपे हैं। इन तीनों का सार संक्षेप में और वृहद् व्याख्या पूर्ण विस्तार से लिख कर अनेक लेखकों ने टीका की और अनेक प्रकाशकों-द्वारा प्रकाशित हुईं, किन्तु हमारे माननीय मित्र श्रीयुत बाबू हरिदासजी वैद्य ने जो शतकत्रय की सुविशाल टीका और सुवृहत् व्याख्या प्रकाशित की है, उन तीनों शतकों को हिन्दी में बहुत ऊँचा स्थान मिलेगा।

कहने को तो इन तीनों का मूल उसी योगिराज भर्तृहरि के तीन सौ श्लोक हैं; किन्तु एक-एक में सौ-सौ शृंगार-नीति और

वैराग्य-ग्रन्थों का निचोड़ भरा है, यह कहने से भी अत्युक्ति नहीं होगी। भर्तृहरि का पहले श्लोक देकर उसकी सरल हिन्दी-टीका दी है। फिर उसकी सुविशाल और गवेषणा भरी व्याख्या है। वह व्याख्या क्या है एक-एक श्लोक पर एक-एक छोटी-मोटी पुस्तिका-सी हो गयी है। उस व्याख्या में उस श्लोक से सम्बन्ध रखने वाले अच्छे-अच्छे सम्मान्य कवियों के प्रभावकारी पद्य, उनकी टीका, नामी शाइरों की शाइरी, उनका भावार्थ और उनको समझाने में अच्छे-अच्छे प्रभावपूर्ण चुटीले उपदेश भरे दृष्टान्त यथास्थान दिये गये हैं, उनको गुम्फित करने में श्रीयुत वैद्यजी की जो गवेषणा और अध्ययन-शक्ति का परिचय मिलता है, लोकोपकार-बुद्धि और नीति-निपुणता तथा अनुभवों का जो पता चलता है, उसकी सराहना करने में हमारी लेखनी अपारग हो जाती है। फिर हर श्लोक के अन्त में अँगरेजी-अनुवाद देख कर, उनकी अँगरेजी की योग्यता का भी दिग्दर्शन होता है। हिन्दी-साहित्य में वैद्यजी की यह कीर्ति सदा सुप्रकाशमान रहेगी। इन शतकों में केवल योगी भर्तृहरि और बाबू हरिदास वैद्य ही नहीं, इन में पाठकों को कवि भूषण, सर्वश्रद्धेय तुलसी, बिहारी, गिरिधर कविराय, सुन्दर, कबीर, नानक, महाराजा प्रताप, वृन्द आदि और उर्दू-फ़ारसी के महाकविगण शेख़सादी, उस्ताद ज़ौक़, दाग़ ग़ालिब सब मिलेंगे। और कौन-कौन से कवि और शाइर मिलेंगे, सो इन सुविशाल तीनों ग्रन्थों को पढ़ चुकने पर याद भी नहीं रह सकता। हमारा आग्रह है कि, सब हिन्दी पाठक बाबू



हरिदास वैद्य, गंगा भवन, मथुरा से तीनों शतक मँगाकर जरूर इनका रसास्वादन करें।

'आर्य-मित्र' की राय—

हिन्दी के धुरन्धर विद्वान्, अनेक ग्रन्थों के रचयिता, आर्यमित्र के वर्त्तमान् सम्पादक, पण्डितवर श्रीमान् हरिशङ्कर जी शर्म्मा महोदय लिखते हैं—

वैराग्य-शतक तथा नीति-शतकः—कौन नहीं जानता महाराज भर्तृहरि और उनकी अमर-कृति शतक-त्रय को ? सभी संस्कृतज्ञ खुले दिल से भर्तृहरि शतक की दाद देते हैं। जो भी बात कही गई है वह बड़े ही पते की कही गई है। महाराज प्रत्येक बात की तह तक ही पहुँच कर रहे हैं। इस पर भी उनकी प्रसाद-गुण-पूर्ण शैली ने और भी कमाल किया है। ऐसी सुललित रचना के यद्यपि हिन्दी में कई संस्करण विद्यमान थे, पर साहित्यानुरागी व्यक्ति केवल अनुवाद ही तो नहीं चाहता। वह तो उससे भी आगे बहुत कुछ चाहता है। इसके अतिरिक्त केवल अनुवाद के सहारे ही तो कोई बात की तह तक नहीं पहुँच जाता, जब तक कि उसे अनेक पहलुओं से समझा कर न कहा जावे। उक्त अमर-कृति के एक ऐसे ही संस्करण की हिन्दी में आवश्यकता थी, जिसको बाबू हरिदासजी वैद्य ने अनेक अंशों में पूरा किया है। आपने संस्कृत मूल देकर नीचे उसका अर्थ दिया है। पश्चात् उसे और बढ़ाकर समझाया है। संस्कृत, फ़ारसी, उर्दू, अँग्रेजी आदि के कवियों के उद्धरण उपस्थित कर, तुलनात्मक अध्यन के हेतु, सामग्री उपस्थित की गई है। प्रत्येक श्लोक का हिन्दी-छन्दों तथा अँग्रेज़ी-

गद्य में भी अनुवाद दिया गया है। इससे भी बढ़कर विशेषता इन संस्करणों की यह है, कि नीतिशतक में २६ तथा वैराग्य-शतक में ३८ चित्र देकर, छन्दों के भावों को स्पष्ट किया गया है। पुस्तक सभी प्रकार से उपादेय है, इसमें सन्देह नहीं। नीति-शतक और वैराग्य-शतक दो ही हमारे सामने हैं। हर्ष का विषय है कि, यह दोनों का तीसरा संस्करण है। दोनों की छपाई, कागज़ बहुत ही सुन्दर, सुनहले अक्षरों से विमण्डित रेशमी जिल्द। ऐसी दीर्घकाय और उपयोगी पुस्तकों का मूल्य भी अधिक नहीं, अर्थात् नीति शतक सजिल्द का मूल्य ५) और वैराग्य-शतक का मूल्य ५) मात्र। बाबू हरिदासजी ने इस प्रकार साहित्य की अनुपम सेवा की है, और साफल्य के हेतु बधाई के पात्र हैं। हमें 'बिहारी सतसई' के एक सुन्दर, चित्र-विभूषित, पर साहित्य के रंग में रंगे हुए एक संस्करण के देखने की लालसा है, क्या वैद्यजी उसे भी पूरा कर सकेंगे ?

'राजपूत' की राय—

हिन्दी-अँगरेज़ी के सुप्रसिद्ध विद्वान्, ख्याति-प्राप्त कहानी-लेखक, "राजपूत" के सम्पादक, कुँवर मोहनसिंह जी सेंगर महोदय लिखते हैं:—

वैराग्य-शतक (सजिल्द):—लेखक—श्री० हरिदासजी वैद्य प्रकाशक—हरिदास एण्ड कम्पनी, कलकत्ता (अब मथुरा)।

भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध नीतिज्ञ महाराज भर्तृहरि के शतक-त्रय हिन्दी-संसार में इतनी अधिक ख्याति प्राप्त कर चुके

हैं कि, अब पृथक एवं विस्तृत रूप से उनका परिचय देने की आवश्यकता नहीं। शृंगार, नीति अथवा वैराग्य-शतक में से जिसने एक भी शतक देखा है, वह महाराज भर्तृहरि के अध्यात्मवाद का भली भाँति अनुमान कर सकता है। वैसे तो महाराज के तीनों शतक हिन्दी में कई बार विभिन्न लेखकों द्वारा अनूदित हो चुके हैं, किन्तु यदि हम यह कहें कि, सफलता हरिदासजी के अनुवाद को ही मिली है, तो इस में अत्युक्ति न होगी। वैद्यजी की भाषा संस्कृतमय या पाण्डित्य-पूर्ण न हो कर बोल-चाल की वह सरल एवं संगत भाषा है, जिसे आज-कल हिन्दुस्तानी कहा जाता है और यही वैद्यजी के ग्रन्थों के असाधारण प्रचार का एक मात्र कारण है।

'वैराग्य-शतक' हमारे सामने है। इसमें सुयोग्य अनुवादक महाशय ने प्रारम्भ में महाराज भर्तृहरि की संक्षिप्त जीवनी देकर यह बतलाने का प्रयत्न किया है, कि जिस वैराग्य के कारण महाराज ने 'वैराग्य-शतक' जैसे अमूल्य और महान् ग्रन्थ का प्रणयन किया, उसका सूत्रपात कैसे हुआ ? दो रानियों के होते हुए भी विलास-प्रिय युवा भर्तृहरि का पिंगला से विवाह करना और उसके हाथ की कठपुतली हो जाना, कनिष्ठ विक्रम द्वारा पिंगला के दुश्चरित्र की बात राजा को ज्ञात होना, जगत् सेठ से मिल कर पिंगला के षड्यन्त्र किये जाने पर विक्रम को निकल-जाना, फिर वेश्या के द्वारा अपनी रानी को दिया हुआ अमरफल

पाकर महाराज को पिंगला की दुश्चरित्रता का भान होना और वैराग्य हो जाना—आदि बातें एक उपन्यास की तरह बड़े मनो-रंजक ढँग से लिखी गई हैं। श्रीभर्तृहरि को 'त्रिया-चरित्र' ज्ञात होने पर यह कहना कि—"क्वचित्पुराण्यारण्ये शिवशिव शिवेति प्रलपतः"—उनके हार्दिक-विराग और सांसारिक माया-मोह का बड़ा सुन्दर और चुभने वाला चित्रण है। इसके पश्चात् शतक के श्लोक हैं, जिनका विद्वान् अनुवादक ने हिन्दी और अँग्रेजी गद्य में अर्थ देकर, फिर सोदाहरण चित्र देकर, अपनी भापा में समझाया है। कहीं-कहीं 'ख़ुलासा' और 'अधिक स्पष्ट' लिख कर अनुवादक ने जहाँ तक भी हो सका है, श्लोकों के अर्थ को समझाने और हृदय-गम्य कराने की सफल चेष्टा की है। इस सब के अतिरिक्त, कई जगह श्लोकों से मिलते-जुलते अर्थ वाले हिन्दी और उर्दू के पद्यांश उद्धृत कर अनुवादक महोदय ने सोने में सुगन्ध का काम किया है। स्थल विशेष पर पाद-टिप्पणी में भी शब्दार्थ अथवा वाक्यार्थ दिए गए हैं। अन्त में लगभग ५० पृष्ठों में वैराग्य एवं ईश्वरत्व-सम्बन्धी प्रश्नोत्तर दिये हैं, जिन्हें हम ग्रन्थ का निष्कर्ष कह सकते हैं। चित्रों का इतना बाहुल्य है, कि प्रत्येक साधारण-सी बात को भी चित्रों की सहायता से इस प्रकार समझाया है कि, हिन्दी का कोई भी साक्षर व्यक्ति समझ सके। हमारी समझ में तो इससे अधिक सुलभ, सुन्दर और सरल अनुवाद भर्तृहरि के शतकों का हिन्दी में कोई दूसरा नहीं है। पुस्तक की छपाई-सफ़ाई उत्तम है।



जो लोग इधर-उधर के उपन्यास और क़िस्से-कहानी पढ़-पढ़ कर अपने दुर्लभ जीवन के अमूल्य समय को योंही बरबाद करते हैं, संसार के दुर्व्यसनों में पड़ कर अपना सर्वनाश करते हैं, उनसे हम अनुरोध करेंगे कि, वे कम-से-कम (ख़रीद कर नहीं तो माँग कर ही) एक बार तीनों नहीं तो भर्तृहरिजी के केवल "वैराग्य-शतक" का अवलोकन कर संसार और अपने जीवन के रहस्य को समझें। हमारा तो यह भी दृढ़ विश्वास है कि, वैराग्य-शतक को पढ़े और हृदयंगम किये बाद, मनुष्य को किसी आध्यात्मिक सांसारिक गुरु की आवश्यकता न रह जायगी। अन्त में, हम इसके ख्यातिनामा अनुवादक आदरणीय वैद्य हरिदासजी को इस परोपकार-पूर्ण सत्प्रयास के लिए हार्दिक साधुवाद देते हुए हिन्दी-पाठकों से अपील करेंगे कि, वे वयोवृद्ध वैद्यजी के इस परिश्रम और मातृ-भाषा-सेवा की यथोचित क़द्र करेंगे।

'हंस' की राय—

अँगरेज़ी-हिन्दी के सुविख्यात विद्वान्, 'माधुरी' आदि के भू० पू० सम्पादक, उपन्यास सम्राट्, "हंस" और "जागरण" के सम्पादक श्रीमान् बाबू प्रेमचन्द जी बी० ए० महोदय लिखते हैं:—

भर्तृहरि के ये तीनों शतक संस्कृत-साहित्य के ही नहीं, भू-साहित्य की अपूर्व रचनाएँ हैं। जीवन की इन तीनों अवस्थाओं

ना शायद ही किसी कवि ने इतना मार्मिक, हृदय-स्पर्शी और आँखें खोलने वाला चित्रण किया हो। हिन्दी में इन कृतियों के अनुवाद तो पहले ही छप चुके हैं, लेकिन हरिदास जी ने प्रत्येक श्लोक की व्याख्या, श्लोक का अँग्रेजी रूपान्तर, उससे मिलती-जुलती हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी कवियों के छन्द देकर इसे सर्व-साधारण के लिये सुबोध बना दिया है। व्याख्या बड़ी फड़कती हुई, सजीव भाषा में की गई है, जिससे उसके पढ़ने में आनन्द आता है। ये तीनों पुस्तकें अब तीसरी बार प्रकाशित हो रही हैं इसीसे ज्ञात होता है कि, हिन्दी पाठकों ने इनका कितना आदर किया है। भर्तृहरि का जीवन-चरित्र भी दिया है............।

'वैद्य' की राय—

मुरादाबाद के सुप्रसिद्ध वैद्यप्रवर, वंगसेन आदि ग्रन्थों के अनुवादक "वैद्य" के सम्पादक श्रीमान् शङ्करलालजी महोदय लिखते हैं:—

नीति-शतक—महाराजा भर्तृहरि के शतकत्रय को भी बाबू हरिदासजी ने प्रकाशित कर हिन्दी-जगत में अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली है। वास्तव में, इस महाकाव्य का ऐसा सुन्दर और बढ़िया संस्करण अब तक अन्यत्र कहीं भी देखने में नहीं आया। ये तीनों ही शतक भिन्न भिन्न-भागों में अत्यन्त सजधज के साथ प्रकाशित किये गये हैं। श्रृंगार शतक और वैराग्य शतक की समालोचना वैद्य में पहले की जा चुकी है। आज 'नीति शतक' (तीसरा संस्करण) हमारे सामने है। इसमें ऊपर मूल श्लोक,

उसके नीचे हिन्दी अनुवाद; फिर सरल व्याख्या तथा उसके आगे हिन्दी-पद्यानुवाद, पश्चात् अँगरेजी अनुवाद और फिर मूल श्लोक के भाव से मिलती हुई अनेक उर्दू कवियों की उक्तियाँ, तथा दूसरे लोगों की बहुत सी अच्छी-अच्छी कहावतें भी संग्रह कर दी गई हैं। भावों को व्यक्त करने के लिये कितने ही बढ़िया चित्र भी लगाये गये हैं। इसकी पृष्ठ-संख्या ५०० है। काग़ज-छपाई अत्युत्कृष्ट, बढ़िया विलायती ढँग की सुनहरी जिल्द बाँधी गई है।

'वीणा' (मार्च) की राय—

हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान्, 'वीणा' के सफल सम्पादक श्रीमान् पण्डितवर कालिकाप्रसादजी दीक्षित महोदय लिखते हैं:—

भर्तृहरि के उपर्युक्त तीनों शतकों का संस्कृत-साहित्य में बहुत महत्त्व है। यदि उदारता-पूर्वक विचार किया जाय, तो यह कहना पड़ेगा कि, ये संसार के साहित्य में स्थान पाने योग्य हैं। इनमें शृंगार, नीति और वैराग्य का जितने सुन्दर और मनोरंजक ढँग से वर्णन किया गया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। जीवन की इन तीन अवस्थाओं का ज्ञान होना, प्रत्येक मनुष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। संसार की बहुरूपता और माया जाल का सुन्दर शिक्षाप्रद वर्णन पढ़ने के लिए ये तीनों पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी हैं। इन शतकों के अनुवादक हिन्दी के ख्याता-नामा लेखक बाबू हरिदास जी वैद्य हैं। आप एक अनुभवी वैद्य हैं और "चिकित्सा-चन्द्रोदय" नामक अनुपम ग्रन्थ लिखकर पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर

चुके हैं। इस अनुवाद में आपने प्रत्येक श्लोक की व्याख्या और उसका अँगरेज़ी रूपान्तर दिया है। श्लोक के भावों से मिलती-जुलती, हिन्दी, फ़ारसी और उर्दू के कवियों की रचनाओं के उदाहरण देकर अनुवाद को और भी मनोरञ्जक बना दिया गया है।

उदाहरणार्थ वैराग्य-शतक में ब्रह्मानन्द का वर्णन करते हुए कविवर नज़ीर की निम्न-लिखित सुन्दर पंक्तियाँ दी गई हैं:—

है आशिक़ और माशूक़ जहां, वां शाह वज़ीरी है बाबा।
ना रोना है न धोना है न दर्द असीरी है बाबा।
दिन रात बहारें चुहलें हैं और ऐश फ़क़ीरी है बाबा।
जो आशिक़ हुए सो जानें हैं यह भेद फ़क़ीरी है बाबा।
हर आन हँसी हर आन ख़ुशी हर वक्त अमीरी है बाबा।
जब आशिक़ मस्त फ़क़ीर हुए फिर क्या दिलगीरी है बाबा।

इस प्रकार के सुन्दर पद्यों का प्रायः हर जगह बड़े सुन्दर ढँग से समावेश किया गया है।

शतकों में चित्रों की तो भरमार है। कई चित्र चित्ताकर्षक और कला-पूर्ण हैं। छपाई-सफ़ाई अत्यन्त सुन्दर और नेत्र-रंजक है। प्रत्येक हिन्दू-गृहस्थ को इस शतक के तीनों भाग अपने घर में अवश्य रखने चाहियें। पुस्तकों के अब तक दो संस्करण समाप्त हो चुके हैं। यह तीसरा संस्करण भी प्रथम दो संस्करणों की भाँति ही सुन्दर है, किसी प्रकारकी कमी नहीं आने पाई है।

'अर्जुन' की राय—

"अर्जुन" के सम्पादक और सर्वस्व, अनेक ग्रन्थों के रचयिता, विद्या-वाचस्पति प्रोफेसर इन्द्र महोदय लिखते हैं:—

नीति-शतक, वैराग्य-शतक और शृंगार-शतक—मूल लेखक महाराजा भर्तृहरि। अनुवादक, टीकाकार और प्रकाशक श्री० हरिदासजी वैद्य, २ गंगा-भवन, मथुरा सिटी।

उक्त तीनों ग्रन्थों का परिचय किसी भी भारतीय साहित्य-सेवी को देने की आवश्यकता नहीं है। केवल भारत में ही नहीं, संसार-भर में महाराजा भर्तृहरि की ये अमर कृतियाँ खूब ख्याति पा चुकी हैं। संस्कृत का तो कोई ऐसा नीति-ग्रन्थ नहीं जिसमें महाराजा भर्तृहरि के अर्थ गौरवपूर्ण श्लोक उद्धृत न किये गये हों और संसार की कोई ऐसी प्रसिद्ध भाषा नहीं, जिसमें इन तीनों ग्रन्थों के अनेक अनुवाद और छायानुवाद न हुए हों। संसार के व्यवहार, मनुष्य-जीवन के अनुभव, नीति-शिक्षा और भोग तथा वैराग्य में से प्रत्येक विषय पर नाना लेखकों और कवियों के ग्रन्थ-के-ग्रन्थ रचे पड़े हैं, परन्तु उनके होते हुए भी महाराजा भर्तृहरि का एक-एक श्लोक सुनने और सुनाने वालों का सिर झुका देता है, उनके दिल तक चोट करता है और सब को कवि की रचना के अनोखेपन का कायल कर डालता है। ऐसी महत्व-पूर्ण और प्रसिद्ध रचनाओं का हिन्दी अनुवाद तथा व्याख्यान श्रीयुत हरिदासजी वैद्य ने सुन्दर, सचित्र, मनोरञ्जक रूप में हिन्दी-पाठकों की भेंट किया है।

इन तीनों ग्रन्थों के हिन्दी-अनुवाद तो अन्य भी हुए हैं, परन्तु हम निःसंकोच कह सकते हैं कि इन श्लोकों का ऐसा सुन्दर, सरल, सुगम, सुविस्तृत और विशद अनुवाद व व्याख्यान हमारे देखने में अब तक नहीं आया। शायद यही कारण है कि, पुस्तकें इतनी बड़ी होने पर भी, इन में से प्रत्येक के अनेक संस्करण हो चुके हैं। श्री हरिदासजी ने अपने अनुवाद तथा व्याख्यान का क्रम यह रक्खा है—

पहले मूल श्लोक देकर उसका हिन्दी में शब्दानुवाद किया है। फिर श्लोक की विस्तृत व्याख्या करते हुए हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी, संस्कृत आदि भाषाओं के उसी अभिप्राय के द्योतक प्रासंगिक दोहा, चौपाई, शेर, श्लोक, आदि पद्यों के साथ-साथ निजी अनुभवों और मनोरंजक कथा-कहानियों से कवि का भाव सर्वथा स्पष्ट कर दिया है। अन्त में सरल भाषा में और मोटे अक्षरों में श्लोक का भावार्थ लिख कर, उसका अँग्रेज़ी अनुवाद भी दे दिया है।

इस सब के अतिरिक्त बीच-बीच में चित्र देकर पुस्तक और भी सुन्दर बना दी गई है। श्लोकों के साथ उद्धृत किए गए उर्दू व हिन्दी के पद्य अनेक स्थानों पर बिलकुल मौज़ूँ, चुभते हुए और बड़े मनोरंजक हैं। पुस्तक की छपाई और जिल्द सुन्दर तथा मज़बूत हैं। यह सब कुछ देखते मूल्य भी उचित ही है।



'वीणा' (मई) की राय—

संस्कृत-साहित्य में भर्तृहरि शतकों का स्थान बहुत ऊँचा है। कुछ समय पहले तक तो इन शतकों के श्लोकों का याद रहना और बात-चीत, व्याख्यान, लेखन आदि में उन श्लोकों का उद्धरण देना, विद्वत्ता का एक प्रमुख अंग माना जाता था। ऐसे उपयोगी साहित्य को कई विद्वानों ने समय-समय पर हिन्दी-रूप दिया है; परन्तु बाबू हरिदासजी वैद्य ने अपने अनुवाद-द्वारा जिस रूप में इन शतकों को हिन्दी-संसार के सम्मुख रखा है उसके लिए हिन्दी-संसार उनका सदा स्मरण रखेगा। इस समय हमारे सम्मुख नीति-शतक और वैराग्य-शतक हैं। यों तो मूल ग्रन्थों में सौ-सौ श्लोक ही हैं, जो अपने शब्दार्थों-सहित पचास-पचास पृष्ठों में ही आ सकते हैं; परन्तु वैद्य जी ने जिस ढँग से अनुवाद किया है उससे इन विशाल ग्रन्थों की पृष्ठ-संख्या क्रमशः ५४१ और ५८५ हो गई है। इसलिये कहना चाहिये कि, यह अनुवाद नहीं, एक तरह का छोटा-मोटा भाष्य ही है। ऐसे विशालकाय ग्रन्थों का प्रकाशन करना श्री० हरिदास वैद्य का ही साहस है, जो उनके स्वभाव के अनुरूप है। जिन्होंने श्री हरिदास जी वैद्य का जीवन-चरित्र पढ़ा होगा, उन्हें ज्ञात होगा कि, वे साहस के एक मूर्त्तिमान उदाहरण हैं। उन्होंने अपने जीवन में जिस प्रकार की संकटमय परिस्थितियों से साहसपूर्ण युद्ध किया है, उस प्रकार सामान्य मनुष्य नहीं कर सकते। यही कारण है कि, उनके प्रत्येक कार्यों में साहस का बड़ा भारी हाथ दिखलाई पड़ता है। हिन्दी-

साहित्य जगत् में जब से बाबू हरिदास जी वैद्य ने प्रकाशन का कार्य हाथ में लिया तब से पुस्तकों की छपाई-सफाई में सुन्दरता, गैट-अप की मनोहरता और जिल्द-बन्दी की विशेषता में भी उनके साहस की छाप स्पष्ट दिखलाई पड़ती है और उसका प्रभाव हिन्दी-प्रकाशन पर भी पड़ा है। सारांश यह है कि, बा० हरिदास जी एक विशेष व्यक्ति हैं और उनकी यही विशेषता इन शतकों में भी दिखलाई पड़ती है।

ये दोनों शतक उपदेश-सामग्री से भरे पड़े हैं। संसार कैसा है? इसमें काम क्रोधादि शत्रुओं द्वारा मनुष्य-जाति का किस प्रकार नाश होता है? सज्जन कौन है? दुर्जन कौन है? मनुष्यों में कौन-कौन गुण चाहियें? किन दुर्गुणों से दूर रहना आवश्यक है? संसार से किस प्रकार उद्धार हो सकता है? आदि, अनेक बातों पर इस ग्रन्थकार ने अपने विचार प्रकट किये हैं। उन्हीं विचारों को अनुवादक महोदय ने अपनी सरल और सुन्दर भाषा में पल्लवित करने की कृपा की है। उदाहरण देखिये वैराग्य-शतक का ३८ वाँ श्लोक है।

वयं येभ्यो जाताश्चिरपरिगता एव खलु ते,
समं यैः संवृद्धाः स्मृतिविषयतां तेऽपि गमिताः।
इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतना—
द्गतास्तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः॥

वैद्यजी ने इसका अनुवाद किया है।

"जिनसे हमने जन्म लिया था, उन्हें इस दुनियां से गये बहुत दिन हो गये; जिनके साथ हम बड़े हुए थे वे भी इस दुनियाँ को छोड़ कर चले गये। अब हमारी दशा भी रेतीले नदी के किनारे के वृत्तों की-सी हो रही है, जो दिन-दिन जड़ छोड़ते हुए गिराऊ होते चले जाते हैं।"

इसके बाद वैद्यजी ने लगभग २ पृष्ठों में इस श्लोक पर विशद विवेचन किया है और फिर पद्यानुवाद अँगरेज़ी-अनुवाद दिया है।

ग्रन्थों में अपने विषय से सम्बन्ध रखने वाले चित्र भी बहुत अधिक संख्या में दिये गये हैं।

इस साहस-पूर्ण साहित्य-प्रकाशन के लिये हम वैद्य जी को हार्दिक धन्यवाद देते हैं और हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से प्रार्थना करते हैं कि वे यदि शान्ति, हित और कल्याण की भावना रखते हैं, तो इन ग्रन्थों को अवश्य पढ़ें।

'तपोभूमि' की राय—

नीति शतक के भाव को सरल भाषा में स्पष्टतया प्रगट करने के अतिरिक्त वृन्द कवि, तुलसीदास, उस्ताद ज़ौक़, महाकवि ग़ालिब, दाग़ आदि महानुभावों के ठीक वैसे ही नीति-सम्बन्धी भाव को प्रगट करने वाली चौपाइयाँ, शैर, दोहे आदि भी दिये गये हैं, जिनसे पुस्तक बड़ी रोचक हो गई है। अँगरेज़ी अनुवाद भाव-पूर्ण किया गया है।

हमें पूर्ण आशा है कि हिन्दी जगत् में नीतिशतक के अनुवाद का यथेष्ट सम्मान होगा। श्री० वैद्य हरिदास जी का परिश्रम निस्संदेह सराहनीय है।

"हिन्दी बंगवासी" की राय—

हिन्दी के सुप्रतिष्टित विद्वान् और महारथी, सफल नाट्यकार, अगणित ग्रन्थों के जन्म-दाता, श्री वैंकटेश्वर समाचार और हिन्दी बंगवासी प्रभृति प्रतिष्ठित पत्रों के मुख्य सम्पादक, श्री मान बाबू हरिकृष्णजी जौहर महोदय लिखते हैं:—

वैराय शतक। यह बताने का प्रयोजन नहीं, कि पूर्व-कालमें इस भारत-भूमि में एक-से-एक पुरुप-रत्न हो गये हैं। उन्हीं पुरुष-रत्नों में इस पुस्तक के रचयिता नरेन्द्र-शिरोमणि विक्रमादित्य के ज्येष्ठभ्राता महाराज भर्तृहरिजी भी एक थे। अपने जीवनके प्रथमांशमें धर्म-पूर्व्वक प्रजाका पालन कर, महा-राज भर्तृहरिने जगतके उदारचेता नरेशोंमें जो कीर्त्ति अर्जित की है, उसकी ज्योतिसे अब तक शासन-इतिहास जगमगा रहा है, फिर इस संसार को सदा त्रयतापों से सन्तप्त देख, आपने देव-राज इन्द्र के सदृश भोग-विलासों पर लात मार, वैराग्य धारण कर लिया और संसारी मनुष्योंके प्रति सदय हो, उनके हृदय को शान्त एवं अमर करने के लिये, इस "वैराग्य शतक" द्वारा सुधावृष्टि कर, अपनी कीर्त्ति-कौमदी को और अचल कर दिया है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्हीं प्रातःस्मरणीय भर्तृहरि जी-



रचित वैराग्यशतक के श्लोकों की व्याख्या की गई है। इसके अनुवादक हैं, हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक तथा अत्युत्तम ग्रन्थ-प्रकाशक श्रीयुक्त हरिदासजी वैद्य महाशय। यों तो वैराग्य-शतक के बहुतेरे हिन्दी-अनुवाद हो चुके हैं, किन्तु जैसी विशेषतायें इसमें हैं, वैसी विशेषतायें और कहीं नहीं देखी जातीं। इसमें, आरम्भ में मूल श्लोक है, उसके नीचे भावार्थ, फिर ख़ूब सरल हिन्दीमें सुविस्तृत व्याख्या की गई है, बादको मनोहारिणी हिन्दी-कविताओं में संस्कृत श्लोक के भाव दर्शा, सोने में सुगन्ध का सञ्चार कर दिया गया है और साथ ही प्रत्येक पद्यका अँगरेज़ी अनुवाद भी दिया गया है। सारांश यह है, कि वैराग्य-शतक जैसे गहन विषय को भी वैद्य महाशयने हिन्दी-भाषियों के लिये भी सुबोध तथा रुचिकर बनाने में भरसक कोई कोर कसर नहीं रखी है और साथही महाराज भर्तृहरि की जीवनी लिख कर इस की उपयोगिता और बढ़ा दी है। यह तो हुई भीतरी बातें; बाहरी सजावटों में तो सचमुच आपने कमालही कर दिया है। प्रथमतः इसकी सुनहली जिल्द ऐसी मनोहारिणी हुई है, कि पुस्तक हाथ में लेते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है, काग़ज़ भी ख़ूब मोटा है और छपाई-सफ़ाई के सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्य्याप्त है, कि यह हरिदास एण्ड कम्पनी की चीज़ है। पुस्तक में कोई सत्रह (अब २६ हैं) चित्र दिये गये हैं और सभी भर्तृहरिजी के जीवन की विविधावस्थाओं से सम्बन्ध रखते हुए नयनाभिराम तथा भावपूर्ण हुए हैं। पुस्तकका नाम ही विषय का द्योतक है।

यदि कोई सचमुच इस जगत्के उत्ताप से परित्राण चाहता हो, तो उसे अवश्य ही "वैराग्य शतक"की शरण लेना चाहिए। मनमें कैसी ही भीषण चिन्ता की चिता क्यों न जलती हो, किन्तु "वैराग्य शतक" को उलट कर देखते ही वह शान्त हो जाती है; हृदय शीतल हो जाता है। इसके पद-पदमें, अक्षर-अक्षरमें अमृत भरा हुआ है। फिर: जिसने इसे पिया अवश्य ही अमर हो जायगा। स्वयं भर्तृहरिजी कहते हैं,—"भोगे रोगभयं कुलेच्युतिभयं वित्तेनृपालाद्भयं। मान्येदैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जरायाः भयं। शास्त्रेवादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं। सर्व्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्।" निःसन्देह इस सन्तप्त संसारसे परित्राण पानेके लिए वैराग्य ही कल्पवृक्ष है। इसलिए प्रत्येक मनुष्यको वैराग्यशतकका नित्य कुछ पाठ करना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि, श्रीयुक्त हरिदासजी भी इस ग्रन्थरत्नको इस सज-धजके साथ प्रकाशित कर हिन्दी-संसारके बड़े ही प्रशंसनीय धन्यवादार्ह हुए हैं। पुस्तकमें एक यह भी विशेषता देखी जाती है कि, सुन्दर रेशमी बुकमार्क लगा दिया गया है, जिससे पढ़नेवालोंको निशान करनेमें सुविधा हो, सुनहली जिल्ददार ऐसी सुन्दर पुस्तकका दाम पाँच रुपये मात्र है।

"धर्माभ्युदय" की राय—

"धर्माभ्युदय" सम्पादक, पण्डित नारायणदत्तजी शर्मा, आगरा ७—२० को लिखते हैं:—

यह महाराजा भर्तृहरि कृत "वैराग्य शतक" संस्कृत-पुस्तक का हिन्दी-अँग्रेजी अनुवाद है। अनुवाद गद्य और पद्य दोनों ही में किया गया है । अनुवादक महाशयने इस अनुवादको बड़े परिश्रमसे किया है । गोसाईं तुलसीदासजी आदि-आदि हिन्दीके अनेक कवियोंके पद्य भी यत्र-तत्र रख दिए हैं । साथ ही उर्दू साहित्यके सिरमौर महाकवि दाग़, ग़ालिब और जौक़ के काव्य भी दिए हैं । इससे हिन्दी-साहित्य के नवयुवा और युवतियाँ भी इस वैराग्य शतकके साथ-साथ ही उर्दू-साहित्यका भी कुछ रसास्वादन कर लेंगे । अनुवादकजीने "भोगे रोगभयं कुलेच्युति-भयं वित्तेनृपालाद्भयम्" इस श्लोकका अनुवाद कर महात्मा सुन्दरदासका निम्न पद्य दिया है:—

"सर्प डसे सु नहीं कछु तालक, बीछु लगे सु भलो करि मानौ ।
सिंह खाय तु नाहिं कछु डर, जो गज मारन तो नहिं हानौ ॥
आग जरौ जल बूड़ि मरो, गिरि जाय गिरो कछु भै मत आनौ ।
"सुन्दर" और भले सब ही यह, दुर्जन संग भलौ जिन जानौ ॥

इसके पश्चात् महाशय "ग़ालिब" का निम्न वाक्य है:—

रहिए अब ऐसी जगह चल कर, जहाँ कोई न हो ।
हमसखुन कोई न हो, और हमज़बाँ कोई न हो ॥
बे दरो दीवार सा, इक घर बनाना चाहिए ।
कोई हमसाया न हो, और पासबाँ कोई न हो ॥

पड़िए गर बीमार, तो कोई न हो तीमारदार।
और अगर मर जाइए, तो नोहाख्वां कोई न हो॥

इत्यादि काव्यों से पुस्तक की शोभा बहुत ही बढ़ गई है। पुस्तक में २६ चित्र दिये हुए हैं। इन चित्रों से पुस्तक की शोभा दुबाला हो गई है। ऐसे भावपूर्ण, भड़कदार चित्रों की पुस्तक के लिये हम श्रीयुत बाबू हरिदास जी वैद्य महोदय को अनेकशः धन्यवाद देते हैं। छपाई-सफ़ाई के लिये कलकत्ता की हरिदास कम्पनी स्वयं ही बहुत प्रसिद्ध है। उसके लिए कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। उन्हींके प्रेस में यह अमूल्य पुस्तक छपी है। पुस्तक को एक बार हाथ में लेकर फिर छोड़ने को चित्त नहीं चाहता। जिस "अमरफल" के कारण महाराजा भर्तृहरि वैरागी हुए और यह वैराग्यशतक लिखा है; उसी कथा को अनुवादक महोदय ने बड़ी ही सरस और सरल भाषा में लिखा है। प्रत्येक हिन्दी और अँग्रेजी साहित्य के प्रेमी को इस पुस्तक को मँगाना चाहिए।

'गृहलक्ष्मी' की राय—

"गृहलक्ष्मी" में "निर्बल-सेवक" और "दरोगा दफ्तर" प्रभृति पत्रों के सम्पादक और अनेक ग्रन्थों के रचयिता पण्डितवर नरोत्तमजी व्यास महोदय श्रावण ७७ को लिखते हैं—

भारत-सम्राट् विक्रमादित्य के ज्येष्ठ सहोदर, बांधवेश, महाराजा श्री भर्तृहरि का नाम देश के पठित-समाज में यथेष्ट



परिचित है। आप भारत के उन पहुँचे हुए, त्यागी-वैरागी योगियों में एक थे, जो आज-दिन अमर पुरुष कहलाते हैं एवं जिन्होंने अपनी विलासप्रिय प्रियतमा पटरानी पिङ्गला का पापाचरण देख, एक अभूतपूर्व ज्योति का दर्शन कर, क्षण-भर में ही संसार की निरर्थकता उपलब्ध कर ली थी। आलोच्य 'वैराग्य-शतक' आप ही की रचना है। रचना संस्कृत में की गयी है एवं वह अति सुन्दर है। संस्कृतज्ञों में युगों से उसका यथेष्ठ सम्मान होता चला आया है। अतएव चीज़ पुरानी है। किन्तु आज इस पुरानी चीज़ का स्वरूप हम एक नये आइने में देख रहे हैं; कि जिसने इसकी क़ीमत पहले की अपेक्षा सौगुनी बढ़ा दी है। वह आइना है; इसकी टीका या अनुवाद। फिर वह अनुवाद कोरा हिन्दी में गुणहीन, स्वाद-शून्य, शब्दानुवाद ही नहीं है; वरन् उसमें भी एक भारी विशेषता है; और वह विशेषता यह है, कि अनुवादक ने अपने पाठकों को विषय की सत्यता सिद्ध करने के लिये पहले महाराजा भर्तृहरि का इतिहास और प्रवादसम्मत विस्तृत जीवन-चरित्र दिया है। बाद को ग्रन्थारम्भ कर, प्रत्येक श्लोक के नीचे अतिशय सरल हिन्दी में उसका अर्थ, अर्थ के नीचे विस्तृत व्याख्या, व्याख्या के अन्त में महाराजा प्रतापसिंह, जो कि हिन्दी के एक अच्छे, किन्तु अप्रसिद्ध कवि मालूम होते हैं, उनकी हृदय को अपूर्व शान्ति देने वाली कवितायें और बाद को अँग्रेजी अनुवाद दिया गया है, जिससे अँग्रेजी शिक्षित-समाज भी भारतीय भाषा-काव्यों के उच्च भावों का

भावुक बन जाय। इसके सिवा अनेक स्थानों पर श्लोकों के भावों से टक्कर खाती हुई "तुलसी सतसई, सुन्दर विलास, कबीर की साखी" की हिन्दी कविताओं के अलावा, उर्दू कवि दाग़, जौक़ और ग़ालिब के रसीले 'अशआर' भी दिये गये हैं, जिससे पुस्तक की क़ीमत नहीं वरन् अनुवाद का मूल्य बहुत-कुछ बढ़ गया है। फिर हैं—प्रत्येक श्लोक का भाव उक्त विविध प्रकारों से हृदयस्थ करा देने वाली सामग्री के बाद भी—बढ़िया चित्र, कि जिन्हें देख कर ही फिर पुस्तक पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती। रही छपाई और सफाई, सो उसके लिये हरिदास कम्पनी का नाम ले देना ही काफ़ी है। अतः जो लोग विरागवादी हैं अथवा जिन्हें स्त्रियों और संसार से घृणा है, वे तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें; किन्तु जो लोग संसार को सारवान् समझते हैं, वे भी यदि इसे पढ़ें तो कुछ हानि नहीं।

'ब्राह्मण-सर्वस्व' की राय—

"संस्कृत के धुरन्धर विद्वान्, कलकत्ता यूनीवरसिटी के वेद-व्याख्याता-स्वर्गवासी पण्डितवर भीमसेनजी के सुयोग्य पुत्र "ब्राह्मण-सर्वस्व"—सम्पादक पं० ब्रह्मदेवजी मिश्र, शास्त्री, काव्यतीर्थ महोदय लिखते हैं,—

हरिदास कम्पनी ने लोकप्रिय पुस्तकों के प्रकाशित करने में अच्छा नाम कमाया है। रूप-रङ्ग और छपाई में इस कम्पनी की पुस्तकें अनिन्द्य हैं। पुस्तक हाथ में लेकर पढ़ने को जी चाहता है। इस कम्पनी की पुस्तकों की एक विशेषता यह भी है कि,

प्रायः सब पुस्तकों में चित्र भी होते हैं। इस "वैराग्यशतक" में भी ऊपर कही हुई, सब विशेपताओं की रक्षा की गई है।

महाराजा भर्तृहरि के तीनों शतक, विशेपतः संस्कृत-साहित्य सेवियों में और साधारणतः हिन्दी प्रेमी पाठकों में ख़ूब प्रसिद्धि पा चुके हैं। भर्तृहरिजी की रचना सरस, सरल और हृदयग्राहिणी है। उन्होंने जो कुछ कहा है, वह ख़ूब अनुभव-पूर्वक कहा है; इसीलिये उनकी कविता का आदर है और उसमें बनावट नहीं मालूम पड़ती। उनके बनाये तीनों शतकों के हिन्दी अनुवाद अबतक अनेक स्थानों से निकल चुके हैं। पर इस अनुवादने युगान्तर उपस्थित कर दिया है। ऐसा सचित्र अनुवाद निकालना तो दूर रहा; इस के होने की कल्पना भी किसी ने न की होगी। श्लोकों के आधार पर जो चित्र इसमें छपे हैं, वे श्लोकों को अच्छी तरह व्यक्त करते हैं। फिर इस अनुवाद की भाषा इतनी सरल है, कि थोड़े पढ़े-लिखे भी वैराग्य जैसे कठिन और रुक्ष विपय को अच्छी तरह हृदयङ्गम कर सकते हैं।........................पुस्तक को अच्छी और सर्वोपयोगी बनाने में कुछ उठा नहीं रक्खा गया है। पुस्तक के प्रारम्भ में वैराग्यशतक की उत्पत्तिका तथा महाराजा भर्तृहरि के वैराग्य का कारणभूत उपाख्यान विस्तृत रूप से लिखा गया है।

'पाटलीपुत्र' लिखता है—

योगिराज भर्तृहरि का नाम कौन भारत-वासी नहीं जानता! आपकी धनवितृष्णा; संसार-विरक्ति और राजत्याग के लिये

भारतमाता गर्व के साथ संसार के सामने खड़ी होती है। प्रस्तुत पुस्तक में आपके रचित वैराग्य-विषय पर सौ संस्कृत के पद्यरत्न हैं। भर्तृहरि जी महाराज की ये कविताएँ बता रही हैं, कि आप एक पहुँचे हुए संसार-त्यागी ही नहीं थे; पर आप संस्कृत के कवियों में अपना एक उच्च स्थान भी रखते हैं; आपको इन संस्कृत कविताओं के अब तक कई अनुवाद निकल चुके हैं, पर वैसे अनुवादों का निकलना, नहीं निकलने के बराबर है; क्योंकि उन अनुवादों से न कुछ भाव ही खुलता है और न भर्तृहरि की चमत्कारपूर्ण कविताओं की चमत्कारिता ही मालूम होती है; पर हर्ष की बात है, कि प्रस्तुत अनुवाद को प्रकाशित कर अनुवादक महाशय ने एक बड़े भारी अभाव की पूर्त्ति की है। पुस्तक में २६ दर्शनीय चित्र हैं, जो प्रसंगानुसार सन्निवेशित किये गये हैं। भूमिका के बाद महाराज भर्तृहरि का सचित्र जीवन-चरित्र दिया गया है, जो विषयी जनों के लिये शिक्षाजनक है।......लेखक ने भर्तृहरिजी के संस्कृत श्लोकबद्ध भावों को समझाने की पूरी चेष्टा की है और इसमें संदेह नहीं, कि उन्हें पूरी सफलता भी मिली है। सुनहली जिल्द नयनाभिराम और मजबूत है। हम इस पुस्तक का समादर चाहते हैं।

'समालोचक' की राय—

पुस्तक की लेखन-शैली बड़ी मनोहर है। भाषा इतनी सरल रखी गई है कि थोड़े-पढ़े लिखे आदमी भी उसे ब.खूबी समझ सकते हैं। पुस्तक को उपयोगी और रोचक बनाने के लिये अनुवादक ने पूरी कोशिश की है और उसकी कोशिश कामयाब

हुई है। ऐसी अच्छी पुस्तक लिखने के कारण पं० हरिदास जी हिन्दी-प्रेमियों के धन्यवाद के पात्र हैं। सुनते हैं, आपने भर्तृहरि के और भी कई ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित किये हैं, पर वे हमारे देखने में नहीं आये।

"समालोचक" सागर की वैराग्यशतक के दूसरे संस्करण पर सम्मति—

यथार्थमें "वैराग्य शतक"का यह नूतन संस्करण हिन्दी-संसार का अद्वितीय तथा अमूल्य रत्न हो गया है। चित्रोंकी संख्या भी अब लगभग ३० है। चित्र बहुत ही सुन्दर, साफ़, भावपूर्ण और नयनाभिराम हैं। सम्मति ही नहीं, प्रार्थना है कि हिन्दी पाठक कम-से-कम एक बार इस पुस्तक का अवलोकन करें—उनकी तबियत खुश हो जायगी।

"खण्डेलवाल-हितैषी" की राय—

"खण्डेलवाल-हितैषी" के विद्वान् सम्पादक बाबू राधावल्लभजी जसोरिया, वकील, महोदय "वैराग्यशतक" पर लिखते हैं—

"कुछ ही मास हुए कि, बाबू हरिदासजी वैद्य के अनुवाद किये हुए "वैराग्य शतक" की समालोचना "हितैषी" में भी प्रकाशित हुई थी। उसकी क़दर हिन्दी-संसार में इस ज़ोर के साथ हुई कि, कुछ ही महीनों में उसके दूसरे संस्करण की आवश्यकता उपस्थित होगई और अनुवादक महोदय ने भी विशेष परिश्रम करके जो दूसरा संस्करण निकाला है, उसमें बहुत सी नवीनता बढ़ाकर पुस्तक को पहले से भी अधिक उप-

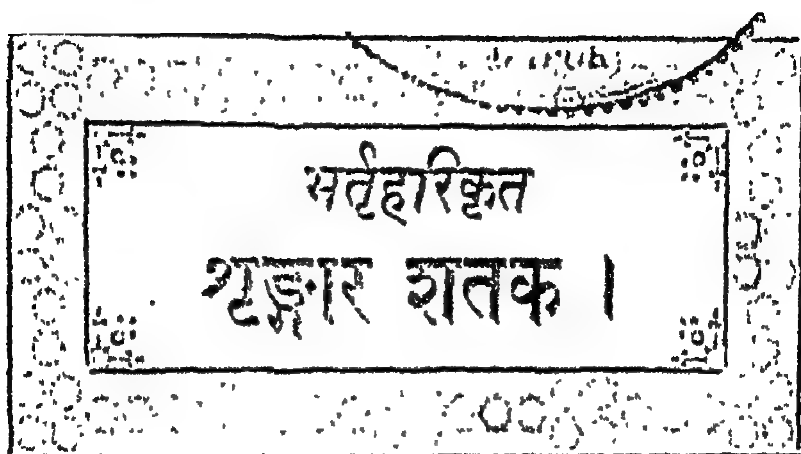
योगी और चित्ताकर्षक बना दिया है। इस पुस्तक में अनेक विद्वानों, महात्माओं और कवियों के हृदयस्पर्शी, मार्मिक वाक्यों को मौक़े-मौक़ेसे बड़ी ही उत्तमता के साथ संग्रह करके, अँगूठी में नगीने की तरह जड़ दिया है। पुस्तक क्या है, उपदेशामृत का स्रोत बहा दिया है। पढ़ने से मनमें पवित्रता और आत्म-शक्ति का सञ्चार होता है। संसार के अनुचित विषय-भोगों से, दुःख-दाई मलीन वासनाओं से चित्त शुद्ध होकर, सच्चे शान्ति-सुख के मार्ग को खोज पाता है। मनुष्य-जन्म सार्थक करने की शिक्षा मिलती है। यह बात बराबर लक्ष्य में रक्खी गई है कि, साधारण हिन्दी पढ़े भी पुस्तक से पूरा लाभ उठा सकें, इसीलिये इसकी भाषा बड़ी ही सरल रक्खी गई है और गूढ़ प्रश्नों का आशय बड़ी ही सुगमता से समझाया गया है। पुस्तक में बहुत से नेत्र-रञ्जक चित्र स्थान-स्थान पर ऐसे सजा दिये गये हैं, जो स्वयं अपने भावको हृदय पर अङ्कित करते हुए एक निराली दिलचस्पी पैदा करते हैं। आरम्भ में महात्मा भर्तृहरि का जीवन-चरित्र मय चित्रों के दिया गया है।

पटना के 'देश' की राय—

विहार प्रान्त के प्रमुख नेता, विहार के गांधी, श्रीमान् बाबू राजेन्द्र प्रसादजी एम० ए०, एम० एल० महोदय "देश" में लिखते हैं:—

"भर्तृहरिके 'शतक' संस्कृत-साहित्यके अनमोल रत्न हैं। भर्तृहरिजी महाराजके तीनों अनमोल रत्न—तीनों शतकोंका कोई अच्छा संस्करण न होनेसे, न तो उनका प्रचार ही वैसा

हो रहा था और न जनताका उनसे कुछ उपकार ही हो रहा था। अब कलकत्तेकी प्रसिद्ध हरिदास कम्पनीने उन तीनों श्लोंका हिन्दी-अनुवाद नये रङ्ग-रूपमें प्रकाशित कर, हिन्दी-साहित्यका बड़ा भारी अभाव दूर कर दिया है। इस समय वैराग्य शतक हमारे सामने है। इसमें प्रत्येक श्लोक का हिन्दी अनुवाद, फिर उसकी विशद सरल व्याख्या, कठिन श्लोकके भाव समझानेके लिए छोटी-छोटी कहानियाँ, पद्यानुवाद और अन्तमें अँग्रेजी अनुवाद दिए गए हैं। संस्कृतके गूढ़ार्थ, श्लोकोंके भाव सुगमताके साथ समझाने के लिए अनुवादकने बड़े परिश्रमके साथ अत्यन्त सफल प्रयत्न किया है। सांसारिक सुखमें डूबे हुए भारतको, अपने प्राचीन गौरव-पूर्ण स्थान पर पहुँचाने के लिये, अपने आदर्श पर संसार को ले चलने के लिये और दुनियादारी के दुःखनद से संसार का उद्धार करने के लिये, ज़रूरत है, कि प्रत्येक भारतवासी इस पुस्तक की एक एक कापी अपने घर में उसी तरह रख कर इसका अध्ययन-मनन करे, जिस तरह वह वेदों, उपनिषदों या गीता की पुस्तकें रखता है, और उनका अध्ययन और मनन करता है। पुस्तक का यह दूसरा संस्करण है और इसमें चित्रों तथा पृष्ठों की संख्या पहले संस्करण से ड्योढ़ी-दुगनी कर दी गई है। भावपूर्ण श्लोकों पर दिए हुए भावमय चित्र, कट्टर से कट्टर विषयी और संसारी मनुष्यों को भी धर्म-पथ पर खींच लाते हैं। इसके उपदेश विषय की आग से जले हुए मनुष्यों के लिए चोटीली मार का और ईश्वर-विमुख मनुष्यों के लिए धर्मोपदेश का काम देंगे। आशा है, इस पुस्तक का प्रचार "देश" के पाठक-समाज में भली भाँति होगा।"



शम्भुस्वयम्भुहरयो हरिणेक्षणानां,
येनाक्रियन्त सततं गृहकर्मदासाः ।
वाचामगोचरचरित्रविचित्रिताय,
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ॥१॥

जिन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को, मृगनयनी कामिनियों के घर का काम-धन्धा करने के लिये, दास बना रक्खा है, जिन के विचित्र चरित्रों का वर्णन वाणी से किया नहीं जा सकता,—उन पुष्पायुध भगवान् कामदेव को हमारा नमस्कार है ॥१॥

भगवान् कामदेव की विचित्र महिमा का पार नहीं । आप के अजीब-अजीब कामों का बखान जबान से कौन कर सकता है ?



यद्यपि आप का शस्त्र फूलों का धनुर्बाण है; तथापि आप ने अपने इसी हथियार से त्रिलोकी को अपने अधीन कर रक्खा है। औरों की क्या चलाई, स्वयं जगत् के रचने वाले ब्रह्मा, पालने वाले विष्णु और संहार करने वाले शिवजी तक को आपने बाक़ी नहीं छोड़ा। इन तीनों देवताओं को भी आपने, घर का काम-धन्धा करने के लिये, कुरङ्गनयनी सुन्दरी कामिनियों का गुलाम बना दिया है। यद्यपि भगवान् कामदेव भगवान् विष्णु के पुत्र हैं, पर आप अपने पिता से भी बढ़ गये। "गुरु गुड़ रहे और चेला चीनी हो गये" वाली कहावत आपने चरितार्थ की। आपने स्वयं अपने पिता पर ही हाथ साफ़ किये। उन्हें ही अनेक कुएँ झँकवाये। अपने पिता से लक्ष्मी और रुक्मिणी प्रभृति की गुलामी करवा कर ही आपको सन्तोष नहीं हुआ। आपने उन्हें परनारी व्रजबालाओं तक की मुहब्बत में पागल सा कर दिया। यहाँ तक कि, उन से मालिन और मनिहारिन तक के स्वाँग भरवाये। एक बार बेचारों को जलन्धर-पत्नी वृन्दा के यहाँ भेष बदल कर जाने तक पर मजबूर किया और शेष में उन का फ़जीता करवाया।

पूर्ण योगी, श्मशान-वासी शिवजी तक को आपने नहीं छोड़ा। बेचारों को शैलसुता का क्रीत-दास बना दिया, यहाँ तक तो ख़ैर थी। आपने एक बार उन की सारी सुध-बुध हर ली और मोहिनी के पीछे इस बुरी तरह से दौड़ाया कि, हम से तो लिखा तक नहीं जाता। एक और मौक़े पर शिवजी समाधि में



लीन थे। वहीं वन में मृत्युलोक-वासिनी चन्द मृगलोचनी परम सुन्दरी युवतियाँ, अपनी रूपच्छटा से वन को प्रकाशमान करती हुई, क्रीड़ा कर रही थीं। उनके अपूर्व रूप-लावण्य को देख कर, शिवजी का शान्त मन अशान्त हो गया—उन के भोगने के लिये मचल पड़ा। शिवजी, सारा शम-दम भूल, काम के वश हो, उन के पीछे दौड़े। आप अपनी शक्ति से उन्हें आकाश में ले गये और उन से भोग-विलास करने लगे। पीछे गिरिजा महारानी को जब आपकी करतूत मालूम हुई, तो उन्होंने क्रोध में भर स्त्रियों को तो नीचे पटका और भोले भण्डारी को डाँट-डपट कर कैलाश में लाईं और ऊँच-नीच समझा कर फिर समाधि में लगाया।

कई बार आपने चार मुँह वाले, सृष्टि के रचयिता, ब्रह्मा को भी अपने जाल में फँसा लिया. सुनते हैं, विधाता ने एक बार तो अपनी निज पुत्री तक के पीछे दौड़ कर अपनी घोर बदनामी कराई। इस के सिवा, एक वार ब्रह्माजी शान्तनु नामक ऋषि के पास किसी काम से गये। उन ऋषि की स्त्री अमोघा अनुपम सुन्दरी थी; पर थी पतिव्रता। उस समय ऋषि घर पर न थे। अमोघा ने आप के बैठने के लिये एक आसन बिछा दिया और पूछा—"भगवन् आप किस लिये पधारे हैं?" विधाता ने कहा—"कुछ जरूरी काम है, पर उन्हीं से कहूँगा।" ये बातें करते-करते ही आपका मन अमोघा पर मचल गया। आपको कामदेव ने ऐसा व्याकुल किया कि, आपका······वहीं आसन

पर निकल गया। आप शर्मिन्दा होकर चुपचाप चले आये। ज़रा देर बाद ही शान्तनु ऋषि भी आ गये। उन्होंने आसन को देख कर सारा हाल पूछा! अमोघा ने सारा वृतान्त ज्यों-का-त्यों निवेदन कर दिया। सुनते ही ऋषि बोले—"धन्य कामदेव! तुम्हारी शक्ति-सामर्थ्य की सीमा नहीं, जो तुमने जगत् के रचयिता ब्रह्माजी को भी मोहित कर दिया।"

सुरपति और गौतमनारी अहिल्या की बात को कौन नहीं जानता? अहिल्या परमा सुन्दरी थी। देवराज का मन उस पर चल गया। आपने उस से मिलने के बहुत कुछ दाँव-पेच लगाये, पर वह हाथ न आयी। तब आपने एक दिन तीन चार बजे रात को वहाँ जाने का विचार स्थिर किया; क्योंकि उस समय ऋषि गङ्गास्नान को चले जाते थे। आपने चन्द्रमा को साथ लिया; अतः चन्द्रमा ने मुर्गा बन कर द्वार पर कुकड़ूँ कूँ कुकड़ूँ कूँ करना आरम्भ किया। ऋषि समझे कि, अब रात का अवसान हो चला। वे उठ कर नहाने चले गये। देवराज उनका रूप धर घर में घुस गये और बातें बना कर मनमानी की। इतने में ऋषि भी स्नान करके आ गये। उन्होंने इन्हें और अहिल्या दोनों को श्राप दिया। अहिल्या पत्थर की हो गई और इन्द्र के शरीर में भग-ही-भग हो गई।

पुराणों में ऐसी-ऐसी अनेक कथाएँ भरीं पड़ी हैं। हमने, नमूने के तौर पर, तीन-चार यहाँ लिख दी हैं। किसी ने ठीक ही कहा है:—

कामेन विजितो ब्रह्मा, कामेन विजितो हरिः ।

कामेन विजितः शम्भुः, शक्रः कामेन निर्जितः ॥

अर्थात् कामदेव ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सुरेश—इन चारों को जीत लिया। जब भगवान् कामदेव ने देवों-देवों को ही अपने वश में कर के, मन माने नाच नचाये, तब और किस की कही जाय? सारांश यह, भगवान् कामदेव सब से अधिक बलवान् हैं; इसी से कवि महोदय, सब देवताओं को छोड़ भगवान् कामदेव को ही नमस्कार करते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों में से एक गोथे नामक महा पुरुष कहते हैं:—Cupid is ever a rogue, and whoever trusts him is deceived. कामदेव सदा छल करता है, जो उसका विश्वास करता है, वह धोखा खाता है। कोई कुछ कहे, हम तो यही कहेंगे कि, ख़ूबसूरती में बड़ा दमखम है। ख़ूबसूरती पुरुष को अपनी ओर उसी तरह खींचती है; जिस तरह चुम्बक पत्थर लोहे को खींचता है। पोप महोदय ने कहा भी है—"Beauty draws us with a single hair." सुन्दरता एक बाल के द्वारा भी हमको अपनी ओर खींच सकती है। चैनिङ्ग महोदय भी कहते हैं—"Beauty is an all-pervading presence." सौन्दर्य की सर्वत्र सत्ता है। मतलब यह है, कि पुरुष सौन्दर्य का दास है। जिस में भी, बक़ौल लावेल महाशय के "Earth's noblest thing-a women perfected." साध्वी स्त्री संसार का सर्वोत्तम पदार्थ है; अतः ऐसे

सर्वोत्तम पदार्थ से प्रेम करना और प्रेमवश उसकी ग़ुलामी करना, कोई बुरी बात भी नहीं है। हाँ, प्रेम-क्षेत्र के बाहर की ग़ुलामी बेशक बुरी है; क्योंकि जे० जी० हॉलैण्ड महोदय कहते हैं:—"Duty, especially out of the domain of love, is the veriest slavery in the world." प्रेम-क्षेत्र के बाहर जो कर्त्तव्य किये जाते हैं, वे घृणित से भी घृणित ग़ुलामी से बुरे हैं। तात्पर्य यह है कि, अपनी सती-साध्वी स्त्री या माशूक़ा की ग़ुलामी में दोष नहीं; बशर्त्ते कि, वह सच्ची पतिव्रता हो। सती स्त्री अपने पति की आज्ञा पालन कर के, उसे हर तरह से सन्तुष्ट कर के, उस पर अपना प्रभाव—रौब जमा लेती है। लेब्रर महोदय कहते हैं:—"A chaste wife acquires an influence over her husband by obeying him." साध्वी स्त्री अपने पति की आज्ञा पालन कर, उस पर अपना प्रभाव जमा लेती है। जब एक दूसरे की हर तरह से ख़ातिर करता है; उसको प्यार की नज़र से देखता हुआ, उसके लिये अपना तन-मन न्यौछावर करता है; तो दूसरा ऐसा कौन होगा, जो बदला चुकाने में घाटा रक्खेगा? बस, हमारे विष्णु भगवान् जो लक्ष्मी के घर का काम-धन्धा करते हैं और शिव जी गिरिजा रानी की सेवकाई करते हैं, उस में दोष ही क्या है? क्योंकि लक्ष्मी और पार्वती दोनों ही रूप, यौवन और लावण्य की खान, प्रथम श्रेणी की पतिपरायणा और तन-मन से पति सेवा करने वाली हैं। अब रही उन की बात; जो पराई ख़ूबसूरत

रमणियों का दासत्व स्वीकार करते हैं। उनके दासत्व में सच्चा प्रेम और पवित्रता नहीं, केवल सौन्दर्य का प्रभाव है। सौन्दर्य अपने दर्शकों को मदिरा की तरह मतवाला कर देता है और वे उसी नशे के वश हो, अपने होश-हवास खो, अपनी माशूक़ाओं की गुलामी करने लगते हैं। कामदेव स्त्रियों का चाकर है, वे जिन्हें अपना शिकार चुनती हैं, जिन्हें अपने अधीन करने की आज्ञा देती हैं, वह उन्हीं को अपने पुष्पायुध से क़ाबू में कर के, अपनी स्वामिनियों के हवाले कर देता है। कामदेव ही नहीं, स्वयं परमात्मा स्त्रियों की इच्छानुसार चलता है। अँगरेजी में एक कहावत है:—"What woman wills, God wills." जो स्त्री चाहती है, वही परमात्मा चाहता है। स्त्री और परमात्मा की एक ही इच्छा है।

दोहा।

विधि हरि हरहु करत हैं, मृगनैनी की सेव।
वचन अगोचर चरित गति, नमो कुसुमसर देव ॥१॥

सार—कामदेव ने त्रिलोकी को स्त्रियों का गुलाम बना रक्खा है।

1. I bow to that Lord Kamdeva (Cupid) who has flowers for his weapon, whose wonderful actions are beyond the power of speech and by whom Shambhu, the self-born (Brahma) and Hari have been rendered constant servants of the deer-eyed women to discharge their house-hold duties.



स्मितेन भावेन च लज्जया भिया,
पराङ्मुखैरर्द्धकटाक्षवीक्षणैः ।
वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया,
समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः ॥२॥

मन्द-मन्द मुस्कराना, लजाना, भयभीत होना, मुँह फेर लेना, तिरछी नज़र से देखना, मीठी-मीठी बातें करना, ईर्षा करना, कलह करना और अनेक तरह के हाव-भाव दिखाना,— ये सब स्त्रियों में पुरुषों के बन्धन में फँसाने के लिये ही होते हैं, इस में सन्देह नहीं ॥२॥

स्त्रियों में हाव-भाव या नाज़-नख़रे स्वभाव से ही पैदा हो जाते हैं। ये हाव-भाव या नाज़-नख़रे पुरुषों के मोहित करने या बन्धन में बाँधने के लिये उन के ब्रह्मास्त्र हैं। पुरुष उन की रूपच्छटा की अपेक्षा उन के हाव-भावों पर जल्दी मुग्ध होता है। उन के हाव-भाव उसके दिल पर नक़्श हो जाते हैं। उन्हें वह दिन-रात याद किया करता है। पुरुष को वशीभूत करने के लिये, स्त्रियाँ उसको देख कर, होठों में हँसती या मुस्कराती हैं; कभी परले सिरे की लाज करती हैं और कभी बेहयाई; कभी किसी से डरने का सा नाट्य करती हैं; कभी उसकी ओर नज़र भर देखती हैं और कभी देख कर मुँह फेर लेती हैं; कभी तिरछी नज़र से देखती हैं और कभी उस को अच्छी तरह से देख या घूर कर झट से घूँघट कर लेती हैं; कभी किसी बहाने से घूँघट को हटा कर अपना चन्द्रानन उसे फिर दिखा देती हैं और

फिर शीघ्र ही घूँघट कर लेती हैं; कभी चलती-चलती राह में ठहर कर, अपने पैर का जेवर बिछुआ प्रभृति ठीक करने लगती हैं। कभी कहती हैं—"तुम उस स्त्री के यहाँ क्यों गये? मैं तुम से न बोलूँगी।" पुरुष बोलना चाहता है तो कहती हैं—"वहीं जाओ, मुझ से क्या काम है? वह बड़ी सुन्दरी है, मैं उस के मुक़ाबिले में किस काम की हूँ?" इत्यादि। पुरुष यदि चूमना चाहता है, तो एक अजीब आन-बान और अदा के साथ उस के मुँह के पास से अपना मुँह हटा लेती हैं। अगर वह स्तनों पर हाथ डालता है, तो एक अजीब अदा से उस के हाथ को झटक देती हैं, जिस से बुरा भी न मालूम हो और पुरुष उल्टा मर मिटे। अगर पुरुष किसी दूसरी के यहाँ चला जाता है या उस से और कोई अपराध हो जाता है, तो झट आँखों में आँसू भर लाती हैं। उन आँसूओं में कामियों को जो मजा आता है,* उसे लिख कर बता नहीं सकते। बातें करती हैं, तो निहायत मीठी-मीठी और ऐसी रस-घुली कि, पुरुष उन की बातों पर ही कुर्बान हो जाता है। कहाँ तक लिखें, स्त्रियों में जवानी के समय अनन्त हाव-भाव आप ही पैदा हो जाते हैं। वे उन्हें कोई सिखाने नहीं जाता। जेवर स्त्रियों के रूप को हजार गुणा बढ़ा देते हैं, तो नखरे उसे लाख गुणा बढ़ा देते हैं।

---

* Beauty's tears are lovelier than her smiles:—Campbell. सुन्दरी के आँसू उस की मुसक्यान की अपेक्षा प्यारे लगते हैं।

एक बार इतिहास-प्रसिद्ध लोक-विमोहिनी नूरजहाँ,* बचपन में, अपनी माँ के साथ, बादशाही महलों में गई। उस समय नूरजहाँ को मेहरुन्निसा कहते थे। जहाँगीर† भी लड़का ही था। उसे उन दिनों सलीम कहते थे। सलीम को कबूतर उड़ाने का शौक़ था। शाहज़ादे के हाथ में दो कबूतर थे। वह उन्हें किसी को पकड़ा, और कबूतर दरबे से निकालना चाहता था। पास ही मेहर खड़ी थी। शाहज़ादे ने कहा—"मेहर! ज़रा हमारे कबूतरों को तो अपने हाथों में पकड़े रहो।" मेहर ने कहा—"बहुत अच्छा, लाइये।" शाहज़ादे ने मेहर को कबूतर थमा दिये और आप आगे दरबे की ओर चला गया। इतने में एक कबूतर किसी तरह मेहरुन्निसा के हाथ से उड़ गया। शाहज़ादे ने आकर पूछा—"हमारा एक कबूतर कहाँ?" मेहर ने कहा—"वह तो उड़ गया।" शाहज़ादे ने पूछा—"कैसे उड़ गया?" मेहर ने उस समय भोली-भाली, पर एक अजीब अदा के साथ हाथ का दूसरा कबूतर भी छोड़ते हुए कहा—"शाहज़ादे! ऐसे उड़ गया!" शाहज़ादे का दिल आज के पहले मेहरुन्निसा पर नहीं था; पर इस वक्त की एक अदा ने शाहज़ादे को मेहरुन्निसा का ग़ुलाम बना दिया। आज-पीछे वह मेहर को जन्म-भर न भूला। उस ने मेहरुन्निसा को अपनी बीबी बनाने के लिये

* नूरजहाँ—संसार को प्रकाशित करने वाली ज्योति। मुग़ल-सम्राट् जहाँगीर की मशहूर बेगम का नाम है।

† जहाँगीर—विश्वविजयी; भारत का एक सम्राट्।

बड़ी कोशिशें कीं, पर उसे कामयाबी न हुई; क्योंकि बादशाह एक मामूली सरदार की लड़की से हिन्दुस्तान के शाहज़ादे की शादी करना उचित न समझते थे। उन्होंने झगड़ा मिटाने को मेहर की शादी शेर अफ़ग़ान के साथ कर दी। सलीम का वश न चला; पर वह मेहर को भूला नहीं। जब वह तख़्तेशाही पर बैठा, उस ने मेहर को बंगाल से मँगवा कर, उस के कोमल क़दमों में अपना ताजशाही रख दिया और सदा को उस का ग़ुलाम होना क़बूल किया! देखा पाठक! स्त्री के एक नखरे ने क्या काम किया?

हम स्त्रियों के हाव-भाव और नाज़ो-अदाओं पर मर मिटने वालों के चन्द नमूने नीचे देते हैं। एक साहब फ़रमाते हैं:—

मैं तो उसी झिझक पै फ़िदा हूँ, कि कान को।
शब क्या हटा लिया, मेरे लाकर दहन के पास॥—ज़ौक़

मुझे उन का वह हाव कितना अच्छा मालूम हुआ कि, उन्होंने अपने कान को मेरे मुँह के पास ला कर हटा लिया। इस अदा पर मैं फ़िदा हो गया।

और भी:—

ऐ ज़ौक़, मैं तो बैठ गया, दिल को थाम कर।
इस नाज़ से खड़े थे वह, रक्खे कमर पै हाथ॥—ज़ौक़

जिस अन्दाज से वह कमर पर हाथ रक्खे खड़े थे—ज़ौक़! मैं तो उन्हें देख कर दिल थाम कर बैठ गया; नहीं तो दिल चला ही था।

महाकवि नज़ीर ने नाज़नियों की चुलबुलाहट का सीधी-सादी भाषा में कैसा चटकीला चित्र खींचा है। ज़रा उस की भी चाशनी देखिये:—

ये राह चलने की चुलबुलाहट,
कि दिल कहीं है, नज़र कहीं है।
कहाँ का ऊँचा, कहाँ का नीचा,
ख़याल किस को, क़दम की जाका।
लड़ायें आँखें, वो बेहिजाबी,
कि फिर पलक-से-पलक न मारे।
नज़र जो नीचे करे तो गोया,
खुला सरापा चमन हया का।
ये चञ्चलाहट ये चुलबुलाहट,
ख़बर न सर की, न तन की सुध-बुध।
जो चीरा बिखरा, बला से बिखरा,
न बन्द बाँधा, कभू क़बा का।

मैंने एक छोटी उम्र की नाज़नी देखी, वह अपनी राह-राह चली जाती थी, पर उस के चलने में ग़ज़ब की चुलबुलाहट थी। उस का दिल कहीं था और उस की आँखें कहीं थीं। उसे ऊँचे-नीचे स्थानों तक का ख़याल न था। यह भी ध्यान नहीं था कि, पैर कहाँ पड़ते हैं।

वह वेश्या जब आँखें लड़ाती थी, तो इस तरह लड़ाती थी कि, पलक-से-पलक न लगाती थी और अगर नजर को नीची करती थी, तो ऐसा मालूम होता था, मानों हया और शर्म का चमन ही खुल गया है।

उस में ऐसी चञ्चलाहट और चुलबुलाहट थी, कि न उसे अपने सर की ख़बर थी और न शरीर की सुध-बुध थी। सिर से ओढ़नी उतर गई है तो उतर गई, परवा नहीं। कुरती का बन्द खुला पड़ा है, तो खुला ही पड़ा है।*

दोहा।

रस में त्योंही रोष में, दरशत सहज अनूप।
बोलन चलनि चितौनि में, वनिता बन्धन-रूप॥२॥

सार—स्त्री हर हालत में मर्द को प्यारी लगती है। उसका बोलना चालना और देखना प्रभृति प्रत्येक काम पुरुष को बन्धन में बाँधता है।

---

* यों तो चञ्चलता और चुलबुलाहट उठती जवानी की सभी स्त्रियों में होती है; पर ऐसी चुलबुलाहट, जिसका मजे़दार चित्र मियाँ नज़ीर ने खींचा है, कुल-वधुओं में नहीं देखी जाती और वह भी राह में। हाँ, ऐसी चुलबुलाहट कुल-बधुओं में भी देखी जाती है, पर शादी हो जाने के दो-चार वर्ष बाद और अपने घर में—अपने पति के सामने; जबकि उनकी लज्जाशर्म और संकोच-भय प्रभृति दूर हो जाते हैं। हमारी समझ में, यह चित्र किसी कमसिन वाराङ्गना का है।

2. Gentle smile, emotions, bashfulness, timidity, the turning of face, the side-long casting of glances, speech, jealousy, quarrel and gesture (—these) are the various qualities by which the women become the chains for men.

भ्रूचातुर्याकुञ्चिताक्षाः कटाक्षाः,
स्निग्धा वाचो लज्जिताश्चैव हासाः ।
लीलामन्दं च स्थितं प्रस्थितं च,
स्त्रीणामेतद्भूषणं चायुधं च ॥३॥

चतुराई से भौंहें फेरना, आधी आँख से कटाक्ष करना, मधु-जैसी मीठी-मीठी वातें करना, लज्जा के साथ मुस्कराना, लीला से मन्द-मन्द चलना और फिर ठहर जाना प्रभृति भाव स्त्रियों के आभूषण और शस्त्र हैं ॥३॥

स्त्रियाँ कभी अपनी कमान-सी भौंहों को टेढ़ी करती हैं, कभी आँखें चलाती हैं, कभी लज्जा का भाव दिखाती हुई मन्द-मन्द मुस्कराती हैं, कभी शरीर तोड़ती हैं, कभी अँगड़ाई लेती हैं, कभी उँगलियाँ चटखाती हैं, कभी उझक-उझक कर देखती हैं, और कभी मुँह फेरकर दूसरी ओर देखने लगती हैं, जिस से पुरुष समझे कि यह मेरी ओर नहीं देखती; कभी घूंघट मार लेती हैं और कभी उसे खोल देती हैं—ये सब स्त्रियाँ क्यों करती

हैं ? केवल अपना सौन्दर्य बढ़ाने और पुरुषों को अपने ऊपर फ़िदा कर के, उन से मनमाने नाच नचवाने के लिये। पुरुषों को अपने अधीन करने के लिये, अबलाओं के पास तलवार, बन्दूक़ या बाण नहीं होते। उन को ईश्वर ने ये ही अमोघ अस्त्र दिये हैं, बन्दूक़, तलवार और मैशीनगन जो काम नहीं कर सकतीं, वह काम ये अस्त्र करते हैं। किसी से भी पराजित न होने वाले और बड़े-बड़े शूरवीर योद्धाओं को बात-की-बात में धराशायी करने वाले बहादुर स्त्रियों के अस्त्रों की मार से, अपने होश-हवास खोकर, उन के दास बन जाते हैं।

छप्पय।

करत चातुरी भौंह, नयनहू नचत चितैबो।
प्रगटत चित को चाव, चावसों मृदु मुसकैबो।
दुरत मुरत सकुचात, गात अरसात जम्हावत।
उझकत इत उत देख, चलत ठिठकत छबिछावत।
ए आभूषण तियन के, अंगमाहिं शोभा धरन।
अरु येही शस्त्र-समान हैं, पुरुष-मन-मृग बस करन ॥३॥

सार—स्त्रियों के हाव-भाव पुरुषों के मारने के लिये अस्त्र और उनका सौन्दर्य्य बढ़ाने के लिए आभूषण हैं।

3. The skilfulness in turning the brows, the casting of oblique glances, sweet talk, smiling with shyness, walking slowly by gestures and stopping at intervals (these) are the ornaments as well as the weapons for women.

क्वचित्सुभ्रूभङ्गैः क्वचिदपि च लज्जापरिणतैः
क्वचिद्भीतित्रस्तैः क्वचिदपि च लीलाविलसितैः ॥
नवोढानामेतैर्वदनकमलैर्नेत्रचलितैः
स्फुरन्नीलाब्जानां प्रकरपरिपूर्णा इव दिशः ॥४॥

कामी पुरुषों को, कभी सुन्दर भौंहों से कटाक्ष करने वाली, कभी शर्म से सिर नीचा कर लेने वाली, कभी भय से भीत होने वाली, कभी लीलामय विलास करने वाली, नवीन व्याही हुई कामिनियों के मुखकमलों की ख़ूबसूरती बढ़ाने वाले नीलकमलों के समान चञ्चल नेत्रों से दशों दिशाएँ पूर्ण दीखती हैं ॥४॥

हाल की व्याही हुई नववधुओं में कमान-सी भौंहों से कटाक्ष करना, कभी लाज के मारे सिर नीचा कर लेना, कभी भय से भीत होना, कभी अन्य प्रकार के नख़रे करना—ये सब स्वभाव से ही होते हैं। प्रथम तो इस उम्र में सुन्दरता आप ही बढ़ जाती है; फिर उनके नख़रे और नीलकमल से चञ्चल नेत्र उन की ख़ूबसूरती को और भी बढ़ा देते हैं। कामी पुरुषों को, जिन के मन में इन के चञ्चल नेत्र अपना घर कर लेते हैं–हर ओर,

इनके चञ्चल नेत्र-ही-नेत्र दिखाई देते हैं; अर्थात् उनका मन इनके नीलकमलवत् सुन्दर नेत्रों में ही जा बसता है; जिसमें जिसका दिल जा बसता है, उसे वही-वह दीखता है। चूँकि कामियों की आँखों में कमसिन, अल्पवयस्का, नवविवाहिता कामिनियाँ समा जाती हैं; अतः उन्हें हर ओर, जहाँ तक उनकी दृष्टि जाती है, वही-वह दिखाई देती हैं।

किसी ऐसी ही उठती जवानी की कम-उम्र परी की खूबसूरती का चित्र महाकवि नज़ीर ने क्या ही कारीगरी से खींचा है:—

पलकों की झपक, पुतली की फिरत, सुरमे की लगावट वैसी ही।
ऐयार नज़र, मक्कार अदा, त्योरी की चढ़ावट वैसी ही ॥१॥
वह अँखियाँ मस्त नशीली सीं, कुछ काली सीं, कुछ पीली सीं।
चितवन की दाग़, नज़रों की कपट, सीनों की लड़ावट वैसी ही ॥२॥
वह रात अँधेरी बालों सी, वह माँग चमकती बिजली सी।
ज़ुल्फ़ों की खुलत, पट्टी की जमत, चोटी की गुँधावट वैसी ही ॥३॥
वह छोटी-छोटी सख़्त कुचैं, वह कच्चे-कच्चे सेब ग़ज़ब।
अँगिया की भड़क, गोटों की चमक, बन्दों की कसावट वैसी ही ॥४॥
वह चञ्चल चाल जवानी की, ऊँची ऐड़ी नीचे पञ्जे।
कफ़्शों की खटक, दामन की झटक, ठोकर की लगावट वैसी ही ॥५॥
कुछ हाथ हिलें, कुछ पाँव हिलें, फड़कें बाज़ू थिरकै सब तन।
गाली वो चला, ताली वो सितम, उँगली की नचावट वैसी ही ॥६॥

चञ्चल अचपल, मटके-चटके, सर खोले-ढाँके हँस-हँस के।
क़ह-क़ह की हँसावट और गज़ब, ठट्ठों की उड़ावट वैसी ही ॥७॥
हर वक़्त फ़बन हर आन सजै, दम-दम में बदलें लाख सजैं।
बाहों की झपट, घूँघट की अदा, जोबनकी दिखावट वैसी ही ॥८॥

पाठक! मनचले पाठक! आप ही विचारिये, इस आनबान और खूबसूरती वाली को कौन भूल सकता है? जो इन स्त्री-रत्नों की क़द्र जानने वाले हैं, उनकी नज़रों से इनके नीलकमल की आभा रखने वाले नीलम-से नेत्र कभी उतर ही नहीं सकते। उन्हें तो हर ओर नीलम या नील-कमल ही नील-कमल फूले दीखते हैं और वे मन-ही-मन उनकी अनुपम छटा को याद कर-करके प्रसन्न होते हैं।

छप्पय।

कबहुँ भौंहको भंग, कबहुँ लज्जायुत दरसत।
कबहुँक ससकत संकि, कबहुँ लीलारस बरपत।
कबहुँक मुख मृदुहास, कबहुँ हित बचन उचारत।
कबहुँक लोचन फेर, चपल चहुँ ओर निहारत।
छिन-छिन सुचरित्र विचित्र करि, भरे कमल जिमि दशहुँदिशी।
ऐसी अनूप नारी निरख, हरपत रहिये दिवस-निशी ॥४॥

सार—जिस तरह ब्रह्मज्ञानियों को हर ओर ब्रह्म-ही-ब्रह्म दीखता है; उसी तरह कामियों

को हर ओर नवबधुओं के नीलकमल के समान चंचल नेत्र-ही-नेत्र दीखते हैं। जिसकी आँखों में जो समा जाता है, उसे वही-वह दीखता है।

4. What with the turning of her beautiful brows, what with her gentle bashfulness, what with her fearfulness and what with her playful gestures, the face of a young woman, having moving eyes with all the above qualifications, appears like a lotus (with black bees hovering on it).

वक्त्रं चन्द्रविकासि पङ्कजपरीहासक्षमे लोचने,
वर्णः स्वर्णमपाकरिष्णुरलिनीजिष्णुः कचानाञ्चयः।
वक्षोजाविभकुम्भसंभ्रमहरौ गुर्वी नितम्बस्थली,
वाचो हारि च मार्दवं युवतिषु स्वाभाविकं मंडनम् ॥५॥

चन्द्रमा के समान प्रकाशमान मुख, कमलकी मसख़री करनेवाले दोनों नेत्र, सुवर्णकी दमकको फीकी करनेवाली शरीर की कान्ति, भौंरोंके पुञ्जको जीतनेवाले केश, गजराजके गण्ड-स्थलकी शोभाका अपमान करनेवाली दोनों छातियाँ, विशाल नितम्ब—चूतड़, मनोहर वाणी और कोमलता—नज़ाकत—ये सब स्त्रियोंके स्वाभाविक भूषण हैं ॥५॥

खुलासा—चन्द्रमा के समान मुख, कमल को लजाने वाले नेत्र, कनक की आभा को मलीन करने वाली देहकी कान्ति, भौरों

की पंक्तियों को पराजित करने वाली अलकें, गजराज के गण्ड-स्थलों को लजाने वाले स्तनद्वय, फूलों की कोमलता को मात करने वाली नज़ाकत, मृगमद को नीचा दिखाने वाली मुख की सुवास —ये सब स्त्रियों के स्वाभाविक आभूषण या क़ुदरती ज़ेवर हैं। तात्पर्य्य यह है, कि स्त्रियाँ स्वभाव से ही बड़ी सुन्दरी होती हैं। इनकी असाधारण सुन्दरता और अनूप रूप पर किसका मन लहालोट नहीं हो जाता ? इनकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर ही लोग इनके क्रीत-दास हो जाते और दुःख-सुखकी परवा न कर, दिन-रात इनके लिये परिश्रम करते हैं।

छप्पय।

करत चन्द्र इव विशद बदन, अद्भुत छवि छाजत।
कमलन विहँसित नैन, रैन-दिन प्रफुलित राजत।
करत कनक द्युतिहीन, अंग-आभा अति उमगत।
अलकन जीते भौंर, कुचन करि-कुम्भ किये हत।
मृदुता मरोर मारे सुमन, मुख-सुवास मृगमद कदन।
ऐसो अनूप तिय-रूप लखि, छाँहधूप नहिं गिनत मन ॥५॥

सार—नाना प्रकार के हाव-भाव स्त्रियों के नाना प्रकार के अस्त्र हैं। इनसे ही वे पुरुषों को अपने वशमें करतीं और अपना ग़ुलाम बनाती हैं।

5. The natural ornaments of a woman are her face which puts to shame even the moon, her eyes which laugh at the lotuses, the colour of her body which dims even the lustre of gold, her hair which surpasses in beauty the swarm of bees, her breast that outstrips the beauty of the forehead of an elephant, the two big hips and the sweet voice which attracts the mind.

स्मितं किञ्चिद्वक्त्रे सरलतरलो दृष्टिविभवः,
परिष्यन्दो वाचामभिनवविलासोक्तिसरसः ।
गतीनामारम्भः किसलयितलीलापरिकरः,
स्पृशन्त्यास्तारुण्यं किमिह न हि रम्यं मृगदृशः ॥६॥

उठती जवानीकी मृगनयनी सुन्दरियोंके कौन काम मनोमुग्धकर नहीं होते ? उनका मन्द-मन्द मुस्कराना, स्वाभाविक चञ्चल कटाक्ष, नवीन भोग-विलासकी उक्तिसे रसीली बातें करना और नख़रेके साथ मन्द-मन्द चलना—ये सभी हाव-भाव कामियोंके मनको शीघ्र ही वशमें कर लेते हैं ॥६॥

जवानीमें क़दम रखने वाली, उठती जवानीकी मृगनयनी सुन्दरियोंका धीरे-धीरे हँसना, स्वभावसे चञ्चल नेत्र चलाना, मीठी-मीठी रसीली बातें करना और नख़रे एवं अजीब नाज़ो-अदा के साथ धीरे-धीरे क़दम रखकर चलना—ये हाव-भाव कामी पुरुषोंके होश-हवास ख़ता कर, उनको इनका ग़ुलाम बना देते हैं; अर्थात् कामी पुरुष स्त्रियों के इन हाव-भाव और नाज़ो-

अदाओंको देख-देखकर, अपनी सुध-बुध खो, पागलसे हो जाते और इनकी इन अदाओं पर न्यौछावर होकर सदाको इनके क्रीत-दास हो जाते हैं।

दोहा।

मन्द हसन तखि नयन, सरस वचन सविलास।
गजगमनी रमणी निरख, को न करे अभिलाष ? ॥६॥

सार—नवीना युवतियोंके हृदयहारी हाव-भावों पर न मर मिटनेवाला पुरुष कोई विरली ही महतारी जनती है।

6. Is not everything charming in a lotus-eyed woman just verging on her youth ? Say the gentle smile on her face, the casting of her restless eyes, talking sweetly in different new charming modes, walking by gestures and with slow steps like that of new leaves.

द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशां प्रेमप्रसन्नं मुखं,
घ्रातव्येष्वपि किं तदास्यपवनः श्राव्येषु किं तद्वचः।
किं स्वाद्येषु तदोष्ठपल्लवरसः स्पृश्येषु किं तत्तनु-
र्ध्येयं किं नवयौवनं सुहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमः ॥७॥

रसिकोंके देखने-योग्य क्या है ? मृगनयनी कामिनियोंका प्रेमपूर्ण प्रसन्न मुख। सूँघने-योग्य क्या है ? उनके मुँहकी भाफ। सुनने-योग्य क्या है ? उनके वचन। स्वादिष्ट पदार्थ क्या है ?

उनके ओष्ठपल्लवका रस। छूने-योग्य क्या है? उनका कोमल शरीर। ध्यान करने योग्य क्या है? उनका नवयौवन और विलास ॥७॥

मनुष्य के पाँच इन्द्रियाँ होती हैं:—(१) आँख, (२) नाक, (३) कान, (४) जीभ, और (५) त्वचा। आँख का काम देखना, नाक का सूँघना, कान का सुनना, जीभ का चखना और त्वचा का स्पर्श करना है। आँख रूप देखना चाहती है, नाक सुगन्धित पदार्थ सूँघना, कान रसीली बातें सुनना, जीभ सुस्वादु पदार्थ चखना और त्वचा कोमल वस्तु छूना चाहती है। कामी पुरुषों की पाँचों इन्द्रियों की सन्तुष्टि के लिये, भगवान् ने एक सुन्दरी नारी ही पैदा कर दी है। मतलब यह कि, रसिकों की पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की सन्तुष्टि के सामान एक कामिनी में ही मौजूद हैं। मृगनयनियों के सुन्दर मुख आँखों के देखने के लिये हैं। उनके मुँह की सुगन्धित भाफ़ नाक के सूँघने के लिये है। उनके मिश्रीसे भी मीठे और मधुर वचन कानोंके सुननेके लिये हैं। उनके नीचले होठका अमृत-समान स्वादिष्ट रस जीभके चखनेके लिये है और चमड़ेको छूकर सुखी होनेके लिये उनका मखमलसे भी कोमल शरीर या उनके पैरों के तलवे हैं तथा ध्यान करने के लिये उनकी नयी जवानी और उनकी नाज़ोअदा हैं। सारांश यह कि, सारे सुख एक सुन्दरी ही में मौजूद हैं।

अगर कोई यह कहे कि, नहीं जी, यह सब कवियोंकी लीला—उनके बढ़ावे हैं; तो हम यही कहेंगे कि, आप उनसे



पूछिये, जिन्होंने इन सबका आनन्द अनुभव किया या इनका मज़ा उठाया है। जिसने उनका चन्द्रमाके समान प्रेमरससे पूर्ण मुख देखा है, वही कह सकता है कि, उनका मुख देखनेसे रूप देखनेकी इच्छुक नेत्र-इन्द्रियकी तृप्ति होती है या नहीं। जिसने मृगमद—कस्तूरीको भी मात करनेवाली उनके मुखकी सुगन्धका मज़ा लिया है, वही कह सकता है कि, उस सुगन्ध से बढ़कर और भी कोई सुगन्ध नासिकाकी तृप्ति करनेवाली है या नहीं। जिसने उनके मख़मलकी भी नरमीको मात करनेवाले शरीर या पैरों के तलवों पर हाथ फेरे हैं, वही कह सकता है कि, यह बात कहाँ तक सच है। जिसने उनकी मधुर और रसीली एवं कानोंमें अमृत ढालनेवाली बातें सुनी हैं, वही कह सकता है कि, उनकी मीठी-मीठी बातों में क्या मज़ा है। जिसने उनके रूप, यौवन और हाव-भाव तथा विलासोंका ध्यान किया है, वही कह सकता है कि, उनके ध्यान में कैसा आनन्द है। जिसने ब्रह्मका ध्यान किया है, वही कह सकता है कि, ब्रह्मके ध्यानमें वह आनन्द है, जिसकी समता त्रिलोकीके और किसी आनन्दमें नहीं है। जिसने ब्रह्मका ध्यान ही नहीं किया, वह ब्रह्मानन्दके वर्णनातीत आनन्दकी बातको क्या जाने? जिसने अनुपम सुन्दरी मृगनयनीके होठोंसे होठ लगाकर अमृत पिया है, वही कह सकता है कि, सुन्दरीके नीचले होठमें अमृत है या नहीं। महाकवि नज़ीर कहते हैं और ठीक ही कहते हैं:—



जिसके गोरे-गोरे स्तनों पर मोतियों के हार झूल रहे हैं ; नूपुर-रूपी हंस जिसके चरण कमलों में मधुर-मधुर शब्द कर रहे हैं—ऐसी मनोमोहिनी काम-मद से मतवाली नारी किसका मन वश में नहीं कर लेती ?

(पृष्ठ २७)

सागिरके लबसे पूँछिये, इस लब की लज्जतें।
किस, वास्ते, कि खूब समझता है लब की लब॥

उसके ओठों का स्वाद प्यालेके ओठों से पूछिये; क्योंकि ओठों की बात ओठ ही समझता है।

छप्पय।

कहा देखिये योग्य ? प्रियाको अति प्रसन्न मुख।
कहा सूँघिये सोधि ? श्वास सौगन्धि हरत दुख।
कहा दीजिये कान ? प्राणप्यारी की बातन।
कहा लीजिये स्वाद ? अधरके अमृत अघातन।
परसिये कहा ? ताको सुवपु, ध्यान कहा ? जोवन सुछवि।
सब भाँति सकल सुखको सदन, जान, सुयश गावत सुकवि॥७॥

सार—एक सुन्दरी कामिनी में पुरुष की सारी इन्द्रियों की तृप्तिका मसाला है।

7. For lovers what is the best sight worth seeing ? The lovely and beautiful face of a lotus-eyed woman. What is the best thing worth smelling ? The vapour of her mouth. What is the best thing for hearing ? Her sweet voice. What object has the best taste ? The enjoyment of her leaf-like lips. What is best among the objects of touch ? Her body. And what is the best thing for meditation ? Her youth and the pleasure arising from it.

एताः स्खलद्वलयसंहतिमेखलोत्थ-
झङ्कारनूपुररवाहृतराजहंस्यः ।
कुर्वन्ति कस्य न मनो विवशं तरुण्यो
वित्रस्तमुग्धहरिणीसदृशैः कटाक्षैः ॥८॥

चञ्चल कङ्गन, ढीली कौंधनी और पायज़ेबोंके घुँघरुओंकी मधुर झङ्कारसे राजहंसों को शरमानेवाली नवयुवती सुन्दरियाँ, भयभीत हिरनीके समान कटाक्ष करके, किस के मन को विवश नहीं कर देतीं ? ॥८॥

कर्धनी और पायजेब प्रभृति अलङ्कारों के मधुर-मधुर शब्दों-से राजहंसनियों का निरादर करने वाली नवयुवतियाँ, जब भड़की हुई भोली हिरनीकी तरह, अपनी तीखी नज़र का तीर चलाती हैं, तब बड़े-बड़े बहादुर उनके वशीभूत होकर उनकी ग़ुलामी करने लगते हैं। मनुष्य तो कौन चीज़ है, देवता तक ऐसी कामिनियोंके कटाक्ष-बाणों से पराजित हो जाते हैं। अब इनकी निगाहके तेज़ तीरसे जो परास्त न हो, अपनी रक्षा कर ले, उसे हम क्या कहें, सो हमारी समझ में नहीं आता। भोले-भाले पाठक ! इनके कटाक्षों की मारको मामूली मार न समझें। महाकवि दाग़ कहते हैं और ठीक ही कहते हैं:—

तीर तेरा मिज़गाँसे बढ़कर नहीं।
कुछ खटकते हैं, इसी नश्तरसे हम ॥

तेरी भौंहों में जो काट है, वह तेरे तीर में नहीं। इसीलिये मुझे तीरसे तेरे भौंह-रूप नश्तरका हर समय खटका लगा रहता है। मतलव यह है कि, तीरकी मारका इलाज है; पर कामिनीके कटाक्ष-बाणका इलाज नहीं।

दोहा।

नूपुर किंकन किंकिणी, बोलत अमृत-बैन।
काको मन नाहिं बस करत, मृगनैनिनके नैन ? ॥८॥

सार—नाज़नियोंके निगाहे-तीरसे न घायल होने वाला करोड़ों में कोई एक होता हो, तो होता हो !

8. Which mind is there that does not go out of control by the casting of the eyes like that of a frightened hind of the young woman, the sounds of whose restless bracelets and the waist-chain and the tinklings of whose anklets defeat the sweet sound of swans even.

कुङ्कुमपङ्ककलङ्कितदेहा गौरपयोधरकम्पितहारा।
नूपुरहंसरणत्पदपद्माकं न वशीकुरुते भुवि रामा ॥९॥

जिसकी देह पर केसर लगी है, जिसके गोरे-गोरे स्तनों पर हार झूल रहा है और नूपुररूपी हंस जिसके चरणकमलोंमें

मधुर-मधुर शब्द कर रहे हैं,—ऐसी सुन्दरी इस पृथ्वी पर किसके मनको वशमें नहीं कर लेती ? ॥६॥

खुलासा—जिसकी देह पर केसर लगी है, जिसके सघन पीनपयोधरों पर मोतियों का हार धीरे-धीरे हिल रहा है, जिसके कमल-जैसे चरणोंसे बाजेकी मधुर-मधुर झंकार निकल रही है, वह सुन्दरी इस जगत्‌में किसीको भी अपने अधीन किये बिना नहीं छोड़ती; जो उसकी नज़रों-तले आता है, वही उसका ग़ुलाम हो जाता है। परन्तु जो पुरुष ऐसी मनो-मोहिनी नारी के वशमें नहीं होता, उसके रूप-लावण्य और नाजो-अदाँ पर नहीं मर मिटता, वह सच्चा शूरवीर और मोक्ष का अधिकारी है।

दोहा।

हार हलें कुच कनक लग, केशर-रंजित देह।
नूपुर-ध्वनि पदकमलकी, केहि न करें वस येह ? ॥६॥

सार—जिनके गोरे-गोरे बदन पर केसर लगी है, जिनकी नारंगियोंसी सुगोल छातियों पर मोतियोंके हार हिल रहे हैं और जिनके चरण-कमलों की पायज़ेबोंसे छमा-छमकी मीठी-मीठी मनोहारिणी आवाज़ें आती हैं, वे मृगनयनी किसे अपने वश में नहीं कर लेतीं ?

9. Whose minds are not overpowered on this earth by such beautiful women, whose body is decorated by saffron and sandal and on whose white breasts garlands are hung and in whose lotus-like feet anklets sound like swans ?

नूनं हि ते कविवरा विपरीतबोधा,
ये नित्यमाहुरबला इति कामिनीनाम् ।
याभिर्विलोलतरतारकदृष्टिपातैः,
शक्रादयोऽपि विजितास्त्वबलाः कथं ताः ॥१०॥

स्त्रियोंको "अबला" कहनेवाले श्रेष्ठ कवियोंकी बुद्धि निश्चय ही उल्टी है। भला, जो अपने नेत्रों के चञ्चल कटाक्षोंसे महाबली इन्द्रादिक देवताओंको भी मार लेती हैं, वे "अबला" किस तरह हो सकती हैं ? ॥१०॥

जो कोमलाङ्गी कामिनियाँ, विना किसी अस्त्र-शस्त्रके, अपनी दृष्टिमात्रसे, जगत्-विजयी योद्धाओंकी तो बात ही क्या है, त्रिलोकीका पलक मारते संहार कर डालनेकी शक्ति रखने वाले शङ्कर और महाबली इन्द्रादिक देवताओंको भी अपने वशमें करके, मनमाने नाच नचानेकी शक्ति रखती हैं, और उन्हें अपने इशारोंपर नचाती हैं, उन्हें "अबला" कहने वाले कवि निश्चय ही पागल हैं—उनकी मति मारी गई है। सबलाओंको अबला कहने वाले यदि मूर्ख नहीं, तो क्या अक्लमन्द हैं ?

दोहा ।

कामिनिको अबला कहत, ते नर मूढ़ अचेत ।
इन्द्रादिक जीते दृगन, सो अवला किहि हेत ? ॥१०॥

सार—स्त्रियाँ अपनी एक नज़रसे भूतलके ज़बर्दस्त-से-ज़बर्दस्त योद्धाको पराजित कर सकती हैं, इसलिये उन्हें "अबला" कहना भूल है ।

10. Those great poets who have called women powerless have surely thought just in the opposite way. How can they be said to be so whose casting of the moving eye-lids subdues even Indra and others ?

नूनमाज्ञाकरस्तस्याः सुभ्रुवो मकरध्वजः ।
यतस्तन्नेत्रसंचारसूचितेषु प्रवर्तते ॥१३॥

कामदेव निश्चय ही सुन्दर भौंहवाली स्त्रियोंकी आज्ञा पालन करनेवाला चाकर है; क्योंकि जिनपर उनके कटाक्ष पड़ते हैं, उन्हींको वह जा दबाता है ॥११॥

खुलासा—निस्सन्देह, कामदेव सुन्दर भौंहवाली स्त्रियोंकी आज्ञा के वशवर्त्ती होकर चलने वाला सेवक है। वह उनके इशारों पर चलता है। जिसकी ओर वे सैन कर देती हैं; वह उन्हींको जा मारता है। अव्वल तो स्त्रियाँ स्वयं ही बलवती होती हैं। अपने ही कटाक्षोंसे बड़े-बड़े शूरवीरोंके छक्के

छुड़ा सकती हैं; फिर कामदेव उनके हुक्ममें है, यह और भी ग़ज़बकी बात है। ऐसी स्त्रियोंसे कौन अपनी रक्षा कर सकता है ? केवल वही उनसे बच कर रह सकता है, जो उनके दृष्टिपथमें न आवे। शायद इसीलिये, मोक्ष-कामी पुरुष मनुष्यों की बस्तियाँ छोड़ कर, निर्जन वनोंमें जाकर, आत्मोद्धारकी चेष्टा करते हैं; क्योंकि वनमें न कामिनी होंगी और न वे अपने सेवक कामदेव को पञ्चशर चलाकर अपना शिकार मारने का हुक्म देंगी।

दोहा।

कामिनि हुक्मी काम यह, नैन सैन प्रगटात।
तीन लोक जीत्यो मदन, ताहि करत निज हात ॥११॥

सार—कामदेव स्त्रियों का सेवक है।

11. Surely Kamdev (Cupid) is the obedient servant of women, because he, at once overpowers that man who is made their mark.

केशा संयमिनः श्रुतेरपि परं पारङ्गते लोचने,
चान्तर्वक्त्रमपि स्वभावशुचिभिः कीर्णं द्विजानां गणैः।
मुक्तानां सतताधिवासरुचिरं वक्षोजकुम्भद्वयं-
चेत्थं तन्वि वपुः प्रशान्तमपि ते क्षोभं करोत्येव नः॥१२॥

ऐ कृशाङ्गि ! हे नाज़नी ! तेरे बाल साफ़-सुथरे और सँवारे हुए हैं, तेरी आँखें बड़ी-बड़ी और कानों तक हैं, तेरा मुख

स्वभाव से ही स्वच्छ और सफेद दन्तपंक्तिसे शोभायमान है, तेरे कुचोंपर मोतियोंके हार झूल रहे हैं; पर तेरा ऐसा शीतल और शान्तिमय शरीर भी मेरे मनमें तो विकार ही उत्पन्न करता है, यह अचम्भे की बात है ! ॥१२॥

नोट—इस श्लोकमें जो "संयमिन, श्रुतेरपि, द्विजानां और मुक्तानां" शब्द आये हैं, उनके दो-दो अर्थ हैं। उनके इस्तेमाल से कवि महोदय ने अपूर्व चमत्कार दिखाया है। इसी से इस श्लोक के दो अर्थ होगये हैं। एक अर्थ ऊपर लिखा ही है, और दूसरा नीचे लिखते हैं; पर पहले उन शब्दों के दो-दो अर्थ बता देना उचित समझते हैं:—संयमिन = सँवारे हुए और जितेन्द्रिय। श्रुतेरपि = कानों तक पहुँचे हुए और वेद-शास्त्र-पारङ्गत, काननचारी और वनचारी। द्विजानां = दाँत, ब्राह्मण। मुक्तानां = मोती और मुक्त पुरुष।

दूसरा अर्थ।

हे कृशाङ्गि ! ऐ नाज़नी ! तेरे बाल जितेन्द्रिय हैं; तेरे नेत्र वेदशास्त्र-पारङ्गत और काननचारी हैं, तेरा मुख पवित्र है और उसमें ब्राह्मणों का निवास है, तेरी छातियों पर मुक्त पुरुषों का निवास है; इसलिये तेरा शरीर सतोगुणका धाम है; अतः उसे शीतल और शान्तिमय होना चाहिये ; पर, है उल्टी बात। तेरे सतोगुणी शरीरसे मुझे शान्ति मिलनी चाहिये ; पर उससे मेरे मनमें उल्टी अशान्ति या क्षोभ अथवा अनुराग उत्पन्न होता है, यह आश्चर्य की बात है !

छप्पय ।

संयम राखत केश, नयनहूँ काननचारी ।
मुख माँहि पवित्र रहत, द्विजगन सुखकारी ।
उस पर मुक्ताहार, रहत निशिदिन छवि छायो ।
आनन चन्द-उजास, रूप उज्ज्वल दरसायो ।
तेरो तन तरुणी! मृदुल अति, चलत चाल धीरज-सहित ।
सब भाँति सतोगुणको सदन, तऊ करत अनुराग चित ॥१२॥

नोट—इस कवितासे भी दूसरा अर्थ साफ समझमें आता है। तेरे बाल संयमी हैं, नेत्र काननचारी हैं, मुखमें पवित्र सुखकारी ब्राह्मणोंका निवास है, छातियों पर मुक्त पुरुषोंका हार है, मुख चन्द्रमाके समान है, शरीर नाज़ुक है, तू धीमी-धीमी चाल चलती है,—इन सब लक्षणोंसे तेरा शरीर सतोगुणका घर है। सतोगुणी शरीरसे विकार या क्षोभ उत्पन्न हो नहीं सकता; फिर भी, तेरा शरीर अनुराग पैदा करता है, यह अचम्भे की ही बात है।

सार—स्त्रीका शरीर, सब तरहसे सतोगुणी, शीतल और शान्तिमय होनेपर भी, पुरुष के मनमें क्षोभ ही करता है।

12. O women, of slender constitution, (you) whose hair is well controlled, whose eyes are outstretched up to ears, whose mouth is filled with naturally clean teeth and on whose breasts pearls are always shining, though your this frame is full of calmness yet it disturbs us.*

* The reference in this shloka have double meanings. Sanyami—means controlled as will as bound;

मुग्धे धानुष्कता केयमपूर्वा त्वयि दृश्यते ।
§यथा हरसि चेतांसि गुणैरेव न सायकैः ॥१३॥

हे मुग्धे सुन्दरी ! धनुर्विद्यामें ऐसी असाधारण कुशलता तुझमें कहाँसे आई कि, बाण छोड़े बिना, केवल गुण से ही, तू पुरुप के हृदयको वेध देती है ? ॥१३॥*

हे कमसिन भोली-भाली नाज़नी ! तैंने ऐसी ग़ज़बकी तीरन्दाज़ी किससे सीखी, जो बिना तीर चलाये ही, केवल कमान की डोरी छूकर ही, तू मर्द के दिल को छेद देती है ?

उस्ताद ज़ौक ने कहा है:—

तुफ़ंगा तीर तो ज़ाहिर, न था कुछ पास क़ातिलके ।
इलाही फिर जो दिल पर, ताकके मारा तो क्या मारा ? ॥

Shruti—means Vedas as well as ears; Dwija—means Brahmins as also teeth; Mukta—means liberated souls as well as pearls. In the body of a beautiful girl we find the hairs well bound up—this is control; eyes stretched up to ears—and the other meaning is it goes beyond the knowledge of Vedas; mouth full of beautiful teeth—the other meaning is that venerable Brahmins are connected with it; breast adorned by pearls—the other meaning is even the liberated souls are connected with it. Hence taking one side of the meaning—we find that woman whose body is thus full of signs of calmness is also very attractive and disturbing to us.

§"यदा विध्यसि" पाठान्तरम् । * गुण = (१) चतुराई, (२) रस्सी, जिससे धनुपके दोनों कोटि बाँधे जाते हैं ।

बड़ा आश्चर्य्य है, उसके पास न तीर था न पिस्तौल। पर हे परमेश्वर, उसने मेरे दिल पर फिर क्या चीज़ ताककर मारी, जो मैं लोट-पोट हो गया ?

मौलाना "हाली" कहते हैं:—

था कुछ न कुछ, कि फाँस सी इक दिल में चुभ गई।
माना कि उसके हाथमें, तीरो सनां न था॥

महाकवि "ग़ालिब" कहते हैं:—

इस सादगी पै कौन न मरजाये ऐ ख़ुदा!।
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं॥

दोहा।

अति अद्भुत कमनैत तिय, करमें बाण न लेत।
देखो यह विपरीत गति, गुण तें बेधे देत॥१३॥

सार—स्त्रियोंके पास कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं रहता, वे केवल अपनी चतुराईसे ही पुरुषोंको वशमें कर लेती हैं, यह अचम्भेकी बात है।

13. O beautiful girl, how nice is your skilfulness in the use of the bow, because you do not pierce the heart of men by arrows, but by only bending the bow (in other words, by your charms only).

सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु ताराखीन्दुषु ।
विना मे मृगशावाक्ष्या तमोभूतमिदं जगत्॥१४॥

यद्यपि दीपक, अग्नि, तारे, सूर्य और चन्द्रमा सभी प्रकाशमान पदार्थ मौजूद हैं, पर मुझे एक मृगनयनी सुन्दरी विना सारा जगत् अन्धकारपूर्ण दीखता है ॥१४॥

खुलासा—यद्यपि दीपक-चिराग़, आग, सितारे, सूरज और चाँद—जैसे सदा थे, वैसे ही अब भी हैं; ये जिस तरह पहले अन्धकार नाश करके उजियाला करते थे, उसी तरह अब भी कर रहे हैं; परन्तु मुझे तो एक मृगनयनी प्यारी विना सर्वत्र अँधेरा-ही-अँधेरा नज़र आता है। तात्पर्य्य यह है कि, घरमें सब कुछ होने पर भी, एक स्त्री विना घर शून्य निर्जन वनसा मालूम होता है।

पण्डितेन्द्र महाराज जगन्नाथ अपने "भामिनी-विलास" में कहते हैं:—

हरिणीप्रेक्षणा यत्र गृहिणी न विलोक्यते ।
सेवितं सर्व सम्पद्भिरपि तद्भवनं वनम् ॥

जिस घरमें मृगनयनी गृहिणी नहीं दीखती, वह घर—सर्व सम्पत्तिसम्पन्न होने पर भी—वन है।

सच है, घरमें चाहे पुत्र हों, पुत्र-बधुएँ हों, नौकर-चाकर और दास-दासी हों, हाथी-घोड़े और रथ-पालकी प्रभृति सभी

ऐश्वर्य्यके सामान हों ; पर एक हिरनीके से नेत्रों वाली प्यारी न हो ; तो वह घर, सर्व सम्पदायें होने पर भी, निर्जन वनकी तरह शून्य है। संसार में घर-गृहस्थीका सच्चा आनन्द सुन्दरी प्राणप्यारीसे ही है। महाकवि "नज़ीर" कहते हैं:—

मै भी है, मीना भी है, साग़िर भी है, साक़ी नहीं ।
दिलमें आता है, लगादें आग मैख़ानेको हम ॥

इस समय सारे कामोद्दीपन करनेवाले ऐश-आरामके सामान—सुरा सुराही आदि मौजूद हैं; पर है क्या नही? केवल वही, जिसके लिये इन सब वस्तुओं की आवश्यकता हुई। इससे अब हौली ऐसी बुरी जान पड़ती है कि, जी चाहता है कि, इसमें आग लगादूँ ; अर्थात् सब कुछ मौजूद है, पर एक नाज़नी नहीं है ; इससे मुझे सब बुरे लगते हैं। स्त्री बिना सारे आनन्द फीके हैं।

जिन्होंने स्त्रीका सुख नहीं भोगा, जिन्हें स्त्री-रत्नकी क़ीमत नहीं मालूम, जो नारी-रहस्यको नहीं जानते,जो स्त्री को पैर की जूती-मात्र समझते हैं,वे हमारी इन बातोंको पढ़ कर हँसेंगे—हमें स्त्री-दास या स्त्रैण अथवा जोरूका ग़ुलाम कहेंगे। जो जिसकी क़ीमत जानता है, वही उसकी क़द्र करता है। मोती बहुमूल्य होता है, पर भीलनी उसे पाकर फैंक देती और जौहरी उसे हृदय से लगा लेता है। जो जिसके रहस्य को जानता है, वही उसके सम्बन्ध में कुछ कह सकता है। मौलाना "हाली" ठीक ही कहते हैं:—



हक़ीक़त महरमे असरार से पूछ।
मज़ा अँगूर का मैख़्वार से पूछ॥
दिले महजूर से सुन लज़्ज़ते वस्ल।
निशाते आफ़ियत बीमार से पूछ॥

जो सब तरह की बातें जानता है, तत्त्वज्ञ या रहस्यज्ञ है, उसीसे तत्त्व की बात पूछनी चाहिये। अंगूर में क्या मज़ा है, यह अंगूरी शराब पीने वालेसे पूछना चाहिये। वही उस विषयमें कह सकता है।

जिस दिलने माशूक़ासे मिलनेके लिए अनेक तरहकी तकलीफें उठाई हैं, उसीसे वस्लका मज़ा या मिलनेके आनन्दकी बात पूछनी चाहिये। जिस रोगीने अनेक तरहके कष्ट उठाकर आरोग्य लाभ किया है, वही तन्दुरुस्ती की क़ीमत जानता है।

हमें भी स्त्रियोंके सम्बन्धमें थोड़ा-बहुत अनुभव है, हमने उनके संयोग और वियोग दोनों ही देखे हैं, उनकी सेवा-शुश्रूषाओंसे सुखी और उनकी मन्त्रणाओंसे लाभान्वित हुए हैं, अतः हम भी जोरके साथ कहते हैं:—निश्चय ही, स्त्री-बिना संसारके सभी सुखैश्वर्य्य अलौने—फीके और बेमज़े हैं। स्त्री, ईश्वरके संसार-रूपी बग़ीचे का, सर्वोत्तम फूल है। उसीसे ईश्वरकी सृष्टिकी शोभा है। अगर स्त्री न होती, तो यह जगत् अन्धकारपूर्ण, निर्जन और भयानक होता। जिस करोड़पतिके घरमें सती स्त्री नहीं है, उसका घर साक्षात् श्मशान है और जिस दरिद्रीके घरमें पतिव्रता, लज्जावती और मधुरभाषिणी

-स्त्री है, उसका घर नन्दन-कानन है। देखिये, संसार के प्राचीन और अर्वाचीन विद्वानों और महापुरुषोंने नारी जातिके सम्बन्ध में क्या कहा है :—

स्त्री-महिमा ।

हे स्त्री! स्वर्गमें क्या है, जो तुझमें नहीं? अद्भुत ज्योति, सत्य, अनन्त सुख और अनादि प्रेम—सभी तुझमें हैं। आट् वे।

स्त्री इस संसारका रमणीक प्रदेश है। इस प्रदेशमें विश्वास-तरु लहलहा रहे हैं; आनन्दके फूल खिल रहें हैं, हर्ष-विहग कलरव कर रहे हैं तथा निवृत्ति और विश्वासकी नदियाँ वह रही हैं। यहाँ शोरोगुलका नाम भी नहीं है। लार्ड वैरन।

स्त्री पुरुषका आधा श्रेष्ठ भाग है*। पुरुष जबतक शादी नहीं करता, अधूरा रहता है। स्त्री एक तरहका तीर्थ है। विधाता हमें

---

* हमारे भगवान् मनु ने भी यही बात कही है। उन्होंने कहा है कि, विधाता ब्रह्माने अपने शरीरके दो भाग कर, आधे अंशसे पुरुष और आधे से स्त्री को पैदा किया। अँगरेज़ी में स्त्री को Better-half कहते हैं।

पुरुषका नाम मनु और स्त्रीका नाम शतरूपा हुआ। अंगरेज़ों और मुसलमानों के यहाँ भी लिखा है कि, पहले आदम पैदा हुआ और फिर हव्वा (Adam and Eve)। मनुसे मनुष्य शब्द और आदमसे आदमी शब्द बना। संसारका पहला पुरुष मनु या आदम था और पहली स्त्री शतरूपा या हव्वा थी। इन्हींसे जगत् की उत्पत्ति हुई। जबतक आदमको हव्वा न मिली, तब तक उसे बाग़े अदन या नन्दनकानन उजाड़से भी बुरा मालूम होता था।

व्यास-संहितामें लिखा है—जब तक विवाह नहीं होता, तब तक पुरुष "अर्द्ध देह" रहता है; विवाह होनेके बाद पुरुष "पूर्ण देह" होता है।

उसकी यात्रा को भेजता है। स्त्री पुण्यात्मा के लिये स्वर्ग है और दुष्टके लिये स्वर्ग-सोपानका पहला पद। स्त्री एक खज़ाना है। जिस पुरुषके पास यह खज़ाना नहीं; वह अपने क़र्ज़ को अदा कर नहीं सकता, यानी अपने पितरोंका ऋण चुका नहीं सकता। शर्ले।

हे स्त्री! तू रातका तारा और प्रातःकालका हीरा है। तू ओस का क़तरा है, जिससे काँटे का मुँह भी मोतियोंसे भर जाता है। वह रात अँधेरी और वह दिन फीका मालूम होता है, जबकि तेरी आँखोंकी रोशनी दिलको ठंडा नहीं करती। हृदय का घाव विना तेरे मधुर ओठोंके अच्छा हो नहीं सकता। विपत्तिमें तू सहायक होती है।

हे अबला! तेरे शरीर और आत्मामें एक जादू है। जिधर हम जाते हैं उधर तेरी ज्योति हमें राह दिखाती है। चाहे गरम-से-गरम और चाहे शीतल-से-शीतल देश हो, अगर तू वहाँ मौजूद है, तो वहाँ भी आनन्द ही है। टामस मोर।

सलाह या मशवरः करनेके लिए स्त्री पुरुषसे अच्छी है। जब-कभी किसी मामूली सी बातसे मेरा दिल घबरा उठता है, तब स्त्रीकी मदद मिलनेसे मुझे ऐसा मालूम होता है, मानों यह बात ऐसी नहीं है, जिससे मुझे दुःखी होना पड़े। (स्त्री सलाह देनेमें इतनी होशियार क्यो ?) पुरुषको हर चीज़ से काम पड़ता है, उसे वहुत से झंझटोंका सामना करना पड़ता है, इसलिए वह छोटी-छोटी बातों से घबरा उठता है। लेकिन स्त्री इतने झंझटों से सम्बन्ध नहीं रखती, वह तटस्थ पुरुषकी तरह हरेक बातको

बाहरसे देखती रहती और उनके यथार्थ मूल्यको जानती है; इसीसे वह उलझनको सहजमें सुलझा सकती है: शास्त्रोंके पढ़नेमें* वह मर्दोंसे कम हो तो हो, पर उसकी नैसर्गिक प्रज्ञा—स्वाभाविक बुद्धि अत्यन्त सूक्ष्म होती है। जेम्स नार्थ कोट।

पतिव्रता स्त्री ईश्वरकी सृष्टिकी उत्तम-से-उत्तम औषधियोंमें सर्वश्रेष्ठ है। वह पतिके लिए देवता और सारे गुणोंकी मूर्ति है। वह पतिका बहुमूल्य हीरा और जवाहिरातका खजाना है। उसकी आवाजमें मधुरता और उसके मुस्करानेमें आनन्द है। उसकी भुजा उसकी शरण और उसकी तन्दुरुस्तीकी दवा है। उसकी मिहनत, उसकी दौलत और उसकी किफ़ायतशारी उसका लायक़ मुन्तज़िम है। उसके होठ उसके मन्त्री और उसकी प्रार्थना उसकी सर्वोत्तम सहायिका है। जरमी टेलर।

तुमने कई बार देखा होगा कि, जिस सवालको तुम घण्टोंमें भी हल नहीं कर सकते, उसे औरतें क्षणभरमें हल कर देती हैं और उनका जवाब निहायत दुरुस्त और सही होता है।

निस्सन्देह सारे संसारका आनन्द "भार्या" शब्दमें है। दिनभरके काम-धन्धों और झगड़ोंसे निपटकर, जब मर्द रातको घरमें आता है, तब उस थके हुएको आग जलती हुई मिलती है, खाना तैयार रहता है और प्रेममयी पत्नी हँसती हुई उसका स्वागत या इस्तक़बाल करती है। घरमें आनन्दकी ज्योति फैल जाती है। नौवेलिस।

* शास्त्रोंके पढ़नेमें भी स्त्री पुरुषसे कम नहीं; आजकल देखते हैं, स्त्रियाँ भी एम० ए०, बी० ए० और वकालत वगैरः पास करती हैं।



हे स्त्री! दिलकी बेहोशीको रोकना तेरा ही काम है। जब आश्वासनकी जरा भी उम्मीद नहीं रहती, तब दुःखको बँटाना तेरा ही काम है। संसारकी शोभा और जिन्दगीका मजा तुझमें ही है। संसारकी भलाई ही तेरा काम है और उसी परोपकारमें तुझे प्रसन्नता है। —ग्राह्म।

स्त्रीकी दृष्टिमें ईश्वरीय प्रकाश है। वह एक मीठी नदी है। उसीमें पति अपनी प्यास बुझा सकता और अपने शोक-दुःखोंसे छुटकारा पा सकता है। पतिके दुःखमें स्त्री ही एकमात्र शरण और आनन्दका स्थान है। —जरमिटेलर।

पुरुषके जीवनका सोता स्त्रीकी छाती है। वही उसे बात करना सिखाती और वही उसके आँसू पोंछती है। बुरे समय में, जब सब उसे छोड़कर अलग हट जाते हैं, तब, वही उसकी ख़बर लेती और गरम निःश्वासोंको शीतल करती है। लार्ड बैरन।

पतिके लिये स्त्रीके सच्चे प्रेमसे जियादा कुछ भी प्यारा नहीं है। पृथ्वी पर स्त्रीके सच्चे और दृढ़ प्रेमसे बढ़कर सुखदायी चीज़ नहीं। ईश्वरको भी मधुरभाषिणी और पवित्र स्त्रीसे अधिक कोई चीज़ प्यारी नहीं। —राबर्ट दब्रून।

प्रिये! आओ। मेरे पास बैठ जाओ, क्योंकि प्रातःकालीन प्रकाशसे ईश्वरीय ज्योति निकल रही है। प्रार्थना करनेका समय है, पर तुम विना मुझसे प्रार्थना नहीं होती। आओ, दोनों मिलकर प्रार्थना करें। तुम ईश्वरसे मेरा हाल कहना और मैं तुम्हारा कहूँगा। —एलिन कनिङ्घम।

ईश्वर न करे, उसके पतिकी हार हो अथवा वह बीमार हो जावे। पराजित पतिको वह धीरज देगी और रोगार्त्तकी सेवा-शुश्रूषा करेगी। अगर पति नाराज़ हो जायगा, तो वह नाराज़ न होगी; उल्टे उसका हँसता हुआ चेहरा उसके शोकको हरेगा। वह ज़िन्दगी-भर उसकी ख़िदमत करेगी। अगर वह पहले मर जायगा, तो वह उसके कुटुम्बकी ख़बर लेगी, उसके मानको स्थिर और इज़्ज़तको क़ायम रखेगी। उसके चेहरेसे बुद्धि बरसती है और उसकी जीभसे मिहरबानी टपकती है। —विशप हारन।

हे स्त्री! तू धन्य है! तेरा करुणामय हाथ विपद्के भयानक वनमें भी आनन्दके बाग़ लगाता है। जो नीच तुझे केवल क्षण-भर दिल खुश करनेका खिलौना समझता है, उसका दिल मैला है—वह तेरे गुणोंको नहीं जानता। —ब्रैसफर्ड।

संसार-वाटिकामें स्त्री सबसे अच्छा फूल है। उसका लालित्य, उसकी सुगन्ध और मनोहरता विचित्र है। —थैकरे।

समुद्रके भीतरका ख़ज़ाना इतना महँगा नहीं, जितना कि वह आनन्द जो स्त्रीसे पुरुषको मिलता है। —मिल्टन।

सुशीला स्त्री पतिका परम स्नेही मित्र है। उसकी सचाई ईश्वरीय नियमकी तरह अटल है। उसकी पवित्रता दैवी प्रकाश की भाँति निर्दोष है। पति मौजूद रहे या नामौजूद रहे, उसे अपनी स्त्री पर पूरा भरोसा रहता है कि, उसकी प्यारी चीज़ोंको, ख़ासकर उसकी सबसे प्यारी चीज़ अपने तईं, वह रक्षित रखेगी—

जाने न देगी। वह अपने ऐसे विश्वासी मन्त्रीके भरोसे बेफिक्र और निर्भय होकर काम पर जाता है। वह अपने शृङ्गारमें फिजूल-ख़र्ची नहीं करती—सभी कामोंमें किफ़ायतसे काम लेती है। पतिको जिस चीज़की जरूरत होती है, उसेही लाकर हाज़िर कर देती है। सदा उसका भला चाहती है। उसका रत्ती-भर नुक़सान होने नहीं देती। कभी भी उसे शोकार्त्त या रञ्जीदा होने नहीं देती। अगर पतिको शोक होता है तो उसे हर लेती है और अपना विश्वास बढ़ाती रहती है। —बिशप होरन।

संसारमें कोई भी चीज़ नारीसे अधिक सुन्दरी, पवित्रात्मा, विनोदशीला और मनोहर नहीं। —हण्ट।

स्त्रीकी आँखोंमें ईश्वरने दीपक जला रखे हैं, ताकि भूले-भटके पुरुषोंको उन चिराग़ोंकी रोशनीमें स्वर्गकी राह दीख जावे। —विल्लिस।

मामूली नौजवानोंको स्त्रियोंमें कोई गुण न दीखता हो तो न दीखता हो, पर मेरी नज़रमें तो वह देवीसे कम नहीं।

—वाशिङ्गटन आयर्विंग।

जब तक पुरुष पर आफ़त नहीं आती, तब तक उसे अपनी स्त्रीके गुणोंका पता नहीं लगता। विपद् आने पर उसे मालूम हो जाता है कि, उसकी स्त्री सच्ची देवी है। —बेलवर।

कण्टकपूर्ण शाखाको फूल सुन्दर बना देते हैं और ग़रीब-से-ग़रीब घरको लज्जावती युवती स्वर्ग बना देती है।

—गोल्डस्मिथ।

प्रियदर्शनता, विनोदशीलता, प्रज्ञा और प्रभामें पुरुष स्त्रीकी बराबरी नहीं कर सकता। वह विपद्में पड़े हुए पतिकी उदासी और थके हुए की थकान दूर करती और अपने मुस्कराते हुए मुँहसे सारे घरमें आनन्दके फूल बरसाती है। —गिजबोर्न।

जब तक आदमकी शादी नहीं हुई, स्वर्ग उसके लिए काँटोंका घर था। देवताओंका गाना, पक्षियोंका चहचहाना, फूलोंका हँसना और सवेरेकी सुहावनी हवाके झोंके उसे बेमज़े मालूम होते थे। वह उदास फिरा करता था। ज्योंही हव्वा आई, उसका सारा दुःख दूर हो गया और नन्दन कानन आनन्द-भवन हो गया। —कैम्बैल।

अगर संसारमें स्त्री न हो, तो संसार इस तरह सूना और भयानक दीखने लगे जिस तरह वह मेला, जिसमें न तो ख़रीद-फ़रोख्त-क्रय-विक्रय और लेन-देन होता है और न कोई दिल-बहलानेका सामान ही होता है। स्त्रीकी मुस्कराहटके बिना सृष्टि उसी तरह निष्फल और व्यर्थ हो जावे, जिस तरह जीव बिना देह, फलफूल बिना वृक्ष, क़िलेदार बिना क़िला, नींव बिना महल और पतवार बिना नाव। अगर स्त्री नहीं तो प्रेम नहीं और प्रेम नहीं तो आनन्द नहीं। संसारमें जो सुख है वह स्त्रियोंके ही प्रतापसे है। अगर संसारमें कोई प्रकाशकी रेखा है, तो वह इन्हींसे है।

कुत्ता नमकहलाल होता है, स्त्री उससे भी ज़ियादा नमक-हलाल होती है। वह नावकी पतवारसे ज़ियादा पक्की और महलके



सितून या खंभेसे भी अधिक मज़बूत है। नावके टूटजानेवालोंको किनारा जैसा प्यारा होता है, पुरुषके लिये स्त्री वैसी ही प्यारी है। वह सन्तानसे भी ज़ियादा प्यारी और रातके बाद होनेवाले प्रभातसे भी अधिक प्रकाशमान् है। रेगिस्तान या रेतीले जंगलोंमें सफर करनेवाले प्यासों को पानी जैसा प्यारा और मीठा लगता है, पुरुष के लिए स्त्री उससे भी अधिक मीठी और आनन्द-दायिनी है। —यंग।

स्त्रियाँ संसारमें देवताओंकी तरह घूमती हैं। स्वार्थपरता या ख़ुदग़र्ज़ीका तो उनमें नाम भी नहीं। प्रत्युपकारका उन्हें ध्यान भी नहीं। स्त्री पर चाहें जितना भार डालो, हैरान करो, अत्याचार करो, वह न बोलेगी। ऊँट तो ज़ियादा बोझ होनेसे चीख़ता और बलबलाता है, पर स्त्री चूँ नहीं करती। हे ईश्वर! तूने स्त्रीको पुरुषका योग्य साथी बनाया। सच पूछो, तो ईश्वर की सृष्टिमें स्त्री ही सर्वश्रेष्ठ है। उसके चेहरेसे गौरव टपकता एवं सम्मान और स्नेह उसके शासनमें चलते हैं। तूने अपनी अद्भुत शक्तिसे उसे पुरुषोंके दिल कोमल करनेको बनाया, ताकि पुरुषोंके दिल उसे देखकर तेरे भक्तिभावसे पूर्ण हो जावें। मिस बैनट।

विपद्‌की चोटोंसे जब हम बेबस हो जाते हैं और हमारे बन्धु-बान्धव हमें त्याग देते हैं, तब स्त्री ही हमारे दुःखका कारण खोजती है। उसकी मुस्कराहटसे हृदय शीतल हो जाता है।

उसकी मीठी आवाज़ हृदयके तापको मिटा देती और सूखे हृदय को फिरसे हराभरा और तरोताज़ा कर देती है। —गैली नाइट।

स्त्रीकी मर्य्यादा उसके अपरिचित रहनेमें, उसकी प्रभा उसके पतिके सम्मानमें और उसका सुख उसके कुटुम्बके मङ्गल या कल्याणमें है।
—रूसो।

देखा गया है कि, प्रकृतिने नारियोंको स्वयं चिन्ता और क्लेश भोगनेको पैदा नहीं किया। उसने उन्हें हमारी चिन्ताओंके कम करनेको बनाया है।
—गोल्डस्मिथ।

स्त्रियाँ, जिन्होंने अपना विश्वास खो दिया है, उन फरिश्तोंके समान हैं जिन्होंने अपने पंख गँवा दिये हैं। डाक्टर वाल्टर स्मिथ

जॉय नामक एक पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं:—But for women, our life would be without help at the outset, without pleasure in its course and without consolation at the end" अगर स्त्रियाँ न हों, तो पुरुष की बाल्यावस्था असहाय और यौवन आनन्द-विहीन हो जाय तथा बुढ़ापेमें कोई आश्वासन देनेवाला न हो। मतलब यह है कि, पुरुषको हर अवस्थामें स्त्रीकी जरूरत है। ठीक है, जिसके एक सती साध्वी नारी हो, और चाहे कुछभी न हो, वह परम सुखी है।

गोथे महोदय कहते हैं:—"A hearth of one's own and a good wife are worth gold and pearls" निजका घर और साध्वी स्त्री सोने और मोतियोंके बराबर हैं।

बेकन महोदय भी कहते हैं:—"Wives are young men's mistresses, companion for middle age, and



old men's nurses" स्त्रियाँ युवावस्थामें पत्नियोंका, मध्यावस्था में सहचारिणियोंका और बुढ़ापेमें परिचारिकाओं या नर्सोंका काम देती हैं।)

स्पेनवालोंमें एक कहावत है—"To him who has a good wife, no evil can come which he cannot bear." जिस पुरुषके घरमें भली स्त्री है, उस पर कोई ऐसी विपत्ति नहीं आ सकती, जिसे वह सह न सके।

बहुतसे अनजान कहेंगे कि, यूरोपियन लोग तो स्त्रियोंके ग़ुलाम होते ही हैं। उनकी गाई स्त्री-महिमा हमारे किस मसरफ की? ऐसोंके सन्तोषके लिए, हम अपने हिन्दू-शास्त्रों से ही चन्द श्लोक उद्धृत करते हैं। वे आँखें खोलकर देखें, कि हमारे यहाँ भी नारी जातिकी कैसी महिमा गाई गई है:—

महाभारतके आदि पर्वमें लिखा है:—

अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य, भार्या मूलं तरिष्यतः॥
सखायः प्रविविक्तेषु, भवन्त्येताः प्रियम्वदाः।
पितरो धर्मकार्येषु, भवन्त्यार्त्तस्य मातरः॥
भार्यावन्तः क्रियावन्तः, सभार्या गृहमेधिनः।
भार्यावन्तः प्रमोदन्ते, भार्यावन्तः श्रियान्विताः॥
कान्तोरण्यपि विश्रामो, जनस्याध्वनिकस्यवै।
यः सदारः स विश्वास्यस्तस्माद्दाराः परागतिः॥

संसरन्तमपि प्रेतं विषमेष्वेकपातिनं ।
भार्यैवान्वेति भर्त्तारं सततं या पतिव्रता ॥
प्रथमं संस्थिता भार्या पतिं प्रेत्य प्रतीक्षते ।
पूर्वं मृतं च भर्तारं पश्चात्साध्व्यनुगच्छति ॥
दह्यमाना मनोदुःखैर्व्याधिभिश्चातुरा नराः ।
आह्लादन्ते स्वेषु दारेषु घर्मार्ता सलिलेष्विव ॥

स्त्री पुरुषकी अर्द्धांगी है। स्त्री पुरुषका सर्वोत्तम मित्र है। स्त्री धर्म, अर्थ और काम की जड़ है। स्त्री भवसागरसे पार होनेवाले मुमुक्षुओंकी मूल है।

(यह मधुरभाषिणी आफ़तकी जगह मित्र, धर्मके कामोंमें पिता और दुःख आपड़ने पर माँ बन जाती है)।

जिसके स्त्री है वही क्रियावान् है, जिसके स्त्री है वही गृहस्थ है, जिसके स्त्री है वही सुख पाता है और जिसके स्त्री है वही लक्ष्मीवान् है।

वनभूमिमें स्त्री विश्राम या आरामकी जगह है; जिसके स्त्री है वही विश्वासयोग्य है; इसलिये स्त्री परमगति है।

चाहे पति आवागमन या जन्ममरणके चक्रमें फँसा हो, चाहे मर गया हो और चाहे किसी दुर्गम स्थानमें पड़ा हो, स्त्री ही है जो उसके पीछे-पीछे चलती है।

पतिपरायणा स्त्री अगर पहले मर जाती है, तो (स्वर्गमें जाकर) पति की राह देखती है। अगर पति पहले मर जाता है, तो सती उसके पीछे-पीछे जाती है।

मानसिक क्लेशोंसे जलते हुए और रोग-पीड़ित पुरुष अपनी स्त्रियोंसे उतने ही सुखी होते हैं, जितना कि सूरज की किरणोंसे तपा हुआ पुरुष पानी पानेसे आनन्दित होता है।

स्त्री पुरुषका आधा अंग है; उसके विना पुरुष अधूरा है। इस विषयमें "मनु-संहिता"में लिखा है:—

द्विधा कृत्वात्मनो देहम्, अर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यां, स विराजमसृजत् प्रभुः॥

ब्रह्माने अपने शरीरके दो हिस्से करके, आधेसे पुरुष और आधे से स्त्री पैदा की।

"व्यास-संहिता"में भी लिखा है:—

पाटितोऽयं द्विधाः पूर्वम्, एक देहः स्वयम्भुवा।
पतयोऽर्द्धेन चार्द्धेन, पातन्योऽभुवान्नितिश्रुतिः।
यावन्न विन्दते जाया, तावदर्द्धे भवेत्पुमान्॥

ब्रह्माने एक देहके दो टुकड़े करके, आधे भागसे पति और दूसरे आधेसे पत्नियाँ पैदा कीं। इसका प्रमाण वेदमें है। जब तक विवाह नहीं होता, तबतक पुरुष 'अर्द्ध देह' रहता है—शादी होनेके बाद पुरुष 'पूर्णदेह' होता है।

"मनुस्मृति" में ही लिखा है:—

न निष्क्रय विसर्गाभ्याम् भर्तुर्भार्य्या विमुच्यते।
एवं धर्म्मं विजानीम: प्राक् प्रजापतिनिर्म्मितम् ॥

पति पत्नीका सम्बन्ध दान, बिक्री या त्याग द्वारा भी नहीं टूट सकता। यह नियम पूर्वकालसे विधाताने चलाया है।

यदि रामा यदि च रमा, यदि तनयो विनयगुणोपत:।
तनयेतनयोत्पत्ति:, सुरवरनगरे किमधिकम् ? ॥

अगर स्त्री है, अगर लक्ष्मी है, अगर शीलवान पुत्र है और पुत्रके पुत्र हो गया है, तो फिर स्वर्गमें इससे अधिक क्या है ?

नीतिकारोंने छः सुख प्रधान कहे हैं। उनमेंसे स्त्रीका सुख भी एक है। किसी विद्वान्ने कहा है:—

अर्थागमो नित्यमरोगिता च।
प्रिया च भार्य्या प्रियवादिनी च ॥
वश्यश्च पुत्रो अर्थकरी च विद्या।
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्! ॥

हे राजन ! धनकी आमद, सदा आरोग्य रहना, प्यारी और प्रियवादिनी स्त्री, वशमें रहनेवाला पुत्र और फल देनेवाली विद्या—ये छः संसारके सुख हैं।

स्त्रीका काम पुरुषके विना और पुरुषका काम स्त्रीके विना चल नहीं सकता। स्त्री और पुरुष एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। एक, दूसरेके विना अधूरा है। दोनोंका उद्देश एक ही

है, इसलिए लक्ष्य तक पहुँचनेके लिए दोनोंका मिलकर काम करना जरूरी है। ये दोनों एक दूसरेके विरोधी और प्रतिकूल नहीं, किन्तु अनुकूल और अनुगामी हैं। एक दूसरेके सुख-दुःखमें हिस्सा वँटाने और संसारके कार-व्यवहार चलानेके लिए पैदा हुए हैं। स्त्री-पुरुषके विवाह-बन्धनमें वँधनेसे ही गृहस्थी कहलाती है। गृहस्थी एक गाड़ी है। स्त्री और पुरुष उस गाड़ीके दो पहिये हैं। जिस तरह गाड़ी एक पहियेसे नहीं चलती; उसी तरह स्त्री या पुरुष किसी एकसे गृहस्थी उत्तम रूपसे नहीं चलती; इसीलिए विवाह किया जाता है। हिन्दू-विवाहका आधार उच्च, धार्मिक और गूढ़ वैज्ञानिक सत्य है। हिन्दू-विवाह किसी अभिप्राय या काम-वासना पूरी करनेके लिए नहीं किया जाता। विवाह-सम्बन्ध धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके लिए किया जाता है*। गार्हस्थ-जीवन-विना इस लोक और परलोक दोनोंमें ही सुख नहीं है। शास्त्रमें लिखा है:—

स सन्धार्य्यः प्रयत्नेन, स्वर्गमक्षयमिच्छता।
सुखञ्चे हेच्छतानित्यं, योऽधार्य्योदुर्बलेन्द्रियैः॥

जो मृत्युके वाद सदा स्वर्गमें रहना चाहता है और जो इस जीवनमें सुख भोगना चाहता है, उसे वड़ी होशियारीके साथ गार्हस्थ जीवन निर्वाह करना चाहिये। जिसकी इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं, जो अजितेन्द्रिय है, वह गृहस्थाश्रमके धर्मकार्य कर नहीं सकता।

* इसका यह आशय है कि, हिन्दू-स्त्री हिन्दूके लिए सुख भोगनेकी चीज़ नहीं—इसके घरमें देवी है।

"मनु"ने कहा है:—

देवदत्तां गतिर्भार्य्यां विन्दते नेच्छयात्मनः।
तां साध्वीं बिभृयान्नित्यं देवानां प्रियमाचरन्॥
प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थञ्चमानवाः।
तस्मात् साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः॥

परमात्मासे पत्नी मिलती है। पुरुष अपनी इच्छानुसार उसकी प्राप्ति नहीं कर सकता। इसलिए पतिको अपनी साध्वी स्त्रीका सदा भरण-पोषण करना चाहिये। उसके इस कामसे देवता प्रसन्न होते हैं।

स्त्रियाँ सन्तान प्रसव करनेके लिए और पुरुष उनको उत्पादन करनेके लिए बनाये गये हैं; इसलिए भार्याके साथ रहना पुरुष का मुख्य धर्मकार्य है। पवित्र वेदोंकी ऐसी ही आज्ञा है।

हिन्दूके लिए विवाह धर्मका एक अंश या मुख्य भाग है। यह विशुद्ध वैध धर्म-कार्य है। यह स्वार्थसिद्धि, बखरादारी या शराकत (co-partnership) का काम नहीं है; इसीलिये गृहस्थाश्रम शेष सभी आश्रमोंसे ऊँचा समझा जाता है। गृहस्थ—ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ या संन्यासी इन तीनोंसे ही श्रेष्ठ समझा जाता है। गृहस्थ अग्निमें हवन करता है, उससे मेह बरसता है; मेहसे अनाज पैदा होता है और अनाजसे प्राणियोंकी उत्पत्ति और पालन होता है; इसवास्ते गृहस्थ ही एक तरहसे समस्त प्राणियों का पैदा करनेवाला है। जिस तरह जगत्के प्राणी श्वासकार्य्यसे

जीते हैं; उसी तरह ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी गृहस्थकी सहायतासे जीवन धारण करते हैं; इसीसे गृहस्थाश्रम सब आश्रमोंसे ऊँचा समझा जाता है। जिन्हें इस लोक और परलोकमें सुख भोगना हो, उन्हें गार्हस्थ जीवन निर्वाह करना चाहिये। मगर यज्ञादि धर्मकार्य पुरुष स्त्रीके बिना सम्पन्न कर नहीं सकता। अगर वह अकेला इन कर्मोंको करता है, तो उसको इनका फल नहीं मिलता। यही वजह है कि, सीताजीके वनमें रहने के समय, जब रामचन्द्रजी अश्वमेध यज्ञ करने लगे, तब महर्षियोंने उन्हें सीता जीकी सोनेकी प्रतिमा बग़लमें रखकर यज्ञ करनेका आदेश किया। जिस समय अयोध्यापति महाराजा अजकी प्यारी रानी इन्दु-मती ज़हरीली मालाके कारण स्वर्गको सिधार गईं, महाराजके शोक का पारावार न रहा। यद्यपि उस समय एक इन्दुमतीके सिवा, महाराजके पास सब-कुछ था। ससागरा पृथ्वीका राज्य था, अतुल धन-सम्पत्ति थी, अप्सराओंका भी मानमर्दन करनेवाली हज़ारों वारांगनायें थीं, लाखों दास-दासी थे; तथापि महाराजको ज़रा भी सुख-सन्तोष न होता था। उन्हें यह जगत् अन्धकारपूर्ण प्रतीत होता था। वे अपनी प्यारी रानीको याद कर-करके ज़ारज़ार रोते और कलपते थे।

असल बात यह है, कि जो सुख पुरुषको अपनी स्त्री-द्वारा मिलता है, वह और किसीसे भी मिल नहीं सकता। इस जगत्में उसका स्त्रीके समान सच्चा और चतुर सलाहकार कोई नहीं। जिस समय वह किसी झञ्झटमें फँसकर घबरा जाता है,

उलझनको सुलझा नहीं सकता, उस समय उसकी सच्ची साथन--उसकी प्यारी पत्नी अपनी कुशाग्रबुद्धिसे फौरन मुश्किलको हल कर देती है। अनेक बार दिल्लीश्वर शाहन्शाह अकबर प्रसिद्ध हाज़िरजवाब राजा बीरबलसे अत्यन्त कठिन और टेढ़े सवाल कर बैठते थे। वह उनके सवालोंका जवाब फौरन ही दे देते थे, लेकिन कभी-कभी गाड़ी रुक भी जाती थी। ऐसे मौक़े पर बीरबल घबराकर औंधे मुँह पड़े रहते और शोकके मारे पागलसे हो जाते थे। उस वक़्त उनकी पत्नी या पुत्री ही, उनकी मुश्किलको हल करके, उनके शोक-सन्तापको दूर करती थीं। शारीरिक बलमें स्त्रियाँ चाहे पुरुषोंकी बराबरी न कर सकती हों, पर बुद्धिमें वे पुरुषोंसे कम नहीं। किसी-किसी बातमें तो उनकी सूझ पुरुषोंकी अपेक्षा गहरी होती है। पुरुष कहते हैं, कि स्त्री की बुद्धि प्रलयंकरी होती है, पर यह कहावत सभी हालतोंमें ठीक नहीं। हमने स्वयं देखा है कि, बाज़-बाज़ औक़ात हम कारोबार-सम्बन्धी उलझनमें ऐसे उलझ जाते हैं, कि दिनभर सोचने पर भी उसका कूल-किनारा नहीं होता। शामको घर आकर उदास मनसे बैठ जाते हैं। हमारी घरवाली हमारे चेहरेका रंग-ढंग देखकर ताड़ जाती है, कि आज कुछ दालमें काला है। वह हमसे हमारी उदासीका कारण पूछती है और हमें कारण बताना ही पड़ता है। वह कहती है--"बड़े कारोबार वालोंके पीछे हज़ारों झंझट लगे ही रहते हैं। आप इस तरह बात-बातमें रञ्ज कीजियेगा, तो आपका स्वास्थ्य नष्ट हो जायगा। हानिकी पूर्ति सहजमें हो

जायगी, पर शरीर बड़ी मुश्किलसे सुधरेगा। पहले आप खाना खाइये और आराम कीजिये। मैं भी, अपनी अल्प बुद्धिके अनुसार, आपको सलाह दूंगी। अगर आप मेरी तुच्छ सम्मतिको ठीक समझें, तो तदनुसार काम कीजियेगा।" आख़िरकार जब सब खा पी लेते हैं, नौकर चले जाते हैं और बच्चे सो जाते हैं, वह हमारी उलझनको चन्द मिनटोंमें ही सुलझा देती है—हमारी मुश्किलको हल कर देती है। हम उसकी बुद्धिकी तीव्रता देखकर दंग रह जाते और मन-ही-मन सराहना करते हैं। अगर कहा जाय कि, सभी स्त्रियाँ चतुरा नहीं होतीं, तो मानना पड़ेगा कि, मर्द भी सभी चतुर चालाक और होशियार नहीं होते। हमारी रायमें, अगर अपनी घरवाली निरी मूर्खा न हो, तो उससे सलाह अवश्य लेनी चाहिये। किसी अँगरेज़ विद्वान्ने कहा है—"Woman's counsel is not worth much, yet he that despises it is no wiser than he should be" स्त्रीकी सम्मति अधिक मूल्यवान नहीं होती, तो भी जो उसकी सलाह को घृणाकी दृष्टिसे देखता है, बुद्धिमानी नहीं करता।

गोस्वामीजीने बहुत ही ठीक कहा है—धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी, आपद-काल परखिये चारी।" अर्थात् धीरज, धर्म, मित्र और स्त्रीकी परीक्षा विपद्में करनी चाहिये; क्योंकि उसी समय उनका खरा-खोटापन मालूम होता है। जब तक पुरुष पर आफ़त नहीं आती, उसे अपनी स्त्रीके गुणोंका पता नहीं लगता। जिस समय पुरुष पर चारों ओर से विपद्की घनघोर घटायें छा जाती हैं,

माता-पिता, भाई-बन्धु, मित्र और पुराने सेवक तक उससे आँख फेर लेते हैं, कोई उसकी बात नहीं पूछता; तब उस घोर दुःखमें एक मात्र स्त्री ही उसकी शरणदाता और आनन्दका स्थान होती है; वहीं उसे शान्ति मिलती है। वही उसे ढाढ़स बँधाती और उसके शोकको हरती है। वही उसके दुःखके कारणको खोजती और वही उसकी औषधि सोचती है। वही अपनी मुस्कराहटसे उसके हृदयकी जलनको शान्त करती, अपने मधुर स्वरसे दिलकी मुरझाई हुई कलीको खिलाती और शुष्क हृदयको फिरसे तरोताज़ा करती है। विपद्में सभी नातेदार किनारा कर जाते हैं, पर वह अपने प्यारेको नहीं त्यागती। सच तो यह है, संसारमें, घोर विपद्के समय, एक मात्र जगदीश और अपनी साध्वी स्त्री ही पुरुषकी ख़बर लेते हैं। हम इस बातकी परीक्षा कर चुके हैं। हमने अपने जीवनमें जितनी विपदायें देखी हैं, बहुत कम लोगोंने उतनी देखी होंगी। सच तो यह है, हमारा जीवन ही विपद्मय है। ईश्वरने हमें दुःख पानेके लिए ही पैदा किया है।

सन् १६१६ में, जब हम घोर विपद्में फँस गये, रक्षाकी ज़रा भी आशा न रही, भाई-बन्धु आँख फेर गये; साथी हमारी कमाई हुई दौलतको हड़पनेकी युक्तियाँ विचारने लगे; कई सेवक जिन्हें हमने बड़ी-बड़ी सहायतायें दी थीं, हमारी विपद्की आगमें घृताहुति छोड़ने लगे, हमारे दुश्मनोंसे मिल कर षड्यन्त्र-पर-षड्यन्त्र रचने लगे, उन्हें हमारे छिद्र बताने लगे,—उस समय हमें चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार दीखता था। उस समय

हमारा सर्व्वस्व नाश होनेमें कोई कसर नहीं थी, यहाँ तक कि जीवन रहनेकी भी आशा नहीं थी। अमीरोंकी तरह सुख-चैनसे पले हुए छोटे-छोटे बच्चों और हमारी घरवालीको गलियोंमें भीख माँगनेतक की नौबत आ गई थी। जो हमारे अपने थे, जिनसे हमें कुछ आशा थी, उनकी तरफ हमने आँखोंमें आँसू भर कर देखा; पर किसीका भी हृदय न पसीजा—सभी पत्थर-दिल हो गये। उस समय हम गहर गम्भीर चिन्तासागरमें गोते खाने लगे। कहीं भी किनारा न दिखाई दिया। ऐसे समयमें हमें ईश्वरकी याद आई। उससे हमने अपने अन्तर्हृदयसे पुकार मचाई। उस दया-सिन्धुको हमपर दया आई। उसने हमारी मददको अपना गुप्त हाथ बढ़ाया। इधर हमारी घरवालीके हृदयमें बल आया। उसने हमसे कहा—"यह घोर विपद् है। अगर घबराओगे, तो डूबनेमें संशय नहीं। घबराहट छोड़ो और हाथ पैर मारो; शायद किनारा मिल जाय। मेरे पास जो कुछ है, उस सबको फूँक दो और अपनी प्राणरक्षा करो। अगर आप होगे, तो धन फिर हो जायगा। फिक्र मत करो; जब तक मेरे पास एक कानी कौड़ी भी रहेगी, जेलमें भी आपको सुख पहुँचाऊँगी; कुछ भी न रहेगा तो चरखा कात कर, मिहनत-मजदूरी करके बच्चोंको पालूँगी और आपके लिए भी जेलमें जरूरी चीजें भेजूँगी।" उस देवीके इन शब्दोंने हम पर जादूकासा असर किया। हमारा सूखा हृदय हरा हो गया। फिर; उसने हमें भूतपूर्व्व वायसराय लार्ड चेम्सफर्डकी शरणमें जानेकी सलाह दी। हमने वैसा ही किया। प्रसिद्ध संगदिल(?) लार्ड

चेम्सफर्डका सख्त दिल भी हमारे लिए मोम होगया। उस दयालु वायसरायने (हम तो उन्हें दयालुओंका भी सिरताज कहेंगे) हमारी सहायताके लिए, आनरेबिल मिष्टर गोरले एम० ए०, सी० आई० ई०, आई० सी० एस० को नियत किया। बहुत क्या कहें, चन्द दिनोंमें विपद्के बादल उड़ गये। बुरे दिन गये, भले दिन आये। दुश्मन हाथ मलते रह गये। उस विपद् में अगर हमारी घरवाली देवी हमें त्याग देती और अपनी कुशाग्रबुद्धिका परिचय न देती, तो आज हम इस ग्रन्थको न लिखते होते; बल्कि, जेलकी असह्य यंत्रणाएँ न सह सकनेकी वजहसे, इस नापायेदार दुनियासे ही कूच कर जाते। अगर हम इस कहानीको पूर्ण रूपसे लिखें, तो आधी से अधिक पुस्तक इसी कहानीसे भर जाय; पर हमारे पास स्थानाभाव है, और इस रामकहानीका यहाँ लिखा जाना मुनासिब भी नहीं; अतः अपनी बीती हम अपनी जीवनीमें विस्तारसे लिखेंगे। शेषमें, हम यह कहनेको बाध्य हैं कि, पुरुष के लिए स्त्री-बिना इस संसारमें सर्वत्र अँधेरा-ही-अँधेरा है।

इतना सब लिखनेका सारांश या सार मर्म यही है, कि नारी पुरुषकी अर्द्धाङ्गिनी, सहधर्मिणी और उसकी अन्तरात्माकी छाया या प्रतिमा है। वही कालिदासकी तरह पुरुषको उत्थानका मार्ग दिखानेवाली और तुलसीदासकी तरह मोक्ष-पथ प्रदर्शिका है। वही पुरुषके शोक—सन्तप्त हृदयको अपने सुधावारिसे सींचकर तरो-ताज़ा रखनेवाली और अपने 'शोकहरा' नामको सार्थक करनेवाली है। पुरुषके घोर विपद्कालमें वही एकमात्र सच्चे मित्रकासा

बर्त्ताव करनेवाली, उसके दुःख-शोकमें हिस्सा बँटानेवाली, उसके दुःखको अपना ही दुःख समझनेवाली, उसके सुखके लिए अपना सारा सुख-आनन्द त्याग देने वाली और उसके दुःखनाशकी औषधि खोजनेवाली है। घोर मुसीबतमें जब पुरुषके सारे नातेदार—माता-पिता, भाई-बहिन और दिली दोस्तीका दम भरनेवाले मित्र किनारा कर जाते हैं, पास नहीं आते, बातें करनेमें भी आनाकानी करते हैं; तब वही है जो उसका साथ नहीं छोड़ती, उसकी विपद्को अपनी ही विपद् समझती और तन-मन-धनसे उसकी सहायता करती है। वही है जो धर्मकार्यमें उसके साथ पिताकासा व्यवहार करती, खिलाने-पिलानेमें माताकासा बर्त्ताव करती, सलाह-सूत देने और धीरज बँधानेमें मित्रका सा काम करती और रति-समय वेश्यावत् व्यवहार करती है। वही है जो उसके रोग-पीड़ित और निर्धन होने पर भी, उसका अनादर नहीं करती। उसके घरको झाड़-बुहार कर साफ़ रखती, हरेक चीज़को यथास्थान सजाकर रखती, सुन्दर सुस्वादु भोजन बनाकर रखती, घरमें चिराग़ जलाती और उसके घरमें घुसते ही मुस्कराते हुए चहरेसे उसका स्वागत करती है। उसे दुःखी देखकर आप आनन्दके फूलोंकी वर्षा करती और तुतलाते हुए नन्हे बच्चे को उसके आगे कर देती है। वह इन मनोहर दृश्योंको देखकर अपने शोक को भूल जाता और प्रसन्न होकर खाना खाता है। स्त्री-बिना पुरुषकी यह ख़ातिर कौन कर सकता है? इसीसे कहते हैं कि, नारी गृहकी लक्ष्मी, और घरका कल्याण है। वह घरकी श्रीवृद्धि,

ऐश्वर्य और सुख सभीका आधार है। वही पुरुषकी सर्वस्व और उसकी अन्तरात्मा है। उसकी जीवन-ज्योति उसीसे प्रज्वलित होती और प्रकाश पाती है। उस शक्तिरूपिणी से ही उसे शक्ति मिलती है। विना गृहणीके घर निर्जन कानन या भयङ्कर श्मशान है। उसके विना संसार सूना और जीवन वृथा है। वह पुरुष के लिए ईश्वरदत्त अनमोल हीरा है। उस कोहेनूरसे भी बेशक़ीमती हीरेके विना, उसका घर—घर नहीं है। इस दशा में उसे वनमें जाकर भगवद्भजन करना ही उचित है। स्त्रीरत्नके सच्चे क़दरदाँ पण्डित जगन्नाथ महाराज अपने "भामिनी-विलास" में यही बात कहते हैं:—

इदं लताभिः स्तवकानताभिर्मनोहरं हंत वनांतरालम् ।
सदैव सेव्यं स्तनभारवत्यो न चेद्युवत्यो हृदयं हरेयुः ॥

यदि स्तन-भारवती युवती चित्त को न हरे, तो भारसे झुकी हुई लतिकाओंसे सुशोभित कानन—गुफ़ा का मध्यभाग सेवन करना उचित है; यानी जंगलमें जाकर किसी गुफ़ा में रहना मुनासिब है।

इसीको स्पष्ट शब्दों में यों कह सकते हैं—यदि भारी स्तनों के बोझसे झुकी जाने वाली नाज़नी—कोमलाङ्गी पुरुषके चित्तको अपने नाज़-नखरों या हाव-भाव प्रभृतिसे प्रसन्न न करे; तो पत्र-पल्लवोंके भारी बोझसे झुकी हुई लताओं से शोभायमान गुहा या वनके मध्य भागमें रहकर प्रभुकी आराधना करनी चाहिये। जब

कभी पीनपयोधरा सुन्दरीकी याद आयेगी, तभी पत्रपल्लवोंके भार से नम्र हुई लताओं को देख, मनमें सन्तोप हो जायगा।

दोहा।

अनल दीप रवि शशि नखत, यदपि करत उज्यार।
मृगनैनी बिन मोहि यह, लागत जगत् अँध्यार ॥१५॥

सार—गृहस्थाश्रममें एक स्त्री-विना इन्द्र-तुल्य सम्पत्ति भी तुच्छ है।

14. Though there are lamp, light, fire, stars, sun and moon yet to me the whole world is enveloped in darkness without a woman with eyes like that of a deer.

उद्वृत्तः स्तनभार एष तरले नेत्रे चले भ्रूलते
रागाधिष्ठितमोष्ठपल्लवमिदं कुर्वन्तु नामव्यथाम।
सौभाग्याक्षरपङ्क्तिकेव लिखिता पुष्पायुधेन स्वयं
मध्यस्थाऽपि करोति तापमधिकं रोमावली केन सा ॥१५॥

हे कामिनी! तेरे गोल-गोल उठे हुए भारी कुच, चञ्चल नेत्र, चपल भ्रू-लता और रागपूर्ण नवीन पत्तोंके सदृश सुर्ख होंठ—अगर रसिकोंके शरीरमें वेदना करें तो कर सकते हैं; पर यह समझ में नहीं आता कि, कामदेव के निज हाथों से लिखी—सौभाग्यकी पंक्तिसी—रोमावलि, मध्यस्थ होने पर भी, क्यों चित्तको सन्तप्त करती है ॥१५॥

खुलासा—सुन्दरीके गोल-गोल पुष्ट और उठे हुए कुचों, चञ्चल नेत्रों, चपल भौंहों और सुर्ख होठोंसे कामियोंको जो सन्ताप होता है, उसका होना तो स्वाभाविक ही है, उसकी हमें कुछ शिकायत नहीं। शिकायत है, हमें उस रोमावलीकी—बालों की क़तारकी, जो सुन्दरीके पेड़ू पर नाभिसे ज़रा ऊपर, मध्यस्थ की तरह, बीचमें सुशोभित है और जो स्वयं पुष्पायुध कामदेवके करकमलों द्वारा; सौभाग्यके विशेष चिह्नकी तरह, लिखी गयी है। शिकायत क्यों है ? शिकायत इसलिये है कि, वह मध्यस्थ होकर भी चित्तको सन्ताप देती है। यह प्रसिद्ध बात है कि, मध्यस्थ सन्तापका कारण नहीं होता।

दोहा।

अरुण अधर कुच कठिन दृग, भौंह चपल दुख देत।
सुथिर रूप रोमावली, ताप करत किहि हेत ? ॥१६॥

सार—स्त्रियोंका अङ्ग-प्रत्यङ्ग यहाँ तक कि, एक-एक बाल पुरुषके मनमें सन्ताप पैदा करता है। विशेष क्या, "स्त्री" नाम ही सन्तापकारक है।

15. If high breasts, restless eyes, moving brows and the two lips like new leaves give pain to a lustful man, they are justified in doing so because (Cupid)

Kamadev has marked the words "Good fortune" in the forehead of a woman, but it is incomprehensible why that line of hair passing through the middle of the belly aggravates the pain which as an arbitrator should abate it.

गुरुणा स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता ।
शनैश्चराभ्यां पादाभ्यां रेजे ग्रहमयीव सा ॥१६॥

वह स्त्री गुरु स्तनोंके भारसे, भास्करके समान प्रकाशमान मुख-चन्द्रसे और शनैश्चरके सदृश मन्दगामी दोनों चरणोंसे ग्रहमयी सी मालूम होती है ॥१६॥

खुलासा—वह स्त्री अपने पूर्णोन्नत वृहस्पतिके समान दोनों कुचोंसे, सूर्यके समान प्रकाशमान मुखचन्द्रसे और मन्दगामी शनैश्चरके समान धीरे-धीरे चलनेवाले दोनों चरणकमलों से ग्रह-पुञ्ज या रौशन मजमा-उल-नजूम सी जान पड़ती है।

वृहस्पति, चन्द्रमा, सूरज और शनैश्चर—इन तेजस्वी ग्रहोंके चिह्न स्त्रीमें पाये जाते हैं। इसीसे कवि महोदय कहते हैं कि, वह नाजनी ग्रहमयीसी शोभित होती है। उसके स्तन-

---

* गुरु, भास्वान् प्रभृति शब्दोंके दो दो अर्थ हैं। जैसे, गुरु = भारी और वृहस्पति। चन्द्रमा = चन्द्रवत् और चन्द्रमा। भास्वान् = प्रकाशमान और सूरज। शनैश्चर = मन्दगामी और शनैश्चर। सनीचर मन्दगामी प्रसिद्ध है।

द्वय गुरु—भारी हैं, मुख सूरज और चाँदसा है और चरण मन्द-गामी शनैश्चरकी तरह मन्दगामी हैं। स्पष्ट है कि, उसके शरीरमें सभी तेजस्वी ग्रहोंका निवास है अथवा नवग्रह उसके सेवक हैं; अतएव स्त्रीके होते नवग्रहोंके पूजनकी जरूरत नहीं; क्योंकि एकमात्र उसकी पूजा-आराधनासे सभी फलोंकी प्राप्ति हो सकती है।

मिष्टर हारग्रेव नामक एक पाश्चात्य विद्वान् भी स्त्रियोंको आकाशके सितारोंकी तरह पृथ्वीके सितारे कहते हैं। आप लिखते हैं:—"Women are the poetry of the world in the same sense as the stars are the poetry of heaven. Clear, light-giving, harmonious, they are the terrestrial planets that rule the destinies of mankind" जिस प्रकार नक्षत्र नभके आभूषण हैं; उसी प्रकार स्त्रियाँ पृथ्वीकी आभूषण हैं। वे स्वच्छ-निर्मल, प्रकाशमान और शान्तिप्रद पार्थिव नक्षत्र हैं, जो मनुष्य-जातिके भाग्यका निपटारा करती हैं; अर्थात् पुरुषोंके भाग्यका फैसला स्त्रियोंके हाथोंमें है।

महाराजा प्रतापसिंहजू अपनी नीचे लिखी कवितामें, स्त्रीके शरीरमें नवग्रहोंका निवास स्पष्ट रूपसे दिखाते हैं:—उसके बाल राहुके समान हैं, उसका मुँह चन्द्रमाके समान शोभित है, उसके दोनों नेत्र सूर्य हैं, अलकें केतु हैं, मन्द-मन्द हँसना शुक्र है, वाणी बुध है, दोनों स्तन बृहस्पति हैं, कान मङ्गल हैं और उसकी

मन्दी-मन्दी चाल शनैश्चर है । ऐसी महामनोहर नवग्रहमयी युवतीकी सेवकाई स्वयं नवग्रह करते हैं; अतः उसके समान फलदायिनी और कौन है ?

छप्पय ।

केश राहु-सम जान, चन्द्र सौ सोहत आनन ।
द्वादश में द्वै अर्क नैन, केतुहि अलकानन ॥
मन्द हास है शुक्र, बुधै बानी कहि जानो ।
सुरगुरु जान उरोज, करौ मंगलहि बखानो ॥
अति मन्द चाल सोई शनिश्चर, महामनोहर युवति यह ।
तेहि सम फलदायक को देखियत, जाको सेवत नवग्रह ? ॥१३॥

सार—मृगनयनी सुन्दरी नवयुवती प्रकाशमान ग्रहपुञ्जके समान चित्ताकर्षक और मनोहर होती है । उसकी हृदयहारिणी छविका वर्णन करना कठिन है ।

16. That woman bent under the load of heavy breasts, shining with moon-like face and walking with slow steps, looks like a planet. (Guru means heavy as well as Jupiter-planet. Sanaishchar means slow steps as well as Saturn—the poet takes these words in their duplicate meanings and says that she looks like planets.)

तस्याः स्तनौ यदि घनौ जघनं विहारि,
वक्त्रं च चारु तव चित्त किमाकुलत्वम् ।
पुण्यं कुरुष्व यदि तेषु तवास्ति वाञ्छा,
पुण्यैर्विना नहि भवन्ति समीहितार्थाः ॥१७॥

हे चित्त ! उस स्त्रीके पुष्ट स्तनों, मनोहर जाँघों और सुन्दर मुँहको देखकर, वृथा क्यों व्याकुल होते हो ? यदि तुम उसके कठोर स्तनों प्रभृतिका आनन्द लेना ही चाहते हो, तो पुण्य करो; क्योंकि बिना पुण्य किये मनोरथ सिद्ध नहीं होते ॥१७॥

खुलासा—हे मन ! उसके मोटे-मोटे और उठे हुए दोनों कुचों, चित्ताकर्षक नितम्बों और स्वर्गीय अप्सराओंके समान चन्द्रमुखको देखकर क्यों कुढ़ता है ? पर-स्त्री पर मन चलाना उचित नहीं । अगर परमात्माने तुझे मनोमुग्धकर रूप, उठी हुई छातियों और पतली कमरवाली सुन्दरी नहीं दी है, तो जैसी दी है, उसी पर सन्तोष कर । कहा है—

देख पराई चूपड़ी, क्यों ललचावे जीव ? ।
रूखी-सूखी खायके, ठण्डा पानी पीव ॥

हे मन ! पराई चुपड़ी हुई रोटियों पर क्यों ललचाता है, ईश्वरने तुझे जैसी रूखी-सूखी दी है, उसे ही खाकर, शीतल जल क्यों नहीं पीता ? अर्थात् पराई सुन्दरियों पर क्यों मन चलाता है, परमात्माने तुझे जैसी सुरूपा-कुरूपा दी है, उसी पर सन्तोष क्यों नहीं करता ?

परस्त्रियों पर मन चलानेसे कोई लाभ नहीं, चाहने से वे अपनी हों नहीं जातीं। जो पुण्य करता है, ईश्वर उसे सुन्दरी स्त्री देता है; मनुष्य अपनी इच्छा से स्त्री नहीं पा सकता। कहा है—

देवदत्तां पतिभार्य्यां विन्दते नेच्छयात्मनः।

जब यही बात है, तब अपने बल और चालाकीसे पराई स्त्री को अपनी करना, अपनी जान खतरे में डालना है। कहा है—

उर्वशीसुरतचिन्तया ययौ सत्क्षयं किमु पुरूरवा नृपः।
रक्षणाय निज जीवितस्य तत् संभजेत्परवधूं न कामतः॥

महाराज पुरूरवा उर्वशीसे सम्भोगकी इच्छा करके नष्ट हो गये; अतएव, अपनी जीवनरक्षाके लिये, पुरुषको परनारी पर दिल न चलाना चाहिये।

और भी कहा है:—

लङ्केश्वर जनकजा हरणेन वाली,
तारापहारकतयाप्यथ कीचकाख्यः।
पाञ्चालिका ग्रहणतो निधनं जगाम,
तच्चैत सापि परदाररतिं न कांक्षेत्॥

लङ्काधिपति रावण जानकीजी को हरकर ले जानेसे मारा गया, सुग्रीव-पत्नी ताराके हरणसे वाली और द्रौपदीकी इच्छा करनेसे कीचक मारा गया; इसलिए बुद्धिमानोंको पर-स्त्री पर भूल कर भी दिल न चलाना चाहिये।

हे मन! अगर तू सेबोंके समान कठोरकुचों वाली स्त्रियोंके

साथ रमण करने की इच्छा रखता है; तो इस जन्ममें परोपकार-पुण्य कर; पुण्यके प्रतापसे तुझे कमानसी बाँकी भ्रकुटियों तथा स्थूल जाँघों और खञ्जन पक्षीकेसे नेत्रोंवाली, जवानीके नशेमें चूर और प्रेमसे प्रफुल्लित सुमुखी नारी अवश्य मिलेगी। धैर्य रख, अधीर मत हो। देख पण्डितराज जगन्नाथ अपने "भामिनी-विलास" में कहते हैं और बिल्कुल ठीक कहते हैं:—

लभ्यते पुण्यैर्गृहिणी मनोज्ञा तया सपुत्राः परितः पवित्राः।
स्फीतंयशस्तैः समुदेति नित्यं तेनास्य नित्यः खलु नाकलोकः॥

पुण्यसे सुन्दर स्त्री मिलती है; स्त्रीसे सच्चरित्र सुपुत्र होते हैं; सुपुत्रोंसे विमल यश दिनों-दिन फैलता और यशसे यह लोक स्वर्ग के समान हो जाता है।

कुण्डलिया।

रे चित्त! जो चाहे रमण, कुच कठोर नव नार।
तो तू कर कछु सुकृत अब, मिले जु वह सुकुमार॥
मिले जु वह सुकुमार, वंक भौं जघन विहारी।
सुन्दर मुख मृदु हास, कञ्जसी अँखियाँ कारी॥
यौवन मद भरपूर, प्रेमसों सदा प्रफुल्लित।
मत अधीर धर धीर, मिले वह अवस, अरे चित्त!॥१७॥

सार—अगर उठती जवानीकी कमलनयनी सुन्दरी कामिनी पर मन चलता है, तो पुण्य संचय करो।

17. O my mind, why are you troubled at the sight of a woman whose breasts are firm and protuberent, whose thighs are fit for enjoying and whose face is lovely. If you have a desire for them, then practise virtue, because your wishes are not to be fulfilled without it.

मात्सर्यमुत्सार्य विचार्य कार्य-
मार्याः समर्यादमिदं वदन्तु ॥
सेव्या नितम्बाः किमु भूधराणा-
मुत स्मरस्मेरविलासिनिनाम् ॥१८॥

हे योग्यायोग्यके विचारमें निपुण श्रेष्ठ पुरुषो ! आप पक्ष-पात को छोड़, कर्त्तव्य-कर्मको विचार, और शास्त्रोंको देखकर यह बात कहिये कि, इस लोकमें जन्म लेकर-मनुष्यको पर्वतोंके नितम्ब सेवन करने चाहियें अथवा कामदेवकी उमंगसे मन्द-मन्द मुस्कराती हुई विलासवती तरुणी स्त्रियोंके नितम्ब ॥१८॥

खुलासा—विद्वानो ! आप शास्त्रों का विचार कर, साथ ही ईर्षा-द्वेष या पक्षपातको त्यागकर, इस बातका फैसला कीजिये, कि मनुष्यको इस दुनियामें आकर, स्त्रियों के नितम्ब* सेवन करने चाहियें या पर्वतोंके नितम्ब; अर्थात् उन्हें संसारमें आकर पर्वत-गुहामें वास करना चाहिये अथवा मोटी-मोटी जाँघों, कठोर कुचों और स्थूल नितम्बोंवाली स्त्रियोंके साथ भोग-विलास करना चाहिये ।

* नितम्बके दो अर्थ हैं:—(१) पर्वतका बीच का भाग,(२) कमरका पिछला हिस्सा यानी चूतड़ ।



हे मन ! उस कामिनी के पुष्ट स्तनों, मनोहर जाँघों और चन्द्रमुख को देखकर क्यों व्याकुल होते हो ? अगर तुम उसके कठोर कुचों और मनोहर जंघाओं वगैरः का आनन्द लेना चाहते हो, तो परोपकार-पुण्य संचय करो ; अर्थात सुन्दरी मृगनयनी पुण्य-कर्म्म करने से मिलती है। (पृष्ठ ४३)

स्त्री-भोग और हरि-भजन,—ये दोनों ही काम उत्तम हैं। संसारियोंके लिये पहला और संसारसे उदासीनोंके लिये दूसरा अच्छा है। जिन्हें नवयुवती स्त्रियोंका भोग-विलास पसन्द हो, वे धनार्जन करें और उन्हें भोगें; पर साथ ही पुण्य सञ्चय भी करें; ताकि उन्हें इस सफ़रके बाद, अगले मुक़ाम पर भी; यानी आगे होनेवाले जन्ममें भी, फिर मृगनयनी स्त्रियाँ और अन्यान्य सम्पदायें मिलें। पर इस भोग-विलासमें बारम्बार मरने और जन्म लेनेका घोर कष्ट है। अतः जो जन्म-मरणके कष्टोंसे बचना चाहें, अनन्तकालस्थायी सुख भोगना चाहें, वे सुन्दरी-से-सुन्दरी स्त्रीको पापोंकी खान, दुःखों की मूल और नरककी नसैनी समझ, निर्जन गहन वनमें जा, किसी पर्वतकी गुफामें बस, सर्व मनोरथदाता पद्मपलाशलोचन हरिका एकाग्र चित्तसे ध्यान करें।

दोहा।

तीन बचन सुन अनख तज, करहु काज लहि भेव।
कै तो सेवो गिरिवरन्, कै कामिनि-कुच सेव ॥१८॥

सार—संसारियों के लिये नवयुवतियोंको भोगना और विरक्तोंके लिये पर्वत-गुहाओंमें हरिभजन करना उचित है। जो इन दोनोंमेंसे एक भी काम नहीं करते, उनका जन्म लेना वृथा है।

18. O learned men, tell us without any jealousy and with fair consideration whether it is desirable to dwell on and enjoy the middle part of a mountain or to enjoy the hips or charming buttocks of an amorous woman smiling with the excess of passion.

संसारेऽस्मिन्नसारे परिणतितरले द्वे गती पण्डितानां,
तत्त्वज्ञानामृताम्भःकृतललितधियांयातुकालःकदाचित्।
नो चेन्मुग्धाङ्गनानां स्तनजघनभराभोगसंभोगिनानां
स्थूलोपस्थस्थलीषु स्थगितकरतलस्पर्शलोलोद्यता-
नाम् ॥१६॥

इस असार संसारमें, जिसकी अन्तिम अवस्था अतीव चञ्चल है, उन्हीं बुद्धिमानोंका समय अच्छी तरह कटता है, जिनकी बुद्धि तत्त्वज्ञान रूपी अमृत-सरोवरमें बारम्बार गोते लगानेसे निर्मल होगई है अथवा उन्हींका समय अच्छी तरह अतिवाहित होता है, जो नवयौवनाओंके कठोर और स्थूल कुचों एवं सघन जङ्घाओंको सकाम स्पर्श कर, कामदेवका सुख उपभोग करते हैं ॥१६॥

खुलासा—इस मिथ्या और चञ्चल संसारमें या तो उन्हींके दिन अच्छी तरह व्यतीत होते हैं, जो ब्रह्म-विचारमें लीन रहते हैं अथवा उन्हींके दिन अच्छी तरह कटते हैं, जो सख़्त और मोटे-कुचों तथा गुदगुदी जङ्घाओंवाली नवयुवतियोंको अपने शरीर से चिपटाये, काम की उमङ्गसे मस्त होकर, उनके भोग-विलास का आनन्द लूटते हैं ।



इस लोक में जन्म लेकर पुरुषों को पर्वतों के नितम्ब सेवन करने चाहियें अथवा कामदेव की उमङ्ग से मुस्कराती हुई विलासवती तरुणी स्त्रियों के नितम्ब। [पृष्ठ ४५]

जो मृगनयनी कामिनियोंको भोगते हैं, उनके दिन बड़े सुखसे कटते हैं। उन्हें मालूम नहीं होता कि, कब दिन निकलता है और कब रात होती है; दिन-पर-दिन, पक्ष-पर-पक्ष, मास-पर-मास, और वर्ष-पर-वर्ष आते हैं और चले जाते हैं; किन्तु जो कामिनियों के साथ रमण नहीं करते, उनके दिन बुरी तरहसे कटते हैं। उन्हें एक-एक क्षण एक-एक वर्ष मालूम होता और जीवन भारवत् प्रतीत होता है। महाकवि 'नज़ीर' कहते हैं:—

कल शबे वस्लमें, क्या जल्द कटी थीं घड़ियाँ।
आज क्या मर गये, घड़ियाल बजाने वाले ?॥

कल भोग-विलासमें रात कैसी जल्दी कट गई! आज तो रात बीतती ही नहीं! क्या आज घण्टा बजानेवाले मर गये?

और भी किसीने कहा है:—

अय्याम मुसीवतके, तो काटे नहीं कटते।
दिन ऐशकी घड़ियोंमें, गुज़र जाते हैं कैसे॥

दु:खके दिन तो काटे नहीं कटते; पर ऐशके दिन सहजमें कट जाते हैं।

मतलब यह है कि, कोमलाङ्गियोंके साथ समय हवा की तरह बीतता है; पर जिनके माशूक़ाएँ नहीं हैं, उनके दिन पहाड़ हो जाते हैं। हाँ, उनके दिन भी परमानन्दमें हवाकी तेजीसे बीतते हैं, जो ब्रह्मानन्दमें लीन रहते हैं; लेकिन जो न तो ईश्वरका ध्यान करते हैं और न सुन्दरियोंका सुख लूटते हैं, उनके दिन काटेसे भी नहीं कटते।

वैराग्यपक्ष ।

इस नापायेदार चन्दरोज़ा दुनियामें जन्म लेकर, विद्वानोंको दो राहोंमेंसे किसी एक पर चलना चाहियेः—(१) या तो ब्रह्म-विद्याका अमृत पीना चाहिये, अथवा (२) नवयुवती रमणियोंके सुरतमें मग्न रहना चाहिये।

'रसिक' कवि कहते हैं:—

त्याग लोक-सुख या रहें, मत्त परात्मा-ध्यान ।
रमणी-रतिमें रत रहें, अथवा रसिक सुजान ॥

यद्यपि अपनी-अपनी रुचिके अनुसार दोनों राहें ही अच्छी हैं; पर पहली की होड़ दूसरी राह कर नहीं सकती। उसके सुखमें कमी-बेशी—क्षय और वृद्धि तथा अनस्थिरता नहीं। उसका सुख सच्चा और अनन्तकाल-स्थायी तथा अक्षय है। उसमेंसे सदा पीयूष-धारा गिरा करती है; पर दूसरीके सुखमें कमी-बेशी हुआ करती है। इसका सुख मिथ्या और क्षणस्थायी है। इसमेंसे जो अमृत-विन्दु टपकते हैं, वे वास्तवमें अमृत-विन्दु नहीं, किन्तु विष-विन्दु हैं; लेकिन मोहसे अमृतसे जान पड़ते हैं। अब बुद्धिमान स्वयं विचार लें और जिस राह को अपने हक़में अच्छी समझें, उसे अख़त्यार करें।

छप्पय ।

अल्पसार संसार, तहाँ द्वै बात शिरोमानि ।
ज्ञान अमृतके सिन्धु, मगन ह्वै रहै रहै बुद्धिमानि ॥

नित्य-अनित्य विचार, सहित सब साधन साधें ।
की यह प्रौढ़ा नारि, धारि उर में आराधें ॥
चैतन्य मदन-अंकुश परासि, सिसकत मसकत करत रिश ।
रस मसत कसत विलसत हँसत, इह विधि वितवत दिवसनिशि ॥१६॥

सार—यदि सुखसे जीवन व्यतीत करना हो, तो दो में से एक काम करोः—या तो संसारसे मोह त्याग, एकाग्रचित्तसे, यशोदा-नन्दन कृष्णके कमल-चरणों की, निष्काम, भक्ति करो अथवा सुन्दरी रमणियोंके रति-केलिमें मस्त रहो ।

19. In this unsubstantial world which has a very unsteady ending. there are only two courses for the wise. Either he spends his time by sharpening his intellect in nectar-like spiritual knowledge or he spends his time by laying his hands at and enjoying the body of a lovely and amorous woman having thick breasts.

मुखेन चन्द्रकान्तेन महानीलैः शिरोरुहैः ।
पाणिभ्यां पद्मरागाभ्यां रेजे रत्नमयीव सा ॥२०॥

चन्द्रकान्तसे मुख, महानील जैसे केश और पद्मरागके समान दोनों हाथोंसे वह स्त्री रत्नमयी सी मालूम होती है* ॥२०॥

---

* यों भी कह सकते हैं कि, वह नाज़नी अपने चन्द्रमाकी सी कान्ति वाले मुख, घोर नीले रङ्गके बाल और कमलके समान लाल हाथोंसे अपूर्व

खुलासा—उस स्त्रीका शरीर बहुमूल्य रत्नोंसे बना हुआ मालूम होता है; क्योंकि उसका चेहरा चन्द्रकान्त मणिके सदृश, उसके गहरे नीले बाल नीलमणिके समान और उसकी सुर्ख़ हथेलियाँ पद्मराग मणिके जैसी हैं।

उस स्त्रीके अङ्ग-प्रत्यङ्ग रत्नोंके समान शोभायमान हैं। उसके चन्द्रसम मुखको देखकर चन्द्रकान्त मणिका, उसके नीले बालोंको देखकर नीलमका और लाल कमल-सी हथेलियोंको देखकर लालों या पद्मराग-मणियोंका धोखा होता है।

ग़ज़ब की ख़ूबसूरती है! बलाका हुस्न है! अगर वह कामिनी कहीं जवाहिर-जड़े हुए जेवर पहन ले, तब तो, बक़ौल महाकवि 'दाग़' और भी ग़ज़ब हो जायः—

एक तो हुस्न बलाका, उसपै बनावट आफ़त।
घर बिगाड़ेंगे हज़ारोंके, सँवरने वाले॥

एक तो परले सिरेकी ख़ूबसूरती है ही और फिर उस पर सजावट है। ये सजने-सँवरने वाले हज़ारोंके घर बिगाड़ेंगे।

देखना ऐ ज़ौक़! होंगे आज फिर लाखोंके ख़ून।
फिर जमाया उसने, लाले लबपै लाखा पानका॥ ज़ौक़।

सुन्दरी मालूम होती है। क्योंकि चन्द्रकान्त, महानील और पद्मराग शब्दोंके दो-दो अर्थ हैं। जैसे, चन्द्रकान्त=(१) चन्द्रमाकी सी कान्ति-वाली, (२) चन्द्रकान्त मणि। महानील=(१) घोर नीला, (२) नीलमणि या नीलम। पद्मराग=(१) कमलके समान सुर्ख़, (२) पद्मरागमणि, लाल या माणिक।

आज उन्होंने अपने लालकी तरह लाल ओठों पर पानका लाखा—रङ्ग—जमाया है। आज इस लाखेसे लाखों ही का ख़ून हो जायगा।

वराहमिहर महाशय महाराजा भर्तृहरिसे भी एक क़दम आगे बढ़ गये हैं। उनकी समझमें, महाकवि दाग़ वगैरःकी तरह, सजावटकी जरूरत ही नहीं। उनका ख़याल है कि, जिसे ख़ूबी ख़ुदाने दी, उसे जेवरकी क्या जरूरत ? वह कहते हैं, स्त्रियोंसे ही रत्नोंकी शोभा है, न कि रत्नोंसे स्त्रियोंकी। क्योंकि स्त्रियाँ तो बिना रत्नोंके धारण किये ही पुरुषोंको अपने ऊपर लट्टू करके अपना ग़ुलाम बना सकती हैं। क्या रत्न भी, बिना स्त्रियोंके सुन्दर शरीरोंका आश्रय लिये, पुरुषोंको अपने ऊपर मुग्ध करनेकी क्षमता रखते हैं ? उनका कहा हुआ श्लोक हम नीचे देते हैं—

रत्नानि विभूषयन्ति योषा, भूषयन्ते वनिता न रत्नकान्त्या।
चेतो वनिता हरन्त्यरत्ना, नो रत्नानि विनाऽङ्गनाऽङ्गसंगात्॥

विधाता की कारीगरी का ख़ातमा इन मनोहर कामिनियों की रचनामें ही हुआ है। सचमुच ही उसने फ़ुर्सतमें बैठ कर इनकी गढ़ाई की है। अजब ख़ूबसूरती इन्हें दी है! ऐसा कौन है, जो इनको देखकर इनपर अपना तन-मन न वार दे ?

वैराग्य पक्ष।

विधाताने सुन्दरियोंके गढ़नेमें ख़ूब कारीगरी दिखाई है। उन्हें सुन्दरता देनेमें जरा भी कसर नहीं रक्खी; तोभी तो लोग,

उन्हें देख कर, उनके बनाने वालेको भूल जाते हैं। मन्दिरोंमें लोग भगवान्‌के दर्शनोंको जाते हैं, पर उन्हें देखते ही भगवान्‌को भूल उनके दर्शन करने लगते हैं। महाकवि 'दाग़' कहते हैं:—

कभी मसजिद में, जो वह शोख़ परीज़ाद आया।
फिर न अल्लाहके बन्दोंको, ख़ुदा याद आया॥

एक दिन वह शोख़ परीजाद मन्दिरमें आ गया, तो ईश्वरके भक्तोंको फिर ईश्वर याद न आया। सब उसे देखकर ईश्वरको भूल गये! कारीगर की बनाई बढ़िया चीज़को देखकर लोग एकाग्र मनसे चीज़को देखने लगते हैं! किसने बनाई है, इसका ध्यान भी नहीं आता!

हिन्दुस्तानी औरतोंमें जो रूप, सौन्दर्य्य और लावण्य है, वह बर्फके समान गोरी मेमोंमें नहीं। पर जिनकी अक्ल पर पर्दा पड़ा हुआ है, वे तो कञ्चनको त्याग कर काँच पर मन डुलाते हैं; इसी तरह जिनको ब्रह्म-ध्यान या जगदीशकी उपासनाका अवर्णनीय आनन्द नहीं मालूम वे ही, सिरसे पैर तक गन्दगीसे भरी हुई, संसारी औरतोंको देखते ही ईश्वरको भूल जाते हैं। यद्यपि ऐसी हरकतें विश्वामित्र और पराशर आदि महामुनियोंने भी की हैं, पर वे उनकी ग़लतियाँ ही कहलावेंगी। ईश्वरसे प्रेम करनेसे अनन्तकालस्थायी सुख मिलता है; जो लोग स्वर्ग चाहते हैं उन्हें स्वर्ग और स्वर्गकी अप्सरायें मिलती हैं; मुसलमानी मतके अनुसार हूरें ग़िलमें मिलते हैं। संसारी औरतें क्या स्वर्गकी अप्सराओं या हूरों और परियोंकी बराबरी कर सकती हैं?

हरगिज़ नहीं। पर जिनकी बुद्धिमें भ्रम हो गया है, उन्हें स्त्रियोंकी मुहब्बतमें जो आनन्द आता है वह ईश्वरप्रेममें नहीं आता, जिसकी नाम मात्रकी कृपासे अप्सरायें और हूरें मिल जाती हैं।

महाकवि "अकबर" भी कुछ ऐसी ही बात कहते हैं:—

क्या ज़ौके-इबादत हो उनको, जो मिसके लबोंके शैदा हैं।
हलुआये बिहिश्ती एक तरफ, होटलकी मिठाई एक तरफ॥

जो मिसके होठोंके प्रेमी हैं उनसे ईश्वर की उपासना नहीं होती—उसमें उनका दिल नहीं लगता। ईश्वरके ध्यानसे स्वर्गमें जो हलवा मिलता है, उसमें वह मजा कहाँ, जो होटलमें मिसके साथ बैठकर खानेमें आता है?

कामियोंको सुन्दरियाँ रूपकी साक्षात् मूर्त्ति और शोभा की कान मालूम होती हैं; इसीसे वे दिन-रात उन्हींके ध्यानमें समाधि लगाये रहते हैं; पर उनके बनाने वालेके ध्यानमें समाधि नहीं लगाते! किन्तु वास्तवमें, वे जैसी दीखती है, वैसी हैं नहीं। सब ऊपर की ही तड़क-भड़क और सफ़ाई है। भीतरसे देखो तो वे गन्दगीके पिटारे हैं; पर मोहान्ध कामी पुरुष इन गहरी बातोंको नहीं समझते। समझते हैं, केवल वे ज्ञानी जिन्होंने उनकी असलियतका पता लगा लिया है; इसीसे वे उनके दिखावटी और मिथ्या रूप पर मोहित नहीं होते और उनका ख़याल स्वप्नमें भी नहीं करते। वे अपना सारा समय जगदीशके ध्यान और आराधनामें ही व्यतीत करते हैं; क्योंकि कामिनियोंकी

आराधना-उपासना करनेसे जो सुख मिलता है, वह क्षणस्थायी और झूठा है; पर ईश्वरकी उपासना-परिस्तिशसे जो सुख मिलता है, वह अनन्तकालस्थायी और सच्चा है।

दोहा।

चन्द्रकान्त-सम मुख लसत, नीलम केशहि पास।
पद्मराग-सम कर लसै, नारी रत्न-प्रकाश ॥२०॥

सार—नारी रत्नों की खान है। उसमें नौ रत्नों की शोभा मौजूद है।

20. That woman with her face like Chandrakanta jewel, her hair like that of Mahanil jewel and her two hands bearing the colour of Padmaraga jewel shines like a heap of jewels.

संमोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति,
निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति।
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां,
किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ॥२१॥

चतुर मृगनयनी स्त्रियाँ पुरुषके हृदयमें एक बार दयासे घुसकर, उसे मोहित करतीं, मदोन्मत्त करतीं, तरसातीं, चिढ़ातीं, धमकातीं, रमण करतीं और विरहसे दुःख देती हैं। ऐसा कौनसा काम है, जिसे ये मृगलोचनी नहीं करतीं? ॥२१॥

जिस पुरुष पर इन सुन्दरियों की निगाहका तेज़ तीर चल जाता है, वह लोट-पोट हो जाता है और उसके होश-हवास ख़ता हो जाते हैं। अगर वह तीर मारने वाली, उस पर दया-भाव नहीं दिखाती, तो बेचारेका करम-कल्याण ही हो जाता है—जीवन के लाले पड़ जाते हैं। महाकवि "नज़ीर" कहते हैं:—

इधर उसकी निगाहका, नाज़से आकर पलट जाना।
इधर मुड़ना तड़पना, ग़शमें आना, दम उलट जाना॥

इस पदमें कविने प्रेम-दृष्टि की चोटका जो करुणापूर्ण चित्र खींचा है, सो बिल्कुल ठीक है। भुक्तभोगी जानते हैं; हमारे तशरीह करने की ज़रूरत नहीं।

स्त्रियाँ जैसी कोमलाङ्गी होती हैं, वैसी ही वज्रहृदया भी होती हैं। इन्हें अपने शिकारको तड़पते देखनेमें बड़ा मज़ा आता है। जब इनका शिकार इनके कटाक्ष-बाण की मारसे सन्निपात-रोगी की तरह मोहित या बेहोश हो जाता है, उसे किसी तरहका ज्ञान नहीं रहता, शराबी की तरह मतवाला होकर प्रलाप करता है, तब ये बड़ी प्रसन्न होती हैं। उस समय ये दयासे काम न लेकर, उसे अपने हाव-भाव और नाज़ोअदा दिखाकर और भी तरसातीं तथा अधमरा कर देती हैं। जब तक ये अपने आशिक़से नहीं मिलतीं, तब तक वह बेचारा रात-दिन ग़म खाता, घबराता, सिसकता और आहें भरता है। मनमें पछताता है कि, हाय मैंने क्यों दिल देकर आफ़त मोल ली। पर मुहब्बतमें तो यह दशा होती ही है। किसी कविने कहा है:—

न था मालूम उलफ़तमें, कि ग़म खाना भी होता है।
जिगरकी बेकली, और दिलका घबराना भी होता है॥
सिसकना आह भी करना, अश्क़ लाना भी होता है।
तड़पना लोटना, बेताब हो जाना भी होता है॥
कफ़े अफ़सोसको मल-मलके, पछताना भी होता है।
किये पर अपने फिर आप ही, दुख पाना भी होता है॥

प्रेमी या आशिक़ हज़ारों तरहके दुःख और आफ़तें उठाता है, पर अन्तमें यों कहकर सब्र करता है:—

हम तो हैं आशिक़ तेरे, नाज़ उठाने वाले।
तुमसे कम देखे हैं महबूब, सताने वाले॥

शेषमें; जब ये सुन्दरियाँ सब तरहसे अपने चाहने वालेका इम्तिहान ले लेती हैं, तब कहीं इनका पत्थर-हृदय पसीजता है। उस वक़्त ये उसे अपनी ख़िदमतमें क़ुबूल करतीं और उसके दिलको ठण्डा करती हैं। इस समय इनका शिकार पूरे तौरसे इनके क़ाबूमें हो जाता है। जब ये उसे अपने अधीन पातीं और उसे हर तरहसे मुती और फ़रमाँबर्दार देखती हैं, तब उसे ज़रा-ज़रा सी चूकों या ग़लतियों पर धमकाती और घुड़कती हैं। संशयोंका घर होने की वजहसे, इनमेंसे बाज़-बाज़ तो उसे, ज़रा देरसे घर आने पर ही, ख़ूब डाँटती-डपटती हैं। कोई-कोई अपने शिकार को नितान्त अज्ञानावस्थामें देखकर निपट निरङ्कुश हो जाती हैं और उससे ठीक गुलाम की तरह काम लेती हैं।

इतना ही नहीं, उसे इन की फ़रमायशें भी पूरी करनी पड़ती हैं। उनके पूरा करनेमें उसे बड़ी-बड़ी ज़िल्लतें उठानी होती हैं। सामने रहने पर ये इस तरह नाच नचातीं और नाना प्रकारके कष्ट देती हैं। आँखों की ओझल रहने पर भी, ख़ैर नहीं। इनकी जादू-भरी आँखोंसे उन्मत्त हुआ पुरुष, इनकी वियोगाग्निमें, बुरी तरह तड़प-तड़प कर भस्म होता है। बहुत लिखनेसे क्या— इनकी रसीली, मदमाती और नशीली आँखोंके मारे हुए को किसी अवस्थामें भी, सुख-शान्ति नहीं मिलती। कविने ठीक ही कहा है कि, इन नाज़नियोंके चञ्चल नेत्र जिसके हृदयमें प्रवेश कर जाते हैं, उसकी ख़ैर नहीं।

ख़ूबसूरत औरतें जिन पर अपनी निगाहके तेज़ तीर चलातीं या कटाक्ष-बाण मारती हैं, वे अपनी होशियारी और चतुराईको ताक पर रख कर पूरे पागल हो जाते हैं—कितनेही तो मजनू बनकर कपड़े फाड़ने लगते हैं। देखिये, एक आशिक़ किसी हसीनके नयनबाणसे घायल होकर क्या कहता है:—

दिलचस्प है, आफ़त है, क़यामत है, ग़ज़ब है।
बात उनकी, अदा उनकी, क़द उनकी, चाल उनकी॥—अकबर।

उनकी बातें दिलचस्प हैं, उनकी अदाएँ आफ़त हैं, उनका क़द क़यामत बर्पा करनेवाला और चाल ग़ज़ब ढाहनेवाली है। मतलब यह कि, हम उनकी मीठी-मीठी बातों, अदाओं और चाल वगैरः पर मर मिटे।

कहते हैं जिसको जन्नत, वह इक झलक है तेरी ।
सब वाइज़ोंकी बाक़ी, रँगी बयानियाँ हैं ॥—हाली ।

जिसे स्वर्ग कहते हैं, वह तो मेरी प्यारीकी एक झलकमें है, बाक़ी सब तो उपदेशकजीकी रङ्गीन बातें हैं ।

चुपचुपाते उसे दे आये दिल, एक बात पै हम ।
माल महँगा नज़र आता, तो चुकाया जाता ॥—हाली ।

हमने तो न किसीसे कहा न सुना, उसकी एक बात पर चुपचाप दिल दे आये । अगर महँगा नज़र आता, तो मोल-तोल करते । दिल देकर ख़रीदनेमें हमें तो सौदा सस्ता ही जँचा ।

ऐ ज़ौक़ ! आज सामने, उस चश्म मस्त के ।
बातिल सब अपने, दाव-ये दानिशवरी हुए ॥—ज़ौक़ ।

ऐ ज़ौक़ ! उस काम-मदसे मतवाली आँखके सामने, आज हमारी बुद्धिमत्ता और योग्यता झूठी हो गई ।

मस्जिदमें उसने हमको, आँखें दिखाके मारा ।
काफ़िरकी देखो शोख़ी, घरमें ख़ुदाके मारा ॥—ज़ौक़ ।

उसने मन्दिरमें ही हमें अपने कटाक्ष-बाणसे मारा ! उस काफ़िरकी शोख़ी देखिये, कि उसने हमें ईश्वरके घरमें ही मारा ।

मालूम जो होता हमें, अञ्जामे मुहब्बत ।
लेते न कभी भूलके, हम नामे मुहब्बत ॥—ज़ौक़ ।

अगर हमें प्रेमका परिणाम मालूम होता, तो हम कभी भूल कर भी प्रेमका नाम न लेते।

बुरी है ऐ दाग़ ! राहे उल्फ़त,
ख़ुदा न ले जाय ऐसे रस्ते।
जो तुम अपनी ख़ैर चाहते हो,
तो भूलकर दिल्लगी न करना ॥ दाग़।

ऐ दाग़ ! प्रेमका पन्थ टेढ़ा है। परमेश्वर किसीको इस राहसे न ले जाय। अगर तुम अपना भला चाहते हो, तो भूल कर भी इस राहमें क़दम न धरना।

देख ऐ दिल ! न छेड़ क़िस्स-ये ज़ुल्फ़।
कि ये हैं, पेचो तावकी बातें ॥ ज़ौक़।

ऐ दिल ! उसकी ज़ुल्फ़ोंके क़िस्से न छेड़, क्योंकि ये बातें बड़ी पेचीली हैं। इनमें पड़ना ठीक नहीं।

किताबे मुहब्बतमें ऐ हज़रते दिल !
बताओ कि तुम लेते कितना सबक़ हो ॥
कि जब आनकर तुमको देखा, तो वह ही।
लिये दस्ते अफ़सोसके दो वरक़ हो ॥ ज़ौक़।

ऐ हज़रत दिल ! मुहब्बतकी किताब में तुम कितना सबक़ लेते हो ? हमने तो तुमको जब आकर देखा, तभी तुम्हारे हाथमें शोक-दुःखके दो वरक़ देखे।

मुझे वह पर्दानशीं, सामने कब आने दे ।
जो ज़िक्र करने न दे अपने रोबरू मेरा ॥ ज़ौक़ ॥

वह पर्दानशीन माशूक़ा मुझे कब सामने आने देती है ? वह तो मेरा ज़िक्र भी अपने सामने नहीं होने देती ।

कुछ तर्ज़े सितम भी है, कुछ अन्दाज़े वफ़ा भी ।
खुलता नहीं हाल, उनकी तबीयत का ज़रा भी ॥ अकबर ।

उसमें कुछ ज़ुल्मके भी ढङ्ग हैं और कुछ वफ़ादारीके भी । उसके दिलमें क्या है, यह ज़रा भी समझमें नहीं आता ।

याँ लब पै लाख-लाख सख़ुन इज़्तराब में ।
वाँ एक ख़ामुशी तेरी, सबके जवाब में ॥

मैं तो उनके सामने हज़ारों बातें बनाता हूँ; पर वे मेरी सभी बातोंके जवाबमें एक चुप्पी साधे रहती हैं—मेरी बातोंका जवाब ही नहीं देतीं ।

इससे तो और आग वह बेदर्द होगया ।
अब आह आतशींसे भी, दिल सर्द होगया ॥ ज़ौक़ ।

मैंने समझा था कि मेरे रोने-धोनेसे उसका पत्थर-हृदय कुछ तो पसीजेगा—उसे मुझपर तरस आयेगा; पर हुआ इसका उल्टा । मेरी गरम आहोंने उसे और भी गरम कर दिया—भड़का दिया । मुझे अपनी गरम आहोंका बड़ा भरोसा था, उम्मीद थी, कि इनसे ज़रूर कामयाबी होगी, पर अब इस तरफ़से भी मेरा

दिल ठण्डा हो गया—मुर्झा गया। इस हथियारका भरोसा था, पर अब मालूम हो गया कि, यह हथियार भी बेकाम साबित हुआ। (माशूक़ा जब संगदिली अख़्त्यार कर लेती है, तब नहीं पसीजती, रहम नहीं करती)।

मुझको हर शब हिज्र की, होने लगी जूँ रोज़ हश्र।
मुझसे यह किस दिनके बदले, आस्माँ लेने लगा॥—ज़ौक़।

जुदाईकी हरेक रात मेरे लिये प्रलयके दिन सी जान पड़ती है, काटेसे नहीं कटती! आस्मान! तू मुझसे किस दिनके बदले ले रहा है?

अजल आई न शबे हिज्रमें, और तूने फ़लक!
बे-अजल हमको, तमन्नाए अजलमें मारा॥—ज़ौक़।

ऐ आस्मान! जुदाईकी रातमें मौत न आई, पर तूने मौतकी चाहमें हमें बे-मौतही रातभर मारा।

मौत हीसे कुछ इलाजे, दर्दे फ़ुर्क़त हो तो हो।
ग़ुस्ल मैयत ही हमारा, ग़ुस्ले सेहत हो तो हो॥—ज़ौक़।

जुदाईकी बीमारीका इलाज मौतसे ही हो, तो हो सकता है। मौतका स्नान ही हमारी आरोग्यताका स्नान हो सकता है।

अब आशिक़ अपनी माशूक़ासे मुख़ातिब होकर कहता है:—

तुझे ऐ सँगेदिल! आरामे जाने मुब्तला समझे।
पड़ें पत्थर समझ पर अपनी, हम समझे तो क्या समझे॥



ऐ संगदिल—पत्थर-हृदय! तुझें हमने अपने सुख बढ़ानेवाली समझी। हमारी अक़्लपर पत्थर पड़ें—हमने क्या-का-क्या समझ लिया।

फ़ुर्क़त में तेरी, तारे नफ़स सीने में मेरे।
काँटा सा खटकता है, निकल जाय तो अच्छा॥ ज़ौक़।

तेरी जुदाईमें मेरे प्राण मेरी छातीमें काँटेकी तरह खटकते हैं, किसी तरह यह काँटा निकल जाय तो अच्छा।

मैं जाता जहाँसे हूँ, तू आता नहीं याँ तक।
काफ़िर! तुझे कुछ ख़ौफ़ ख़ुदाका नहीं आता॥ ज़ौक़।

मैं तो तेरी मुहव्बतमें इस दुनियाँसे ही जाता हूँ, पर तुझसे यहाँतक भी आया नहीं जाता! काफ़िर! क्या तू परमेश्वरसे भी नहीं डरती?

बाक़ी न रहा ख़ून भी, अब मेरे जिगरमें।
अफ़सोस! हुआ चाहती है तर्क़ गिज़ा भी॥

तेरे लिये रोते-रोते मेरे जिगरमें अब ख़ून भी नहीं रहा है। अफसोस! अब खाना-पीना भी छुटना चाहता है।

ख़ूने दिल पीनेको, और लख़्ते जिगर खानेको।
यह गिज़ा मिलती है जानाँ! तेरे दीवानेको॥

प्यारी! तेरे पागलको पीनेके लिये ख़ून और खानेके लिये जिगरका टुकड़ा मिलता है, अब उसका यही आहार है।

जब कहा मैंने—तड़पता है बहुत अब दिल मेरा।
हँसके फरमाया—तड़पता होगा सौदाई तो हो॥ हाली।

जब मैंने कहा कि, मेरा दिल आपके लिए बहुत तड़फता है, तब उन्होंने हँसकर जवाब दिया—"तड़फता होगा, तुम पागल ही तो हो।" (बेरहमीकी हद हो गई)।

कहा उन्होंने शबे ग़मका माजरा सुनकर।
तेरे मिज़ाजकी शोख़ी थी इज़्तराब न था॥—दाग़।

उन्होंने जुदाईकी रातकी बातें सुनकर जवाब दिया—तुमने वृथा दुःख उठाया; मनकी ऐसी चञ्चलता ठीक नहीं। मतलब यह कि, तुमने जो दुःख उठाया, वह तुम्हारी चञ्चलताकी वजहसे उठाया, विरहके सन्तापसे नहीं।

भा गये हैं आपके अन्दाज़ो नाज़।
कीजिये अग़माज़ जितना चाहिये॥

आपके नाजो अन्दाज मुझे पसन्द आगये हैं। अब आपको अख़्त्यार है, चाहे जितने नख़रे कीजिये—चाहे जितना सताइये और तरसाइये।

तेरे सहरे नज़रसे हुआ य जुनूँ।
मेरे दिलकी तो इसमें ख़ता ही न थी॥
तेरे कूचेमें आके बैठ गया।
बजुज़ इसके कछ और दवा ही न थी॥ अकबर।

तेरे कटाक्षके जादू से ही मुझे यह उन्माद रोग हो गया है। इसमें मेरे दिलका क्या अपराध? मैं तेरी गलीमें आकर बैठ गया, क्योंकि इसके सिवा इस उन्माद के दूर करनेका और उपाय ही न था।

न देखलीं कैसी-कैसी आफ़त।
जहाँमें हमने तुम्हारे बाइस॥
और आगे क्या-क्या ग़मो आलम।
हम तुम्हारी दौलत न देख लेंगे॥—ज़ौक़।

हमने दुनियामें तुम्हारी वजहसे कैसी-कैसी आफ़तें नहीं भोगी हैं। और आगे भी तुम्हारी बदौलत हमें क्या-क्या शोक-ग़म न उठाने होंगे।

महरबानीकी एक राह तो हो।
गर सतानेके हैं हज़ार तरीक़े॥ दाग़।

अगर तकलीफ देने या सतानेके हजार तरीक़े हैं, तो मिहरबानीका भी एकाध तरीक़ा होना चाहिये।

सेराब न हो जिससे, कोई तिशनये मक़सूद।
ऐ ज़ौक़! वह आबेबक़ा भी है तो क्या है॥—ज़ौक़।

जिससे किसी प्यासेकी प्यास न बुझे, वह अमृत भी है तो किस काम का? आप कितनी ही सुन्दर हैं, पर आपसे अगर मेरी प्यास न बुझी, तो आपकी सुन्दरतासे क्या?

माशूक़ा शिकायतके तौर पर कहती है:—

नित नया ज़ायक़ा चखनेका लपका है उनको ।
दरबदर झाँकते फिरनेसे उन्हें आर नहीं ॥
दाव-ये इश्क़ो मुहब्बत पै न जाना उनके ।
उनमें गुफ़्तार ही गुफ़्तार है, किरदार नहीं ॥

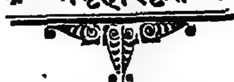
आजकल हरेक आदमी आशिक़ बना हुआ है। जहाँ किसी ख़ूबसूरत औरत को देखा कि, इश्क़का दम भरने लगे। ऐसे लोग नित नया स्वाद चखनेको दरदर मारे-मारे फिरते हैं।

ऐसे लोगोंकी प्रेम-प्रतिज्ञाओं पर भरोसा करना अक़्लमन्दी नहीं। वे जिसे देखते हैं उसीसे मुहब्बत करते फिरते हैं। उनमें बातोंके सिवा तत्त्व नहीं।

पाठक! आपने ऊपरकी कविताओं से समझा होगा, कि बेचारे आशिक़ कैसी-कैसी ख़ुशामदें करते हैं, जान देते हैं; पर बेरहम नाज़नियाँ उन्हें किस तरह मोहित करतीं और फिर किस तरह तरसातीं, धमकातीं और उनकी मुहब्बतको झूठी बताकर उन्हें निराश और दुखी करती हैं। इस जगह इतनी कविताओंके देनेकी ज़रूरत न थी, पर हमने इतनी कविताएँ इस ग़रज़से दी हैं कि, पाठक माशूक़ाओंकी आदतोंसे वाकिफ़ होनेके साथ-ही-साथ उर्दू शायरीका भी मज़ा लूटें।

वैराग्य पक्ष ।

सब तरहसे दुःख देनेवाली, सन्निपातज्वर की तरह मोह, प्रलाप, प्रमाद, मूर्च्छा और निर्लज्जता प्रभृति पैदा करने वाली



कामिनियोंको जो सुखवल्लरी समझते हैं, वे यदि बुद्धिमान हैं तो मूर्ख कौन है? वे ठीक अपथ्य सेवन करके रोग मोल लेने वालों की तरह हैं। हाँ, जो लोक-परलोक की परवाह नहीं करते, जो इस जन्मके बाद और जन्म नहीं मानते, जो इस जगत्में आकर इस जगत्के सुख भोगना ही अपने जीवनका लक्ष्य समझते हैं, उनके लिये ये सुन्दरियाँ, अनेक कष्ट देने वाली होने पर भी, परमानन्ददायिनी हैं; पर जिन्हें पुनर्जन्ममें विश्वास है, जिन्हें बारम्बार का जन्म मरण बुरा मालूम होता है, जिन्हें सच्चे और नित्य सुख की दरकार है, उन्हें इन मोहनी—पर काली नागिनों से बचना चाहिये; क्योंकि इनके काटे हुए पुरुषको बारम्बार संसार-बन्धन में बँधना होता है। संसार-बन्धनमें बँधने या बारम्बार मरने और माँके पेटमें नौ महीने रहकर जन्म लेनेमें ऐसे घोर कष्ट हैं, जिन्हें हम लिख कर बता नहीं सकते। आपको इस जन्म-मरणके भयका चित्र स्वामी "शङ्कराचार्यजी" के नीचेके श्लोकसे मालूम होगा:—

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्।
इह संसारे भयदुस्तारे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे!

फिर जन्म लेते हैं, फिर मरते हैं और फिर माँके पेटमें सोते हैं! यह असार संसार बड़ा भयकारी है। हे मुरारि! कृपाकर मुझे इससे पार कीजिये।



शेर।

हैं फिर-फिर लोग मरते जन्म लेते।
हैं फिर-फिर रहममें आ कष्ट देते॥
विनय करते हैं, सुध अब नाथ ! लीजे।
तनासुखके न फिर-फिर साज सजरे।
विमुख गोविन्द भज गोविन्द भज रे॥

बहुत क्या कहूं, स्त्री ही संसार-बन्धन की जड़ है। बेटे-बेटी, नाती पोते, दोहिते दोहिती वगैरः उसके पत्ते और शाखें हैं। अगर आप लोग इस जड़को ही त्याग दें, तो संसार-बन्धन या बार-बार जनमने और मरनेके घोरातिघोर कष्टोंसे बच सकते हैं।

दुनियाँदारों को सलाह।

यह सलाह हमने अधिकारियोंको दी है, अनाधिकारियोंको नहीं। दुनियाँदारोंको जानना चाहिये कि, स्त्रियोंसे सुख और दुःख दोनों ही होते हैं। यदि उनकी वजहसे पुरुष-को अनन्त दुःख उठाने पड़ते हैं; तो स्वर्गीय सुख भी उनसे ही मिलते हैं। फ्रेञ्चोंमें एक कहावत है—"Women, money and wine have their blessing and their bane" स्त्री, सम्पत्ति और सुरामें सुख और दुःख दोनों ही हैं। एमिएल महाशय कहते हैं—"Woman is at once the delight and terror of man" स्त्री, पुरुषके लिए हर्ष और भय दोनों हीका हेतु है। संसारमें वैराग्यको छोड़कर और ऐसी कोई

बात नहीं है जिसमें सुख-ही-सुख हो। अगर सभी पुरुष स्त्रियोंसे नाता न जोड़ें, शादी-विवाह न करें तो ईश्वर की सृष्टि ही लोप हो जाय, संसार ही न रहे; इसलिये जिनसे पूर्ण वैराग्य न लिया जाय उन्हें घर-गृहस्थीमें रहना चाहिये, पर जलमें कमल की तरह। गृहस्थके सारे काम करो, पर मनको उसी तरह ईश्वरमें रक्खो, जिस तरह पनिहारी सिर पर घड़े लिये हुए अपने यारसे भी बातें करती है और हँसती है, पर मनको घड़ोंमें ही रखती है। अगर ऐसा न करे, तो घड़े गिर कर फूट जायँ।

सोरठा।

मोह प्रलाप प्रमाद, ज्ञाननाश निर्लज्जता।
शोक कलेश विषाद, कहा न कर हिय घुस त्रिया ?॥२१॥

सार—स्त्रियाँ जिसके हृदयमें प्रवेश कर जाती हैं, उसकी अवस्था सन्निपात-रोगीकी सी हो जाती है। ये अपने चाहनेवालेको मजनूँ की तरह ख़ब्तुलहवास करके, क्या-क्या कष्ट नहीं देतीं ? उसे जीतेजी मदारीके बन्दरकी तरह नचातीं और मरने पर नरकमें पहुँचाती हैं।

21. What could not the beautiful-eyed woman do, by piercing the frail heart of a man, that women who fascinates him, intoxicates him, vexes him,

takes him to task, gives him the pleasures of enjoying her and puts him to sorrow by her separation.

विश्रम्य विश्रम्य वने द्रुमाणां,
छायासु तन्वी विचचार काचित् ।
स्तनोत्तरीयेण करोद्धृतेन,
निवारयन्ती शशिनो मयूखान् ॥२२॥

वनके वृक्षोंकी छायामें बारम्बार विश्राम करती हुई, वह विरहिणी स्त्री, अपने कोमल शरीर की रक्षाके लिए, अपना आँचल हाथ में उठा, उससे चन्द्रमाकी किरणोंको रोकती हुई घूम रही है ॥२२॥

खुलासा—वह विरहिणी स्त्री इतनी नाज़ुक है, कि सूरज तो सूरज, चन्द्रमा की शीतल किरणों की रोशनीको भी बर्दाश्त नहीं कर सकती। चन्द्र-किरणोंसे उसके नाज़ुक और सुकुमार शरीरको कष्ट न हो, इसीलिये उसने अपना आँचल मुँहके सामने कर रक्खा है। नज़ाकतके मारे ही वह ज़रा चलती है और फिर वृक्षों की छायामें सुस्ताने लगती है। इस नज़ाकत का क्या ठिकाना है ?

कवियोंकी महिमा अपार है। लोग जिस-किसीकी तारीफ़ करने लगते हैं, उसे चरम को पहुँचा देते हैं। महाकवि मीर किसी नाज़नीकी नज़ाकत पर क्या .खूब कहते हैं:—

लपेटे जो चोटी पै फूलोंके हार ।
नज़ाकतसे दोहरी कमर होगई ॥

वह नाज़नी इतनी नाज़ुक थी, कि उसने अपनी चोटी पर जो फूलोंके हार लपेटे, तो मारे बोझके उसकी कमर बल खा गई।

महाराजा भर्तृहरि की विरहिणी नायिका तो चन्द्रमाकी शीतल किरणोंको नहीं सह सकती और महाकवि मीरकी नायिका की कमर चोटी पर फूलोंके हार लपेटनेसे ही दोहरी हो गई। ग़ज़बकी शायरी है। नज़ाकत और सुकुमारता की हद हो गयी !!

पण्डितेन्द्र जगन्नाथको तो अपनी नायिकाकी नज़ाकतकी तारीफ करनेके लिये कोई उपमाही नहीं मिलती। आप कहते हैं:—

नितरां परुषा सरोजमाला न मृणालिनि विचार पेशलानि।
यदि कोमलता तवाङ्गकानामथ का नाम कथापि पल्लवानाम् ॥

हे भामिनी! हम तेरे शरीरकी कोमलताकी तुलना किस पदार्थसे करें, जब कि सरोज–माल भी तेरी कोमलताके आगे कठोर मालूम होती है? कमलनालकी कोमलताका तो विचार करना ही फिजूल है। जब कमलके कोमल पुष्पोंकी यह हालत है, तब उसके पत्तोंका नाम लेनेसे क्या लाभ? वे बेचारे तेरी कोमलता की क्या बराबरी करेंगे? तेरी कोमलता की उपमा का मिलना ही असम्भव है।

महाकवि नज़ीरकी सुकुमार नायिकाके पैरोंके तलवोंकी नर्मी का भी हाल सुन लीजिये:—

वह कफ़े पा हमने सुहलाये हैं, नाज़ुक नर्म-नर्म।
क्या जताती है तू अपनी नर्मी, ऐ मख़मल! हमें ॥



वन के वृक्षों की छाया में विश्राम करती हुई विरहिणी स्त्री, अपने नाज़ुक शरीर की रक्षा के लिये, अपना आँचल हाथ में उठा, उससे चन्द्रमा की किरणों को रोकती हुई वन में जा रही है। यह स्त्री पर-पुरुषरता अभिसारिका-नायिका है। अपने यार से मिलने जा रही है। यह इतनी नाज़ुक है, कि चन्द्रमा की शीतल किरणों को भी बरदाश्त नहीं कर सकती।

(पृष्ठ ५८)

हमने प्यारीके कोमल-कोमल तलवे सुहलाये हैं; मखमल! तू अपनी कोमलता हमें क्या दिखाती है? प्यारीके तलवों की नर्मी के सामने तेरी नर्मी कोई चीज़ नहीं।

हमारे मनचले पाठक, इतनेसे ही सन्तोष करलें। कवियोंने स्त्रियोंकी तारीफ़में ज़मीन-आसमानके कुलावे मिला दिये हैं।

दोहा।

नारि विरहनी तरु-तर, बैठी शशि सों भाग।
चन्द्र-किरण कों चीर सों, दूर करत दुखपाग ॥२२॥

सार—इस श्लोकमें वर्णित स्त्री अभिसारिका* और परले सिरेका नाज़ुक-बदन है। उसके प्रत्येक कामसे उसकी नज़ाकत झलकती है।

22. A woman frequently resting under the shade of trees in the forest, roams about, raising with her hands the cloth covering her breast to prevent the rays of moon.

---

* नियत समय पर अपने यार से मिलनेको जा रही हो, वह "अभिसारिका" कहलाती है। A woman who is going to meet her lover by appointment. इस श्लोकमें वर्णित स्त्री नियत समय पर अपने यार से मिलने जा रही है; पर है ऐसी सुकुमार कि, चन्द्रमा की किरणों की शीतलताको भी बर्दाश्त कर नहीं सकती; इसीसे मुँहके सामने अपना आँचल कर रक्खा है और ज़रा-ज़रा दूर चलनेसे थक कर, छाया में विश्राम लेती और फिर चलती है।

अदर्शने दर्शनमात्रकामा दृष्ट्वा परिष्वङ्गरसैकलोला।
आलिङ्गितायां पुनरायताक्ष्यामाशास्महे विग्रहयोरभे-
दम् ॥२३॥

जब तक हम विशाल-नयनी कामिनीको नहीं देखते, तब तक तो उसे देखने ही की इच्छा रहती है, दर्शन नसीब हो जाने पर, उसे आलिङ्गन करनेकी लालसा बलवती होती है। जब आलिङ्गन भी हो जाता है, तब तो यह इच्छा होती है कि, यह कामिनी हमारे शरीर से अलग ही न हो—हम दोनों के शरीर एक हो जायँ ॥२३॥

खुलासा—प्रायः सभी जानते हैं कि, एक बार किसी सुन्दरी को देख लेने या उसकी रूपमाधुरीकी चर्चा सुन लेने पर, तबीयत यही चाहती है कि, उसके दर्शन-भर हो जायँ। जब सौभाग्य से उसके दर्शन हो जाते हैं; तब तृष्णा और भी बढ़ती है। दर्शन के बाद, उसे शरीरसे चिपटाने की लालसा होती है। ज्योंही हम उसे अपने शरीरसे चिपटाते हैं, कि फिर उससे अलग होनेको मन नहीं चाहता—दिल कहता है कि, परमात्मा हमारे और इसके शरीरको कभी अलग न करें। हम दोनोंके शरीर एक हो जायँ।

कामी पुरुष और धन-तृष्णाके फेरमें पड़े हुए मनुष्यकी हालत एकसी होती है। जिस तरह कामी पुरुष पहले किसी सारङ्ग-लोचनाके दर्शन-भर चाहता है, दर्शन हो जाने पर आलिङ्गनके लिए लालायित होता है और आलिङ्गन हो जाने पर चाहता है कि, यह चन्द्रानना मेरे शरीरसे अलग ही न हो; उसी तरह

तृष्णाके फेरमें पड़ा हुआ पहले सौ, फिर हज़ार, फिर लाख, फिर करोड़ और फिर भूमण्डलका राज्य चाहता है। सारी पृथ्वीका राज्य मिल जाने पर त्रिलोकीका आधिपत्य चाहता है। जब उसे त्रिभुवनका राज्य मिल जाता है, तब वह चाहता है कि, मैं इसे सदा-सर्वदा भोगता रहूँ—यह मेरे हाथसे कभी न जाय।

जो मनुष्य धनको सदा तुच्छ मिट्टीके ढेलेके समान समझते हैं, उसके नजदीक नहीं जाते, कभी एक पैसा संग्रह नहीं करते, उन्हें धनकी तृष्णा नहीं होती। उन्हींकी तरह जो पुरुष मोहिनी कामिनियोंसे दूर रहते हैं, उनके नज़दीक भी नहीं जाते, उन्हें देखना भी नहीं चाहते, वे उन जादूगरनियोंके फन्देमें नहीं फँसते। ऐसा कौन पुरुष है, जो किसी चन्द्रानना कामिनीको देख कर अपने मनको क़ाबूमें रख सके? जब तक कोई खूबसूरत बला नज़र नहीं आती, तभी तक ख़ैर है—तभी तक धर्म-ईमान और खराई-सचाई प्रभृतिकी रक्षा है। उस्ताद 'जौक़'ने बहुत ठीक कहा है:—

शुक्र! परदे ही में उस बुतको हयाने रखा।
वर्ना ईमान गया ही था, ख़ुदाने रखा॥

शर्मके मारे वह घरसे बाहर न निकली—पर्देमें ही रही आई, यह अच्छा ही हुआ। अगर वह घर छोड़कर बाहर आती और हम उसे देख लेते, तो फिर हमारे ईमानका रहना कठिन ही था।

खूबसूरती वह शै है, कि उसके आगे ईमान और धर्म कुछ नहीं रहते। कहा है:—Beauty is a witch, against whose

charms faith melteth into blood. *Much Ado, ii. I.*
अर्थात् खूबसूरती वह जादूगरनी है, जिसके जादूसे ईमानका खून होजाता है। महात्मा गोथेने भी एक जगह कहा है—Beauty is everywhere a right welcome guest. अर्थात् खूबसूरती हर कहीं लायक़ और दिलावेज़ मिहमान है, अथवा सौन्दर्य्यका एक योग्य अतिथिकी तरह सर्वत्र स्वागत होता है,—सौन्दर्य्यका सर्वत्र बोलबाला है—खूबसूरतीकी खातिर कहाँ नहीं होती ? खूबसूरतीका नशा शराबसे भी ज़बर्दस्त है। शराबके तो पीनेसे नशा आता और आदमी मतवाला होता है; पर सुन्दरी मृगनयनीसे आँखें मिलते ही नशा चढ़ आता है। परमात्माने इनकी आँखोंमें एक अजीब नशा भर दिया है। महाकवि 'अकबर'ने बहुत ही ठीक कहा है:—

करते वो निगाहोंसे, अगर बादाफ़रोशी।
होता न गुज़र, जानिबे-मैखाना किसीका॥

अगर वे अपनी मदपूर्ण आँखोंसे मदिरा बेचतीं यानी अपनी मदभरी चितवन लोगों पर डालतीं, तो कोई भी शराबकी दूकान की तरफ न जाता। शराबका काम उनकी आँखोंसे ही हो जाता—उनसे चार नज़र होते ही नशा चढ़ आता।

हमारे एक हिन्दू कविने भी ऐसी ही बात कही है और बहुत ही मजेदारीसे कही है:—

अमी हलाहल मद भरे, श्वेतश्याम रतनार।
जियत मरत झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इकबार॥

उसकी सफेद, श्याम और रतनारी आँखोंमें अमृत है, हलाहल विष है और मद है; तभी तो वह जिसकी तरफ एक बार देख लेती है,—वह जीता है, मरता है और झुक-झुक पड़ता है।

ऐमरसन महोदय कहते हैं—Beauty is the pilot of the young soul. अर्थात् सौन्दर्य नवयुवकोंका पथ-प्रदर्शक है। जहाजका माँझी जिस तरह जहाजको राह दिखाता है, जहाँ चाहता है वहाँ ले जाता है; उसी तरह ख़ूबसूरती जवानोंको जहाँ चाहती है ले जाती है। सारांश यह कि, उठती जवानीके पट्ठे सुन्दरियों से आँख मिलाते ही उनके ग़ुलाम हो जाते हैं। स्त्रियाँ जो चाहती हैं वही करते हैं, उनकी दिखाई राह पर चलते हैं और उनकी मरजी के ख़िलाफ़ कोई काम कर नहीं सकते। नौजवान दुनियादार इनके जालमें फँसते हैं, इसमें तो कोई अचम्भेकी बात ही नहीं। वे पहुँचे हुए वृद्ध तपस्वी जो हवा और पानी मात्र पर जिन्दग़ी बसर करते हैं, हर क्षण जगदीशका नाम रटा करते हैं, ख्वावमें भी कामिनीका दर्शन नहीं करते और दर्शन करने पर भी उनके दास में न फँसने का पक्के-से-पक्का इरादा रखते हैं, उनको देखते ही, उनसे चार आँखें होते ही, उनके ग़ुलाम हो जाते और होगये हैं। विश्वामित्र, पराशर और शृंगी ऋषिको इन शब्दोंमें न सही—दूसरे शब्दों में, अपनी-अपनी माशूक़ाओंसे क़रीब-क़रीब यही कहना पड़ा होगा:—

ख़ुदाके होते बुतोंको पूजूँ,
नहीं था मुतलक़ गुमान ऐसा।
मगर तुम्हें देखकर तो वल्लाह,
आगया मुझको ध्यान ऐसा॥ —अकबर।

सम्भावना नहीं थी कि, मैं ईश्वरके होते हुए, तुम जैसी सौन्दर्य्य की प्रतिमाओं की पूजा करूँ; पर आज तुम्हें देखकर और ही बात हो गई। परमात्मा की क़सम खाकर कहता हूँ, कि अब तुम्हारी ख़ूबसूरती पर लट्टू होकर, मैं ईश्वरको भूल जाऊँगा।

फिर आप लोगोंने अपनी पिछली और उस समयकी हालत का मुक़ाबला करते हुए कहा होगा:—

जिस दिलको क़ैद हस्ति-ये दुनियासे नंग था।
वह दिल असीर हल्क़-ये ज़ुल्फ़े बुताँ है अब॥

एक वह दिन था कि हमारा दिल संसारके जञ्जालोंमें पड़ना शर्मकी बात समझता था और एक आज है कि, माशूक़ाकी ज़ुल्फ़ोंमें बेतरह उलझा पड़ा है। कैसा परिवर्त्तन है!

ऐ ज़ौक़! आज सामने उस चश्म मस्तके।
बातिल सब अपने दाव-ये दानिशवरी हुए॥

उसकी मदनमस्त मनोहर आँखके सामने आज हमारी योग्यता, बुद्धिमत्ता और प्रतिष्ठाका अन्त हो गया।

वैराग्य पक्ष ।

विषयोंका यही हाल है। ज्यों-ज्यों हमारी इच्छायें पूरी होती हैं, त्यों-त्यों वे और बढ़ती हैं; इसलिये विषय-विषसे बचने के लिये, मनुष्यको विषयोंका ध्यान ही न करना चाहिये। असल में, विषयोंका ध्यान ही सारे अनर्थोंकी जड़ है। अगर मन-द्वारा विषयोंका ध्यान ही न किया जाय, तो विषयोंमें प्रीति ही क्यों हो? जब विषयोंसे प्रीति ही न होगी, तब कोई भी अनर्थ हो न सकेगा।

स्त्रीको एकबार देख लेने पर, उसे बार-बार देखनेको मन चाहता है। बस, यहींसे सिर पर भूत सवार हो जाता है। इस लिये जिनको जन्म-मरणके जञ्जालसे बचना हो, जिनको दुर्लभ मोक्ष-पद लाभ करना हो, जिनको अक्षय सुख भोगना हो, वे ऐसे निर्जन वनमें जाकर रहें, जहाँ इन ललित ललनाओंके दर्शन ही न हों। जब ये मोहिनी दीखेंगी ही नहीं, तो मन कैसे चलेगा? न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसरी।

छप्पय ।

बिन देखे मन होय, वाय कैसे कर देखैं।
देखे तें चित होय, अंग आलिङ्गन सेपैं॥
आलिङ्गन तें होत, याहि तनमय कर राखैं।
जैसें जल अरु दूध, एक रस त्यों अभिलाषें॥
मिल रहे तऊ मिलवो चहत, कहा नाम या विरह को?।
वरन्यो न जात अद्भुत चरित, प्रेम-पाठकी गिरह को॥२३॥

सार—नवयुवती कामिनीके बग़लमें आने पर, उसे कोई भी कामी पुरुष, क्षणभरको भी छोड़ना नहीं चाहता अथवा एकबार स्त्रियोंका चन्द्रानन देख लेने पर, उनके फन्देमें न फँसना असम्भव है।

23. So long as I do not see her I desire to see her, but having seen her, I long to embrace her and after having embraced her I desire that there may not be separation from her, whose eyes become extended at the time of embraced union.

मालतीशिरसिजृम्भणोन्मुखी चंदनंवपुषिकुङ्कुमान्वितम्
वक्षसि प्रियतमा मनोहरा स्वर्ग एष परिशिष्ट आगतः ॥२४॥

अधखिले मालतीके सुगन्धित फूलोंकी माला गलेमें पड़ी हो, केशर-मिला चन्दन शरीरमें लगा हो और हृदयहारिणी प्राणप्यारी छातीसे चिपटी हो, तो समझ लो कि, स्वर्गका शेष सुख यहीं मिल गया ॥२४॥

खुलासा—गलेमें खिलने ही वाले मालतीके फूलोंकी माला पहनना, केशर और चन्दन शरीरमें लगाना और मनोहर प्यारी को छातीसे लगाना—स्वर्ग-सुख है। जिन्हें इस पाप-ताप-पूर्ण संसारमें यह सुख प्राप्त हो, उनके लिये यहीं स्वर्ग है। स्वर्गमें

इससे अधिक और कुछ नहीं है। पण्डितराज जगन्नाथ महोदय कहते हैं:—

विधाय सा मद्वदनानुकूलं कपोलमूलं हृदये शयाना।
तन्वी तदानीमतुलां बलारेः साम्राज्यलक्ष्मीमधरीचकार॥

मेरी छातीपर सोनेवाली नाज़नीने जब अपनी चिबुक—ठोड़ी मेरे मुँह पर, जहाँ वह रक्खी जानी चाहिये थी वहीं रक्खी; तब महेन्द्रकी अतुल राजलक्ष्मी का सुख भी मुझे तुच्छ प्रतीत होने लगा।

किसीने ख़ूब और सच कहा है:—

संसारे तु धरासारं धरायां नगरं मतम्।
आगारं नगरे तत्र सारं सारंगलोचना॥
सारंगलोचनायाञ्च सुरतं सारमुच्यते।
नातः परतरं सारं विद्यते सुखदं नृणाम्॥
सारभूतन्तु सर्वेषां परमानन्द सोदरम्।
सुरतं ये न सेवन्ते तेषां जन्मैव निष्फलम्॥

संसारमें पृथ्वी सार है, पृथ्वी पर नगर सार है। नगरमें घर सार है और घरमें मृगनयनी कामिनी सार है। मृगनयनीमें सुरत*—सम्भोग सार है। इससे अधिक सुखदायी और सार

---

* सुरत = स्त्री-पुरुषका सम्भोग, रतिकर्म, मैथुन। इसे अँगरेज़ीमें copulation या coition कह सकते हैं; क्योंकि सुरतके समय स्त्री-पुरुष एक हो जाते या एक दूसरेमें मिल जाते हैं।

वस्तु पुरुषोंके लिए और नहीं है। जो पुरुष-चोलेमें आकर समस्त पदार्थोंके सार, परमानन्दके सगे भाई, सुरतको सेवन नहीं करते—सम्भोग-सुख नहीं भोगते, उनका इस दुनिया में जन्म लेना ही बेकार है।

निश्चय ही संसारियोंके लिये ऐश-आराम के ऐसे सामानोंका मयस्सर होना,—स्वर्ग-सुख उपभोग करना है। इस बातकी सचाईको वे ही समझ सकते हैं, जो चतुर और कामशास्त्र-विशारद रसिक हैं। नपुंसकोंको इस आनन्द का हाल क्या मालूम ?

वैराग्य पक्ष।

अपनी-अपनी रुचि अलग-अलग है। सबकी इच्छायें एक दूसरेसे भिन्न हैं। एक जिस चीजको अच्छी समझता है, दूसरा उसीको बुरी समझता है। जो चीज जिसको प्यारी न हो, वह कैसी ही सुन्दर और रसीली क्यों न हो, उसे अच्छी नहीं लगती।

अँगरेजीमें भी एक कहावत है—"Fair is not fair, but that which pleaseth." सुन्दर सुन्दर नहीं है; किन्तु वही सुन्दर है, जो अपने मनको भावे।

चन्द्रमा सबको प्यारा लगता है, पर कमलिनियों और विरही जनोंको अप्रिय लगता है। संसारका यही हाल है। रसिक पुरुष मालतीके फूलोंकी माला पहनने, केशर चन्दनसे अङ्गराग करने और प्राणप्यारियोंको छातीसे लगानेको ही स्वर्ग-सुख समझते हैं। और कोई-कोई रसिक ऐसे भी हैं, जो इस सुख के आगे

स्वर्गकी भी सारी सम्पदाको तुच्छ समझते हैं। एक ओर ऐसे लोग हैं; तो दूसरी ओर कुछ ऐसे भी हैं, जो इन सभी सुखोंको मिथ्या, अनित्य और परिणाममें शोक, मोह, रोग और नरकका दाता समझते हैं। जिन नवयौवनाओंको कामी अबला समझते हैं, उन्हें वे सबला समझते हैं। जिन्हें कामी कोमलाङ्गी कहते हैं, उन्हें वे वज्राङ्गी कहते हैं। जिन्हें कामी निर्मला और रूपमाधुरी की खान समझते हैं, उन्हें वे कुमला और घृणित गन्दी चीजोंका पिटारा समझते हैं। कामी पुरुष स्त्रियोंका ही ध्यान करना पसन्द करते हैं, पर वे ब्रह्मका ध्यान करना ही अच्छा समझते हैं। उनका कहना है, कामियोंके भोग-विलासमें जो सुख है, वह अनित्य और परिणाममें घोर दुःखोंका देनेवाला है; पर ब्रह्म-विचार में लीन होनेका सुख नित्य और परिणाममें कल्याण करने वाला है। तात्पर्य यह है, कि कामियोंको ही सुन्दरियोंमें स्वर्ग-सुख प्रतीत होता है; विरागियोंको तो इनमें नरक-दुःख—किन्तु ब्रह्म-विचारमें वर्णनातीत परम सुख मालूम होता है।

दोहा।

केसर सों अँगिया सनी, वर्नी नयन की नोक।
मिली प्राणप्यारी मनों, घर आयो सुरलोक ॥२४॥

सार—खूबरू और कमसिन नाज़नी को छातीसे लगानेमें जो मज़ा है, बहिश्तमें उससे बढ़कर मज़ा नहीं।

24. If there be on the head a garland of Malti flowers which are about to blossom, if sandal mixed with saffron is besmeared on the body and the beloved beautiful lady is embraced on the bosom, then I take this as the pleasure of heaven.

प्राङ्मामेति मनागमानितगुणं जाताभिलाषं ततः,
सव्रीडं तदनु श्लथोद्यतमनुप्रत्यस्तधैर्यं पुनः ।
प्रेमार्द्रस्पृहणीयनिर्भररहः क्रीडाप्रगल्भं ततो,
निःशङ्काङ्गविकर्षणाधिकसुखं रम्यं कुलस्त्रीरतम् ॥२५॥

पहले-पहल तो "न न" कहती* है। इसके बाद थोड़ी-थोड़ी अभिलाषा करती है। इसके पीछे लजाती हुई अंगोंको ढीला कर देती है और फिर अधीर हो, प्रेमके रसमें शराबोर हो जाती है। इसके भी पीछे; एकान्त क्रीड़ाकी इच्छा करती है और भोग-विलासमें तरह-तरहकी चातुरी दिखाती हुई, निःशङ्क होकर मर्दन चुम्बनादिसे असाधारण सुख देती है। ये सब मनोहर गुण कुलबालाओंमें ही होते हैं; इसलिये कुलकामिनियोंके साथ ही रमण करना चाहिये ॥२५॥

---

* जीन पॉल महोदय कहते हैं—Women are shy of nothing so much as the little word "Yes" at least they say it only after they have said "No," स्त्रियोंको "हाँ" कहनेमें जितनी लज्जा मालूम होती है, उतनी और किसी दूसरी बातमें नहीं। वे कम-से-कम "नहीं" कह चुकने पर ही "हाँ" कहती हैं।

इस श्लोकमें, महाराजा भर्तृहरिने, नवोढ़ा—नई व्याही हुई बहूसे लेकर, प्रौढ़ा—पूर्ण युवती और अधेड़ अवस्था तककी अपनी स्त्रीके हाव-भाव और भोग-विलासके सुखोंका वर्णन बड़ी ही खूबीसे किया है। उनके सुरतका चित्र ज्यों-का-त्यों खींच दिया है।

नई व्याही हुई बहू पुरुषके साथ समागम होते समय भयके मारे "न न" कहती है, अथवा अधिक सामर्थ्य न होनेके कारण, "अब नहीं, अब नहीं" कहती है। बुद्धिमान् कामियोंको, इन "न न" या "नहीं नहीं" के शब्दोंमें विचित्र प्रकारका रस और मजा मालूम होता है। उस मजेकी बात भुक्तभोगी, जानते हुए भी, ज़बान या क़लमसे लिखकर बता नहीं सकते। क्योंकि उस मजे-का हाल दिल जानता है; पर दिलके ज़बान नहीं और ज़बानके दिल नहीं। रसिक-शिरोमणि पण्डितराज जगन्नाथ कहते हैं:—

श्रुतिशतमपि भूयः शीलितं भारते वा,
विरचयति तथा नो हन्त सन्तापशान्तिम्।
अपि सपदि यथायं केलिविश्रान्तकान्ता,
वदनकमलवल्गत् कान्ति सान्द्रोनकारः॥

काम-क्रीड़ासे थकी हुई स्त्रीके मुखकमलसे निकला हुआ रसमय "नकार" "नहीं-नहीं" कहना, जिस तरह पुरुषके सन्ताप को शीघ्र ही हर लेता है; उस तरह सैकड़ों श्रुतियों और महा-भारत प्रभृति पुराणोंका अध्ययन और मनन भी नहीं कर सकता।

दूसरी अवस्थामें "न-न" कहते-कहते, फिर कामिनीकी स्वयं इच्छा होती है। इच्छा होने पर वह लज्जाका भाव भी दिखाती है और अपने अङ्गोंको ढीला भी कर देती है।

तीसरी अवस्थामें जब वह पूर्ण युवती हो जाती है; उसकी उम्र कोई २५।३० साल या इससे अधिक हो जाती है; तब उसे कन्दर्प-सुखका अनुभव हो जाता है और साथ ही उसका डर भी जाता रहता है। उस वक्त वह प्रेम-रसमें शराबोर होकर अधीर हो जाती है और एकान्त स्थलमें रति-केलि करनेकी इच्छा प्रकट करती है। उस समय, कामकलानिपुण अनुभवी और निर्भय होनेसे, वह निर्लज्ज होकर, नाना प्रकारके आसन-भेदों और चुम्बन आदिसे ऐसा सुख देती है कि उसे, गूँगेके सुपने की तरह, जवान या क़लमसे बताना कठिन है।

ऐसा अपूर्व स्वर्गीय सम्भोग-सुख सलज्ज कुलबालाओंसे ही मिल सकता है; वारबधुओंसे नहीं। निर्लज्ज और निर्भय वाराङ्गनाओंमें ये आनन्द कहाँ? क्योंकि कुलबालाओंमें लज्जा है, भय है और प्रेम है; पर वारबधुओंमें इन तीनोंमेंसे एक भी नहीं। कुलबधुएँ जिस आनन्द और मजेके साथ पुरुषकी काम-पीड़ा और सन्ताप को हर सकती हैं, उस तरह वारबधू नहीं।

छप्पय।

ना ना कहि गुण प्रगट करति, अभिलाष लाज जुत।
शिथिल होय धर धीर, प्रेम की इच्छा करि उत॥

निर्भय रसको लेत, सेज-रण-खेतहि माँही।
क्रीड़ा माँहि प्रवीण, नारि सुखिया मन माँहीं॥
यह सुरत माँझ अतिही सुरत, करत हरत चितगति करैं।
कुलबधू कामिनी केलि कर, कलह कामकी सब हरैं॥२५॥

25. A lady born of a noble family gives the best pleasures of sexual intercourse—Her qualification is that she at first refuses intercourse and shortly afterwards becomes herself desirous of intercourse, then she shyly allows herself to approach loosely, gradually she loses patience, and with eager and amorous looks shows her cleverness in secret movements and then she freely gives the pleasure of allowing parts of her body to be pulled and enjoyed.

उरसि निपतितानां स्रस्तधम्मिल्लकानां,
मुकुलितनयनानां किञ्चिदुन्मीलितानाम् ॥
सुरतजनितखेदस्विन्नगण्डस्थलीना—
मधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति ॥२६॥

छाती पर लेटी हुई हैं, बाल खुल रहे हैं, आधे नेत्र बन्द हो रहे हैं और मैथुनके परिश्रमसे आये हुए पसीने गालों पर झलक रहे हैं,—ऐसी स्त्रियोंके अधरामृतको भाग्यवान् लोग ही पीते हैं ॥२६॥

खुलासा—स्त्री छाती पर पड़ी हो, उसके केश खुल रहे हों, आधी पलकें खुली हों और आधी बन्द हों, गुलाबी गालोंपर रति-

श्रमसे पैदा हुए पसीने आ रहे हों—इस दशामें कोई कोई भाग्य-शाली ही अपनी प्राणप्यारीके नीचले ओंठका रस पान करते हैं।

स्त्रीके अधरामृत पान करनेमें एक अजीब मज़ा है, तभी तो कविलोग उस मज़ेकी इतनी तारीफ़ करते हैं। उस्ताद 'ज़ौक़' भी फ़रमाते हैं—

तेरी ज़ुबाँसे मिलाना ज़ुबाँ, जो याद आया।
न हाय हाय में, तालूसे फिर ज़ुबान लगी॥

तेरी जीभसे जीभ मिलाने * या तेरे अधरामृत पान करनेका ध्यान जब मुझे आया, तब मैं घण्टों हाय हाय करता रहा, इस-लिए मेरी जीभ घण्टोंतक तालुए से न लगी।

छप्पय।

खुले केश चहुँ ओर, फैल फूलनकी बरसत।
मद मद छाके नैन, दुरत उघरतसे दरसत॥
सुरत खेदके स्वेद, कलित सुन्दर कपोल गहि।
करत अधर रस पान, परत अमृत समान लहि॥
ते धन्य धन्य सुकृती पुरुष, जे ऐसे उरझे रहत।
हित भरे रुप यौवन भरे, दम्पति सुख-सम्पति लहत॥२६॥

---

* संस्कृत काव्यमें ज़बान चूसनेके बजाय अधरामृत ही पान किया जाता है; यानी मुसलमान कवि ज़बान चूसना लिखते हैं और संस्कृत कवि अधरामृत पीना।

26. Fortunate must be the man who enjoys the honey of the lips of a lady who is lying on his bosom, whose scented hairs are unfastened, whose eyes are half-shut and whose cheeks shine with drops of perspiration after the exertion of sexual intercourse.

आमीलितनयनानां यः सुरतरसोऽनुसंविदं कुरुते ॥
मिथनैर्मिथोवधारितमवितथमिदमेवकामनिर्वहणम् २७

आलस्यपूर्ण नेत्रोंवाली स्त्रियोंकी कामसे तृप्ति करना, स्त्री-पुरुष दोनोंका परस्पर कामपूजन है, जिसको काम-क्रीड़ा करने वाले दोनों स्त्री-पुरुष ही जानते हैं ॥२७॥

खुलासा—काम-मदकी अधिकताके कारण जिन स्त्रियोंकी आँखोंमें आलस्य भरा है, इसलिये वे ज़रा-ज़रा खुल रही हैं—ऐसी स्त्रियोंकी कामसे तृप्ति करना पुरुषका परम पुरुषार्थ है। ऐसी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेमें जो सुख मिलता है, उस सुख की तुलना नहीं। उस सुखका हाल काम-क्रीड़ा करनेवाले दोनों स्त्री-पुरुष ही जानते हैं।

स्त्रीके नेत्रोंका भारी-सा हो जाना, आधे नेत्रोंका खुला रहना और आधे नेत्रोंका बन्द रहना—स्त्रीके पूर्णतया कामोन्मत्त होनेके चिह्न हैं। यह समय और अवस्था ही काम-क्रीड़ाके लिये उचित है। ऐसी कामोन्मत्त नारीको जो चतुर पुरुष भोगता और सन्तुष्ट करता है, वह भाग्यवान् है और स्त्री भी ऐसे पुरुषकी दासी हो जाती है। अगर स्त्री अपने-आप ऐसी कामोन्मत्ता

नहीं होती, तो कोक-कलाविद चतुर रसिक पुरुष चुम्बन-मर्दन आदि तरकीबोंसे उसे काम-मदसे मतवाली कर लेते हैं।

दोहा।

मृगनैनी आलस भरी, सुरत सेज सुख साज।
पूजहिं दम्पति काम मिल, करहिं सुमंगल काज॥

27. The pleasure arising out of sexual intercourse with a lady with her eyes partly closed is known to both man and woman as the result of mutual intercourse and is their duty.

इदमनुचितमक्रमश्च पुंसां,
यदिह जरास्वपि मान्मथा विकाराः।
यदपि च न कृतं नितम्बिनीनां,
स्तनपतनावधि जीवितं रतं वा॥२८॥

विधाताने दो बातें बड़ी ही अनुचित की हैं:—(१) पुरुषों में, अत्यन्त बुढ़ापा होने पर भी, काम-विकारका होना; (२) स्त्रियोंका स्तन गिर जाने पर भी जीवित रहना और काम-चेष्टा करना॥२८॥

खुलासा—ब्रह्माको उचित था कि, वह बूढ़ोंमें काम-विकार न प्रकट होने देता और स्त्रियोंको तभी तक जीवित रखता, जब तक कि उनके कुच-युगल सुन्दर, सघन और कठोर रहते। बुढ़ापे में काम-विकार का प्रकट होना और स्तनोंके सुकड़ जाने, गिर

जाने अथवा थैलोंकी तरह लटक जाने पर भी स्त्रियोंका ज़िन्दा रहना और काम-चेष्टा करना—दोनोंही विड़म्बनामात्र हैं। जवानी जाते ही पुरुषकी और स्तन गिरते ही स्त्रीकी काम-चेष्टा रसिकों के मनमें खटकती है।

जब तक स्त्रीके कुच छोटी-छोटी नारङ्गियों, अथवा अनारों या कच्चे-कच्चे सेबोंकी तरह रहते हैं, तभी तक स्त्री-भोगमें आनन्द है; स्तन गिर जाने पर मज़ा नहीं। किसीने इन कई बातोंके लिये ब्रह्माको दोषी ठहराया है। कहा है:—

शशिनि खलुकलंकः कण्टकं पद्मनाले ।
युवतिकुचनिपातः पक्वता केशजाले ॥
जलधिजलमपेयं पण्डिते निर्धनत्वं ।
वयसि धनविवेको निर्विवेको विधाता ॥

चन्द्रमामें कलंक, पद्मनालमें काँटे, युवतियोंके स्तनोंका गिरना, बालोंका पकना, समुद्रके जलका खारी होना, पण्डितोंका निर्धन होना और बुढ़ापेमें धन की चिन्ता—ये सब ब्रह्माकी मति-हीनताके परिचायक हैं।

दोहा।

विधिना द्वै अनुचित करी, वृद्ध नरन तन काम।
कुच ढरकतहू जगतमें, जीवित राखी बाम॥

सार—स्त्री-सम्भोगका आनन्द पुरुषकी

जवानीमें और स्त्रीके कुचोंके कठोर और सघन बने रहने तक ही है।

28. It is very imprcper and contradictory that males are subject to passions in old age and it is also very improper and contradictory that females were not made to live and to have sexual intercourse only up to the time when their breasts are protuberant.

एतत्कामफलं लोके यद्द्वयोरेकचित्तता ।
अन्यचित्तकृते कामे शवयोरिव सङ्गमः ॥२९॥

समागमके समय स्त्री-पुरुषोंका एकचित्त हो जाना ही कामका फल है। यदि समागममें दोनोंका चित्त एक न हो, तो वह समागम-समागम नहीं; वह तो मृतकोंका सा समागम है ॥२९॥

किसीने कहा है:—

सुरते च समाधौ च, मनो यत्र न लीयते ।
ध्यानेनापि हि किं तेन, किं तेन सुरतेन वा ॥

सुरतके समय सुरतमें और समाधिके समय समाधिमें यदि मन लीन न हो जाय, चित्त उन्हीं कामोंमें ग़र्क़ न हो जाय, तो उस सुरत और समाधिसे कोई लाभ नहीं। स्त्री-पुरुषके समागमके समय, दोनोंका एक दिल हो जाना परमावश्यक है। दोनों का दिल एक हुए बिना कुछ आनन्द नहीं। यदि एकका दिल

कहीं और दूसरेका कहीं हो और सङ्गम किया जाय; तो उस सङ्गमको स्त्री-पुरुषोंका सङ्गम नहीं, बल्कि दो लाशोंका सङ्गम कह सकते हैं।

समागमके समय यदि दोनोंमें से किसी का भी चित्त समागमके लिये उत्कण्ठित न हो, तो समागम न करना चाहिये। वैसे समागमसे आनन्द नहीं आता और वृथा बल क्षीण होता है। अगर एक का दिल हो और दूसरेका न हो, तो जिसका दिल हो उसे दूसरेका काम जगाना उचित है। जब दोनों ही कामोन्मत्त होंगे, तब अवश्य दोनों ही का दिल एक हो जायगा। अगर चित्त उद्विग्न हो, मन मलीन हो और उद्विग्नता या मलिनता दूर न हो सकती हो, तो समागम न करना ही अच्छा है।

बोसा या चूमा वह शै है, जिसमें चूमनेवाले और चूमे जानेवाले दोनोंको ही आनन्द आता है। ऐसा हो नहीं सकता कि, एक को आनन्द आवे और दूसरेको न आवे। कविने कहा है:—

मुँह पै मुँह रखके लिपट जाव तुम्हारे सिदक़े।
बोसा वह शै है जो दोनोंको मज़ा देता है॥

निश्चय ही, चुम्बनमें दोनोंको आनन्द आता है; लेकिन अगर एक का दिल हो और दूसरेका दिल न हो, एक की इच्छा न हो और दूसरा जबर्दस्ती करे; तो किसीको भी आनन्द नहीं आनेका। पुंश्चली या परपुरुषरता स्त्रियाँ अपने पतियोंको नहीं चाहतीं;



पर उनके पति, कामशास्त्रके पण्डित न होनेकी वजहसे, उनको नहीं पहचानते, उन्हें अपनेसे विरक्ता और परपुरुषरता नहीं समझते। इसलिये, जब वे उन्हें चूमते हैं, तब, वे मन न होने पर भी इन्कार तो नहीं करतीं; पर तुरन्त ही गालको पोंछ डालती हैं*। इस तरह पुरुष और स्त्री किसी को भी चुम्बनका आनन्द नहीं आता। महाकवि "अकबर" कहते हैं:—

ख़ैर, चुप रहिये, मज़ा ही न मिला बोसेका।
मैं भी बे-लुत्फ़ हुआ, आपके झुंझलानेसे॥

आपके झुँझलानेसे, आपके बेमन होनेसे, चुम्बनका मजा मुझे आया न आपको। अब ख़ामोश रहिये, और झुँझलानेसे क्या

---

* नाभि पश्यति भर्तारं नोत्तरंसम्प्रतीच्छति।
वियोगे सुखमाप्नोति संयोगे चाति सीदति॥
शय्यामुपगता शेते वदनमार्ष्टि चुम्बने।
तन्मित्रं द्वेष्टि मानञ्च विरक्तानाभिवांछति॥

जो स्त्री अपने पतिके सामने नहीं देखती, उससे आँखें नहीं मिलाती, उसकी पूछी हुई बातका जवाब नहीं देती, पति जबतक घरमें रहता है दुखी रहती और भुनभुनाती फिरती है, जब पति घरसे बाहर चला जाता है, तब ख़ुश होकर उछलती-कूदती फिरती है; अव्वल तो पतिके साथ एक पलँग पर नहीं सोती, अगर मजबूरीसे सो भी जाती है, तो करवट ले जाती है और पतिके चूमने पर गालको पोंछ डालती है, पतिके मित्रसे द्वेप रखती है और पतिके दिलसे चाहने पर भी उससे नाराज़ ही रहती है—उसे "पतिध्रुक या पतिद्रुहा" कहते हैं। ये पतिको न चाहनेवाली—उससे वैर-विरोध रखनेवाली स्त्रियोंके लक्षण हैं।

फ़ायदा ? आपने झुँझलाकर, एक दिल न होकर, चुम्बनका सारा मज़ा मिट्टी कर दिया।

सारांश—जिस तरह चुम्बनके समय एक दिल न होनेसे चुम्बनका आनन्द नहीं आता; उसी तरह एक दिल हुए बिना समागम करनेसे समागमका कुछ भी आनन्द नहीं आता। वैसा समागम समागम नहीं—दो लाशोंका मिलना (Contact of two corpsas) है।

समागमके समय दोनोंके दिलोंका एक होना बहुत ज़रूरी है; इसी ग़रज़से रतिशास्त्रके ज्ञाताओंने स्त्री-पुरुषोंके परस्पर काम जगानेकी अनेकों तरकीबें लिखी हैं; क्योंकि बिना परस्पर काम जगाये कोई लाभ नहीं। स्त्रीके किस अंगमें किस दिन काम रहता है, अथवा स्त्री काममदसे किस वक्त या किस ऋतुमें मत-वाली होती है और वह काम किस तरह जगाया जाता है,—ये बातें चतुर पुरुषोंको जाननी चाहियें। काम जगानेकी सबसे अच्छी विधि चुम्बन करना अथवा स्तनोंके अगले भागों—बीठ-नियों, काली-काली घुण्डियोंको धीरे-धीरे मलना है। चुम्बन करते ही और बीठनियोंके धीरे-धीरे मलते ही, स्त्रीके नेत्र लाल हो जाते हैं. साँस गरम होकर बड़े जोरसे चलने लगता है और स्त्री सिस-कियाँ भरने लगती है। जब स्त्री सिसकियाँ भरने लगे और शर्म छोड़कर पुरुषसे छेड़-छाड़ करे, तब समझना चाहिये कि, काम चैतन्य हो गया। वही समय सुरत या मैथुनके लिये उत्तम है और

वैसे समयमें ही गर्भ रह सकता है। जो पुरुष इस तरह काम चैतन्य करके काम-क्रीड़ा करता है, स्त्री उसकी क्रीत-दासी या जरख़रीद ग़ुलाम हो जाती है। देखते हैं, बैल, ऊँट, घोड़े, और गधे प्रभृति पशु भी पहले चाट-चूमकर सम्भोग करते हैं, तब मनुष्योंमें तो उनसे कुछ विशेषता होनी ही चाहिये। परमात्माने उन्हें बुद्धि दी है और अनुभवी पुरुषोंने इस विषय पर "अनङ्ग-रङ्ग" "पञ्चशायक" "कोकशास्त्र" "लज्ज़तुल-निशा" प्रभृति अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। शन्तरेको वन्दर विना छीले खाता है और चतुर मनुष्य उसे छीलकर और उसका जीरा निकालकर खाता है। प्रत्येक कामके करनेकी कुछ ख़ास-ख़ास तरकीबें हैं। तरकीबोंके साथ जो आनन्द आता है, वह विना तरकीबोंके नहीं आता।*

हमें फिर कहना पड़ता है कि, विना तरकीब जाने जो भी काम किये जाते हैं, उनमें सफलता नहीं होती। चतुरा और फूहड़ दोनों ही तरहकी स्त्रियाँ खाना पका लेती हैं, पर चतुराका बनाया हुआ खाना जैसा स्वाद और मज़ेदार होता है, वैसा फूहड़का नहीं होता। हाँ, पेट दोनों ही तरह के भोजनोंसे भर जाता है। चतुराके बनाये भोजनसे तबीयत जैसी ख़ुश होती है, गँवारीके बनाये हुए से वैसी ख़ुश नहीं होती। कामशास्त्रका अभ्यासी जिस तरह संभोग करता है, गँवार उस तरह कर

* ये सब कोक-सम्बन्धी विषय अगर देखनेका शौक़ है; तो आप हमारी लिखी "स्वास्थ्यरक्षा" देखें। मूल्य ३) सजिल्द का ३॥।)।

नहीं सकता। हाँ, सन्तान दोनोंके ही हो जाती है। चतुराके बनाये हुये भोजन खाने से रस ठीक बनता है और किसी तरहका रोग नहीं होता; क्योंकि वह आसानी से पच जाता है; पर गँवारीकी मोटी-मोटी कच्ची या जली हुई रोटियोंसे अजीर्ण होता, पेटमें पीड़ा होती और पाक ठीक न होनेसे रस भी ठीक तौरसे नहीं बनता; इसलिये बल बढ़नेके बजाय उल्टा घटता है। कामशास्त्रका अभ्यासी जो संभोग करता है, उससे स्त्री-पुरुष दोनोंको परमानन्दकी प्राप्ति होती है; बल घटने नहीं पाता और रोग पास फटकने की हिम्मत नहीं करते। सन्तान भी सुन्दर, रूपवान, बलवान और विद्वान् तथा बुद्धिमान होती है। किन्तु गँवार, अनजान होनेकी वजहसे, संभोगमें ऐसे काम कर बैठता है, कि जिनसे दिनरात उसका बल क्षीण होता; प्रमेह, सोज़ाक, नपुंसकता और उपदंश आदि रोग पैदा हो जाते; तथा जो औलाद पैदा होती है, वह भी गँवार, मूर्ख, मातापिताकी आज्ञा न माननेवाली, कुरूप और असमयमें ही मरजानेवाली पैदा होती है। इसलिये बिना कामशास्त्रका अभ्यास किये स्त्री-भोग करना, अपने जीवन को ख़राब करना और मृत्युको न्यौता देकर बुलाना है। किसी कविने कहा है:—

दाम्पत्यसुखसिद्ध्यर्थं कामशास्त्रं समभ्यसेत्।
तदभ्यासादनिर्वाच्यममन्दानन्दमश्नुते ॥

कामशास्त्रविहीनांनां रतिः पाशविकी मता।
तदभ्यासान्न सौख्यंस्यात् केवलं दुःखमाप्नुयात् ॥

अर्थात् स्त्रीपुरुष का सुख भोगनेके लिये कामशास्त्रका अभ्यास करना जरूरी है। कामशास्त्रके अभ्याससे ही अनिर्वचनीय उत्तम आनन्द मिलता है। कामशास्त्रके बिना जाने-पढ़े जो भोग किया जाता है, वह तो पशुओंका-सा सम्भोग है। वैसे संभोगसे सुखके बजाय दुःख ही होता है; यानी सुख नहीं होता, केवल दुःख होता है।

और भी कहा है:—

रतिशास्त्रपरिज्ञानविमूढा ये नराधमाः।
रतिं स्वरातिहीनायां विधित्सन्ति गतायुषः ॥
अवश्यं मरणं तेषां भवेदिति विनिश्चितम्।
अतोऽपि रतिशास्त्रस्यज्ञानमावश्यकं मतम् ॥

जो गतायु नीच नराधम, कामशास्त्र न जाननेकी वजहसे, अपने तईं न चाहनेवाली स्त्रीसे सम्भोग करते या करना चाहते हैं,उनकी उम्र कम हो जाती है यानी वे निश्चय ही असमयमें इस दुनियासे कूच कर जाते हैं, मर जाते हैं, इसलिये रतिशास्त्रका ज्ञान होना परमावश्यक है।

कामशास्त्रसे किन–किन बातोंका ज्ञान होता है ?

किं दाम्पत्यसुखं लोके, कानि तत्साधनानि च।
कुमारी परिणीता तु, कीदृशी सुखदा भवेत् ॥

के च विलम्भणोपायास्तासामिह सुखावहाः,
प्रमदानां कथञ्चापि मदविद्रावणं भवेत् ।
कथं नष्टोऽनुरागश्च प्रत्यानेयोमनीषिभिः ॥

वन्ध्यायां मृतवत्सायां वात्मजाप्तिः कथं भवेत्,
सतीनां वनितानाञ्च लक्षणानीह कानि च ।
पुंश्चलीनान्तु नारीणां परिज्ञानं कथं भवेत् ॥

तासां विचेष्टितेभ्यश्च ह्यात्मानं रक्षयेत् कथम्
कथं शरीरं सुरतायासितन्तु विलासिनाम् ।
नवयौवनकालीन-सुरतक्षमतां व्रजेत् ॥

प्रेक्षावद्भिर्भिषग्वर्यैः प्रत्यहं सुपरीक्षिताः ।
गर्भसन्धारणोपायः के भवेयुः सुखप्रदाः ॥

इत्येवमादयोऽवश्यं ज्ञानव्या विषयाश्चये ।
तानविज्ञाय मूढात्मा कथं रतिसुखं लभेत् ॥

रति शास्त्रसे नीचे लिखी हुई बातोंका ज्ञान होता है:—

(१) स्त्री पुरुषका सुख कैसा होता है, और उस सुखके भोगनेके क्या-क्या उपाय या तरीक़े हैं।

(२) कैसी कन्यासे शादी करनी चाहिये; जिससे सच्चा दाम्पत्य-सुख मिले।

(३) विवाह करके लाई हुई स्त्रीमें कैसे विश्वास उत्पादन करना चाहिये, ताकि संसारमें सुख मिले।

(४) स्त्रियोंका मद कैसे उतारा जाता है अथवा उनके मद-भञ्जन करनेके क्या उपाय हैं। वे कैसे द्रवित की जा सकती हैं।

(५) रूठी हुई स्त्री किस तरह मनानी चाहिये; यानी मानिनीके मान मोचनके क्या तरीक़े हैं।

(६) जिसके सन्तान नहीं होती या हो-होकर मर जाती है, उसके औलाद कैसे हो सकती है।

(७) सती या पतिव्रता स्त्रियोंके क्या लक्षण हैं, अर्थात् पतिव्रताओंकी क्या पहचान है।

(८) पुंश्चली या व्यभिचारिणी स्त्रियोंके क्या लक्षण हैं, और उन दुष्टाओंकी कुचेष्टाओंसे पुरुप अपनी रक्षा कैसे कर सकता है।

(९) अति सम्भोग प्रभृतिसे बलहीन हुआ शरीर फिरसे कैसे बलवान हो सकता है, फिरसे नयी जवानी कैसे आ सकती है वग़ैरः वग़ैरः।

(१०) गर्भ धारण करनेके क्या उपाय हैं और सुवैद्य गर्भ न रहनेके कारणोंको कैसे जान सकते हैं इत्यादि।

जो पुरुष इन अवश्यमेव जाननेयोग्य विपयोंको नहीं जानते, उन्हें स्त्री-सम्भोगका सुख कैसे मिल सकता है?

सारे कामशास्त्रका निचोड़ नीचेके दो श्लोकोंमें है और उसी एक बातके लिए "कामशास्त्र" जैसा बड़ा ग्रन्थ रचा गया है:--

यद्यप्यष्ट गुणाधिको निगदितः कामोऽङ्गनानां सदा।
नो याति द्रवतां तथापि झटिति व्यायामिनां संगमे॥
प्रागेव पुंसः सुरते न यावन्नारी द्रवेद्भोगफलं न तावत्।
अतो बुधैः कामकलाप्रवीणैः कार्यः प्रयत्नो वनिताद्रवत्वे॥

अर्थात्—यद्यपि स्त्रीमें पुरुषकी अपेक्षा सदा आठ गुणा काम कहा गया है, तोभी वह पुरुष-सङ्गसे जल्दी स्खलित नहीं होती। संभोग करनेसे अगर स्त्री पहले स्खलित न हो, तो संभोग करना बेकार हुआ, उसका कोई फल न हुआ। इसलिये, कामकला जाननेवाले चतुर पुरुषको स्त्री के द्रवित * करनेकी चेष्टामें कोई उपाय उठा न रखना चाहिये।

*द्रवित और स्खलित शब्द ऐसे हैं, जिनके कहने और लिखनेमें, आज कल, संस्कृतका अधिक प्रचार न होने से, लज्जा नहीं मालूम होती, अश्लीलताका उतना दोष नहीं आता। यद्यपि एटीकेट (Etiquette) यानी अदब, आदाब या सौजन्य-शिष्टाचार हमें इतनेसे भी रोकता है, पर हमने अपने अल्प शिक्षित भाइयोंकी ख़ातिरसे २५, २६, २७ और २६ वें श्लोकों की टीका-टिप्पणीमें एटीकेटका उतना ध्यान नहीं रखा है। जहाँ तक हमसे बना है वहाँतक हरेक बात खोलकर लिखी है और अपने तईं क़ानूनी पेचोंसे भी बचाया है। हम जानबूझकर कोई भी काम ऐसा नहीं करना चाहते, जिससे क़ानून भंग हो और सरकार नाराज़ हो। राजाको खुश रखनेमें ही सुख-शान्ति है।

चूँकि कामशास्त्रका विषय बहुत बड़ा है। उस पर बड़े-बड़े ग्रन्थ अंग्रेज़ी और संस्कृत प्रभृति भाषाओंमें लिखे हुए हैं। हमने भी कामशास्त्रकी जानने-योग्य सभी बातें अपनी बनाई "स्वास्थ्यरक्षा" दसवाँ संस्करण और

दोहा।

नारि-समागम-कामफल, दुहुनहि चित इक होय।
जो कहूँ होय विभिचता, शव-संगम-सम जोय ॥२६॥

सार—सम्भोग-कालमें, स्त्री-पुरुषके एक-दिल होनेमें ही आनन्द है।

"चिकित्साचन्द्रोदय" चौथे तथा पाँचवें भागोंमें लिखी है। हमने काम-शास्त्र पढ़नेकी ज़रूरत यहाँ समझा दी है। जो लोग कामशास्त्र और वैद्यकशास्त्र नहीं पढ़ते, उनका इस दुनियामें आना और मनुष्य-चोला धारण करना वृथा है। कामशास्त्र और वैद्यकशास्त्रमें कुछ फ़र्क़ नहीं। सच पूछो तो कामशास्त्र वैद्यकशास्त्रका ही एक अंश है। लोग पहले शिकायत किया करते थे कि, कामशास्त्र और वैद्यकशास्त्र सरल सुबोध हिन्दीमें नहीं—इसलिये पढ़ें तो क्या पढ़ें। उन्हींकी शिकायत रफा करनेके लिये हमने समस्त आयुर्वेद ग्रन्थोंका नवनीत एक ग्रन्थमें इकट्ठा किया है और उस ग्रन्थका नाम रक्खा है, "चिकित्साचन्द्रोदय"। इस ग्रन्थके सात भाग हैं। हमारी रायमें वे सातों ही भाग हर मनुष्यको आद्योपान्त पढ़ लेने चाहियें। जिस दिन भारतका प्रत्येक स्त्री-पुरुष उन सातों भागोंको पढ़-पढ़ कर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करेगा, उस दिनका भारत—और ही भारत होगा।

हमारी दयामयी न्यायशीला ब्रिटिश सरकार किसीको कामशास्त्र पढ़नेसे मना नहीं करती। अगर ऐसा होता, तो Sexual Intercourse विषय पर, अँगरेज़ीमें अनेकों ग्रन्थ न निकल जाते और उन्हें अँगरेज़ नरनारी न पढ़ते। सरकार चाहती है, उसकी प्रजा अश्लील और गन्दी पुस्तकें, जिनमें नङ्गी तस्वीरें हों, पास न रक्खे। पर अफसोस है कि, आजकलके नासमझ नौजवान उन्हींकी खोज में पागलकी तरह अपना धन और समय

29. It is only when both the man and the woman are of the same mind then the sexual pleasures are the greatest. If their minds are diverted, then the intercourse is like that of inanimate bodies.

प्रणयमधुराः प्रेमोद्गाढा रसादलसास्तथा,
भणितमधुरा मुग्धप्रायाः प्रकाशितसम्मदाः ॥
प्रकृतिसुभगा विश्रम्भार्हाः, स्मरोदयदायिनो
रहसि किमपि स्वैरालापा हरन्ति मृगीदृशाम् ॥ ३० ॥

मृगनयनी कामिनियोंके प्रणय-प्रीतिसे मधुर, प्रेम-रससे पगे, कामकी अधिकतासे मन्दे, सुननेमें आनन्दप्रद, प्रायः अस्पष्ट और समझमें न आने योग्य, सहज-सुन्दर, विश्वासयोग्य और

बर्बाद करते हैं। आजकलके दग़ाबाज़ विज्ञापनबाज़ोंकी रंगीन बातोंमें आकर वी० पी० पर वी० पी० मँगाते और पीछे पुस्तकोंको कामकी न पाकर रोते और पछताते हैं हमारे भोले-भाले पाठक "सचित्र कोकशास्त्र"का विज्ञापन पढ़ते ही आर्डर दे देते हैं। पर इतना नहीं समझते, कि आसनोंकी तस्वीरें देकर कोकको कौन छापनेकी हिम्मत कर सकता है? जेलसे किसे भय नहीं है? इसलिये हम फिर कहते हैं कि, आप चालीस रुपये ख़र्च करके "चिकित्सा-चन्द्रोदय" सात भाग और "स्वास्थ्य रक्षा" देखें—आपको सम्पूर्ण आयुर्वेद और कामशास्त्रका ज्ञान हो जायगा। इस शास्त्र को पढ़ना आपका कर्त्तव्य है, धर्म है, यही हमारे मुनियोंकी और यही पाश्चात्य विद्वानोंकी राय है। देखिये डाक्टर गन साहब कहते हैं—It is, therefore, every individual's duty to study the laws of his being, and

कामोद्दीपन करनेवाले वचन, यदि स्वच्छन्दतापूर्वक एकान्तमें कहे जायँ, तो, निश्चय ही, सुननेवालेके मनको हर लेते हैं ॥३०॥

खुलासा—कुरङ्गनयनी तरुणियोंकी प्रेम-रस से पगी हुई मधुर- मधुर बातें रसिक पुरुषोंके कानों में अमृत-सा ढालती हैं। मुर्झाये हुए पुष्प-रूपी प्राणोंको खिलाती हैं, सारी इन्द्रियोंको प्रसन्न करतीं और मनमें रसायनका काम करती हैं। लेकिन जब वे एकान्त-स्थलमें स्वच्छन्दतापूर्वक कही जाती हैं, तब तो और भी ग़ज़ब करती हैं। जिनसे ये कही जाती हैं, वे बात कहनेवालियोंके क्रीत-दास ही हो जाते हैं।

कोई प्रेमी अपनी प्रेमिकाकी मीठी-मीठी बातें सुनकर महाकवि 'अकबर' के शब्दोंमें कहता है—

बनोगे ख़ुसरवे इक़लीमें दिल, शीरींज़बाँ होकर।
जहाँगीरी करेगी यह अदा, नूरेजहाँ होकर॥

मीठी-मीठी बातें करनेसे तुम संसारके सभी लोगों के दिलोंकी रानी हो जाओगी। तुम्हारा यह गुण—मधुर भाषण नूरजहाँकी तरह सारे संसारको फतह करेगा।

---

to conform to them. Ignorance, or inattention on this subject, is sin, and injurious consequences of such a course make out a case of gradual suicide. चिकित्सा-शास्त्र और काम-शास्त्र पढ़ना हरएक मनुष्यका धर्म है। जो इन्हें नहीं पढ़ते वे पाप करते हैं और अन्तमें आत्महत्या आदि करके बे-मौत मरते हैं।

दोहा ।

प्रणय-मधुरं आलस भरे, सरस सनेह समेत ।
मृगनैनिन के ये वचन, हरत चित्तकों लेत ॥३०॥

सार—सुनयनाओंकी मधुर-मधुर बातोंमें जादूकी सी शक्ति होती है। उनकी अमृत-भरी बातों पर कामी पुरुष लट्टू हो जाते हैं।

30. Ladies with beautiful eyes always attract the mind by their unrestrained conversation which is sweet because of softness, fuil of love, very pleasing to the ear on account of delicacy, gives rise to joy, is naturally soothing and confiding and which arouses passions.

आवासः क्रियतां गाङ्गे पापहारिणि वारिणि ।
स्तनमध्ये तरुण्या वा मनोहारिणि हारिणि ॥३१॥

या तो पाप-ताप नाशनी गंगाके किनारों पर ही बसना चाहिये, या मनोहर हार पहने हुए तरुणी स्त्रियोंके स्तनोंके मध्यमें ही बसना चाहिये ॥३१॥

खुलासा—दो में से एक काम करना चाहिये—या तो पाप-हारिणी गङ्गाके किनारे बैठकर शंकरका भजन करना चाहिये या मोतियोंके हार धारण करनेवाली हृदयहारिणी कामिनियोंके कठोर कुच सेवन करने चाहियें।

इस जगत्में, कामी पुरुषोंके लिये नवयुवतियोंके कठोर कुच-युगल और सघन स्थूल जङ्घाओंसे बढ़कर सुखदायी और दूसरा पदार्थ नहीं है; इसलिये वे उन्हींका सेवन कर अपना मनुष्य-जन्म सफल करें। पर जिन्हें इस संसारकी असारता और चञ्चलताका ज्ञान हो गया है, जिन्हें रूप-यौवनकी अनित्यताका हाल मालूम हो गया है, और इसलिये कामिनियोंसे घृणा हो गई है, उन्हें सब द्विविधा त्याग, कहीं निर्जन और रमणीक स्थानमें, गंगाके तट पर पर्णकुटी बना, शिव-शिव रटना चाहिये। कामिनियोंके भोगनेसे यहाँ अपूर्व सुखकी प्राप्ति होगी, पर परलोकमें दुःखोंका सामना करना पड़ेगा; मगर सबको तज, गंगा किनारे जा, हरभजन करनेसे यहाँ भी सुख-शान्ति मिलेगी और वहाँ भी। पाठकोंके समक्ष दोनों राहें हैं। अब उन्हें जौनसी राह पसन्द हो उसे ही चुन लें। त्रिशङ्कु की तरह बीचमें लटकना और—

इधरके रहे न उधरके रहे।
ख़ुदा ही मिला न विसाले सनम ॥

वाली कहावत चरितार्थ करना भला नहीं।

दोहा।

वास कीजिये गंग तट, पाप निवारत वारि।
कै कामिनि कुच युगलको, सेवन करहु विचारि ॥३१॥

सार—गङ्गा-तट पर बसना और कामिनियोंके कठोर कुचोंका सेवन करना—ये दो ही

काम जगत्में मुख्य हैं। विचारवान विचारकर; इनमें से किसी एक को चुन लें।

31. Let one take rest either on the bank of the river Ganges whose water clears away the sin or between the breasts of a woman which are very attracting and where the breast—chain is lying.

प्रियपुरतो युवतीनां तावत्पदमातनोतु हृदि मानः।
भवति न यावच्चन्दनतरुसुरभिर्मधुसुनिर्मलः पवनः ३२

मानिनी कामिनियोंके हृदयोंमे अपने प्यारोंके प्रति मान तभीतक ठहरता है, जबतक चन्दनके वृक्षोंकी सुगन्धिसे पूर्ण मलयाचलका वायु नहीं चलता ॥३२॥

खुलासा—मानिनियोंके मनमें उसी समय तक मान रहता है, और उसी समय तक उनकी भृकुटियाँ टेढ़ी रहती हैं, जब तक कि चन्दनके वृक्षोंकी सुगन्धिसे मिला हुआ वायु उनके कोमल शरीरोंमें नहीं लगता।

आमकी मनोहर मञ्जरियाँ, सुविमल चन्द्रमा, कोकिल, भौंरे और मलय-पवन तथा वसन्त—ये सब कामदेवके साथी और उसके अस्त्र-शस्त्र हैं। वह इन्हींसे त्रिलोकीको वशमें करता है।

मानिनी कैसी ही कठोर क्यों न हो, किसी तरह मनाये न मनती हो; तोभी वह कोयलके कुहुकने, मलयपवनके चलने या

घटाओं के छा जानेसे शीघ्र ही मान छोड़, अपने प्रीतमकी गोदमें आ जाती है। जो कामिनी पुरुषकी अनेक तरह की .खुशामदोंसे भी राज़ी न होती हो, वह मलयपवन प्रभृतिकी मददसे सहजमें राज़ी हो जाती है। कविने ठीक कहा है कि, मानिनीका मान तभी तक है, जब तक मलयाचलकी हवा नहीं चलती। उसके चलते ही मानिनी आप .खुशामद करने लगती है; क्योंकि वसन्त में मलयाचलकी ओरकी हवा चलती है और वह स्त्रियोंके दिलोंमें बड़ी गुदगुदी पैदा करती है। इसीसे आयुर्वेद-आचार्योंने वसन्त में रात-दिन स्त्री-पुरुषोंके अङ्गमें कामदेवका रहना लिखा है। इस मौसममें, मनहूस-से मनहूसका भी काम जाग उठता है और रूठी हुई *स्त्रियाँ सहजमें मन जाती हैं।

---

* कामशास्त्रमें स्त्रीके नाराज़ या उदासीन रहनेके सम्बन्धमें लिखा है—

कार्पण्यादतिमानरोगविरहोद्योगादि पारुष्यतो,
मालिन्यासममज्ञतादि भयतः शोकाद्दरिद्रादपि।
भर्तृणां तनुतादिभिश्च वपुषः काठिन्यतःशंकना,
दोषाणाञ्च वृथा प्रयाति वनितावैराग्यमुच्चैः सदा ॥

पति की अत्यन्त कंजूसी, पतिका ज़ियादा प्यार करके सिर पर चढ़ा लेना, पतिका सदा रोगी बना रहना, पतिका निखट्टू या पुरुषार्थहीन होना; पतिका उम्र, यौवन, विद्या, बुद्धि और कुल-शील आदि में पत्नीके समान न होना; पतिकी मूर्खता, पति और सास ससुर आदिका अत्यन्त भय, शोक, दरिद्रता, पतिके शरीर की सख्ती और कठोरता, पतिका अधिक शंकायुत रहना और व्यभिचार या छिनाले की झूठी तुहमत लगाना—प्रभृति

दोहा।

तबही लों मन मान यह, तब ही लों भ्रूभंग।
जौ लौं चन्दनसे मिल्यो, पवन न परसत अंग ॥३२॥

सार—मलयपवनके चलते ही मानिनी स्त्रियाँ आप ही सीधी हो जाती हैं।

32. The pride of a woman before her lover remains only so long as the pure spring air bearing the sweet smell of sandal does not touch her body,

---

कारणोंसे स्त्रियाँ अपने पतियोंसे अक्सर विरक्त, उदासीन, नाराज़ या असन्तुष्ट रहती हैं। जिन पुरुषोंको स्त्री-सुखकी ज़रूरत हो, उन्हें उपरोक्त कारण यथासाध्य दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। ऐसा करने से ही स्त्री चाहने लगेगी।

—:*:—



वसन्त-महिमा ।

परिमलभृतो वाताः शाखा नवाङ्कुरकोटयो ।
मधुरविरुतोत्कण्ठा वाचः प्रिया पिकपक्षिणाम् ।
विरलसुरतस्वेदोद्गारा वधूवदनेन्दवः ।
प्रसरति मधौ रात्र्यां जातो न कस्य गुणोदयः ॥३३॥

जबकि सुगन्धियुक्त पवन चला करती है, वृक्षोंकी शाखाओं में नये-नये अंकुर निकलते हैं, कोकिला मदमत्त या उत्कंण्ठित होकर मधुर कलरव करती है, स्त्रियोंके मुखचन्द्र पर मैथुनके परिश्रमसे निकले हुए पसीनोंकी हलकी-हलकी धारें मज़ा देने लगती हैं, उस वसन्तकी रातमें, किसे काम पीड़ित नहीं करता ? ॥३३॥

खुलासा—वसन्त कामदेवका साथी और ऋतुओंका राजा है। इस ऋतुमें सुगन्धि-मिश्रित पवन चलने लगते हैं। शाखा-

---

* मधौ = चैत्रे। चैत वसन्तके दो महीनोंमेंसे एकका नाम है, पर यहाँ यह सारे ही वसन्तके मौसमके लिए इस्तैमाल किया गया है।

प्रशाखाओंमें नवीन पत्राङ्कुर शोभा देने लगते हैं। चारों ओर फूल खिलते हैं। कोकिला मधुर कलरव करती है। साँझ सुहावनी और दिन रमणीय होने लगते हैं। स्त्रियाँ अनुरागिनी होने लगती हैं। बहुत क्या—इस ऋतुमें सभी पदार्थोंमें मनोहरता आ जाती है।

हम अपने पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ महाकवि कालिदास-विरचित "ऋतुसंहार" से चन्द सुन्दर-सुन्दर पद्य उद्धृत करते हैं:—

आकम्पितानि हृदयानि मनस्विनीनां
वातैः प्रफुल्ल सहकार कृताधिवासैः।
सम्बाधितम्परभृतस्य मदाकुलस्य
श्रोत्रप्रियैर्मधुकरस्य च गीतनादैः॥

इस ऋतुमें बौरे हुए आमके वृक्षोंकी सुगन्धसे सुगन्धित वायुने धीरज धरनेवाली कामिनियोंके हृदयोंमें भी खलबली मचा दी है। मदोन्मत्त कोकिलोंकी कुहुक और भौंरोंके मधुर गुञ्जारसे चारों दिशाएँ भर गयी हैं।

और भी:—

पुंस्कोकिलश्चूतरसेन मत्तः
प्रियामुखं चुम्बति सादरोयम्।
गुञ्जद् द्विरेफोऽप्ययमम्बुजस्थः
प्रियं प्रियायाः प्रकरोति चाटुम्॥

आमके रससे मतवाला हुआ कोकिल, सादर, अपनी प्यारी का मुख चूम रहा है। गूँजता हुआ भौंरा भी कमल पर बैठ कर अपनी प्यारीकी ख़ुशामद कर रहा है।

और भी:—

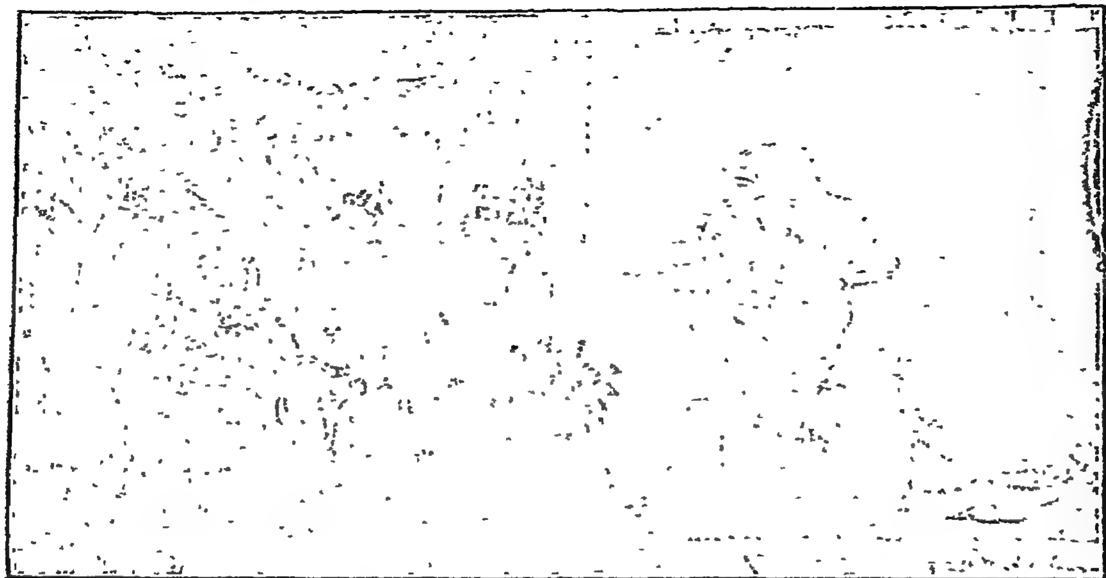
तनूनि पाण्डूनि मदालसानि
मुहुर्मुहुर्जृम्भणतत्पराणि ।
अंगान्यनंगः प्रमदाजनस्य
करोति लावण्यरसोत्सुकानि ॥

इस ऋतुमें मीनकेतन—कामदेव, स्त्रियोंके नाज़ुक, गोरे, मतवाले और बारम्बार जम्हाइयाँ लेते हुए अङ्गोंको शृङ्गार-रसमें मग्न कर देता है।

बहुत लिखनेको हमारे पास स्थानका अभाव है, इसलिये इतना ही यथेष्ट होगा। वसन्तमें नामर्द भी मर्द हो जाता है। स्त्रियोंको तो इतना मद छा जाता है कि, वे सीना उभार कर और अकड़ कर चलती हैं। रसीले और छैल-छबीले पतियोंके पास रहने पर भी नहीं दबतीं; बल्कि उत्कण्ठित ही रहा करती हैं।

छप्पय ।

चलैं सुगन्धित पवन, फूल चहुँ दिशिमें फूले ।
बोलत पिक मृदु वचन, काम-शर उरमें शूले ॥
मुकुलित मञ्जरि आम, करै उत्कण्ठा भारी ।
रतिश्रम स्वेदित वदन, चन्द्रसम अद्भुत नारी ॥



ऋतुराज वसन्त कोकिल के मधुर-मधुर झङ्कार और मलय पवन से विरही स्त्री-पुरुषों के प्राणनाश करता है। इस चित्र में यह दिखलाया गया है कि, कामिनी का पति घर में नहीं है, विदेश में है। उधर से वसन्त की अवाई हो गई है, वृक्षों में नये-नये पत्ते आ गये हैं, कोकिल कुहुक रही है; अतः विरह-वेदना से व्याकुल कामिनी मन मलीन किये बैठी है। (पृष्ठ ८४)

यह केहि पदार्थके गुणनकों, उदय करत नहिं जगत् महँ ।
शुठि ऋतु वसन्तकी है निशा, मंगलदायक सकल. कहँ ॥३३॥

सार—बसन्त में सभी की उत्कंण्ठा और कामवासना बढ़ जाती है ।

33. What objects do not assume their qualities in the dead of night of the spring season when the scented breeze blows, new sprouts of leaves come out on the branches of trees, the sweet sound of cuckoo and other birds appear very pleasing and the stray drops of perspiration shine on the moon-like face of women after the exertion of sexual intercourse.

मधुरयं मधुरैरपि कोकिला—
कलकलैर्मलयस्य च वायुभिः ॥
विरहिणः प्रणिहन्ति शरीरिणो
विपदि हन्त सुधाऽपि विषायते ॥३४॥

ऋतुराज वसन्त कोकिलके मधुर-मधुर शब्दों और मलय पवनसे विरही स्त्री-पुरुषोंके प्राण नाश करता है। बड़े ही दुःख का विषय है कि, प्राणियोंके लिये विपद्कालमें अमृत भी विष हो जाता है ॥३४॥

खुलासा—कोकिलका मधुर कलरव और मलयाचल की सुगन्धिपूर्ण हवा प्राणिमात्रमें नवजीवन का सञ्चार करते हैं ।



इनसे शोकार्त्त और मनहूसोंके दिलोंमें भी गुदगुदी होने लगती है। सभीके चेहरों पर प्रसन्नता छा जाती है; पर कर्मों के फेर या दुर्दिनके कारणसे, यही दोनों विरही स्त्री-पुरुषोंको मछलीकी तरह तड़फाते हैं। सच है, विपद्‌कालमें सोना मिट्टी हो जाता है और अमृत विष होजाता है। पण्डितराज जगन्नाथ अपने "भामिनी-विलास" में कहते हैं:—

मलयानिलमनलीयति मणिभवने काननीयति क्षणतः।
विरहेण विकलहृदया निर्जलमीनायते महिला॥

विरह-वेदनासे विकल कामिनी, मलयाचलकी पवनको आग और मणिमय भवनको वन समझकर, मछलीका-सा आचरण करती है; यानी जलहीन मछलीकी तरह तड़फती है।

औरभी:—

पाटीरद्रुभुजंगपुंगवमुखायाताइवातापिनो,
वाता वांति दहन्ति लोचनममी ताम्रा रसालद्रुमा:।
एते हन्त किरन्ति कूजितमयंहालाहलं कोकिला—
बाला बालमृणालकोमलतनुः प्राणान् कथं रक्षतु॥

चन्दनके वृक्षोंमें बसनेवाले साँपों के मुखसे निकली हुई हवाके समान सन्तप्त—गरम हवा चलती है; लाल-लाल पत्तों वाले आमके वृक्ष नेत्रों को जलाते हैं; कोयल की वाणी विष-सा बरसाती है। इस दशामें नवीन कमलकी डंडीके समान कोमलाङ्गी बाला किस तरह अपनी प्राणरक्षा करेगी?

पाठक ! देख लिया, वन्सतमें विरहीजनोंकी कैसी दुर्दशा होती है। विरही स्त्री-पुरुष सभी शीतल और शान्तिमय पदार्थों को अग्निवत् समझते हैं। विरह-व्याकुला बाला काले अगर और चन्दनके रसको हलाहल विष और नील कमलोंकी मालाको साँपोंकी क़तार समझने लगती है।

एक विरहिणी वसन्तमें अपने प्रीतमके घर न आने पर स्वपति, कोकिला, कामदेव और चन्द्रमा पर कैसी कुपित हो रही है और उनसे बदला लेनेकी ठान रही है। हम इस मनोहर उक्तिको महाकवि कालिदास-कृत "श्रृंगारतिलक" से उद्धृत करते हैं। लीजिये पाठक ! इसका भी रसास्वादन कीजिये:—

आयाता मधुयामिनी यदि पुनर्ना—
यात एव प्रभुः प्राण यान्तु विभावसौ
यदि पुनर्जन्मग्रहं प्रार्थये।
व्याधःकोकिलवन्धने हिमकर—
ध्वंसे च राहुग्रहः कन्दर्पे हरनेत्र-
दीधितिरहं प्राणेश्वरे मन्मथः ॥

वसन्तकी रात आगई; पर मेरे स्वामी न आये। इसलिये मेरे प्राण आगमें नष्ट हों। अगर मरनेके बाद फिर जन्म होता हो, तो मैं परमात्मासे प्रार्थना करती हूँ कि, कोकिलके वन्धनके लिये मैं व्याध होऊँ; चन्द्रमाके नाश करनेके लिये राहु होऊँ; कामदेवके संहारके लिये शिवजीके नेत्रकी किरण बनूँ और

अपने प्राणप्यारेके लिये कामदेव बनूँ; अर्थात् बसन्तमें, ये सब मुझे जिस तरह सता रहे हैं; परकालमें, मैं भी इन्हें सताऊँ और अपना बदला लूँ।

दोहा।

ऋतु बसन्त कोकिल-कुहुक, त्योंही पवन अनूप।
विरह विपतके परत ही, सुधा होय विपरूप ॥३४॥

सार—विरही स्त्री पुरुषोंके लिये "बसन्त" मौतके समान है।

34. This month of Chaitra kills (as it were) those who are suffering from the pangs of separation, by the sweet sound of cuckoo and by the air of Malyachala mountain. Alas! even nectar becomes poison in adversity. (Sweet sound of the cuckoo and the gentle breeze in the spring season please every one—but those whose beloved ones are away feel their absence all the more by these messengers of spring.)

आवासः किल किञ्चिदेव दयितापार्श्वे विलासालसः
कर्णे कोकिलकाकलीकलरवः स्मेरो लतामण्डपः ॥
गोष्ठी सत्कविभिः समं कतिपयैः सेव्याः सितांशोः कराः
केषांचित्सुखयन्ति नेत्रहृदये चैत्रे विचित्राः क्षपाः ॥३५॥

भोगविलाससे शिथिल होकर कुछ समय तक अपनी प्यारी के पास आराम करना, कोकिलाओंके मधुर शब्द सुनना, प्रफु-

क्षित लतामण्डपके नीचे टहलना, सुन्दर कवियोंसे बातचीत करना और चन्द्रमाकी शीतल चाँदनीकी बहार देखना—ऐसी सामग्रीसे चैत्र मासकी विचित्र रात्रियाँ किसी-किसी ही भाग्यवान् के नेत्र और हृदयोंको सुखी करती हैं ॥३५॥

खुलासा—कोयल कुहुकती हो, लताएँ फूल रही हों, चाँदनी छिटक रही हो, श्रेष्ठ कवि अपनी रसीली कविताएँ सुनाते हों और भोग-विलाससे थक कर अपनी प्राणप्यारीके पास आराम कर रहे हों—चैतके महीनेकी रातोंमें, जिन्हें ये सब मयस्सर हों, वे निश्चय ही भाग्यवान हैं। जिन्होंने पूर्वजन्ममें पुण्य सञ्चय किये हैं, उन्हें ही ये स्वर्गीय सुख मिलते हैं; सब किसीको नहीं।

दोहा।

कोकिल-रव फूली लता, चैत-चाँदनी रैन।
प्रिया सहित निज महलमें, सुकृती करत सुचैन ॥३५॥

सार—चैतकी चाँदनी रातमें, विरले पुण्यात्मा ही अपने महलकी छतपर, अपनी प्राणप्यारीके साथ आनन्द करते हैं।

35. These wonderful nights of the month of Chaitra give pleasure to the mind and eyes of a man who enjoys the sweet company of his beloved wife being tired with pleasurable copulation, hears the

sweet songs of the cuckoo and takes delight in bright moon-light, whose time is passed in company with bards, but to others whose beloved ones are away, these nights give pain.

पान्थस्त्रीविरहानलाहुतिकथामातन्वती मञ्जरी
माकन्देषु पिकाङ्गनाभिरधुना सोत्कण्ठमालोक्यते ॥
अप्येते नवपाटलापरिमलप्राग्भारपाटच्चरा
वान्तिक्लान्तिवितानतानवकृताः*श्रीखण्डशैलानिलाः
॥३६॥

इस वसन्तमें, जगह-जगह, बटोहियोंकी विरहव्याकुल स्त्रियोंकी विरहाग्निमें आहुतिका काम करने वाली आमकी मञ्जरियाँ खिल रही हैं। कोकिला उन्हें बड़ी अभिलाप या उत्कण्ठासे देख रही है। नये पलाशके फूलोंकी सुगन्धको चुरानेवाले और राहकी थकानको मिटानेवाले मलय-वायु चल रहे हैं ॥३६॥

---

* श्रीखण्डशैल मलयाचल पर्वतका ही दूसरा नाम है। मलयाचल भारतकी सात मुख्य पर्वत-श्रेणियोंमेंसे एक है। संभवतः, यह घाटोंका दक्षणीय भाग है, जो मैसूरके दक्खनसे शुरू होकर ट्रावनकोरकी पूर्वी सीमा बनाता है। कीलडार्न साहब कहते हैं, मलयाचल उस पर्वत-श्रेणीका नाम है जो भारतीय प्रायद्वीपके पश्चिमीय तट पर है, और जहाँ चन्दनके वृक्ष बहुतायतसे लगते हैं।

यहाँ ऋतुराजकी स्वाभाविक महिमाका चित्र खींचा गया है। हम भी अपने मनचले पाठकोंके मनोरंजनार्थ महाकवि कालिदासके "ऋतुसंहार" से एक श्लोक नीचे उद्धृत करते हैं:—

समदमधुकराणां कोकिलानाञ्च नादैः
कुसुमितसहकारैः कर्णिकारैश्च रम्यैः ।
इषुभिरिव सुतीक्ष्णैर्मानसं मानिनीनां
तुदति कुसुममासो मन्मथोद्दीपनाय ॥

यह कुसुम मास मतवाले भौंरों, कोकिलके शब्दों, अत्यन्त तेज़ तीरोंके समान बौरे हुए आम के वृक्षों और मनोहर कनेरके वृक्षोंके द्वारा, कामोद्दीपन करनेके लिये, मानिनी स्त्रियोंके मनों को विद्ध कर रहे हैं।

छप्पय ।

विरहीजन-मन ताप करन, वन अम्बा मौरे ।
पिकहू पञ्चम हेर टेर, विरही किये बौरे ॥
भौंर रहे मन्नाय, पुहुप पाण्डलके महकत ।
प्रफुलित भये पलास, दशों दिशि दौसी दहकत ॥
मलयागिरिवासी पवनहु, काम-अग्नि प्रज्वलित करत ।
बिन कन्त वसन्त असन्त ज्यों, घेरं रह्यो यह नहिं टरत ॥ ३६ ॥

सार—आम की मंजरियोंका खिलना, कोकिलाका उन्हें उत्कंठासे देखना और मलय

पवनका चलना,—ये ऋतुराज—वसन्तकी स्वाभाविक महिमा है ।

36. In the spring season, the peahen eagerly looks at the mango blossoms which adds to the flame of separation of a traveller's wife and the air from Malyachala blows stealing the smell of patal flowers and renewing her grief.

सहकारकुसुमकेसरनिकरभरामोदमूर्च्छितदिगन्ते ।
मधुरमधुविधुरमधुपे मधौ भवेत्कस्य नोत्कण्ठा ॥३७॥

आमके बौरोंकी केसरकी गहरी सुगन्धसे दशों दिशाएँ व्याप्त हो रही हैं, मधुर मकरन्दको पी-पीकर भौंरे उन्मत्त हो रहे हैं—ऐसे ऋतुराज वसन्तमें किसके मनमें कामवासनाका उदय नहीं होता ॥३७॥

खुलासा—जिस समय वसन्तमें आमोंके फूलोंकी सुगन्धसे दिशाएँ महकने लगती हैं, मधुके लोभी भौंरे मधु पी-पी कर उन्मत्त हो जाते हैं, उस समय प्रायः सभी प्राणियों की विषय-वासना प्रबल हो उठती है । पुरुष स्त्रियोंसे और स्त्रियाँ पुरुषों से मिलनेको तड़फड़ाने लगती हैं । बड़ी-बड़ी मानिनी स्त्रियों का गर्व खर्व हो जाता है । जो दम्पति एकत्र होते हैं, वे इस ऋतुमें आनन्द करते हैं; परन्तु जो दूर-दूर होते हैं, वे विरहकी आगमें बुरी तरह जलते हैं ।

सोरठा ।

फूले चहुँ दिशि आम, भई सुगन्धित ठौर सब ।
मधु मधुपी अलिग्राम, मत्त भये झूमत फिरें ॥३७॥

सार—बसन्तमें प्रायः सभी प्राणियोंको कामदेव सताता है ।

37. Who does not feel buoyant in the spring season when all the quarters are filled with smell issuing forth from the bunch of mango-blossoms and when the bees are busy in the collection of sweet honey from flowers ?

——०——



अच्छार्द्रचन्दनरसार्द्रकरा मृगाक्ष्यो,
धारागृहाणि कुसुमानि च कौमुदी च ।
मन्दो मरुत्सुमनसः शुचिहर्म्यपृष्ठं,
ग्रीष्मे मदञ्च मदनञ्च विवर्द्धयन्ति ॥३८॥

अत्यन्त सफेद चन्दन जिनके हाथोंमें लग रहा है, ऐसी मृगनयनी सुन्दरियाँ, फव्वारेदार घर, फूल, चाँदनी, मन्दी हवा

और महलकी साफ छत,—ये सब, गरमीके मौसममें, मद और मदन दोनों-हीको बढ़ाते हैं ॥२८॥

खुलासा—मृगनयनीके कमल-समान हाथोंमें अरगजा चन्दन लगा है, फुहारे छूट रहे हैं, फूलों की शय्या बिछी है, चन्द्रमा की चारु चाँदनी छिटक रही है, वीणा बज रहा है, चतुर गवैये गा रहे हैं, महल की स्वच्छ और परिष्कृत छत पर पलँग बिछ रहा है—इस सब सामग्रीसे मद और मदन दोनों की वृद्धि होती है; अर्थात् जिन पुरुषोंके मनमें विषय-वासना नहीं होती, उनके भी मन इन सामानोंके सामने होनेसे उत्कण्ठित हो जाते हैं; पर ये सब धनी और राजा महाराजाओं को ही मयस्सर हो सकते हैं। हम अपने पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ चन्द सुन्दर-सुन्दर श्लोक महाकवि कालिदास कृत "ऋतुसंहार" से उद्धृत करते हैं:—

(१)

सचन्दनाम्बु-व्यजनोद्भवानिलैः
सहारयष्टिस्तनमण्डलार्पणैः ।
सवल्लकी-काकलिगीति निस्वनैः
प्रबुध्यते सुप्त इवाद्य मन्मथः ॥८॥

(२)

निशाः शशांकः क्षतनीरराजयः
क्वचिद् विचित्रं जलयंत्रमन्दिरम्



मनोहर सुगन्धित माला, पंखे की हवा, चन्द्रमा की किरणें, फव्वारे-दार घर, महल की छत और मृगनयनी कामिनी—ये सब, मौसम गरमी में, मद और मदन दोनों ही को बढ़ाते हैं। (पृष्ठ ९२)

मणिप्रकाराः सरसञ्च चन्दनं,
शुचौ प्रिये, यान्तिजनस्य सेव्यताम् ॥६॥

(३)

पयोधराश्चन्दनपंकशीतला—
स्तुपारगौरार्पितहारशेखराः ।
नितम्बदेशाश्च सहेम मेखलाः
प्रकुर्व्वते कस्य मनो न सोत्सुकम् ॥१०॥

इस ग्रीष्म ऋतुमें, चन्दनके पानीसे भिगोये हुए पङ्खे की हवा से, हारयुक्त स्तनमण्डलोंको छातीसे लगानेसे और वीणाके मधुर स्वरके साथ गाना सुननेसे सोया हुआ कामदेव भी चैतन्य हो जाता है ॥१॥

हे प्यारी ! इस आषाढ़के महीनेमें कहीं रात और चन्द्रमा; कहीं थोड़े जलवाला तालाव और कहीं फुहारेदार घर; कहीं नाना प्रकारके शीतल रत्न और कहीं सरस चन्दन—मनुष्योंके सेवनीय हो जाते हैं ॥२॥

इस ऋतुमें, वर्फके समान सफेद और उज्ज्वल हार धारण किये चन्दन-चर्चित शीतल पयोधर❀ और सोने की कौंधनी पड़े हुए नितम्ब❀ किसके चित्तको उत्कण्ठित नहीं करते ? ॥३॥

❀ पयोधर = स्तन, चूचियाँ ।
❀ नितम्ब = कमर का पिछला भाग, चूतड़ ।

छप्पय।

मृगनैनीके हाथ, अरगजा चन्दन लावत।
छुटत फुहारे देख, पुष्प-शय्या विरमावत॥
चारु चाँदनी चन्द, मन्द मारुतको ऐंवो।
बाजत बीन प्रवीण, संग गायनको गैवो॥
चाँदन उजरे महलकी, निरखत चितगति हितढरत।
पुरुषनको ग्रीष्म विषममें, ये मद-मदनहिं विस्तरत॥३८॥

38. Ladies having their hands besmeared with purest sandal water, houses having fountains playing therein, sweet smelling flowers, bright moon-light, fragrant creepers, the gentle breeze and the white roof of the palaces—these things in summer season, increase sensual desires.

स्रजो हृद्यामोदा व्यजनपवनश्चन्द्रकिरणाः,
परागः कासारो मलयजरजः सीधुविशदम्।
शुचिः सौधोत्सङ्गः प्रतनुवसनं पङ्कजदृशो,
निदाघार्तौ ह्येतत्सुखमुपलभन्ते सुकृतिनः॥३९॥

मनोहर सुगन्धित माला, पंखेकी हवा, चन्द्रमाकी किरणें, फूलोंका पराग, सरोवर, चन्दनकी रज, उत्तम मदिरा, महलकी उत्तम छत, महीन वस्त्र और कमलनयनी सुन्दरी—इन सब उत्तमोत्तम पदार्थोंका, गरमीकी तेज़ीसे विकल हुए, कोई-कोई भाग्यवान पुरुष ही मज़ा ले सकते हैं॥३९॥

खुलासा—गरमी की ऋतुमें—फूलों की माला, पङ्खे की हवा, चारु चाँदनी और कमलनेत्री कामिनी प्रभृति शीतल और शान्तिमय पदार्थोंका भोग कोई-कोई पुण्यवान ही कर सकते हैं। सबके लिये ये स्वर्गीय आनन्दके देनेवाले सामान मयस्सर हो नहीं सकते। जिन्होंने पूर्व्वजन्ममें पुण्य किया है, जिनके ऊपर विष्णु-प्रिया लक्ष्मी की कृपा है, वे ही इनका सुख लूट सकते हैं।

दोहा।

पुष्पमाल पंखा-पवन, चन्दन चन्द सुनारि।
बैठ चाँदनी जल लहर, जेठमास पट धारि ॥३६॥

39. In summer season, it is only the fortunate people who derive pleasure by the enjoyment of the following—sweet smelling garlands, air of fans, moon-light. pollens of flowers, tanks, sandal dust, pure wine, white terrace of big palaces, fine clothes and the lotus-eyed beautiful maiden.

सुधाशुभ्रं धाम स्फुरदमलरश्मिः शशधरः,
प्रियावक्त्राम्भोजं मलयजरजश्चातिसुरभि।
स्रजो हृद्यामोदास्तदिदमखिलं रागिणि जने,
करोत्यन्तः क्षोभं न तु विषयसंसर्गविमुखे ॥४०॥

लिपा-पुता साफ महल, निर्मल किरणोंवाला चन्द्रमा, प्यारी का मुखकमल, चन्दनकी रज और मनोहर फूलमाला—ये सब



चीजें कामी पुरुषोंके मनमें अत्यन्त क्षोभ करती हैं; किन्तु विषय-वासना से विमुख पुरुषोंके हृदयोंमें किसी प्रकारका क्षोभ उत्पन्न नहीं करतीं ॥४०॥

खुलासा—जो अनुरागी हैं—कामी हैं, उनके दिलोंमें स्वच्छ महल, निर्मल सुधाकर की रश्मियाँ, पुष्पमाला, खस के पङ्खे की हवा, फव्वारोंका चलना, चन्दनकी रज, वीणाका मधुर स्वर, सुरीले कण्ठोंका मनोहर गान प्रभृति शीतल, पर कामोत्तेजक, पदार्थ एक प्रकारकी हलचलसी मचा देते हैं। इनसे उनकी काम-वासना—भोगविलास की इच्छा और भी प्रबल हो जाती है; परन्तु जो संसारसे उदासीन हैं, जिन्हें विरक्ति होगई है, जिन्हें संसार की असारता और चञ्चलताका ज्ञान हो गया है, उनके दिलोंमें इन सब कामोत्तेजक पदार्थोंसे कुछ भी हलचल नहीं मचती। उनके लिये तो स्वच्छ महल और श्मशान, चाँदनी रात और घोर अँधेरीरात, पुष्पमाला और सर्पमाला, चन्दनकी रज और श्मशान की राख तथा कामिनियोंकी जुल्फें और भयङ्कर कालसर्प प्रभृति सब बराबर हैं।

दोहा।

शशिबदनी अरु शरद शशि, चन्दन-पुष्प-सुगन्ध।
ये रसिकनके चित हरत, सन्तन के चित बन्ध ॥४०॥

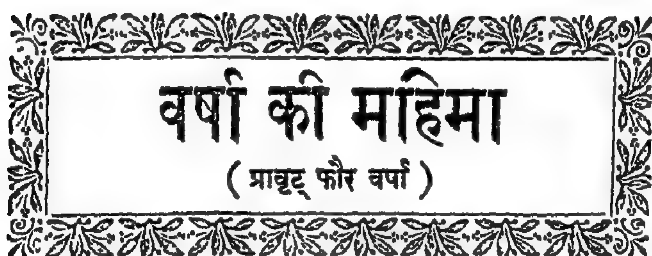
सार—चारु चाँदनी, चन्द्रमुखी प्रिया एवं अन्यान्य कामोत्तेजक पदार्थोंसे कामियोंकी ही



कामवासना तेज़ होती है; विरक्त या उदासीनोंकी नहीं।

40. Snow-white palaces, clear moon-light, the lotus-like face of the beloved lady, fragrant sandal the sweet smelling garlands of flowers—(these things) disturb the mind of a lover, but those that are averse to the enjoyment of worldly pleasures, are not affected in the least by these objects.





वर्षा की महिमा

(प्रावृट् और वर्षा)

तरुणीवैषा दीपितकामा विकसितजातीपुष्पसुगन्धिः
उन्नतपीनपयोधरभारा प्रावृट् कुरुते कस्य न हर्षम् ४१

कामदेवका उदय करनेवाली, प्रफुल्लित मालतीकी लतावाली, उत्तम सुगन्धि धारण करनेवाली, उन्नत पीन पयोधरा वर्षा ऋतु, तरुणी स्त्रीकी तरह, किसके मनमें हर्ष उत्पन्न नहीं करती ? ॥४१॥

खुलासा—जिस भाँति सुन्दरी कमलनयनी तरुणी पुरुषके मनमें हर्ष उत्पन्न करती है; उसी तरह वर्षा ऋतु भी पुरुषके मन

में हर्ष उत्पन्न करती है; क्योंकि जिस तरह तरुणी स्त्रीके चिकने मनोहर बाल होते हैं; उसी तरह वर्षा-रूपणी तरुणीके बालोंकी जगह मालतीकी लतायें होती हैं। जिस तरह तरुणीके शरीरसे सुगन्धित तेल और इत्र वगैरः की ख़ुशबू उड़ा करती है; उसी तरह वर्षा-रूपणी तरुणीके शरीरसे भी नाना प्रकारके फूलोंकी सुगन्धि आया करती है। जिस तरह तरुणी स्त्रीके सघन पीन पयोधर होते हैं; उसी तरह वर्षा-रूपणी तरुणीके भी सघन मेघ पीन पयोधर होते हैं। जिस तरह तरुणी स्त्री पुरुषके मनमें उत्कण्ठा—विषय-वासना उत्पन्न करती है; उसी तरह वर्षा भी उत्कण्ठा उत्पन्न करती है। मतलब यह तरुणी नारी और वर्षामें कोई भेद नहीं; दोनों हर तरह समान हैं। कविने ठीक ही कहा है कि, वर्षा-रूपणी तरुणीके दर्शनोंसे कौन हर्षित नहीं होता, जो पूर्ण विकसित जाती पुष्पोंकी सुगन्ध और सघन मेघोंके उत्थानसे मनुष्यके मनमें काम उत्पन्न करती है?
"भामिनी विलास" में लिखा है—

प्रादुर्भवति पयोदे कज्जलमलिनं बभूव नभः।
रक्तं च पथिकहृदयं कपोलपाली मृगीदृशः पांडुः॥

बादलोंके आकाशमें छानेसे आकाश काजलके समान मलिन हो गया, पथिकका हृदय अनुरागसे भर उठा और मृगनयनीके गालोंपर जर्दी छा गयी।

सारांश यही है कि, वर्षाऋतुके आते ही स्त्री-पुरुषोंका चित्त प्रसन्न हो जाता है और उन दोनोंकी ही विषय-भोग भोगने की

इच्छा प्रबल हो उठती है। इस ऋतुमें केवल उन्हींका चित्त हर्षित और उत्कण्ठित नहीं हो सकता, जो संसारसे उदासीन या पुंसत्व-विहीन हैं।

दोहा।

पीन पयोधरकों धरन, प्रगट धरत है काम।
पावस अरु प्यारी निरख, हर्षित होत तमाम ॥४१॥

41. Who does not feel pleasure in the rainy season which has all the qualities of a young woman, gives rise to amorous desires, bears the smell of blossomed jessamine flowers and has swollen heavy clouds over it?

वियदुपचितमेघं भूमयः कन्दलिन्यो,
नवकुटजकदम्बामोदिनो गन्धवाहाः।
शिखिकुलकलकेकारावरम्या वनान्ताः,
सुखिनमसुखिनं वा सर्वमुत्कण्ठयन्ति ॥४२॥

मेघोंसे आच्छादित आकाश, नवीन-नवीन अंकुरोंसे पूर्ण पृथ्वी, नवीन कुटज और कदम्बके फूलोंसे सुगन्धित वायु और मोरोंके झुण्डकी मनोहर वाणीसे रमणीय वनप्रान्त,—वर्षामें, सुखी और दुखी दोनों तरहके पुरुषोंको उत्कण्ठित करते हैं ॥४२॥

खुलासा—हर शख़्सका मन चाहे वह सुखी हो चाहे दुखी, घनघोर घटाओं, नये-नये अङ्कुरोंसे छायी पृथ्वी एवं कुटज और

कदमके फूलोंकी सुगन्धिसे सुवासित पवन और मोरोंकी मधुर वाणीसे पूर्ण मनोहर वनोंको देखकर उत्कण्ठित होता ही है।

वर्षाकी नेत्रोंको प्रसन्न करनेवाली, मन और आत्माकी तृप्ति करनेवाली, शीतलता और शान्तिका सञ्चार करनेवाली छविपर कोई विरला ही मनहूस न मोहित होता होगा। इस ऋतुमें बड़े-बड़े मानी पुरुषों और मानिनी स्त्रियोंके मान मर्दन हो जाते हैं। दोनों ही मान त्याग कर, एक दूसरेकी ख़ुशामद करने लगते हैं। भारी-से-भारी अपराधके अपराधी पतियोंको मृगनयनी स्त्रियाँ सहजमें क्षमा प्रदान कर देती हैं। देखिये महाकवि कालिदास अपने "ऋतु संहार" में कहते हैं:—

(१)

पयोधरैर्भीमगम्भीरनिस्वनै-
स्तडिद्भिरुद्वेजितचेतसो भृशम्।
कृतापराधानपि योषितः प्रियान्
परिष्वजन्ते शयने निरन्तरम्॥

(२)

कालागुरुप्रचुरचंदन-चर्चितांगयः
पुष्पावतंससुरभीकृतकेशपाशाः
श्रुत्वा ध्वनिं जलमुचां त्वरितम्प्रदोषे
शय्यागृहं गुरुगृहात्प्रविशन्तिनार्य्यः॥

वर्षामें, स्त्रियाँ भयंकर और गम्भीर गर्जना करनेवाले मेघों और चमाचम चमकती हुई विजलियोंसे डर-डर कर अपराधी पतियोंको भी, शय्या पर, बारम्बार आलिङ्गन करने लगती हैं; अर्थात् भयभीत होकर पतियोंके शरीरसे चिपटने लगती हैं।

वर्षाकी रातोंमें, बादलोंकी घोर गर्जना सुन-सुन कर, स्त्रियाँ अपने शरीरोंमें अगर और चन्दनका लेप कर, फूलोंके गहनोंसे चोटियोंको सजा और सुगन्धित कर, घरके काम-धन्धे जल्दी-जल्दी निपटा, सासके घरसे अपने सोनेके कमरोंमें शीघ्र ही चली जाती हैं।

पण्डितराज जगन्नाथ एक मानिनीके सम्बन्धमें क्या खूब कहते हैं:—

मुञ्चसि नाद्यापि रुषं भामिनि! मुदिरालिरुदियाय।
इतिसुदृशः प्रियवचनैरपायि नयनाब्ज कोणशोण रुचिः॥

हे भामिनी! आकाशमें मेघमाला छागई है, किन्तु तू अब तक अपना रोष नहीं त्यागती? प्रियतमके इन वचनोंसे कमल-नयनीके नयन-कमलके कोनेसें जो ललाई आगई थी, वह दूर हो गई; अर्थात् वह अपने प्यारेसे राज़ी हो गई।

दोहा।

अम्बर घन अवनी राहित, कुटज कदम्ब सुगन्ध।
मोर शोर रमणीक वन, सबको सुख सम्बन्ध॥४२॥

सार—वर्षामें दुखिया और सुखिया सभी के मनमें कामवासना उदय हो आती है।

42. The sky overcast with clouds, the earth full of new sprouts, the air fragrant with the smell of newly--blossomed Kutaja and Kadamba flowers and the forest pleasant on account of the charming voice of peacocks,—all these give rise to amorous feelings in the hearts of happy and the unhappy men alike.

उपरिघनं घनपटलं तिर्यग्गिरयोऽपि नर्तितमयूराः।
वसुधा कंदलधवला तुष्टिं पथिकः क यातु संत्रस्तः॥४३

सिरके ऊपर घनघोर घटायें छा रही हैं, दाहिने-बायें दोनों तरफके पहाड़ोंपर मोर नाच रहे हैं; पैरोंके नीचेकी ज़मीन नवीन अंकुरोंसे हरी हो रही है—ऐसे समयमें जबकि चारों ओर कामोद्दीपन करनेवाले सामान नज़र आते हैं, विरह-व्याकुल पथिकको कैसे सन्तोष हो सकता है? ॥४३॥

खुलासा—सिर पर मेघोंका शामियाना, पैरोंके नीचे हरी-हरी दूबका क़ालीन और अगल-बग़लमें मदमत्त मोरोंका नाचना देखकर, बटोहीके मनमें प्यारीसे मिलनेकी उत्कट अभिलाषा हुए बिन नहीं रहती। वह बहुत-कुछ धीरज धरता है, पर जब चारों ओर कामोद्दीपक पदार्थोंको देखता है, तब फिर अधीर हो जाता है। बहुत लिखने से क्या—वर्षा में विरही

जनोंको बड़ा क्लेश होता है। देखिये महाकवि 'कालिदास' कहते हैं:—

बलाहकाश्चाशनिशब्दमर्दला:
सुरेन्द्रचापं दधस्ताडिद्‌गुणम् ।
सुतीक्ष्णधरा-पतनोग्रसायका—
स्तुदंति चेतः प्रसभं प्रवासिनाम् ॥

इन दिनों, वज्रके शब्दरूपी नगाड़ेवाले विजलीकी डोरीसे युक्त इन्द्रधनु धारण किये, तीव्र धाराके वृष्टि-रूपी भयङ्कर बाणवाले (वीर) बादल प्रवासियोंके चित्तको बरबस व्यथित कर देते हैं।

यह तो हुई पुरुषोंकी बात; अब ज़रा परदेशमें रहनेवालोंकी प्राणप्यारियोंके दुःख और कष्टकी बात भी सुनिये:—

विलोचनेन्दीवर—वारि—विन्दुभि—
र्निषिक्त—बिम्बाधर—चारुपल्लवा:
निरस्त माल्याभरणानुलेपना:
स्थिता निराशा: प्रमदा: प्रवासिनाम् ॥

वर्षामें, विदेशमें रहनेवालोंकी स्त्रियाँ अपने नयन-कमलोंके जलविन्दुओंसे अपने बिम्बाफलके समान सुन्दर अधर-पल्लवों—होठों-को भिगोये, हार प्रभृति गहने और चन्दन अगर प्रभृतिका अनुलेपन त्यागे, पतिके आनेकी आशा छोड़ (मनमारे) बैठी हुई हैं।

दोहा ।

घटा घोर चढ़ मोर गिरि, शोह हरित सब भूम ।
विरही व्याकुल पथिकको, कहाँ तोष लखि घूमि ? ॥४३॥

सार—विरही स्त्री-पुरुषोंको जिस तरह बसन्तमें घोर मनोवेदना और व्यथा होती है; उसी तरह वर्षामें भी उनको विरहाग्निकी तीव्र ज्वालामें जल-जल कर मछली की तरह तड़फना पड़ता है ।

43. How can a poor traveller feel pleasure (in the rainy season) when the thick clouds gather above, the peacocks dance on the mountain on both sides and the earth is white with new sprouts sprinkling with rain water ? (He feels his loneliness and the absence of his beloved wife.)

इतो विद्युद्वल्लीविलसितमितः केतकितरोः,
स्फुरद्गन्धः प्रोद्यज्जलदनिनदस्फूर्जितमितः ।
इतः केकिक्रीडाकलकलरवः पद्मलदृशां
कथं यास्यन्त्येते विरहदिवसाः संभृतरसाः ॥४४॥

एक ओर चपलाका चमाचम चमकना, दूसरी ओर केतकीके फूलोंकी मनोहर सुगंध; एक ओर मेघकी गर्ज्जन और दूसरी ओर

मोरोंका शोर,—ये सब जहाँ एकत्र हैं, वहाँ सुनयनी विरह-व्याकुला स्त्रियाँ अपने रस-पूर्ण विरहके दिनोंको कैसे वितायेंगी? ॥४४॥

खुलासा—आकाशमें घनघोर घटायें घिर आई हैं; बिजली झमाझम कर रही है, बादलोंकी भयङ्कर गर्जना हो रही है, केतकीके मनोहर फूलोंकी सुगन्ध उड़ रही है, मतवाले मोर शोर कर रहे हैं; हाय! कामकला-प्रवीण सुनयनी तरुणियोंके, ये कामवासनाको बढ़ानेवाले दिन किस तरह कटेंगे? क्योंकि उनके प्राणवल्लभ घरों पर नहीं हैं। जब वे अँधेरी रातोंमें बादलोंकी हृदय दहलानेवाली आवाज़ों और बिजलीकी भयङ्कर कड़कसे भयभीत होंगी, तब कौन उन्हें छातीसे लगाकर उनका भय मिटावेगा? जब वे चारों ओर कामोद्दीपन करनेवाले सामान देखकर काम-पीड़ित होंगी, तब कौन उनकी काम-शान्ति करेगा?

दोहा।

दमकत दामिनि मेघ इत, केतकि-पुष्प-विकाश।
मोर शोर निशिदिन करत, विरहजिन मन त्रास ॥४४॥

सार—वर्षामें प्रवासी पतियोंकी पतिव्रता स्त्रियोंके दिन बड़ी ही मुसीबतमें कटते हैं।

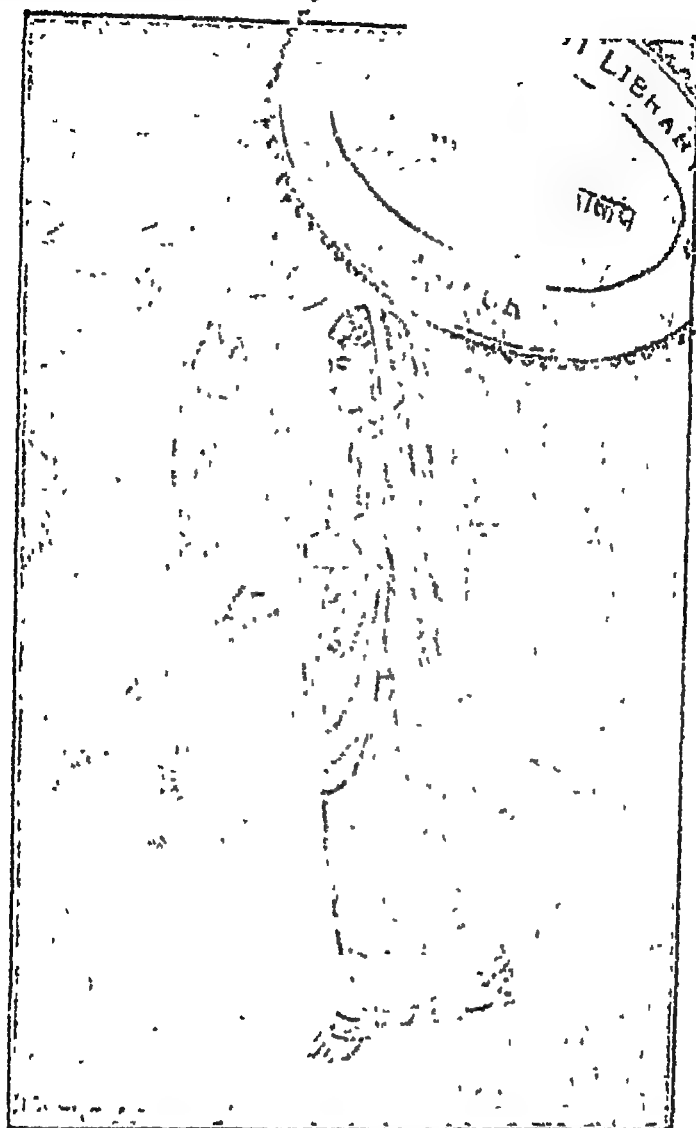
44. How would the women separated from their lovers pass those wet days when there is the flash of

fightening here and the pungent smell of Ketki flowers there, the roaring of clouds on this side and the dancing of peacocks on the other?

असूचीसंसारे तमसि नभसि प्रौढजलद-
ध्वनिप्राये तस्मिन् पतति दृषदां नीरनिचये।
इदं सौदामिन्याः कनककमनीयं विलसितम्,
मुदं च ग्लानिं च प्रथयति पथिष्वेव सुदृशाम् ॥४५॥

सावनकी घोर अँधेरी रातमें—जबकि हाथको हाथ नहीं सूझता—मेघोंकी भयंकर गर्जना, पत्थर सहित जलकी वृष्टि होना और सोने के समान बिजलीका चमकना—सुन्दरी सुनयनाओंके लिये, राहमें ही सुख और दुःख दोनों का कारण होता है ॥४५॥

खुलासा—सावनके महीनेमें, वर्षा सब दिनोंसे अधिक होती है। रात ऐसी अँध्यारी होती है कि हाथको हाथ नहीं सूझता। बादल बड़े जोरोंसे गरजते हैं। बिजली झमाझम चमकती है और ऊपरसे पत्थर-मिली जल-वृष्टि होती है। उस समय राहकी पगडण्डियाँ दिखाई नहीं देतीं। उस वक्त जो स्त्री अकेली अपने पति या प्यारेके पास जाती है, उसे निश्चय ही भयानक कष्ट और भय होता है। इस घोर कष्टके समयभी जब उसे बिजली की सहायतासे कभी-कभी पगडण्डी दीख जाती है, तब प्रियतम से शीघ्र ही मिलनेकी आशा से वह प्रसन्न भी होती है।



सावन भादों की अँधेरी रात में—मेघों की भयङ्कर गरजना, पत्थर सहित जल की वृष्टि होना और सुवर्णवत बिजली का चमकना—सुन्दरी सुनयनाओं के लिये राह में सुख और दुःख दोनों का कारण होता है । इस चित्र में यह दिखाया है, कि भयङ्कर रात में सुन्दरी अपने यार से मिलने जा रही है । जब वह यार से मिलने का ख़याल करती है, तब सुखी होती है : किन्तु वर्षा और अन्धकार से दुखी होती है ।

(पृष्ठ १०६)

स्त्री-जाति बड़ी ही साहसी होती है। डरती है, तब तो एक चूहेकी खड़खड़से डरकर पतिकी छातीसे चिपट जाती है और जब उसे अपने पति या यारके पास जाना होता है, तब सब विघ्न-बाधाओं और आफ़तोंको तुच्छ समझकर, घोर अँधेरी रातमें, भयंकर श्मशानमें भी पहुँचती है। किसी पाश्चात्य विद्वान्ने ठीक ही कहा है—"A woman when she either loves or hates, will dare anything." स्त्री जब प्रेम या घृणा—दो मेंसे एक पर तुल जाती है, तब वह सब कुछ कर सकती है।

महाकवि कालिदास कहते हैं:—

अभीक्ष्णमुच्चैर्ध्वनता पयोमुचा
घनान्धकारीकृतशर्वरीष्वपि ।
तड़ित्प्रभादर्शितमार्गभूमयः
प्रयान्ति रागादभिसारिकाः स्त्रियः ॥

वर्षामें, घोर गर्जन करनेवाले मेघोंसे रातके अत्यन्त अँधेरी होने पर भी, अभिसारिका स्त्रियाँ, अपनी राहकी ज़मीनको बिजलीके प्रकाशसे देखती हुई, बड़े चावसे, अपने यारोंके पास जा रही हैं।

दोहा ।

महा अन्धतम नभ जलद, दामिनि दमक डुरात ।
हर्ष-शोक दोऊ करत, तियको पिय-ढिंग जात ॥४५॥

सार—वर्षाकी घोर अँधेरी रातमें, वक्त मुक़र्रर पर, अपने यारोंके पास जानेवाली अभिसारिका नारियोंको दुःख और सुख दोनों ही होते हैं।

45. In the pitch darkness of the month of Shravana, the loud roaring of the clouds in the sky, falling of rains with hailstones and the golden flash of lightening, give pain and pleasure to a woman thinking of her husband who is travelling on the way.

आसारेण न हर्म्यतः प्रियतमैर्यातुं बहिः शक्यते,
शीतोत्कम्पनिमित्तमायतदृशा गाढं समालिङ्ग्यते।
जाताः शीतलशीकराश्च मरुतो वान्त्यन्तखेदच्छिदो,
धन्यानां वत दुर्दिनं सुदिनतां याति प्रियासंगमे ॥४६

वर्षाकी झड़ीमें प्रियतम घरसे बाहर निकल नहीं सकते। जाड़ेके मारे काँपती हुई विशाल नेत्रोंवाली प्राणप्यारी स्त्रियाँ उनको आलिङ्गिन करती हैं और शीतल जलके कणों सहित वायु, मैथुनके अन्तमें होनेवाले श्रमको मिटा देते हैं—इस तरह वर्षाके दुर्दिन भी भाग्यवानोंके लिये सुदिन हो जाते हैं ॥४६॥

खुलासा—वर्षाकालमें बाज़-बाज़ वक्त ऐसी झड़ी लग जाती है, कि हफ़्तों सूर्यके दर्शन नहीं होते। वैसे दिनोंमें, भाग्यवान्



वर्षा की ऋतु में प्रियतम घर से बाहर जा नहीं सकते। जाड़े के मारे काँपती हुई स्त्रियाँ उन्हें आलिङ्गन करती हैं। इस तरह वर्षा के दुर्दिन भी भाग्यवानों को सुदिन हो जाते हैं।
(पृष्ठ १०८)

लोग, दिन निकल आने पर भी, घरसे बाहर नहीं जाते—अपने पलँगों पर ही पड़े रहते हैं। उनकी मृगनयनी स्त्रियाँ, जाड़के मारे काँपती हुई, उन्हें अपनी छातियोंसे लगा लेती हैं और मेह की फुहारों से मिली हुई शीतल हवा उनकी मैथुनकी थकानको मिटा देती हैं। जिन्होंने पूर्वजन्ममें पुण्य किया है, उनको वर्षाके बुरे दिन भी इस तरह सुखदाई हो जाते हैं। पुण्यवानों को दुःखमें सुख और जङ्गलमें मङ्गल होता है।

छप्पय।

प्राविट् वर्षत मेह, चल्यौ दिन शीत अधिकतर।
बाहर नहिं काढ़ै सकत, नेह सों परा कोउ नर॥
कम्प होत जब गात, तबहि प्यारी-संग सोवत॥
उठत अनंग-तरंग, अंगमें अंग समोवत॥
रति-खेद-स्वेद छेदन करत, जालरन्ध्र आवत पवन।
इह विधि दुर्दिवस हू मोदप्रद, होवहिं तिय-संग बसि भवन॥

सार—पुण्यवानोंको वर्षाके दुर्दिन भी, अपनी प्राणप्यारियों की सुहबतमें, सुदिन हो जाते हैं।

45. On a rainy day, the lover cannot come out of his house and the long-eyed lady shivering with cold embraces fast her husband; the cold wind blows carrying with it small particles of water that takes

away the fatigue arising from copulation. Surely, even the evil days of a fortunate man become good in the company of beloved wife.

—o—



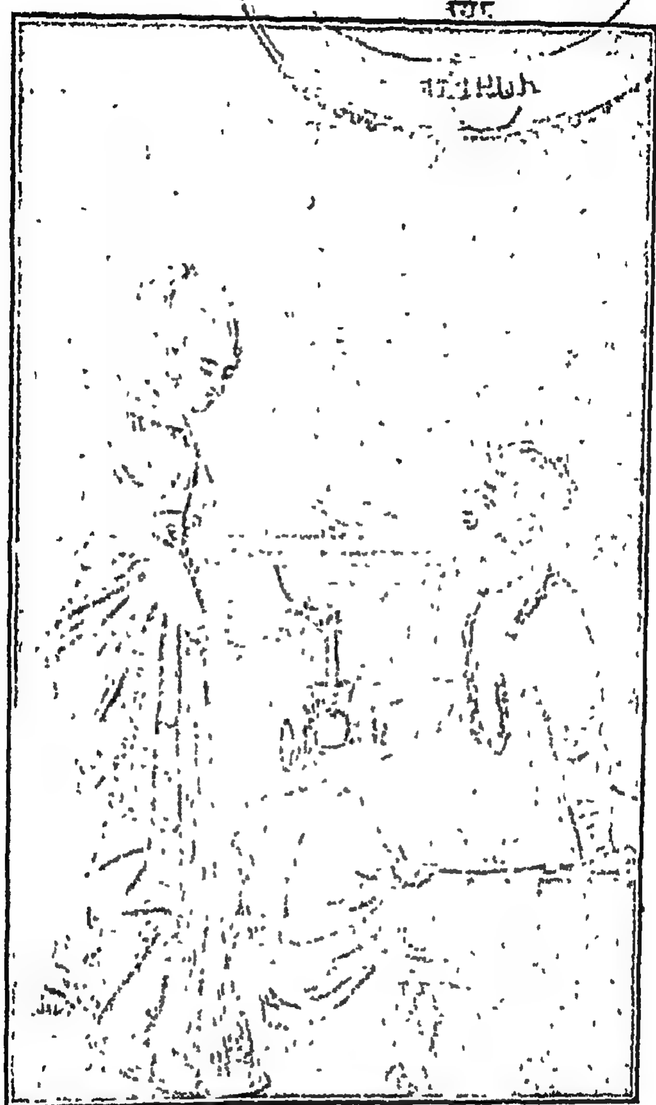
शरद्-महिमा ।

अर्द्धं नीत्वा निशायाःसरभससुरतायासखिन्नश्लथाङ्गः,
प्रोद्भूतासह्यतृष्णो मधुमदनिरतो हर्म्यपृष्ठे विविक्ते ।
सम्भोगक्लान्तकान्ताशिथिलभुजलतावर्जितं कर्करीतो,
ज्योत्स्नाभिन्नाच्छधारंपिबतिनसलिलंशारदंमंदभाग्यः ॥४७॥

आधी रात बीतने पर, जल्दी-जल्दी मैथुन करके थक जाने पर और उसीकी वजहसे असह्य प्यास लगने पर, मदिराके नशे की हालतमें, महलकी स्वच्छ छत पर बैठा हुआ पुरुष, यदि मैथुनके कारण थकी हुई भुजाओंवाली प्यारीके हाथोंसे लाई हुई झारीका निर्मल जल, शरदकी चाँदनीमें, नहीं पीता तो वह निश्चय ही अभागा है ।

छप्पय ।

छके मदनकी छाक, मुदित मदिराके छाके ।
करत सुरत रण रंग, जंग कर कछु-इक थाके ॥



आधी रात बीतने पर, रतिक्रीड़ा से थक जाने पर और उसी वजह से असह्य प्यास लगने पर, मदिरा के नशे की हालत में, महल की स्वच्छ छत पर बैठा हुआ पुरुष, यदि रतिश्रम से थकी हुई भुजाओं-वाली प्यारी के हाथों से लाई हुई झारी का निर्मल जल, शरद् की चाँदनी में, नहीं पीता, तो निश्चय ही अभागा है। (पृष्ठ ४७)

पौढ़ रहे लिपटाय, अंग अंगनमें उरझे।
बहुत लगी जब प्यास, तबहिं चित चाहत मुरझे॥
उठ पियत रात आधी गये, शीतल जल या शरद्को।
नर पुण्यवन्त फल लेत हैं, निज सुकृतहिकी फरदको॥४८॥

सार—शरद की चाँदनी रातमें, मैथुनसे थकी हुई कामिनीके हाथोंका लाया हुआ जल भाग्यवान् ही पीते हैं।

47. He is surely unfortunate who after the midnight being quite exhausted by speedy copulation, feeling very thirsty and being intoxicated with wine, does not drink the cool and pure autumn water bright as moon-light from the brasen pot on the lonely roof of the palace, brought by the weak hands of his wife, who is also tired on account of copulation.

—o—

हेमन्त-महिमा

हेमन्ते दधिदुग्धसर्पिरशना माञ्जिष्ठवासोभृतः,
काश्मीरद्रवसान्द्रदिग्धवपुषः खिन्ना विचित्रैरतैः।
पीनोरुस्तनकामिनीजनकृताश्लेषा गृहाभ्यान्तरे,
ताम्बूलीदलपूगपूरितमुखा धन्याः सुखं शेरते॥४८॥



हेमन्त ऋतुमें जो दही, दूध और घी खाते हैं; मँजीठ के रंगमें रंगे हुए वस्त्र पहनते हैं; शरीरमें केसरका गाढ़ा-गाढ़ा लेप करते हैं; आसन-भेदसे अनेक प्रकार मैथुन करके सुखी होते हैं; पुष्ट जाँघों और सघन कठोर कुचोंवाली स्त्रियोंका गाढ़ आलिङ्गन करते हैं और मसालेदार पानका बीड़ा चबाते हुए मकानके भीतरी कमरेमें सुखसे सोते हैं, वे निश्चय ही भाग्यवान् हैं ॥८४॥

महाकवि कालिदास-रचित भी एक श्लोक पढ़िये:—

पुष्पासवामोदसुगन्धवक्त्रो, निःश्वासवातैः सुरभीकृताङ्गः ।
परस्परांगव्यतिषंगशायी, शेते जनः कामशरानुविद्धः ॥

हे प्यारी ! इस हेमन्त ऋतुमें, कामार्त्त स्त्री-पुरुष फूलोंकी शराबकी गन्धसे मुँहको और अपने श्वासवायुसे अङ्गोंको सुगन्धित किये, परस्पर लिपटे हुए सोते रहते हैं ।

सोरठा ।

दही दूध घृत पान, वसन मजीठहि रंगके ।
आलिङ्गन रति-दान, केसर चर्चि हिमन्तमें ॥४६॥

48. Blessed is the man who, in the winter, eats the food rich with milk, curd and ghee, wears clothes coloured in scarlet-red Manjistha, besmears his body thickly with paste of saffron and musk, is embraced by a woman with swollen breasts after being exhausted by various kinds of sexual intercourse and with his mouth full of betels, sleeps happily in his house.

——0——

शिशिर-महिमा

चुम्बन्तोगण्डभित्तीरलकवतिमुखे सीत्कृतान्यादधाना,
वक्षःसूत्कञ्चिकेषु स्तनभरपुलकोद्भेदमापादयन्तः ।
ऊरूनाकम्पयन्तः पृथुजघनतटात्स्रंसयन्तोंऽशुकानि,
व्यक्तंकान्ताजनानांविटचरितकृतः शैशिरावान्तिवाताः
॥४६॥

स्त्रियोंके केशयुक्त गालोंको चूमता हुआ, ज़ोरके जाड़ेके मारे उनके मुँहसे "सी-सी" कराता हुआ, आँगी-रहित खुले हुए स्तनोंको रोमाञ्चित करता हुआ, पेड़ुओंको कँपाता हुआ और पुष्ट जाँघोंसे कपड़ा हटाता हुआ, शिशिरका वायु जार पुरुषोंका-सा आचरण करता हुआ वह रहा है ॥४६॥

खुलासा—पति स्त्रीके साथ जो-जो काम करता है, शिशिरका वायु भी वही सब काम करता है। पति गालोंको चूमता है, शिशिरका वायु भी बालोंको इधर-उधर करता हुआ गालोंको चूमता है। पति स्त्रीको मैथुनके आनन्दमें मग्न करके उसके मुँहसे "सी-सी" कराता है; उसी तरह शिशिरका वायु भी जाड़ेकी अधिकताके मारे स्त्रियोंके मुखोंसे "सी-सी" कराता है। पुरुष

स्तनोंको रोमाञ्चित करता है; शिशिर-वायु भी वही करता है। पुरुष स्त्रीकी जाँघोंसे कपड़ा हटाता है, शिशिर-वायु भी जाँघों से वस्त्र हटाता है। बहुत क्या—शिशिरका वायु हर तरह स्त्रियोंके साथ पतियोंका-सा आचरण करता है—पराई स्त्रियोंको दिन-दहाड़े बेखटके भोगता है।

छप्पय।

चुम्बन करते कपोल, मुखहि सीत्कार करावत।
हृदय-माँहि धसि जात, कुचन पर रोम बरावत॥
जंघनको थहरात, वसन हू दूर करत झुक।
लग्यो रहत संग माँहि, द्वारको रोक रह्यो ढुक॥
यह शिशिर पवन विटरूप धर, गलिन-गलिन भटकत फिरत।
मिल रहे नारि नर घरनमें, याकी भटभेर न भिरत॥४६॥

सार—शिशिर ऋतुका वायु, पराई स्त्रियों के साथ, जारोंका सा काम करता है।

49. The wind in the winter season blows behaving itself like a lustful man at the time of copulation, it causes the hair of the breast which is without any jacket to stand on end, it kisses the face with-flowing hairs and with shivering sounds in the mouth just as one hears at the time of copulation, shaking the thighs and making the clothes of hips and loins to fly about.

केशानाकलयन्दृशौ मुकुलयन्वासो बलादाक्षिप-
न्नातन्वन्पुलकोद्गमं प्रकटयन्नालिंग्य कम्पञ्छनैः।
वारम्वारमुदारसीत्कृतकृतोदन्तच्छदान्पीडय-
न्प्रायःशैशिर एष संप्रति मरुत्कान्तासु कान्तायते॥५०॥

बालोंको बखेरता, आँखोंको कुछ-कुछ मूँदता, साड़ीको ज़ोरसे उड़ाता, देहको रोमाञ्चित करता, शरीरमें सनसनी पैदा करता, काँपते हुए शरीरको आलिंगन करता, बारम्बार सी-सी कराकर होठों को चूमता हुआ, शिशिरका वायु पतियोंका-सा आचरण करता है ॥५०॥

खुलासा—शिशिर-वायु स्त्रियोंके साथ बेहया, मस्त अथवा शहवतपरस्त पतियोंका-सा काम करता है।

छप्पय।

विलुलित करत सुकेश, नयन हू छिन-छिन मूँदत।
बसनन ऐंचे लेत, देह रोमाञ्चन रूँदत॥
करत हृदयको कम्प, कहत मुखहू सों सीसी।
पीड़ा करताहि होठ, बयारहु मार सिरीसी॥
यह शीतकालमें जानिये, अद्भुत गति धारन पवन।
निशि-द्यौस दुरे दुबके रहो, निज नारी-संग निज भवन॥५०॥

50. The air in the winter season acts like a husband in the case of women by scattering their hairs.

shutting their eyes, forcibly removing their upper garments, causing the hair stand on end, slowly shaking the body by touch and giving pain to the lips by their continuous shivering sounds.

असाराः सन्त्वेते विरतिविरसायासविषया,
जुगुप्सन्तां यद्वा ननु सकलदोषास्पदमिति ।
तथाऽप्यन्तस्तत्त्वे प्रणिहितधियामप्यतिबल—
स्तदीयोऽनाख्येयः स्फुरतिहृदयेकोऽपिमहिमा ॥५१॥

"सांसारिक विषय-भोग असार, विरतिमें विघ्न करनेवाले और सब दोषोंकी खान हैं"—इत्यादि निन्दा लोग भले ही करें, फिर भी इनकी महिमा अपार है और इनके शक्तिशाली होनेमें कोई सन्देह नहीं, क्योंकि ब्रह्मविचारमें लीन तत्त्ववेत्ताओं के हृदयमें भी ये प्रकाशित होते हैं ॥५१॥

खुलासा—यद्यपि संसारी विषय-भोग असार और थोथे हैं, हमारे वैराग्य या संसार-त्यागमें बाधक हैं, सभी दोषोंके मूल कारण हैं, जीवका सब तरहसे अनहित करते हैं, मनुष्यको निर्लज्ज और मति-हीन करते एवं ज्ञानको धो बहाते हैं। इतने दोष होने पर भी, कहना पड़ता है, कि ये बड़े ही शक्तिशाली और अपार महिमावान् हैं। इनकी शक्ति और सामर्थ्यका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि जिन्होंने संसार त्याग दिया है, जो दिवारात मूलकारणकी खोजमें लगे रहते हैं, उन

तत्त्ववेत्ता ब्रह्मज्ञानियोंके हृदयमें भी ये कामाग्नि सन्दीपन कर देते हैं।

छप्पय।

यद्यपि भोग निस्सार, विरतिमें विघ्न करैं नित।
सब दोषनकी खानि, जीवको साधैं अनहित॥
करैं निलज मतिहीन, ज्ञानकूं घोय बहावैं।
सर्वस देहिं नसाय, बुरो जग-बीच कहावैं॥
यदि निन्दा याकी करै कोउ, तद्यपि है महिमा बहुत।
हिय बसत ब्रह्मज्ञानीहुँ के, तहँ पामरकी गिनतीहि कुत?॥५१॥

सार—संसारी विषय-भोग अत्यन्त बलवान हैं। औरोंकी तो क्या चलाई, ये संसार-त्यागी ब्रह्मज्ञानियोंके हृदयोंमें भी कामाग्नि प्रज्वलित कर देते हैं।

51. If these objects of pleasure be unsubstantial or such as may take us far from abondoning the world and if the people blame them thinking them to be the seat of all vices, yet great and indescribable is their power in as much as they conquer even those who have attained high spiritual knowledge.

भवन्तो वेदान्तप्रणिहितधियामासगुरवो,
विचित्रालापानां वयमपि कवीनामनुचराः।

तथाऽप्येतद्भूमौ न हि परहितात्पुण्यमधिकं,
नचास्मिन्संसारे कुवलयदृशो रम्यमपरम् ॥५२॥

आप वेदान्तवेत्ताओंके माननीय गुरु हो और हम उत्तम काव्यरचयिता कवियोंके सेवक हैं; तोभी हमें यह बात कहनी ही पड़ती है कि, परोपकारसे बढ़कर पुण्य नहीं है और कमलनयनी सुन्दरी स्त्रियों से बढ़कर और सुन्दर पदार्थ नहीं है ॥५२॥

खुलासा—आप वेदान्त-पारङ्गत पण्डितोंके मान्य गुरु हैं। आपमें अपार विद्या-बुद्धि है। हम कुछ पढ़े-लिखे विद्वान् नहीं, केवल काव्यशास्त्र-विनोदी कवीश्वरोंके अनुचर हैं। तोभी; हमें अपनी समझके अनुसार कहना पड़ता है कि, इस जगत्में "परोपकार" से उत्तम पुण्य नहीं है और "मृगनयनी कामिनियों" से बढ़कर दूसरी सुन्दर वस्तु नहीं है। इसलिये बुद्धिमानोंको, धन उपार्जन करके, तन-मन-धनसे परोपकार-पुण्य सञ्चय करना और सुलोचना कामिनियोंके साथ भोग-विलास करना चाहिये। संसारमें रहने वालोंके लिये ये दोनों ही परमोत्तम कर्म हैं। हाँ, जिनका दिल इस नापायेदार दुनिया या जहान फानी से उदास या खट्टा हो गया है, उनकी बात दूसरी है।

छप्पय।

पढ़े वेद वेदान्त, भये विद्योदधि पारा।
तिनहूँके तुम गुरु, बुद्धिबल पाय अपारा॥

हम कछु जानत नाहिं, पढ़े नहिं विद्या भारी।
रहे कविनके दास, कहैं ये बात विचारी॥
यह जग-बिच परउपकार-सम, अपर कछु है पुण्य नहिं।
अरु पंकजनयनी त्रियन सों, वस्तु अधिक नहीं सुखद कहिं॥५२॥

सार—परोपकार से बढ़कर पुण्य नहीं है और स्त्री-भोगसे बढ़कर सुख नहीं है।

52. If you are the respected preceptor of Vedantists, I am also the follower of poets who take delight in beautiful epic poems. Nevertheless, know it for certain that in this world, there is no higher virtue than doing good to others and nothing more beautiful than a lotus-eyed woman.

किमिह बहुभिरुक्तैर्युक्तिशून्यैः प्रलापै-
र्द्वयमिह पुरुषाणां सर्वदा सेवनीयम्॥
अभिनवमदलीलालालसं सुन्दरीणां
स्तनभरपरिखिन्नं यौवनं वा वनं वा॥५३॥

युक्तिशून्य वृथा प्रलापसे तो क्या प्रयोजन? इस जगत्में दो ही वस्तुएँ सेवन करने योग्य हैं—(१) नवीन मदान्ध लीलाभिलाषिणी और स्तनभारसे खिन्न सुन्दरी स्त्रियोंका यौवन, अथवा (२) वन॥५३॥

खुलासा—वाहियात और वे-सिर पैरकी वकवादसे कोई फ़ायदा नहीं। हमारी समझमें तो इस जगत्‌में दो ही चीज़ें पुरुषोंके सेवन करने योग्य हैं:—(१) नवयौवना स्त्रियाँ, अथवा (२) वन।

यदि मनुष्य संसारत्यागी न होना चाहे, संसारमें ही रहना चाहे, इस दुनियाँके विषय-भोग भोगना चाहे; तो कमलनयनी नवयौवनाओंके यौवन की वहार लूटे। चाहे इनका आनन्द अनित्य और परिणाममें दुःखमूलक ही है। पर संसारियोंके लिये, इस संसारमें इनसे वढ़कर दूसरी चीज़ ही नहीं।

देखिये रसिक-शिरोमणि पण्डितेन्द्र जगन्नाथ महाराज कहते हैं:—

तया तिलोत्तमीयत्या मृगशावकचक्षुपा।
ममाऽयं मानुषो लोको नाकलोक इवाभवत्॥

उस तिलोत्तमा नामक अप्सराके समान आचरण करनेवाली मृगशावकनयनीके कारणसे मेरा यह मृत्युलोक स्वर्गलोकके समान हो गया है।

सच है, जिसके घरमें अप्सरा-समान नवयुवती है, उसे इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग है। स्वर्गमें इससे बढ़कर और क्या रक्खा है? कारलाइल महोदय कहते हैं:—"If in youth the universe is majestically unveiling and every-where heaven revealing itself on earth, nowhere

to the young man does this heaven on earth so immediately reveal itself as in the young maiden." यदि यौवन में विश्व गौरवके साथ अपने तईं प्रकट करता है, यदि स्वर्ग पृथ्वी पर प्रादुर्भूत होता है, तो युवक के लिये स्वर्गका प्रादुर्भाव युवतीमें ही होता है; अन्यत्र नहीं।

किन्तु इनमें रहकर आगे-पोछे का सभी खयाल भुला देना भला नहीं, इनको भोगो और अवश्य भोगो; कोई क्षति नहीं; पर अपनी आगे की यात्राका ध्यान जरूर रक्खो; क्योंकि यहाँ का मुक़ाम थोड़े ही दिनोंका है। जो अपनी आगेकी सफर के लिये भी पहलेसे ही प्रबन्ध करते हैं, उन्हें जो स्वर्गीय सुख यहाँ मिल रहे हैं, वह आगे भी मिलेंगे। यहाँ स्वर्ग भोगा और मरने पर नरकमें डाले गये, इसमें तो चतुराई नहीं। इसलिये संसारियों के लिये स्त्री-भोगके साथ पुण्य-सञ्चय भी करते जाना चाहिये, । सब तरह के पुण्योंमें परोपकार सर्वश्रेष्ठ पुण्य है, इस लिये यही करना उचित है। जो अपनी ही नवयौवना के साथ भोग-विलास करेंगे और साथ-साथ परोपकार-पुण्य भी सञ्चय करेंगे, उन्हें कोई भय नहीं। वे तपस्वियोंके तपस्वी समझे जायँगे और उन्हें अगले जन्ममें फिर स्वर्ग दायिनी कमलनेत्री सुन्दरियाँ मिलेंगी। यदि वे स्वर्गलोकमें जन्म लेंगे तो वहाँ भी हूरें या अप्सरायें मिलेंगी; पर बिना पुण्य-सञ्चयके वे यहाँ मिलेंगी न वहाँ। कहा है:—

क्या वह दुनियाँ, जिसमें कोशिश हो न दीं के वास्ते।
वास्ते वाँके भी कुछ—या सब यहींके वास्ते ॥ ज़ौक़।

इस संसारमें आकर कुछ परलोक बनाने कीभी फिक्र करनी चाहिये। यह उचित नहीं, कि उधर की फिक्र बिल्कुल ही छोड़ दी जाय।

नाम मंज़ूर है, तो फ़ैज़के असबाव वना।
पुल वना, चाह वना, मसजिदो तालाव वना ॥ ज़ौक़।

अगर तू चाहता है कि, तेरा नाम संसारमें प्रतिष्ठा के साथ लिया जाय, तो तू परोपकार कर; पुल बना, कूए बना; मन्दिर और तालाब बना।

अब रही उनकी बात, जो इस संसार की असारतासे वाकिफ हो गये हैं, जिनका मन विषय-भोगोंसे हटसा गया है, जिन्हें विषय-विषोंसे घृणा हो गई है, उन्हें सच्चे दिल से विषयों को त्याग देना चाहिये; मनमें भी—कभी भूल कर भी-विषयों का ध्यान न करना चाहिये। ऊपरसे संन्यासी बनना और भीतर विषयों की चाह रखना, बहुत ही ख़राब है।

मन में एक बात स्थिर कर लेनी चाहिये। इस जगत्में स्थिर-बुद्धिका ही सदा भला होता है; चञ्चल-बुद्धिका सर्व्वनाश होता है। बुद्धिको स्थिर करके किसी एक बात पर जम जाना चाहिये। चाहे भोग ही भोगे जायँ अथवा योग ही साधा जाय। रसिक कवि ने खूब कहा है—

दोहा ।

रसिक सुनहु तुम कान दे, सब ग्रन्थनको सार ।
योग भोगमें इक विना, यह संसार असार ॥
सुनो औरहू बात पै, मुख्य बात ये दोय ।
कै तिय-जोवनमें रमै, कै वनवासी होय ॥५३॥

सार—मनुष्योंको या तो नवीनायें भोगनी चाहियें अथवा संसारके झगड़े छोड़, बनमें जा, तप करना चाहिये ।

53. What is the use of so much unreasonable wild talk ? There are only two things which a person should always desire enjoyment of,—viz (i) the youth of a beautiful lady who is desirous of new amorous enjoyments and is bent down under the load of her breasts or (ii) the forest.

सत्यं जना वच्मि न पक्षपाताल्लोकेषु सर्वेषु च तथ्यमेतत्।
नान्यन्मनोहारि नितम्बिनीभ्योदुःखैकहेतुर्नचकश्चिदन्यः ॥५४॥

हे मनुष्यो ! हम पक्षपात त्यागकर सच कहते हैं कि, इस संसारमें स्त्रियोंसे बढ़कर न कोई मनको हरनेवाली वस्तु है और न कोई दुःखदायी वस्तु है ॥५४॥

खुलासा—इस जगत्में, सुख और दुःख दोनों ही का कारण एकमात्र मनोहर नितम्बोंवाली स्त्री है। और भी स्पष्ट शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि, स्त्री ही सुख देनेवाली और स्त्री ही दुःख देने वाली है; यानी सुख और दुःख दोनोंका हेतु एकमात्र स्त्री ही है। पाश्चात्य लोगोंमें एक कहावत है कि स्त्री, सम्पत्ति और सुरा,—इन तीनोंमें दुःख और सुख दोनों ही हैं।

निस्सन्देह, इस जगत्में, पुरुषके लिये स्त्रीसे बढ़कर सुख-दायी और मनोहर दूसरी वस्तु नहीं। स्त्री अपने मधुर वचनों, सुन्दर हाव-भाव और उत्तम सेवासे पुरुषके शारीरिक और मानसिक क्लेशोंको शीघ्र ही हर लेती है। स्त्री विपद्में सच्चे मित्रकी तरह परामर्श देती और धैर्य्य धारण कराती है। और सब विपद्में पुरुषको त्याग देते हैं, पर यह अपने पतिको नहीं त्यागती। भोजनके समय, जिस हित और प्रेमसे ये खिलाती-पिलाती है; उस तरह, सिवा जननीके, और कोई भी नहीं खिलाता-पिलाता। सम्भोग-कालमें, यह, वेश्याकी तरह, अपने पतिका सब तरहसे मनोरंजन करती है। इतनाही नहीं, उसके वंश की वृद्धि भी करती है; यानी स्त्रीसे ही पुत्र पौत्रादि होते हैं। मनुष्य कैसा ही दुःखित क्यों न हो, स्त्री घरमें आते ही उसके सारे खेद और श्रमको हर लेती तथा उसे नरकसे बचाती और स्वर्गमें लेजाती है। स्त्रीसे ही राम, कृष्ण, भगीरथ, ध्रुव, प्रह्लाद, अर्जुन, भीम, बुद्ध, शङ्कराचार्य्य, दयानन्द और गाँधी जैसे महा-पुरुष पैदा हुए और होते हैं; अतः यह स्पष्ट है कि, स्त्रीके

समान सुखदायी इस जगत्में दूसरी चीज नहीं। मनोहर यह इतनी होती है कि, अपनी एक मुसक्यानमें ही पुरुषका मन हर लेती है। पर ये सब सुख तभी मिलते हैं, जबकि स्त्री सती-साध्वी और सच्ची पतिव्रता होती है। यही स्त्री अगर कुलटा-व्यभिचारिणी अथवा कर्कशा होती है; तो पुरुषके लिये यहीं—इसी लोकमें—साक्षात् नरक हो जाता है। पर सच्ची पतिव्रता किसी विरले ही पुण्यात्मा को मिलती है।

जिसे पतिव्रता स्त्री मिलती है, उसे दुःख-दैन्य; आपद्-मुसीबत और शोक-चिन्ता प्रभृति सता नहीं सकते; क्योंकि पतिव्रता नरकको स्वर्गमें, दुःखको सुखमें, विपद्को सम्पदमें और शोकको हर्षमें परिणत कर देनेकी क्षमता रखती है। वह घरके काम-काज करती, पुत्र-कन्याओंको पालती, उन्हे सुशिक्षा देती और कुपथगामी पतिको सुपथगामी बना देती है। पुरुषकी कड़ी कमाई का पैसा बड़ी ही किफायतसे ख़र्च करती और उसे नष्ट होनेसे बचाती तथा पतिका शोक हर लेती है। स्त्रियोंके सम्बन्धमें गोल्डस्मिथ महोदयने, जो इँगलैण्डके एक नामी विद्वान् थे, ख़ूब कहा है। हम अपने पाठकोंके ज्ञानवर्द्धनार्थ आपके अनमोल वचन नीचे देते हैं:—"Women, it has been observed, are not naturally formed for great cares themselves, but to soften ours" यह देखा गया है, कि स्त्रियाँ महत् चिन्ताओंको स्वयं सहनेके लिए नहीं; वरन् हमारी चिन्ताओंको घटानेके लिये बनाई गई हैं। आपने एक जगह

लिखा है:—"She who makes her husband and her children happy, who reclaims the one from vice and trains up the other to virtue, is a much greater character than ladies described in romance, whose whole occupation is to murder mankind with shaft from their quiver or their eyes," जो अपने पति और बच्चोंको सुखी कर सकती है, जो अपने खाविन्दको कुमार्गसे हटाकर सुमार्ग पर चला सकती है, जो अपने बालकों को सद्गुणोंकी शिक्षा दे सकती है, वह कल्पित कथाओं या उपन्यासोंमें वर्णित उन स्त्रियोंसे अच्छी है, जो अपने तरकश या नेत्रोंके बाणों द्वारा मानवजातिको वध करना ही अपना कर्त्तव्य समझती है।

संसारमें रूपका आदर है। रूप प्राणिमात्रको अपनी ओर खींचता है, पर रूपसे गुणकी पूजा अधिक होती है। रूप नेत्रेन्द्रियको प्रसन्न करता है; पर गुण आत्मा पर अधिकार जमाता है। पोप महाशय कहते हैं—"Beauties in vain their pretty eyes may roll, charms strike the sight but merit wins the soul." सुन्दरियाँ वृथा ही अपने सुन्दर नेत्रोंको इधर-उधर चलाती हैं। सौन्दर्य्यका प्रभाव नेत्रोंपर पड़ता है, किन्तु गुण आत्माको जीत लेता है। मतलब यह, कि रूपवती और गुणवती रमणी कहीं भली होती है; पर जिसे ईश्वरने ऐसी नारी दी है, जिसमें रूपके साथ सुन्दर

गुणोंका भी समावेश है, वह निश्चय ही पूर्व जन्मका तपस्वी और पुण्यात्मा है। उसे इसी पृथ्वी पर ही स्वर्ग है। लेकिन जिसकी स्त्री फूहर और कर्कशा है, घरको मैला रखती है, बच्चों को सूगले रखती है, खाना बनाना भी नहीं जानती, मनमें आवे जैसी कच्ची-पक्की जली-अधजली रोटियाँ खिलाती है, हर घड़ी मुँह फुलाये रहती है, घरमें देवासुर-संग्राम का तमाशा दिखाया करती है, उस पुरुषके लिये यहीं नरक है। किसी कवि ने खूब कहा है:—

भातको मांड करे नहिं राँड,
औ सौगुनो साँभर सागमें डारे।
भूल के खाँड लै डारत दालमें,
हींग फुलायके खीर बघारै।
चाकते रोटी हु मोटी करै,
औ काचीही राखे कि जारही डारै।
भूतसी भौनमें ठाडी रहै,
परमेश्वर ऐसी सों पालो न पारे॥

अर्थात् जो स्त्री भातका माँड़ नहीं पसाती; सागमें सौगुना नमक डालती है, भूलकर दालमें चीनी मिला देती है, खीरमें हींगका छोंक देती है, कुम्हार के चाक-जैसी मोटी रोटियाँ करती है, उन्हें कच्ची रखती या जला डालती है, और भूतनीसी घरमें खड़ी रहती है, परमेश्वर ऐसी स्त्रीसे पाला न पटके। जिनपर

ईश्वरका कोप होता है या किसीका शाप होता है, उन्हें ही ऐसी फूहर स्त्री मिलती है। कहा है—

जानो दारुण शापफल, मिलहि दुष्ट जिहि नारि।

यद्यपि पतिव्रता नारी सुखों का भण्डार है; तोभी स्त्री सती हो चाहे असती, पतिव्रता हो चाहे व्यभिचारिणी, स्त्रीके कारण पुरुष को नाना प्रकारके कष्ट उठाने ही पड़ते हैं। स्त्रीके लिये ही वह स्वास्थ्य और जीवनका ख़याल न रखकर भी रात-दिन, अविरत परिश्रम करता है। स्त्रीके लिये ही पुरुष दुर्जनोंके कुबचन सहता, उनको हाथ जोड़ता, उनके क़दम पकड़ता और न करने योग्य कर्म करता है। बहुत कहाँ तक कहें, स्त्रीके लिये पुरुष नीच-से-नीच कर्म करता, जेल जाता और फाँसी चढ़ता है। अगर इस जगत्में चन्द्रानना कमलनयनी कामिनियाँ न होतीं, तो कौन बुद्धिमान राजाओं और अमीरोंकी सेवामें अनेक प्रकारके कष्ट उठाकर अधीर-चित्त होता ?

यह सब तो पुरुष स्त्रीकी मोह-माया में फँस स्वयं करता और स्वयं दुःख भोगता है। पर यदि दुर्भाग्यसे स्त्री कुलटा होती है, तब तो वह घरमें ही नाना प्रकारके कष्ट और यन्त्रणायें भुगाती है। कुलटा कामिनीका शरीर यद्दि पुष्पवत् कोमल भी होता है; तो उसका हृदय वज्रवत् कठोर होता है। उसके दिल में दया-माया और स्नेह नामको भी नहीं होता। वह सच्ची पिशाचिनी होती है। शम्बरासुर और विचित्तिकी मायाको समझना सहज है, पर कुलटाकी मायाको समझना कठिन

है। वह अवला दीखने पर भी सवला और गौ होने पर भी वाघ होती है। वह निरङ्कुश होकर—पुरुषको नाना प्रकार से नचाती और सेवककी तरह उससे काम कराती है। वृथा विलास-चिह्न दिखाकर उससे पैर दववाती और अपनी इच्छा होनेसे उसका रक्त-मांस चूसती है। ज़रासी फरमायश पूरी न होनेसे और घरकी एक चीज़ भी समय पर न आनेसे उसके प्राण ले लेती और उसके कलेजेको वाक्यवाणोंसे विद्ध करके चलनी बना देती है। वहुत कहाँ तक कहें, नरकके दुःख कुलटा के दिये दुःखोंके सामने लजा जाते हैं।

सारांश यही है, कि अगर स्त्री नवयौवना, रूपवती और पतिव्रता हो, तो पुरुषको जो कष्ट उठाने पड़ते हैं, उनसे उसे उतना कष्ट या मनोवेदना नहीं होती। वह स्वयं वाहरके कष्टों को हर लेती है। पर पतिव्रताके होने पर भी, पुरुष कष्ट और अपमान से वच नहीं सकता। इसलिये, इसमें शक नहीं कि, स्त्री सुख और दुःख दोनों ही की हेतु है, यानी स्त्रीसे सुख भी है और दुःख भी है। सुख थोड़ा और नाम मात्रको है और वह भी अज्ञानीके लिये। ज्ञानी और विरागीकी नज़रमें तो दुःख-ही-दुःख है; इसलिये जिन्हें कष्ट और झंझटोंसे बचना हो, जिन्हें आत्माका कल्याण करना हो, वे इस मनोहर विष-वेलसे बचें। फौन्टेनेली महोदय कहते हैं:–"A beautiful woman is the "hell" of the soul, the "purgatory" of the purse and the "paradise" of the eyes" सुन्दरी कामिनी

आत्माका नरक, सम्पत्तिका नाश और नेत्रोंकी स्वर्ग है। 'गिरिधर' कविराय कहते हैं:—

कुण्डलिया।

तीनों मूल उपाधिकी, ज़र जोरू ज़ामीन।
है उपाधि तिसके कहाँ, जाके नहिं ये तीन?॥
जाके नहिं ये तीन, हृदयमें नाहिन इच्छा।
परम सुखी सो साधु, खाय यद्यपि लै भिक्षा॥
कह गिरधर कविराय, एक आतम रस भीनो।
निर्भय विचरे सन्त, सर्वथा तजकर तीनों॥

दोहा।

कहहिं सत्य तज पक्ष हम, लोक-विमोहन नारि।
अरु या सों दुखद अपर, नहिं कछु लेहु विचारि॥५४॥

सार—स्त्रीसे बढ़कर सुखदायी और दुखदायी और कोई नहीं।

54. O men, I tell you the truth and without any partiality that, in this world, there is nothing so attractive to the mind as the women and again, nothing so painful also.

तावदेव कृतिनामपि स्फुरत्येष निर्मलविवेकदीपकः।
यावदेव न कुरंगचक्षुषां ताड्यते चपललोचनाञ्चलैः॥५५

विवेकियोंके हृदयमें निर्मल विवेकरूपी दीपकका प्रकाश तभीतक रहता है, जबतक कि मृगनयनी स्त्रियोंके चञ्चल नेत्र-रूपी आँचलसे वह बुझाया नहीं जाता ॥५५॥

खुलासा—अन्तःकरणमें कामादि मल रहित निर्मल विवेक का दीपक उसी समय तक जलता है, जब तक कि मृगलोचनी के चञ्चल नेत्र रूपी आँचलकी फटकार नहीं लगती। और भी स्पष्ट शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि, स्त्रियोंके कटाक्षसे विवेकी पुरुषोंका भी विवेक ध्वंस हो जाता है। "भामिनी-विलास" में लिखा है:—

तदवधि कुशलीपुराणशास्त्रस्मृति-
शतचारुविचारजो विवेकः।
यदवधि न पदं दधाति चित्ते हरिण-
किशोरदृशो दृशोर्विलासः॥

कुशलता और पुराण-शास्त्र तथा स्मृतियोंके अनेक चारु विचारोंसे उत्पन्न हुआ विवेक तभी तक है, जब तक मृगकेसे बच्चेकी आँखोंवाली कामिनीके नेत्र-विलास हृदयमें प्रवेश नहीं करते; अर्थात् स्त्रीकी तीखी नजर पड़ते ही विवेक और चतुराई सब काफूर हो जाते हैं।

उस्ताद 'ज़ौक़' भी कुछ ऐसी ही बात कहते हैं:—

ऐ ज़ौक़! आज सामने उस चश्मे-मस्तके।
बातिल सब अपने दाव-ये दानिशवरी हुए॥

ऐ जौक़ ! उसकी मदमत्त मनोहर आँखके सामने आज हमारी योग्यता और बुद्धिमत्ताका अन्त हो गया।

सच है, जब तक चञ्चल नेत्रोंवाली कामिनीकी नज़रसे नज़र नहीं मिलती, तभी तक विवेक, बुद्धि और विचारोंका अस्तित्व समझिये। उसकी नज़रसे नज़र मिलते ही इनका खातमा हो जाता है।

दोहा।

दीपक जरत विवेकको, तों लों या चित माहिं।
जौं लों नारि-कटाक्ष-पट, पवनसु परसत नाहिं ॥५५॥

सार—मृगनयनी नवयुवतीसे चार नज़र होते ही विवेक और बुद्धि सब हवा हो जाते हैं।

55. The light of reasoning flickers in the heart of a wise man only so long as it is not put out by the moving eyes of a lotus-eyed woman as if by a scarf.

वचसि भवति संगत्यागमुद्दिश्य वार्त्ता,
श्रुतिमुखरमुखानां केवलं पण्डितानाम्।
जघनमरुणरत्नग्रन्थिकाञ्चीकलापं,
कुवलयनयनानां को विहातुं समर्थः ॥५६॥

शास्त्रवक्ता पण्डितोंका स्त्री-त्यागका उपदेश केवल कथन-

मात्र ही है। लाल रत्न-जटित कर्द्धनीवाली कमलनयनी स्त्रियों की मनोहर जघाओंको कौन त्याग सकता है ? ॥५६॥

खुलासा—पाण्डित्यका ढकोसला दिखाने वाले पण्डित वास्तवमें स्त्री-त्यागका उपदेश नहीं देते; खाली अपना पाण्डित्य दिखानेके लिये जबानसे बकते हैं। वे गोस्वामी तुलसीदासकी इस कहावतके अनुसार "परोपदेश कुशल बहुतेरे, आप चलहिं ऐसे नर न घनेरे" लोगोंको उपदेश-भर ही देते हैं, आप ख़ुद अमल नहीं कर सकते। वे किसी ललित ललनाके कटाक्षबाणोंसे विद्ध नहीं हुए हैं, इसीसे बातें बनाते हैं; जब स्वयं उन पर पड़ेगी, तब सब शास्त्रोंको भूल जायँगे। महाकवि 'दाग़' ने ऐसों ही के लिए कहा है:—

दिललगी दिल्लगी नहीं नासह !
तेरे दिलको अभी लगी ही नहीं॥

उपदेशकजी ! दिललगी दिल्लगी नहीं है, उसी समय तक आप इसे दिल्लगी समझते हैं, जब तक कि आपके दिलको लगी नहीं है। अगर किसीसे दिल लगा, तो आपका सारा पाण्डित्य हवा हो जायगा।

सौन्दर्य मामूली चीज नहीं; ऐसा कौन है, जिसे सौन्दर्य अपनी ओर न खींच सके ? मिस्टर क्लेरण्डन कहते हैं—"A beautiful object doth attract the sight of all men, that it is no man's power not to be pleased with it.

सुन्दर पदार्थमें मनुष्यमात्रकी दृष्टिको आकर्षित करने की इतनी प्रबल शक्ति है कि, कोई भी मनुष्य उससे प्रसन्न हुए बिना रह नहीं सकता। सुन्दरता मनुष्यके दिमाग़में चढ़ जाती और उसे नशेसे मस्त कर देती है। देखनेवालेका दिल वशमें नहीं रहता। जिम्मरमैन महोदयने ठीक ही कहा है—("Beauty is worse than wine; it intoxicates both holder and the beholder.) "सौन्दर्य शराबसे भी बुरा है। यह उसके रखनेवाले और उसके देखनेवाले दोनोंको मतवाला कर देता है। सुन्दरियोंके सौन्दर्यको देखकर, मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेके पूर्ण अभ्यासी भी, अपने मनको वशमें रखनेमें असमर्थ होते हैं। पुराणोंमें लिखा है कि, पूर्वकालमें, मरीचि, शृंगी, विश्वामित्र और पराशर जैसे महामुनि, जो केवल वृक्षोंके पत्ते और हवा भक्षण करके जीते थे, इन मोहिनियोंको सामने पाकर इन्हें त्याग न सके; तब साधारण लोगोंकी क्या गिन्ती? शैक्सपियरने कहा है:—"Beauty is a witch against whose charms faith melteth into blood." सुन्दरता ऐसी जादूगरनी है कि उसके जादूसे धर्म-ईमान गल कर ख़ून हो जाते हैं; यानी रूपके सामने धर्म-ईमान नहीं ठहरता, न जाने कहाँ काफ़ूर हो जाता है?

कुण्डलिया।

पण्डित-जन जब कहत हैं, तिय तजिबेकी बात।
करत वृथा बकवाद वह,. तजी नेक नाहिं जात॥

तजी नैक नहीं जात, गात-छवि कनक वरन वर ।
कमल-पत्र-सम नैन, वैन बोलत अमृत झर ॥
सोहत मुख मृदु हास, अंग आभूषण मंडित ।
ऐसी तियको तजै, कौनसो है वह पण्डित ? ॥५६॥

सार—सुन्दरी नवयौवना कामिनी को सामने पाकर त्यागना—खेल नहीं—टेढ़ी खीर है । इसकी निन्दा करनेवाले चाहे अनेक हों, पर त्यागनेवाला एक भी नहीं ।

56. It is only in the speeches of the talkative scholars that the abandonment of the company of a woman is advocated but who is strong-minded enough to give up in actual practice the hips of lotus-eyed woman wearing girdle set with red jewels.

स्वपरप्रतारकोऽसौ निन्दति योलीकपण्डितो युवतीः ।
यस्मात्तपसोऽपि फलं स्वर्गस्तस्यापि फलं तथाऽप्सरसः॥५७

जो विद्वान् युवतियोंकी निन्दा करता है, वह निश्चय ही झूठा पण्डित है । उसने पहिले आप धोखा खाया है और अब दूसरोंको धोखा देता है, क्योंकि अनेक प्रकारकी तपस्याओं का फल स्वर्ग है और स्वर्गका फल अप्सरा-भोग है ॥५७॥

खुलासा—जो विद्वान् पण्डित नवयौवना कामिनियोंकी निन्दा करते हैं, उनमें अनेक दोष बताते हैं, वे पागल हैं । वे

स्वर्गकी प्राप्तिके लिये अनेक प्रकारकी तपश्चर्य्या और जप-तप करते हैं। तपः सिद्धि होने पर स्वर्गमें जाना चाहते हैं। वहाँ उनको भोगनेके लिये अप्सरायें मिलेंगी; तब यहीं उनके भोगने में कौनसो बुराई है? यह तो सीधीसी बात है कि तपस्याका फल स्वर्ग है और स्वर्गका फल अप्सरायें।

"आप पाण्डेजी बैंगन खावें, औरोंको परमोध बतावें" ऐसे परोपदेशक दुनियाँमें बहुत हैं। आप वही काम करते हैं, पर औरोंको मना करते हैं। ऐसे महापुरुषोंके सम्बन्धमें ही महाकवि 'दाग़' कहते हैं:—

हूरके वास्ते ज़ाहिदने इबादत की है।
सैर तो जब है, कि जन्नतमें न जाने पावे॥

भक्त महाशयने स्वर्गीय अप्सराओं या हूरोंके भोगनेके लिये ईश्वरकी उपासना की है। बड़ा मजा हो, अगर ये स्वर्गमें जाने ही न पावें।

महाकवि 'ज़ौक़' कहते हैं:—

कब हक़परस्त है, ज़ाहिदे जन्नतपरस्त है।
हूरों पे मर रहा है, यह शहवतपरस्त है॥

कौन कहता है, भक्तजी ईश्वर-उपासक हैं? ये तो घोर कामी और इन्द्रिय-दास हैं। स्वर्गकी अप्सराओं पर मर रहे हैं। जो स्वर्गकी कामनासे तप करते हैं, उनकी स्त्री-निन्दा ध्यान देने

योग्य नहीं; वे वृथा निन्दा करते हैं। आप स्वर्गमें जाकर स्त्री ही भोगेंगे और करेंगे क्या? स्वर्गीय अप्सरायें या हूरें भी तो आख़िर स्त्रियाँ ही हैं न? ऐसे धोखेबाज़ोंकी बातोंमें न आना चाहिये।

उस्ताद 'ज़ौक़' ने भी कहा है:—

रेश सफ़ेद शेख़में, है ज़ुल्मते फ़रेब।
इस मक्र चाँदनी पर, न करना गुमान ऐ सुबह॥

शेख़जी की सफ़ेद दाढ़ीमें कपटका अन्धकार छिपा हुआ है। इस झूठी चाँदनी पर प्रातःकालकी सफ़ेदीका धोखा मत खाना; यानी इनकी बात मान, कामिनियोंको भोगना न छोड़ना। ऐसे धोंघा-बसन्त अपनी सिद्धाई जमानेकी कपट से ऐसी बेतुकी बातें कहते हैं और कुछ ऐसे भी होते हैं, जिनको इन नारी-रत्नोंकी क़द्र ही नहीं मालूम; इससे इनकी निन्दा करते हैं। जिसे जिसकी क़द्र ही नहीं मालूम, वह तो उसकी निन्दा ही करेगा। जंगलमें पड़े हुए गजमोतियोंको भीलनी पाकर भी फेंक देती है; पर उनकी क़ीमत जानने वाला जौहरी उन्हें उठाकर छातीसे लगा लेता है। जिसने शराब नहीं पीयी, जिसे शराबका मज़ा नहीं मालूम, वह शराबकी निन्दा ही करता है। उसे कोई लाख समझावे, वह नहीं समझता। ऐसे ही मौक़ेका एक शेर महाकवि 'दाग़' ने कहा है:—

लुत्फ़ मै तुझसे क्या कहूँ ज़ाहिद ।
हाय ! कम्बख़्त तूने पी ही नहीं ॥

हे भक्त ! मैं तुझे शराबका मज़ा कैसे बताऊँ ? कम्बख़्त तूने उसे पिया ही नहीं। जो मदिरा पीता है और नाज़नियोंको भोगता है, वही जानता है कि, उनमें क्या मज़ा है। उस मज़ेका हाल ज़बान से बताना कठिन ही नहीं, असम्भव है। सच मानिये, पृथ्वी पर अगर स्वर्ग है, तो कमलनयनी उठती जवानीकी सुन्दरियोंमें ही है।

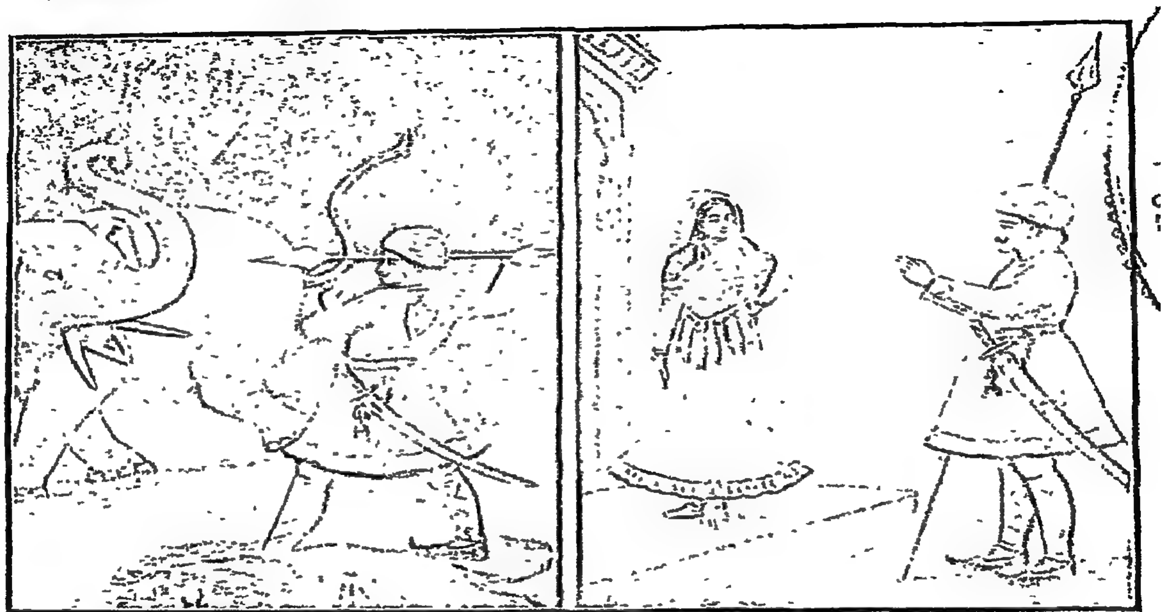
दोहा ।

नारिनकी निन्दा करत, ते पण्डित मतिहीन ।
स्वर्ग गये तिनको सुनें, सदा अप्सरा लीन ॥५७॥

सार—स्त्रियोंकी निन्दा करनेवाला पाखण्डी है। आप उन्हें भोगना चाहता है, पर दूसरों को रोकता है।

57. Those scholars who speak ill of women are liars in as much as they deceive others and also themselves; for the result of austerity is heaven and the result of attaining heaven is the enjoyment of nymphs.

मत्तेभकुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः
केचित्प्रचण्डमृगराजवधेऽपि दक्षाः ॥



मतवाले हाथी का मस्तक विदारनेवाले और बलवान सिंह को मारनेवाले बहुत हैं ; परन्तु कामदेव का गर्व-खर्व करनेवाले, स्त्री से हार न खानेवाले कोई विरले ही हैं। इस चित्र में यह दिखाया गया है कि, गजराज और मृगराज को भी मार डालनेवाला शूरवीर कामिनी के सामने हाथ जोड़ रहा है।

(पृष्ठ १२७)

किं तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य,
कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः ॥५८॥

इस पृथ्वी पर, मतवाले हाथीका मस्तक विदारनेवाले शूर अनेक हैं, प्रचण्ड मृगराज—सिंहके मारनेवाले भी कितने ही मिल सकते हैं; परन्तु बलवानोंके सामने हम हठ करके कहते हैं, कि कामदेवके मदको मर्दन करनेवाले पुरुष कोई बिरले ही होंगे ॥५८॥

खुलासा—हाथियों और सिंहोंको पराजित करनेवाले शूर-वीर इस पृथ्वीपर अनेक मिल सकते हैं; पर कामदेवको वशमें करनेवाला अथवा कामिनीके कटाक्ष-बाणोंसे पराजित न होनेवाला, कोई एक भी कठिनसे मिलता है। बड़े-बड़े युद्धक्षेत्रोंमें विजयी होनेवाले शूरवीरोंकी भी शूरवीरता इन कामिनियोंके आगे न जाने कहाँ चली जाती है? बड़े-बड़े बहादुरोंकी ज़बानसे यही निकलता है:—

मर गये हम; इक इशारेमें निगाहे नाज़के।

पर बक़ौल स्वामि शंकराचार्य्यजीके सच्चा शूरवीर वही है, जो मनोज—कामदेवके बाणोंसे व्यथित न हो अर्थात् कामिनीके दाममें न फँसे। कहा है—

शूरान्महाशूरतमोऽस्ति को वा?।
मनोजबाणैर्व्यथितो न यस्तु॥

प्राज्ञोथ धीरश्च शमस्तुको वा ? ।
प्राप्तो न मोहं ललनाकटाक्षैः ॥

संसारमें सबसे बड़ा शूरवीर कौन है ? सबसे बड़ा शूरवीर वही है, जो कामदेवके बाणों से पीड़ित न हो। बुद्धिमान्, धीर और समदर्शी कौन है ? जो स्त्रीके कटाक्षसे मोहित न हो।

हमें एक "सर्व्वजीत" नामक राजाकी कथा याद आ गई है। उसे हम अपने पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ नीचे लिखते हैं। पाठक उसे कोरे मनोरञ्जन का ही मसाला न समझें, बल्कि सच्चे सर्व्वजीत बननेकी चेष्टा भी करेंः—

सर्व्वजीत राजा।

एक राजाने सारी पृथ्वीको जीतकर अपना नाम "सर्व्वजीत" रक्खा। सब देशों की रैयत और उसके मातहत राजा-महाराजा उसे "सर्व्वजीत" कहने लगे; लेकिन स्वयं राजमाता—राजाकी जननी—उसे "सर्व्वजीत" न कह कर, उसे उसके पुराने नामसे ही पुकारती।

एक दिन राजाने अपनी माँ से कहा—"माता जी! सारा संसार मुझे 'सर्व्वजीत' कहता है, पर आप मुझे मेरे पुराने नाम से ही क्यों पुकारती हैं?" राजमाताने कहा—"बेटा! बाहरके देशोंके जीतनेसे कोई 'सर्व्वजीत" नहीं हो सकता। तूने सारा संसार जीत लिया, पर अपना शरीर, मन और इन्द्रियाँ तो जीती

ही नहीं। तेरा शरीर दिन-दिन क्षय हो रहा है और तेरी इन्द्रियाँ तुझे विषय-भोगों और कुकर्मोंकी तरफ ले जा रही हैं। पहले तू भीतरी शत्रु—काम, क्रोध, मोह, लोभ प्रभृति और अपने मन तथा इन्द्रियोंको वशमें कर, तब मैं तुझे "सर्व्वजीत" ख़ुशीसे कहूँगी। देख, 'व्यास' भगवान्ने कहा है:—

न रणे विजयाच्छूरोऽध्ययनान्न पण्डितः।
न वक्ता वाक्पटुत्वेन न दाता चार्थदानतः॥१॥
इन्द्रियाणां जये शूरो धर्मं चरति पण्डितः।
हितप्रायोक्तिभिर्वक्ता दाता सम्मानदानतः॥२॥

रण-क्षेत्रमें विजयी होनेसे कोई शूर नहीं हो सकता; शास्त्र पढ़नेसे कोई पण्डित नहीं हो सकता, धड़ाधड़ व्याख्यान देनेसे कोई वक्ता नहीं हो सकता और धन दान करनेसे कोई दाता नहीं हो सकता।

जो इन्द्रियों पर जय प्राप्त करता है, वह शूरवीर कहलाता है; जो धर्मपर चलता है, वह पण्डित कहलाता है; जो हित-कारी बातें कहता है, वह वक्ता कहलाता है और जो दूसरों का आदर-सम्मान करता है, वह दाता कहलाता है।

छप्पय।

हाथी मारनहार, होत ऐसेहू शूरे।
मृगपति वध कर सकें, बकें नहिं नेकहु पूरे॥

बड़े-बड़े बलवन्त वीर, सब तिनके आगे।
महाबली ये काम, जांहि देखत सब भागे॥
अभिमान भरे या मदनको, मान मार मेटे अवधि।
नर धरम-धुरन्धर वीर वे, विरले या संसार-माधि ॥५८॥

सार—शूरवीर इस जगतमें बहुत हैं; पर कामिनियोंके कटाक्ष--बाणोंसे घायल न होने-वाला सच्चा शूरवीर शायद ही कोई एक हो।

58. There are many a hero on this earth who can tear the head of a mad elephant and there are also many powerful enough to kill a fearful lion but I can challenge all the strong men and say that there are few who can fully control the excitements of passions.

सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति स नरस्तावदेवेन्द्रियाणां,
लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव।
भ्रूचापाकृष्टमुक्ताः श्रवणपथगता नीलपक्ष्माण एते।
यावल्लीलावतीनांनहृदि धृतिमुषो दृष्टिबाणाःपतन्ति ५६

पुरुष सतमार्गमें तभीतक रह सकता है, इन्द्रियोंको तभी-तक वशमें रख सकता है, लज्जाको उसी समय तक धारण कर सकता है, नम्रताका अवलम्बन उसी समय तक कर सकता है, जबतक कि लीलावती स्त्रियोंके भौंह-रूपी धनुषसे कानोंतक

खींचे गये, श्याम बरौनी रूपी पंख धारण किये, धीरजको छुड़ानेवाले, नयन-रूपी बाण हृदयमें नहीं लगते ॥५६॥

खुलासा—पुरुष उसी समय तक सन्मार्गी, इन्द्रियविजयी, लज्जाशील और विनीत रहता है, जब तक वह कामिनीके कटाक्ष से घायल नहीं होता अथवा उसकी किसी नाज़नीसे आँखें नहीं लड़तीं। आँख लड़ते ही, वह उसकी एक-एक अदा पर पागल हो जाता है और बक़ौल महाकवि 'ग़ालिब' यही कहता है—

बलाये जाँ है ग़ालिब! उसकी हर बात।
इबारत क्या, इशारत क्या, अदा क्या॥

उसका देखना-भालना, लिखना-बोलना सभी ग़ज़ब ढाहने वाले हैं।

बहुत लिखना व्यर्थ है, चञ्चल-नयनी कामिनीसे चार नज़र होते ही मनुष्यके शान्ति, सन्तोष, लज्जा और शर्म सब हवा हो जाते हैं। उस्ताद 'ज़ौक़'ने ठीक कहा है:—

छोड़ा न दिलमें, सब्र आराम न शिकेब।
तेरी निगाहने साफ़ किया, घर-के-घर पै हाथ॥

तेरी दृष्टिने सब्र-सन्तोष, शान्ति और सुख सबका पटड़ा कर दिया—(इतना ही नहीं) सारे घर पर ही हाथ साफ़ कर दिया।

कामिनीके कटाक्षका मारा पुरुष कामातुर हो जाता है; उस समय उसमें भय, लज्जा और धीरज नहीं रहता। वह डर-भय और लाज-शर्मको ताक़ पर रखकर, अधीर हुआ, उसके देखने, मिलने और आलिङ्गन करनेके लिये छटपटाता है। उसको एक प्रकारका नशा-सा हो जाता है; इसलिये वह सारे काम मत-वालोंकेसे किया करता है। लोगों के समझाने-बुझानेका कुछ फल नहीं होता। वेदान्तियोंकी वेदान्त-विद्या, भागवतियोंकी भागवत और गीतावालोंका गीता, इस मौक़े पर कुछ भी काम नहीं करते; सभी निष्फल हो जाते हैं।

'क्षेमेन्द्र' महाशयने ठीक ही कहा है—

न श्रुतेन न वित्तेन न वृत्तेन न कर्मणा।
प्रवृत्तं शक्यते रोद्धुं मनोभवपथेमनः ॥

कामदेवकी राह पर आया हुआ मन किसी भी उपायसे उस राहसे हटाया नहीं जा सकता।

बक़ौल महाकवि 'दाग़', नाज़नियोंके निगाहे तीरके घायलोंकी अपनी कही भी सुनिये:—

नाम निकला तो कभी दिलसे कभी आहोफ़ुग़ाँ।
पर तेरे वस्लका अरमान निकला ही नहीं ॥

मेरे दिलसे कभी आह निकलती है, तो कभी दीर्घ निःश्वास; पर तेरे मिलनेकी चिरपालित अभिलाष कभी नहीं निकलती।

हैं तेरी राहे मुहब्बतमें हजारों फ़ितने।
देख, मुझको वजुज़ इस राहके चलता ही नहीं॥

तेरे प्रेमकी राहमें हजारों विघ्न-बाधायें हैं; किन्तु मुझे देख, कि उस राह पर चले बिना मेरा मनही नहीं मानता; यानी मैं और राहका पथिक बनना नहीं चाहता।

दोहा।

इन्द्री-दम, लज्जा, विनय; तौं लौं सब शुभ कर्म।
जौं लों नारी-नयन-शर, छेदत नाहीं मर्म॥५६॥

सार—स्त्रियोंके नयन-बाण लगते ही पुरुष के लज्जा और नम्रता प्रभृति गुण काफूर हो जाते हैं।

59. A man is in right path, has his passions under his control and has modesty and humility in him only so long as the eyes of women with beautiful eye-lids in the form of arrows with wings, stealing the patience, thrown from brows in the form of bows that are strung up to the ears, do not pierce the heart.

उन्मत्तप्रेमसंरम्भादारभन्ते यदङ्गनाः।
तत्र प्रत्यूहमाधातुं ब्रह्मापि खलु कातरः॥६०॥

अतिशय प्रेमकी उमंगसे उन्मत्त होकर स्त्रियाँ जिस काम को आरम्भ कर देती हैं, उस काममें विघ्न-बाधा उपस्थित करते ब्रह्मा भी डरता है ॥६०॥

खुलासा—इश्क़ के जोश और जल्दीमें स्त्री जो काम कर बैठती है, उससे उसे मनुष्य तो कौन चीज़ है, स्वयं ब्रह्मा भी नहीं रोक सकता। स्त्री अत्यन्त काम-पीड़ित होने पर जो छल-बल और साहसके काम करती है, उनको देखकर उसके बनाने वाला ब्रह्मा भी दाँतों-तले अँगुली देने लगता है। सास-ससुर, पति-पुत्र कोई भी उसे कुकर्मोंसे विरत कर नहीं सकते।

कामवती स्त्री अत्यन्त कुटिल, क्रूर आचरण वाली और लज्जाहीना हो जाती है। उस समय वह अपने पति, पिता, माता, पुत्र, बन्धु और कुटुम्बी तकसे द्रोह करने और उनका नाश करनेमें भी नहीं हिचकती। घमासान युद्धक्षेत्रमें भी वह बन्दूक़की गोलियों और तोपोंके गोलोंकी परवा न करके, यदि उसे जाना हो, तो पहुँचती है। जिस श्मशान पर अकेला-दुकेला मर्द भी न जा सकता हो, उस पर वह घोर अँधेरी रातमें बादलोंके गरजने, बिजलीके कड़कने और ऐसी ही अनेक आपदाओंके होने पर भी—बेधड़क पहुँचती है। स्त्रीके साहस की बात न पूछिये। ऐसा कौनसा काम है, जिसे वह, इच्छा करने पर, नहीं कर सकती ? किसी पाश्चात्य विद्वान्ने भी कहा है:—
"A woman when she either loves or hates, will dare anything" स्त्री जब प्रेम या घृणा किसी एक पर

तुल जाती है, तब सब कुछ करनेका साहस कर सकती है। किसी कवि ने कहा है:—

कहा न अबला कर सके*? कहा न सिन्धु समाय ?
कहा न पावकमें जरे ? काहि काल नहिं खाय ?

"रसिक" कविने भी कहा है—

दोहा।

कहा त्रिया नहिं कर सके, कामवती जब होय ?
"रसिक" सास पति पुत्र सब, कर न सकें कछु कोय ॥२०॥

दोहा।

महामत्त या प्रेमको, जब तिय करत उदोत।
तब वाके छल-बल निरखि, विधिहू कायर होत ॥

सार—कामोन्मत्त स्त्री जो चाहे सो कर सकती है।

60. Even Brahma (the creator) has not the power to obstruct the work which a woman undertakes being impassioned with the excitements of love.

---

* एक पुत्र छोड़ कर स्त्री सब कुछ कर सकती है। केवल यहीं उसकी नहीं चलती।

तावन्महत्त्वं पाण्डित्वं कुलीनत्वं विवेकिता ।
यावज्ज्वलति नाङ्गेषु हन्त पञ्चेषुपावकः ॥६१॥

बड़ाई, पण्डिताई, कुलीनता और विवेक,—मनुष्यके हृदय में तभीतक रह सकते हैं, जबतक शरीरमें कामाग्नि प्रज्वालित नहीं होती ॥६१॥

खुलासा—इश्क़में ज़ात-पाँत और नीच-ऊँचका विचार नहीं है। कामी पुरुषोंके विवेक या सत्-असत् की विचारशक्ति को तो स्त्रियाँ अपनी एक नजरमें ही हर लेती हैं। जब भले और बुरेको विचारनेकी शक्ति नहीं रहती, तब मनुष्यमें कुलीनता प्रभृति गुण कैसे रह सकते हैं ? अनेक पुरुष मुसल्मानियोंके प्रेम में फँसकर मुसल्मान हो गये हैं। कितने ही मेमोंके मोहजाल में फँसकर अपने हिन्दुत्व और ब्राह्मणत्वको तिलाञ्जलि देकर काले साहब बन गये हैं। यह तो कुछ नहीं, हमने कितने ही उच्च कुलके हिन्दू मेहतरानियोंके इश्क़में गिरफ्तार होकर मेहतर होते देखे हैं। इसमें जरा भी शक नहीं कि, कामाग्निके प्रज्वलित होते ही, बड़प्पन और कुलीनता प्रभृति हवा हो जाते हैं।

जबसे अँगरेज़ी राज इस देशमें हुआ है, अनेकों अमीरोंके लड़के, भारतमें बी० ए०, एम० ए० पास करके, बैरिष्ट्री या सिविल सरविसकी परीक्षा पास करने इँग्लैण्ड जाते हैं। ये विद्वान् नवयुवक वहाँकी मिसोंकी लुनाई, सुघड़ाई और रूप-माधुरी देखकर पागल हो जाते हैं। कितने ही उनको व्याह लाते हैं और इस तरह

अपने दीनो ईमान या धर्मको खोकर जातिच्युत होते हैं। यहाँके लोग उनकी हँसी उड़ाते और घोर-घोर निन्दा करते हैं। पर इससे होता क्या है? उनके वशकी बात नहीं। नवयौवना मिसोंसे चार नज़र होते ही, वे अपनी विद्या-बुद्धिको भूलकर उन पर पागल हो जाते हैं। महाकवि "अकबर" ने ऐसे ही एक लन्दन-प्रवासीका, जो एक मिसके केश-पाशमें फँस गया था, अच्छा चित्र खींचा है:—

रात उस मिससे कलीसाँमें हुआ मैं दोचार।
हाय वह हुस्न वो शोख़ी वो नज़ाकत वो उभार॥
ज़ुल्फ़-पेचाँमें वो सजधज कि बलायें भी मुरीद।
क़दे-राना में वो चमख़म कि क़यामत भी शहीद॥
दिलकशी चालमें ऐसी कि सितारे रुक जायँ।
सरकशी नाज़में ऐसी कि गवर्नर झुक जायँ॥
आतिशे हुस्न से तक़वा को जलाने वाली।
बिजलियाँ लुत्फ़े-तबस्सुम से गिराने वाली॥
पिस गया लोट गया दिलमें सकत ही न रही।
सुर थे तमकीनके जिस गतमें वो गत ही न रही॥
अर्ज़की मैंने कि ऐ गुलशने-फ़ितरतकी बहार।
दौलतो इज्ज़तो ईमाँ तेरे कदमों प निसार॥
तू अगर अहदे वफ़ा बाँधके मेरी हो जाय।
सारी दुनियासे मेरे क़ल्बको सेरी हो जाय॥

रातके समय उस मिससे गिरजेमें मेरी मुठभेड़ हो गई। हाय! उसके रूप-लावण्य, उसकी चञ्चलता, उसकी जवानीके उभारका बयान कैसे करूँ? उसकी पेचदार लटोंमें वह बलाकी सजधज थी कि, जिसको देखकर बलायें स्वयँ उसका लोहा मान लें। उसके नाज़ुक शरीरमें वह चमक-दमक कि, जिसको देखकर प्रलय भी उस पर मरने लगे। उसकी चालमें ऐसी कशिश कि, जिसको देखकर सितारोंकी चाल भी मन्दी पड़ जाय। उसके हाव-भावोंमें ऐसी ऐंठ कि, जिसको देखकर गवर्नर लोग भी उसके सामने सिर झुका दें। उसकी ख़ूबसूरतीमें ऐसी लपट कि, जिससे सदाचारके भाव भस्म हो जायँ। उसकी मन्द-मुसक्यानमें ऐसी चकाचौंध कि, जिससे प्रेमीके दिलपर बिजली गिर पड़े। उसके देखते ही मेरा दिल पिस गया और मेरे शरीरकी सारी ताक़त निकल गई। मैं ज़मीनपर बेहोश होकर लोटने लगा। धीरजके स्वर जिस गतमें बज रहे थे, वह गत ही हृदयमें न रही। मैंने कहा—"ऐ प्रकृतिकी फुलवाड़ीकी बहार! मेरा धन-धर्म और मान-मर्य्यादा सब तेरे चरणोंमें अर्पण है। यदि सच्ची मुहब्बतकी प्रतिज्ञा करके, तू मेरी हो जाय, तो मेरा जी सारे संसारसे भर जाय।

दोहा।

बुद्धि विवेक कुलीनता, तौं लौं ही मन माहिं।
कामबाण की अग्नि तन, जौं लौं धधकत नाहिं॥६१॥

सार—प्रेम—कुलीनता, विवेक और पाण्डित्य प्रभृति सद्गुणोंका शत्रु है।

61. Respectibility, wisdom, good sense and family distinction find place in a man only so long as the fire of passion has not begun to burn in him.

शास्त्रज्ञोऽपि प्रथितविनयोऽप्यात्मबोधोऽपि बाढं,
संसारेऽस्मिन् भवति विरलो भाजनं सद्गतीनाम्।
येनैतस्मिन्निरयनगरद्वारमुद्घाटयन्ती,
वामाक्षीणां भवति कुटिलाभ्रूलता कुञ्चिकेव ॥६२

शास्त्रज्ञ, विनयी और आत्मज्ञानियोंमें कोई विरला ही ऐसा होगा, जो सद्गतिका पात्र हो; क्योंकि यहाँ वामलोचना स्त्रियोंकी बाँकी भ्रू-लता-रूपी कुञ्जी उनके लिए नरकद्वारका ताला खोले रहती है ॥६२॥

खुलासा—शास्त्रज्ञ और ब्रह्मज्ञानियोंकी सद्गति तो तभी हो सकती है, जब कि वे कामिनीकी बाँकी भौंहोंकी झपेटमें आनेसे बचें। उनकी कमानसी भौंहोंको देखकर, बड़े-बड़े बेदान्तियोंकी अक्ल मारी जाती है। वह हजार गीता, भागवत और उपनिषदोंका पाठ करें, हजार योगवासिष्ठोंका परिशीलन करें; पर उनके चित्त पर चढ़ी कामिनीका उतरना बहुत कठिन

है। पण्डितेन्द्र जगन्नाथ अपने "भामिनी विलास" में लिखते हैं:—

उपनिषदः परिपीता गीतापि च हंत मतिपथं नीता।
तदपि न हा विधुवदना मानससदनाद्बहिर्याति॥

उपनिषदोंका पान किया और गीता भी भली भाँति पढ़ा-समझा और मनन किया; परन्तु हाय! इतना सब करने पर भी, वह चन्द्रवदनी कामिनी मेरे मनरूपी घरसे बाहर नहीं जाती।

ईश्वर की राहमें कामिनी और काञ्चन दो घाटियाँ हैं।

अगर संसारमें कामिनी और काञ्चन न होते, तो इस संसारसागरसे तरना और मोक्षलाभ करना कठिन न होता। मोक्षकी राहमें कामिनी और काञ्चन दो घाटियाँ पड़ती हैं। इन घाटियोंको पार करना अति कठिन है। जो इन घाटियोंको लाँघनेमें समर्थ हो, वही सद्गति या मोक्षका अधिकारी हो सकता है। महात्मा 'कबीर' कहते हैं:—

चलूँ चलूँ सब कोइ कहै, पहुँचे विरला कोय।
एक कनक अरु कामिनी, दुर्लभ घाटी दोय॥१॥
एक कनक अरु कामिनी, ये लाँबी तरवारि।
चाले थे हरि-भजनको, बिच ही लीन्हा मारि॥२॥

नारि पराई आपनी, भुगतै नरकै जाय।
आगि-आगि सब एकसी, देते हाथ जरि जाय ॥३॥
नारी तो हम भी करी, पाया नहीं विचार।
जब जानी तब परिहरी, नारी बड़ा विकार ॥४॥
नारि नसावे तीन सुख, जेहि नर पासे होय।
भक्ति मुक्ति अरु ज्ञानमें, पैठि सकै नहिं कोय ॥५॥
एक कनक अरु कामिनी, दोऊ अग्निकी झाल।
देखे ही तें पर जले, परसि करे पैमाल ॥६॥
जहाँ काम तहाँ राम नहिं, राम तहाँ नहिं काम।
दोऊ कबहूँ ना रहैं, काम राम इक ठाम ॥७॥

(१)

चलूँ चलूँ सब कहते हैं, पर कोई विरला ही पहुँचता है, क्योंकि उस (भगवान् की) राह में कनक और कामिनी दो दुर्लङ्घ्य घाटियाँ हैं।

(२)

कनक और कामिनी ये दो लम्बी तलवारें हैं। हरिभजनको चले थे, पर इन तलवारों ने बीच राहमें ही मार लिया।

(३)

स्त्री अपनी हो चाहे पराई, भोगनेसे नरकमें जाना ही पड़ता है; क्योंकि अपनी आग और पराई आग—दोनोंमें ही हाथ देने से हाथ जलता है।

(४)

जब हममें विवेक-विचार नहीं था, तब हमने भी स्त्री की थी; लेकिन जब उसका असल तत्त्व जाना, तब उसे त्याग दी; क्योंकि स्त्री बड़ी विकारवान् है।

(५)

स्त्री तीन सुखोंको नष्ट कर देती है। जिसके स्त्री होती है, उसे ज्ञान नहीं होता; अतः ईश्वर की भक्ति में भी मन नहीं लगता और भक्ति बिना मुक्ति नहीं मिलती।

(६)

कनक और कामिनी दोनों आगकी लपट हैं। इनके देखनेसे ही पर जलते हैं और छूनेसे तो प्राणी नष्ट ही हो जाता है।

(७)

जहाँ स्त्री है वहाँ राम नहीं और जहाँ राम है वहाँ स्त्री नहीं। भगवान्की भक्ति और स्त्रीकी प्रीति दोनों एक ही पुरुष नहीं कर सकता। जिस तरह दिन और रात एकत्र नहीं हो सकते; उसी तरह राम और काम भी एकत्र नहीं रह सकते।

सारांश यह, मोक्ष लाभ करने या जन्म-मरणसे बचकर परमपद पानेमें ये स्त्रियाँ ही बाधक हैं। लोग इनके जाल में फँस जाते हैं, अतः जन्म-जन्मान्तर तक नरक भोगते हैं। उनको सद्गति मिलना कठिन हो जाता है। बक़ौल महाकवि 'ज़ौक़', कोई समझदार, जहाँदीदा पुरुष ही इस स्त्री-जालमें फसने से बचता है। कहा है:—

दुनिया है वह सैयाद, कि सब दाममें इसके ।
आजाते हैं, लेकिन कोई दाना नहीं आता ॥

दुनिया वह जाल है कि, इसमें सभी फँस जाते हैं; कोई विचारशील ही इसमें फँसनेसे बचता है। जो इस जालमें नहीं फँसता, वही नरकोंसे बचता और मुक्ति लाभ करता है।

छप्पय ।

सब ग्रन्थनके ज्ञानवान अरु नीतिवान नर ।
तिनमें कोउ होत, मुक्त-मारगमें तत्पर ॥
सबको देत वहाय, बंक-नयनी यह नारी ।
जाकी बाँकी भौंह, नचत अतिही अनियारी ॥
यह कूँची करम कपाटकी, खोलनको उकत फिरत ।
जिनके न लगत मन इगनमें, ते भवसागरको तरत ॥६२॥

सार—सुन्दरी स्त्रियाँ पुरुषोंकी सद्गतिमें बाधक हैं ।

62. One may be versed in the Shastras, reputedly wise and humble, but there are few who can claim the higher and better life—after death for, there is the oblique brow of women having beautiful eyes moving in it which like a key opens the lock of the gate of hell.



कृशः काणः खंजः श्रवणरहितः पुच्छविकलो,
व्रणी पूयक्लिन्नः कृमिकुलशतैराबृततनुः ।
क्षुधाक्षामो जीर्णः पिठरजकपालार्पितगलः,
शुनीमन्वेति श्वा हतमपि निहन्त्येव मदनः ॥६३॥

काना, लँगड़ा, कनकटा और दुमकटा कुत्ता; जिसके शरीरमें अनेक घाव हो रहे हैं, उनसे पीव और राध झरते हैं, दुर्गन्धका ठिकाना नहीं है, घावोंमें हज़ारों कीड़े पड़े हैं; जो भूखसे व्याकुल हो रहा है और जिसके गलेमें हाँडीका घेरा पड़ा हुआ है, कामान्ध होकर कुतियाके पीछे-पीछे दौड़ता है। हाय! कामदेव बड़ा ही निर्दयी है, जो मरेको भी मारता है ॥६३॥

खुलासा—कुत्ता इतने क्लेशोंसे व्याप्त होने पर भी, शरीरमें दम न होने पर भी और क्षुधासे व्याकुल होने पर भी, कामान्ध होकर, कुतिया के पीछे दौड़ता है। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि, कामदेव बड़ा ही नीच और निर्दयी है; क्योंकि वह मुसीबत से मरते हुओं पर भी, अपने सत्यानाशी बाण छोड़ने में आगा-पीछा नहीं करता। जो कामदेव ऐसे दुर्बलों का यह हाल करता है, वह मावा-मलाई घी-दूध और रबड़ी-पेड़े खाने वाले सण्ड-मुसण्डोंका तो और भी बुरा हाल करता होगा। धूर्त्त साधु-सन्त और पण्डे-महन्त जो नित्य माल-पर-माल उड़ाते हैं, क्या काम-बाणोंसे रक्षित रहनेमें समर्थ हो सकते होंगे? कदापि नहीं।

जो ऐसा कहते हैं, वे महापापी और मिथ्यावादी हैं। वे एक पाप तो जारकर्म का करते हैं और दूसरा मिथ्याभाषण का।

हमारे देशके अनेक तीर्थों में जो कुकर्म होते हैं, उनकी याद आनेसे कलेजा फटने लगता है। हमारी बेवा माँ बहिनों और बेटियोंकी आबरू बचना कठिन हो रहा है। सच तो यह है, दुष्टों ने तीर्थों और मन्दिरोंको इन कुलाङ्गनाओं को फँसाने का जाल मुक़र्रर कर रक्खा है। मोटे-ताज़े वैरागी, सन्त और महन्त मुफ़्त का बढ़िया-से-बढ़िया माल उड़ाते हैं। इसके बाद जब उन्हें काम-देव सताता है, तब भोली-भाली स्त्रियोंको बहकाकर, उन्हें उल्टी पट्टियाँ पढ़ा कर, उनकी लाज लूटते और उनका सतीत्व भङ्ग करते हैं। घोंघावसन्त भोंदू लोग ऐसे सण्ड-मुसण्डोंको सच्चा महात्मा समझते हैं। मनमें इतना भी नहीं समझते कि, हमारे लड्डू पेड़े, रबड़ी मलाई, मोहनभोग और खीर पूरी प्रभृति उड़ाने वालोंको क्या काम न सताता होगा? ये अपनी कामाग्निको किस तरह शान्त करते होंगे? जब पेड़के पत्ते और हवा खाकर जीवन-निर्वाह करनेवालोंको ही कामदेव सताता है, तब क्या इनको छोड़ देता होगा? महात्मा भर्तृहरि के कुत्तेसे लोगोंको शिक्षा ग्रहण कर, सावधान रहना चाहिये और स्त्रियोंको तीर्थों या मन्दिरोंमें जानेसे सर्वथा रोकना चाहिये। ये हम भी नहीं कहते कि, सभी महात्मा और पुजारी कहाने वाले ऐसे कुकर्म करते हैं, पर चूँकि हमने ये दुष्कर्म आँखोंसे देखे हैं, अतः कहना पड़ता है कि, ६६ फ़ी सदी दुष्ट इन कुकर्मोंमें फँसे रहते हैं। क्या आप इन्हें विश्वा-

मित्र और पराशर प्रभृति महर्षियों से भी अधिक इन्द्रिय-विजयी समझते हैं ? स्त्री पुरुष—अग्नि और घी, आग और फूँस अथवा चुम्बक पत्थर और लोहे के समान हैं। घी और आग के पास-पास होते ही घी पिघलने लगता है। फूँस के पास अग्नि के आते ही फूँसमें झट से आग लग जाती है। चुम्बक के सामने लोहा आते ही, चुम्बक लोहेको अपनी ओर खींचता है। ये नेचरल (Natural) या स्वाभाविक मामले हैं, इनमें मनुष्यका वश नहीं। इसी लिये महात्माओं ने कहा है:—

नारी निरखि न देखिये, निरखि न कीजै दौर।
देखत ही तें विष चढ़े, मन आवे कछु और॥
सर्व सोनाकी सुन्दरी, आवे वास-सुवास।
जो जननी हो आपनी, तोहू न बैठे पास॥

स्त्री को कभी घूर कर न देखना चाहिये, उससे आँखें न मिलानी चाहियें। क्योंकि स्त्रीके देखने से ही विष चढ़ता है और फिर मन बिगड़ जाता है।

अगर सुन्दरी सोने की भी हो और उसमें सुगन्ध आ रही हो; यदि वह अपने पैदा करनेवाली महतारी हो, तोभी उसके पास न बैठना चाहिये।

आशा है, हमारे देश के सीधे-सादे लोग इन पंक्तियों पर ध्यान दे, अपने घरोंकी इज़्ज़त-आबरू पर पानी न फिरने देंगे।



छप्पय ।

दुबरो कानो हीन-श्रवण, बिन पूँछ नवाये ।
बूढ़ो बिकल शरीर, वाराविन छार लगाये ।
झरत शीशतें राध रुधिर कृमि, आरत डोलत ॥
क्षुधा-क्षीण अति दीन, गले घट कण्ठ कलोलत ।
यह दशा श्वान पाई तऊ, कुतियनसे उरझत गिरत ।
देखो अनीत या मदनकी, मृतकनको मारत फिरत ॥६३॥

सार—कोई भी प्राणी कामदेवके बाणोंसे अछूता बच नहीं सकता ।

63. A dog thin, one-eyed, lame, deaf, without tail, with sores ful of puss and worms walking over its body, hungry, old, having the round neck of a broken pot round its shoulder, goes after a bitch for intercourse ; Alas Kamdev (Cupid) makes senseless even those who are almost dead. (An animal under the influence of Cupid is devoid of all sense.)

स्त्रीमुद्रां झषकेतनस्य परमां सर्वार्थसम्पत्करीं,
ये मूढ़ाः प्रविहाय यान्ति कुधियो मिथ्याफलान्वेषिणः ।
ते तेनैव निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिताः,
केचित्पञ्चशिखीकृताश्च जटिलाःकापालिकाश्चापरे॥६४

जो मूर्ख सब अर्थ और सम्पदोंकी देने वाली, कामदेवकी मुद्रारूपी स्त्रियोंको त्यागकर, स्वर्ग प्रभृतिकी इच्छासे, घर छोड़-कर निकल गये हैं, उन्हें विरक्त भेषमें न समझना चाहिये। उन्हें कामदेवने अनेक प्रकारके कठोर दण्ड दिये हैं। इसीसे कोई नंगा फिरता है, कोई सिर मुँड़ाए घूमता है, किसीने पञ्चकेशी रखाई है, किसीने जटा रखाई है और कोई हाथमें ठीकरा लेकर भीख माँगता फिरता है ॥६४॥

खुलासा—स्त्री कामदेवकी मुद्रा या मुहर है। जिस तरह राजकी मुद्रा या मुहर का अनादर करनेवाले को राजा अनेक प्रकारके दण्ड देता है; उसी तरह कामदेव भी अपनी स्त्रीरूपी मुद्रा का अनादर करनेवालों को नाना प्रकार के दण्ड देता है। किसीको नङ्गा करके फिराता है, तो किसी से भीख मँगाता है।

यही भाव नीचे की कवितामें और भी स्पष्ट रूपसे झलकता है:—

कुण्डलिया।

कामिनि मुद्रा कामकी, सकल अर्थको देत।
मूरख वाको तजत हैं, झूठे फलके हेत॥
झूठे फलके हेत, तजत तिनही को डाँडे।
गहि-गहि मूँडे मूँड, वसन बिन कर-कर छाँडे॥

भगवा करि-करि भेष, जटिल ह्वै जागत जामिनि ।
भीख माँगके खात, कहत हम छाँड़ी कामिनि ॥६४॥

सार—स्त्री-त्यागियों को कामदेव नाना प्रकारके दण्ड देता है ।

64. Those fools, that throw aside the token of king Kamdeva namely the women who are productive of love and all sorts of fortunes, and run after unknown subjects, are cruelly punished by the king Kamadeva, some by being made to roam about naked, some by being made to have their heads shaved, some by being allowed to keep only five bunches of hair on their head and some by being made to beg with a pot in their hand.

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः ॥
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरम् ।६५

विश्वामित्र, पराशर, मरीचि और शृङ्गी प्रभृति बड़े-बड़े विद्वान् ऋषि-मुनि, जो वायु-जल और पत्ते खाकर गुज़ारा करते थे, स्त्रीके मुखकमलको देखकर मोहित हो गये; तब जो मनुष्य अन्न, घी, दूध, दही प्रभृति नाना प्रकार के व्यञ्जन खाते और पीते हैं, कैसे अपनी इन्द्रियोंको वशमें रख सकते

हैं ? यदि वे अपनी इन्द्रियोंको वश में कर सकें, तो विन्ध्याचल पर्वत भी समुद्रमें तैर सके ॥६५॥

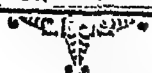
खुलासा—कामदेव बड़ा वली है । उसने जव केवल जल, वायु और पत्ते खानेवाले मुनियों को न छोड़ा; तव वह घी-दूध खाने वालोंको कब छोड़ सकता है ? महामुनि विश्वामित्र जब अपना ज्ञान-ध्यान और विवेक-बुद्धि खोकर स्वर्गीय अप्सरा मेनका की रूपच्छटा पर मुग्ध होगये; महर्षि पराशर नाव में वैठे-वैठे अनजान नाविककी कन्या पर मोहित होगये और हया-शर्मको तिलाञ्जलि देकर, दिन-दहाड़े अपनी माया से दिनमें अन्धकार करके, अपनी कामाग्निकी शान्तिमें मशग़ूल हो गये; जब मरीचि और शृंगी जैसे ऋषि वेश्याओंके हाव-भावों पर मर मिटे; तव साधारण लोग मोहिनियोंकी मोह-पाशसे कैसे वच सकते हैं ? कहा है:—

स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः

इस पृथ्वी पर स्त्रियोंने किस का मन खण्डित या आकृष्ट नहीं किया ? अर्थात् स्त्रियोंने प्रायः सभी का मन हरा,—सभी के दिलों पर अपनी छाप जमाई।

छप्पय ।

कौशिकादि मुनि भये, वात-पय-पर्णाहारी ।
तेहू तिय-मुख-कमल देख, सव बुद्धि विसारी ॥



दधि घृत ओदन दूध, मधुर पकवान मलाई।
नित प्रति सेवन करे, रहे वहु मोद बढ़ाई॥
वहु विधि ज्ञानी नर जग भए, वे नहिं मन कर सके वस।
यदि होवहिं तो गिरिविन्ध्य जनु, उदधि मध्य उतराहि तस॥६५॥

सार—जब विश्वामित्र और पराशर-जैसे मुनि स्त्रियोंके माया-जालमें फँस गये, तब और कौन बच सकता है?

65. Vishwamitra, Parashara and others who lived upon air, water and dry leaves only (they also) became captivated as soon as they saw the charming lotus-like faces of women. Surely then if those who live upon rice mixed with ghee, butter and milk, can be successful in controlling their passions, Vindhya mountains would float on the ocean.

संसारेऽस्मिन्नसारे कुनृपतिभवनद्वारसेवावलम्ब-
व्यासङ्गध्वस्तधैर्यं कथममलधियो मानसं संनिदध्युः।
यद्येताः प्रोद्यदिन्दुद्युतिनिचयभृतो न स्युरम्भोजनेत्राः,
प्रेङ्खत्काञ्चीकलापाःस्तनभरविनमन्मध्यभागास्तरुण्यः
॥६६॥

स्त्री-त्यागकी प्रशंसा।

अगर इस असार संसारमें, पूर्ण चन्द्रमाकी सी कान्ति-वाली, कमलकी-सी आँखों वाली, कमरमें लटकती हुई कर्धनी

पहनने वाली, स्तनोंके भारसे झुकी हुई कमर वाली युवती स्त्रियाँ न होतीं, तो निर्मल-बुद्धि मनुष्य, दुष्ट राजाओंके द्वारकी सेवाओंमें, अनेक कष्ट उठाकर, अधीर-चित्त क्यों होते ?॥६६॥

खुलासा—पुरुषों को अपने पेट के लिये, राजा-महाराजाओं और अमीर-उमराओंकी सेवा करके, उनकी टेढ़ी भृकुटियों से हर समय काँपते रहने और वारम्बार अपमानित होने एवं अन्यान्य प्रकार की अनेकों मुसीबतें उठानेकी क्या ज़रूरत थी ? संसार में पुरुष अपनी प्राणप्यारीके लिये ही नाना प्रकारके कष्ट सहता है; उसीके लिये रणक्षेत्रमें जाकर अपनी गर्दन दे देता है; उसीके लिये तरह-तरहकी ज़िल्लत और बेइज्ज़ती बर्दाश्त करता है। उसी के सुखकी ग़रज़से, वह अपने घोर शत्रुओं तक की ख़ुशामदें करके अपने मानको मलीन करता है। बहुत कहना व्यर्थ है, स्त्री ही पुरुषोंके मानमर्दन और दीनता का कारण है।

छप्पय ।

तौ असार संसार जान, सन्तोष न तजते ।
भीर भारके भरे भूपको, भूल न भजते ॥
बुद्धि-विवेक-निधान, मान अपने नहिं देते ।
हुकुम विरानो राख, दुःख सम्पद नहिं लेते ॥
जो यह नहिं होती शशि-मुखी, मृगनयनी केहरि-कटी ।
छवि जटी छटा निकसी छरी, रस लपटी छूटी लटी ॥६६॥

सार—स्त्रियोंके ही कारणसे पुरुषोंको नाना प्रकार की तकलीफें उठानी पड़ती हैं ।

66. If their would not have been such lotus-eyed young women with face shining like a newly-risen moon, wearing sweet sounding girdle whose waist is bent under the load of breasts, then persons of pure intellect would not have put up with various insults by serving in the courts of wicked kings.

सिद्धाध्यासितकन्दरे हरवृषस्कन्धावगाढद्रुमे
गङ्गाधौतशिलातले हिमवतः स्थाने स्थिते श्रेयसि ॥
कः कुर्वीत शिरःप्रणाममलिनं म्लानं मनस्वी जनो
यद्वित्रस्तकुरङ्गशावनयना न स्युः स्मरास्त्रं स्त्रियः ॥ ६७॥

यदि त्रस्ता मृगशावकनयनी कामास्त्ररूपा कामिनी इस जगत्में न होती; तो सिद्ध—महात्माओंकी गुफायें, महादेवके वाहन—नन्दीश्वर—बैलके कन्धा रगड़नेके वृक्ष और गङ्गाजलसे पवित्र हुई शिलाओंवाले हिमालयके स्थान छोड़कर, कौन मनस्वी—बुद्धिमान् पुरुष लोगोंके सामने जा, उन्हें माथा झुका, प्रणाम करके, अपने मनको मलीन करता ? ॥६७॥

खुलासा—संसारमें, एकमात्र स्त्री के ही कारणसे, पुरुषों को अनेक तरहसे नीचा देखना पड़ता है । अगर स्त्री न होती, तो पुरुष हिमालय पर्वतकी गुफाओंमें अथवा गङ्गा-तट पर किसी

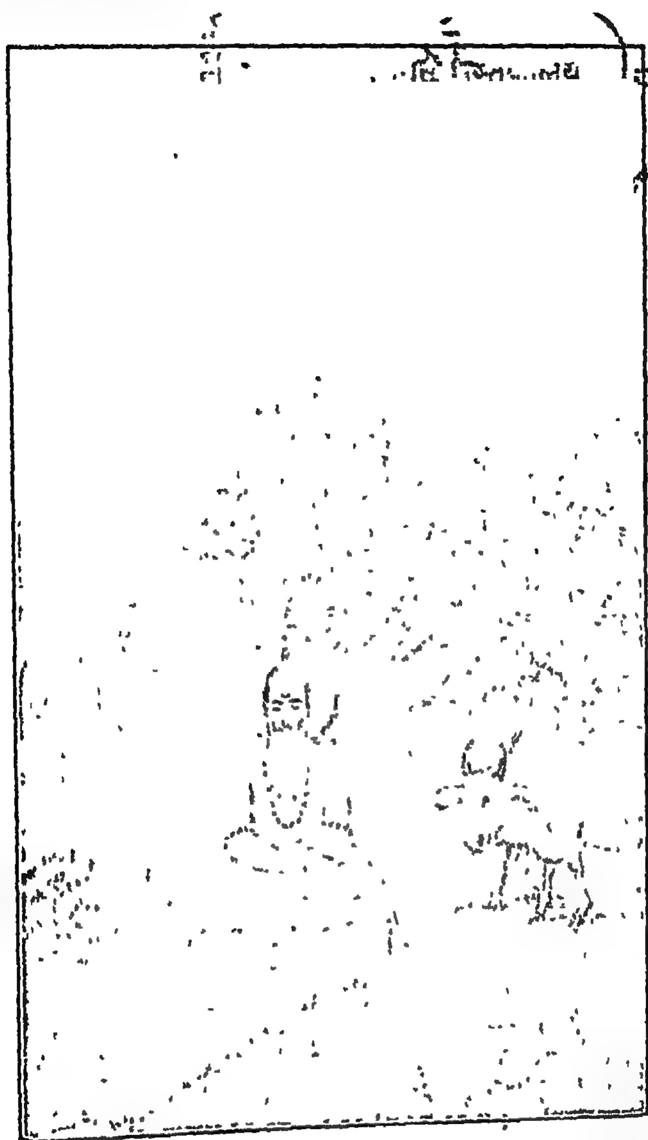
उत्तम वृक्षकी छाया में बैठकर, शिव-शिव करता हुआ, अपने दिन सच्ची सुख-शान्तिसे व्यतीत करता । उसे अपनी मान-प्रतिष्ठा खोकर, जने-जने की ख़ुशामद करनेकी कौनसी आवश्यकता थी ? इसमें ज़रा भी शक़ नहीं कि, संसारमें एकमात्र स्त्री ही के कारण, पुरुष को तरह-तरह की ज़िल्लतें उठानी और जगह-जगह बेइज्ज़ती सहनी पड़ती है।

कुण्डलिया ।

अभय हरिण-शावक-नयन, काम-बाण-सम नार ।
जो घरमें होती नहीं, तो सहजहिं होतौ पार ॥
सहजहिं होतो पार, बैठ गिरगुहा सिद्ध वन ।
जहाँ तरुन सों अंग, खुजात फिरैं हरवाहन ॥
स्वच्छ फटिक हिम-शैल, तले जहँ बहै गङ्गपय ।
निशिदिन धरि हरि-ध्यान, चित्तकूँ राखिय निर्भय ॥६७॥

सार—स्त्रियोंके कारण ही पुरुषोंको जगह-जगह नीचा देखना पड़ता है; नहीं तो बन-पर्वतोंमें किस चीज़का अभाव है ?

67. If there would not have been women who are the instruments of Kamadeva and who have eyes like those of the fearless young deer, then what for high-minded man would have humiliated himself by



यदि जगत् में कामिनी न होती, तो महादेव के वाहन नन्दी के कन्धा रगड़ने के वृक्षों और गंगाजल से पवित्र हुई शिलाओं वाले हिमालय के स्थान छोड़ कर, कौन मनस्वी पुरुष लोगों के सामने जा, उन्हें सिरझुका, अपने मान को मलिन करता ? (पृष्ठ १६०)

bowing his head down before men and women, leaving the blissful region of the Himalayas in whose caves pious men reside and where the bull of God Shiva rubs his shoulder against the trees and where the mountain slabs are washed by the water of the Ganges.

संसार तव निस्तारपदवी न दवीयसी ।
अन्तरा दुस्तरा न स्युर्यदि रे मदिरेक्षणाः ॥६८॥

हे संसार ! यदि तुझमें मदसे मतवाले नेत्रोंवाली दुस्तरा स्त्रियाँ न होतीं, तो तेरे परली पार जाना कुछ कठिन न होता ॥६८॥

खुलासा—मनुष्य इस लोकमें, कर्म-बन्धन या जन्म-मरणकी फाँसीसे पीछा छुड़ानेके लिए आता है । मोक्षकी साधनाके लिये ही, उसे मनुष्य-देहरूपी पारसमणि मिलती है कि, वह नियत अवधि के भीतर, उससे मोक्षरूपी सोना बना ले । पर; यहाँ आने पर, उसका बचपन तो खेल-कूद और पढ़ने-लिखनेमें कट जाता है । यौवनावस्था आने पर वह चञ्चलनयनी, उन्नत-नितम्बिनी, पीनपयोधरा कामिनियों के रूप-जालमें फँस जाता है । इनमें वह ऐसा भूलता है, कि उसकी सारी उम्र बीत जाती है और उसे अपने कर्त्तव्य-कर्मकी याद तक नहीं आती । इतने में ही उसकी अवधि पूरी हो जाती है और उससे पारसमणि रूपी मनुष्य-देह छिन जाती है; यहाँसे वह मोक्षरूपी सोना बनाये बिना

ही, फिर कोरा चला जाता है । तात्पर्य यह कि, कामिनियोंके कारण से मनुष्य इस संसार-सागरसे पार नहीं हो सकता। उसके इस काममें वे बाधा डालती हैं । सच है, संसारमें यदि कामिनी और काञ्चन न होते, तो फिर किसीको भी इस भव-सागर के पार करनेमें कठिनाई न होती । 'रसिक' कवि ने ख़ूब कहा है:—

दोहा ।

जो होती नहिं नार, मदमाती मृगलोचनी ।
जगके परली पार, गमन न दुर्लभ कछुक था ॥

सोरठा ।

जो नहिं होती नार, तो तरिवौ जगमें सुगम ।
यह लाँबी तरवार, मार लेत अधवीचहीं ॥

सार—संसार-सागरसे पार होनेमें, नेत्रोंसे जादू करनेवाली सुन्दरी स्त्रियाँ ही बाधा-स्वरूप हैं ।

68. O world, it would not have been very difficult to cross you if there were not this great obstacle in the form of woman having beautiful eyes.

यौवन-प्रशंसा ।

राजंस्तृष्णाम्बुराशेर्न हि जगति गतः कश्चिदेवावसानं
को वाऽर्थोऽर्थैः प्रभूतैः स्ववपुषि गलिते यौवने सानुरागे।
गच्छामः सद्म यावद्विकसितनयनेन्दीवरालोकिनी-
नामाक्रम्याक्रम्य रूपं झटिति न जरया लुप्यते प्रेयसी-
नाम् ॥६६॥

हे महाराज ! इस तृष्णारूपी समुद्रके पार कोई न जा सका। अतीव प्यारी यौवनावस्थाके चले जाने पर, अधिक धन-सञ्चयसे क्या लाभ होगा ? हम शीघ्र ही अपने घर क्यों न चले जायँ, क्योंकि, कहीं ऐसा न हो कि, विकसित कुमुद और कमल के समान नेत्रोंवाली हमारी प्यारियोंके रूपको वृद्धावस्था घुला-घुलाकर बिगाड़ डाले ॥६६॥

खुलासा—राजन् ! तृष्णा-पिशाचिनी का अन्त नहीं। यह दिन-दिन बढ़ती ही जाती है। हजार होने पर लाख की, लाख होने पर करोड़ की और करोड़ होने पर अरब-खरब की अथवा साम्राज्यकी इच्छा होती है। मनुष्य बूढ़ा हो जाता है, उसके बाल पक जाते हैं, दाँत गिर जाते हैं; पर तृष्णा न बूढ़ी होती है और न उसका कोई अंग क्षीण होता है। वह तो बढ़ती ही जाती है। किसी ने कहा है:—

निःस्वः वष्टि शतं शती दशशतं लक्षं सहस्राधिपो,
लक्षेशः क्षितिपालतां क्षितिपतिश्चक्रेशतां वाञ्छति ।
चक्रेशः पुनरिन्द्रतां सुरपतिर्ब्राह्मंपदं वाञ्छति,
ब्रह्मा शैवपदं शिवो हरिपदं आशावधिं को गतः ? ॥

निर्धन सौ रुपये चाहता है, सौ वाला एक हज़ार चाहता है, और हजारपति लाख रुपये चाहता है, लखपति राजा होना चाहता है, राजा सम्राट् होना चाहता है, सम्राट् इन्द्र होना चाहता है, इन्द्र ब्रह्मा होना चाहता है, ब्रह्मा शिव होना और शिवजी विष्णु होना चाहते हैं। किसकी आकांक्षा का शेष हुआ है? मतलब यह, आज तक कोई भी इस तृष्णा-नदी के पार न जा सका। क्या हम इसके पार पहुँच सकेंगे? हरगिज़ नहीं। तब हम क्यों इस पिशाचिनीके फेर में पड़कर, अपनी जवानी को बर्बाद करें; क्योंकि जवानी एक बार जाकर फिर नहीं आती? महाकवि 'दाग़' ने कहा है:—

रहती है कब बहारे जवानी, तमाम उम्र ।
मानिन्द बूये गुल, इधर आई उधर गई ॥
जो जाकर न आये, वह जवानी देखी ।
जो आकर न जाये, वह बुढ़ापा देखा ॥

जवानी की बहार सारी उम्र कहाँ रहती है? वह तो फूलोंकी खूशबू की तरह इधर आती है और उधर चली जाती है।

जवानी तो जाकर फिर नहीं आती और बुढ़ापा आकर फिर नहीं जाता।

और भी किसी हिन्दी-कवि ने कहा है:—

सदा न फूले तोरई, सदा न सावन होय।
सदा न जोबन थिर रहे, सदा न जीवे कोय॥

अगर तृष्णा के फेर में पड़े रहनेसे, इधर हमारी जवानी चली गई और उधर हमारी प्राणप्यारीकी जवानी चली गई; तो हमारे धन जमा करनेसे क्या लाभ होगा? हमने अपनी आज़ादी इसी लिये खोई है कि, हम धन कमाकर, घरमें जा, अपनी नवयुवती का यौवन-सुख भोगें; पर हमारे एक इसी धुनमें लगे रहने से सब चौपट हो जायगा। इसलिये हमें शीघ्र ही घर जाना चाहिये और जवानी के, प्रातःकालीन दीपक के समान, निस्तेज होने से पहले, अपनी प्राणवल्लभाकी उठती जवानीका आनन्द उपभोग करना चाहिये। क्योंकि यदि हम प्रवासमें रहें और प्यारी हमारे पास न रहे—हम से दूर रहे; तो हमारा धन और हमारी जवानी दोनों ही वृथा हैं। ऐसी जवानी और ऐसी दौलतसे कोई लाभ नहीं। किसी ने कहा है:—

वित्तेन किं? वितरणं यदि नास्ति दीने,
किं सेवया? यदि परोपकृतौ न यत्नः।
किं संगमेन? तनयो यदि नेक्षणीयः,
किं यौवनेन? विरहो यदि वल्लभायाः॥

अगर ग़रीब और मुहताजों को धन न दिया जाय, तो धन के होनेसे क्या लाभ ? वह धन निष्फल है। यदि पराया उपकार न किया जाय, तो सेवा निष्फल है। जिस स्त्री-संगम से पुत्र न पैदा हो, वह स्त्री-संगम वृथा है। यदि प्यारी के साथ जुदाई हो, तो जवानी वृथा है। ऐसी जवानी से क्या फ़ायदा ? सारांश यह है, कि जब स्त्री-पुरुष दोनों ही जवान हों, तभी काम-क्रीड़ाका आनन्द है। बुढ़ापेमें क्या रक्खा है ? स्त्री-भोगका आनन्द जवानीमें ही है; क्योंकि जवानीमें ही बदनमें ताक़त रहती है और जवानीमें ही कामदेवका जोश रहता है। अगर स्त्रीका यौवन उतार पर आजाय, उसके स्तन सिकुड़ जायँ वा थैलेसे लटकने लगें, तब क्या आनन्द है ? उस समय स्त्री उल्टी बुरी लगती है। जो मज़ा है, वह नवीना नारीमें ही है। कहा है:—

नवंवस्त्रं नवच्छत्रं नव्या स्त्री नूतनं गृहम् ।
सर्वत्र नूतनं शस्तं सेवकान्ने पुरातने ॥

सब देशोंमें नया कपड़ा, नया छाता, नयी स्त्री और नया घर—ये अच्छे समझे जाते हैं। केवल नौकर और अन्न ये पुराने अच्छे समझे जाते हैं। कहा है:—

शशी दिवसधूसरो, गलितयौवना कामिनी ।
सरो विगतवारिजं, मुखमनक्षरं स्वाकृतेः ॥

प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनो ।
नृपाङ्गणगतःखलो मनासि सप्तशल्यानि मे ॥

दिनका मलिन चन्द्रमा, क्षीणयौवन कामिनी, बिना कमलों का तालाब, सुन्दर सूरतवाला निरक्षर—मूर्ख, धनका लोभी स्वामी, दरिद्री सज्जन और राजसभामें दुष्ट—ये सात मेरे हृदयमें काँटे की तरह खटकते हैं।

सारांश यह है कि, सब काम अपने-अपने समय पर अच्छे लगते और अपना फल देते हैं। खेती सूख जाने पर बरसनेसे क्या लाभ ? समय पर चूक कर, पीछे पछतानेसे क्या फ़ायदा ? पानी आ जानेपर मेंड बाँधनेसे क्या प्रयोजन ? आग लग जाने पर, कूआँ खोदनेसे क्या मतलब ? नदी आजाने पर बन्धा बाँधने और बुढ़ापा आजाने पर शादी करनेसे क्या लाभ ? नीतिमें लिखा है।

(१)

निर्वाण दीपे किमु तैलदानं
चौरे गते वा किमु सावधानम् ।
वयोगते किं वनिता-विलासः
पयोगते किं खलु सेतुबन्धः ॥

(२)

शीतेऽतीते वसनमशनं बासरान्ते निशान्ते,
क्रीड़ारम्भः कुवलयदृशां यौवनान्ते विवाहः ।

सेतोर्बन्धः पयसि गलिते प्रस्थिते लग्नचिन्ता,
सर्वञ्चैतद्भवति विफलं स्वस्वकाले व्यतीते ॥

दीपक बुझ जाने पर तेल डालनेसे क्या ? चोरके माल ले जाने पर सावधानीसे क्या ? जवानी चली जानेपर बनिता-बिहार से क्या ? जलके चले जाने पर पुल बाँधने से क्या ? ॥१॥

जाड़ा चला जाने पर कपड़े पहननेसे क्या ? साँझ हो जाने पर भोजन करनेसे क्या ? रात बीत जाने पर नीलकमलोंके समान नेत्रोंवाली स्त्रियोंके साथ प्रसङ्ग करनेसे क्या ? जवानी चली जाने पर विवाह करनेसे क्या ? जलके चले जानेपर पुल बाँधनेसे क्या ? प्रस्थान कर देने पर, लग्न-चिन्तासे क्या ? अर्थात् ये सब अपना-अपना समय बीतने पर निष्फल हैं ॥२॥

बुढ़ापेमें चौदह-चौदह और सोलह-सोलह बरसकी उठती जवानीकी कामिनियोंके साथ जो ना-समझ बूढ़े .खुर्रांट विवाह करते हैं; वे इस श्लोकसे शिक्षा ग्रहण करें। क्या सिरसका फूल हीरेमें छेद कर सकता है ? ऐसे अधर्मियोंकी इस लोकमें बदनामी होती और परलोकमें उन्हें भयंकर दण्ड मिलता है। इन की स्त्रियाँ इनके लात मार कर, या तो कहार और रसोईयोंसे आशनाई करतीं अथवा साईस और कोचवानोंके साथ भाग जाती हैं। हाँ, कोई-कोई कलियुगी पतिव्रता, अपने बूढ़े बालम को, बिना जरासा भी कष्ट दिये, सेंत-मेंतमें पुत्ररत्न देकर, उसके कुलका नाम चला देती अथवा वंशको डूबनेसे बचा लेती है।



तुम्हारे गोरे मुख पर जो तिल शोभायमान है, उसे मैं प्रणाम करता हूँ ; क्योंकि मुझे ऐसा जान पड़ता है, मानो चन्द्रमा को बिछाकर शालग्राम सो रहे हों। पृष्ठ २३९

धिक्कार है ! ऐसे विवाह और ऐसी औलादको ? ऐसी वर्णसंकर सन्तानसे वंशका नाम लोप हो जाना कहीं भला।

कुण्डलिया।

नरवर ! तृष्णासिन्धुके, पार न कोई जाय।
कहा अर्थ संचय किये, कालसर्प वय खाय ?॥
कालसर्प वय खाय, नेह अरु प्रेम नसावै।
कहा होय घर गये, तबै कछु हाथ न आवै ?॥
तासों तबलों वेग, भाग चलिये द्वारे घर।
कमलनयन तिय-रूप, जरा जबलों नाहिंनरवर ॥६६॥

सार—कमलनयनी कामिनियोंके भोगने का समय युवावस्था ही है। जो पुरुष धन-तृष्णामें फँस, अपनी और अपनी पत्नी की जवानीका सुख नहीं भोगते, वे बड़े ही मूर्ख हैं। धन भी तो सुख-भोगोंके लिये ही कमाया जाता है; जब सुख-भोग न भोगे, तब धन कमाना वृथा ही हुआ।

69. O Sovereign, no one has been able to cross this ocean of desires; and when this my young age full of affection is lost in itself, then what is the use

of earning much wealth. I should therefore go home before old age takes away the beauty of my beloved lady whose eyes are like blossomed lotuses.

रागस्यागारमेकं नरकशतमहादुःखसम्प्राप्तिहेतु-
र्मोहस्योत्पत्तिबीजं जलधरपटलं ज्ञानताराधिपस्य ।
कन्दर्पस्यैकमित्रं प्रकटितविविधस्पष्टदोषप्रबन्धं,
लोकेऽस्मिन्न ह्यनर्थं निजकुलदहनं यौवनादन्यदस्ति ॥७०

अनुरागके घर, नरकके नाना प्रकारके दुःखोंके हेतु, मोह की उत्पत्तिके बीज, ज्ञानरूपी चन्द्रमाके ढकनेको मेघ-समूह, कामदेवके मुख्य मित्र, नाना दोषोंको स्पष्ट प्रकटानेवाले और अपने कुलको दहन करनेवाले—यौवनके सिवा, इस लोकमें, दूसरा कोई अनर्थ नहीं है ॥७०॥

खुलासा—सारी आफ़तोंका मूल—अनुराग, यौवनावस्थामें ही होता है। इस अवस्थामें ही मनुष्यको प्रेम या इश्क़की बीमारी लगती है। उस्ताद 'ज़ौक़' कहते हैं:—

इश्क़का जोश है जब तक, कि जवानीके हैं दिन ।
यह मर्ज़ करता है शिद्दत, इन्हीं अय्याम में ख़ास ॥

प्रेमरूप व्याधिके उभरनेका खटका जवानीमें ही रहता है। ये दिन ही इस बीमारीके लिये ख़ास हैं।

जब मनुष्य पर इश्क़का भूत सवार हो जाता है; तब वह, ज्ञानी और पण्डित होने पर भी, अज्ञानी और मूर्ख हो जाता है; उसे बुरे-भलेका विचार नहीं रहता। उसकी आँखोंके सामने उसका माशूक़ ही हरदम फिरता रहता है। वह अपने माशूक़ को प्राप्त करनेके लिये नाना प्रकारके उपाय करता है। यदि मनोकामना पूरी नहीं होती, तो वह कुपित होता है। क्रोधसे उसकी रही-सही बुद्धि भी मारी जाती है। बुद्धि के नष्ट होनेसे मनुष्य बिना पतवार की नावकी तरह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। अनेकों नौजवान इस प्रेम या इश्क़ की बीमारीमें गिरफ़्तार होकर जानसे मारे गये। अनेकोंके घर तबाह हो गये और अनेकों करोड़पति खाकपति हो गये। स्पष्ट है कि, अनुराग या मुहब्बत हज़ारों आफ़तोंकी जड़ है। अनुरागी इस जन्ममें स्त्रीका ग़ुलाम होकर रहता है। वह कठपुतलीकी तरह उसे जो नाच नचाती है, वह वही नाच नाचता है। परमात्माको कभी भूल कर भी याद नहीं करता। मौतका ख़याल न रहनेसे, नाना प्रकारके अत्याचार और ज़ुल्म करता है। लेकिन यह अनुराग जवानीमें ही होता है; इसीलिये कविने जवानीकी निन्दा की है। इसमें शक नहीं कि, जवानी अनेक प्रकारके अनर्थोंकी जड़ है। कहा है:—

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ? ॥

जवानी, धनसम्पत्ति, प्रभुता और अज्ञानता,—इनमें से प्रत्येक अनर्थकारी है। जहाँ ये चारों एकत्र हों, वहाँकी तो बात ही न पूछिये।

छप्पय।

इन्द्रिन को हित-धाम, कामको मित्र महावर।
नरक-दुःखको हेतु, मोहको बीज मनोहर॥
ज्ञान-सुधाकर-सारि, सजल सावनको बादर।
नाना विधि बकवाद करन कों, बड़ो बहादुर॥
सब ही अघको है मूल, यह यौवन अङ्कताहि को कवच।
या बिना और को कर सके, सुन्दर मुख पर श्याम कच? ॥७०॥

सार—जवानी अनर्थोंकी जड़ है। अतः जवानीमें मनुष्यको ख़ूब सावधानीसे चलना चाहिये।

70. In this world there is nothing more harmful than young age, which is the seat of affection, the root cause of the miseries of a hundred hells, the very seed for the growth of delusion, the clouds as it were for covering the moon of reasoning, the only friend of Kamdev, the doer of many kinds of vices and the destroyer of its own self.

शृङ्गारद्रुमनीरदे प्रचुरतः क्रीड़ारसस्रोतसि,
प्रद्युम्नप्रियबान्धवे चतुरतामुक्ताफलोदन्वति।

तन्वीनेत्रचकोरपार्वणविधौ सौभाग्यलक्ष्मीनिधौ,
धन्यः कोऽपि न विक्रियां कलयति प्राप्ते नवे यौवने ॥७१

शृंगार रूपी वृक्षोंके सींचनेवाले, क्रीड़ारसको विस्तारसे प्रवाहित करनेवाले, कामदेवके प्यारे मित्र, चातुर्यरूपी मोतियों के समुद्र, कामिनियोंके नेत्ररूपी चकोरोंको पूर्णचन्द्र, सौभाग्य-लक्ष्मीके ख़ज़ाने—यौवनको पाकर, जो विकारों के वशीभूत नहीं होते, वे निश्चय ही भाग्यवान् हैं ॥७१॥

खुलासा—यौवन विषय-वासनाओंको बढ़ानेवाला और भोग-विलास का जबर्दस्त सोता है। यह स्त्रियोंको प्यारा लगनेवाला तथा चतुराई और सुख-सम्पत्तियोंकी खान है। जवानीमें, मनुष्य की भोग-विलास की इच्छाएँ बहुत ही तेज हो जाती हैं; इस-लिए यह बड़ा ही नाजुक समय है। इस अवस्थामें, जो पुरुष अपनी इन्द्रियोंको वशमें रख सकता है, उन्हें कुमार्गमें जानेसे रोक सकता है, वह सचमुच ही भाग्यवान् है। धातुओंके क्षीण होने पर, बुढ़ापा आने पर, तो सभी शान्त हो जाते हैं; पर इस जवानी दीवानीमें ही जो शान्त रहे, स्त्रियोंके जालमें न फँसे, वही प्रशंसा-योग्य है। भीष्म पितामहने अपनी सारी उम्र बिना स्त्रीके ही बिता दी; जीवन-भर ब्रह्मचर्य-व्रत पालन किया। यदि वे चाहते, तो अनेक स्वर्गकी अप्सरायें उनके चरणोंको धो-धोकर पीतीं। पर यदि वे ऐसा करते, तो महाशक्तिशालियोंमें उनकी गणना न होती और संसार उन्हें धर्मधुरीण शूरशिरोमणि न कहता।

छप्पय ।

*यह यौवन धनरूप, सदा सींचत शृंगार तर ।
क्रीड़ा-रस को सोत, चतुरता-रत्न देत कर ॥
नारी-नयन-चकोर, चोप को चन्द विराजत ।
कुसुमायुध को बन्धु, सिन्धु शोभा को भ्राजत ॥
ऐसो यह यौवन पायके, जे नहिं धरत विकार मन ।
ते धरम-धुरन्धर धीर-मणि, शूरशिरोमण सन्तजन ॥७१॥*

सार—जवानीमें जो विकारोंके वशीभूत नहीं होते, वे निश्चय ही प्रशंसापात्र हैं ।

71. He is fortunate who is not beside himself on attaining this young age which is like the raining clouds to the tree of love, the fountain of various enjoyments, the dear friend of Kamdev, the ocean of pearl-like dexterity, the full moon to the partridge-like eye of woman and the store-house of good fortune.

——o——

कामिनी-गृहण-प्रशंसा

**कान्तेत्युत्पललोचनेति विपुलश्रोणीभरेत्युत्सुकः ।
पीनोत्तुंगपयोधरेति सुमुखाम्भोजेति सुभ्रूरिति ॥**

दृष्ट्वा माद्यति मोदतेऽभिरमते प्रस्तौति विद्वानपि
प्रत्यक्षाशुचिपुत्तिकां स्त्रियमहो मोहस्य दुश्चेष्टितम्॥७२

अहो ! मोहकी कैसी विचित्र महिमा है कि, बड़े-बड़े विद्वान् पण्डित भी, प्रत्यक्ष ही अपवित्रताकी पुतली—स्त्रीको देखकर मोहित हो जाते हैं, उसकी स्तुति करते हैं, आनन्दित होते हैं, रमण करते हैं और उत्कण्ठित होकर हे कमलनयनी ! हे विशाल नितम्बोंवाली ! हे विशालाक्षी ! हे कल्याणि ! हे शुभे ! हे पुष्टपयोधरवाली ! हे सुन्दर भौंहोंवाली प्रभृति नाना प्रकारके सम्बोधनोंसे उसे सम्बोधित करते हैं ॥७२॥

खुलासा—स्त्री हर तरह से अपवित्र और गन्दगी का पिटारा है। उसके स्तन मांस के लौंदे हैं, उसका मुँह कफ का आगार है, उसकी जाँघें मूत्र से अपवित्र रहती हैं और उसके मलमूत्र त्यागने के स्थानों में दो अंगुल का भी अन्तर नहीं—ऐसी स्त्री की, साधारण नहीं, बड़े-बड़े विद्वान् और पण्डित ख़ुशामद करते हैं, उसे अच्छे-से-अच्छे नामोंसे सम्बोधन करते हैं, यह क्या मोहकी महिमा नहीं है ? मोह उनकी विद्या-बुद्धि और ज्ञान को नष्ट कर देता है, इसीसे वे अपवित्रता की पुतलीको संसारके सभी पदार्थों से अधिक चाहते और प्यार करते हैं। निश्चय ही, मोहने जगत् को अन्धा कर रक्खा है। देखिये, विद्वानों ने स्त्रियों की कैसी तारीफें की हैं:—

स्त्रियों की तारीफ़ों के नमूने ।

—○:※:○—

संस्कृत कवियों की उक्तियाँ

सुविरलमौक्तिकतारे धवलांशुकचन्द्रिकाचमत्कारे ।
वदनपरिपूर्णचन्द्रे सुन्दरि राकाऽसिनात्र सन्देहः ॥

हे सुन्दरि ! तेरे हार के मोती तारों की तरह खिल रहे हैं। तेरे सफ़ेद वस्त्र चाँदनी का चमत्कार दिखा रहे हैं और तेरा मुख पूर्णमासीके चन्द्रमाकी तरह शोभायमान् है; अतः तू निश्चय ही पौर्णिमा है।

श्यामलेनांकितं बाले भाले केनापि लक्ष्मणा ।
मुखं तवांतरासुप्तभृङ्गफुल्लांबुजायते ॥ १ ॥

हे बाले ! तेरी पेशानी या मस्तक में जो एक काला-काला चिह्नसा है, उससे तेरा चेहरा ऐसा मालूम होता है, गोया खिले हुए कमल के बीचमें भौंरा सो रहा हो।

स्मयमाननानां तत्र तां विलोक्य विलासिनीम् ।
चकोराश्चंचरीकाश्च मुदं परतरां ययुः ॥ २ ॥

उस मन्द-मन्द मुस्कराने वाली नायिका को देखकर चकोरों और भौंरोंको ख़ूब आनन्द आया; यानी चकोर उसे चन्द्रमा समझ कर ख़ुश हुए और भौंरे कमल समझ कर।

दिवानिशं वारिणि कण्ठदघ्ने दिवाकराराधनमाचरन्ती ।
वक्षोजतायै किमु पक्ष्मलाक्ष्यास्तपश्चरत्यंबुजपंक्तिरषा ॥ ३ ॥

जलमें कण्ठ तक रहकर, दिन-रात सूर्यकी आराधना करने वाली, यह कमलोंकी क़तार क्या सुनयनी नायिकाके कुच बननेके लिये तप कर रही है ?

आननं मृगशावाक्ष्या वीक्ष्य लोलालकावृतम् ।
भ्रमद्भ्रमरसम्भारं स्मरामि सरोरूहम् ॥ ४ ॥

हिरनके बच्चेकी सी आँखोंवाली सुन्दरीके मुँहको चञ्चल अलकोंसे ढका हुआ देखनेसे मुझे ऐसा मालूम होता है, गोया कमलके ऊपर भौंरों का झुण्ड घूम रहा है ।

जगदन्तरममृतमयैरंशुभिरापूरयन्नितराम् ।
उदयति वदनव्याजात् किमु राजा हरिणशावनयनायाः ॥५॥

मृगशावकनयनीके चेहरेके बहानेसे संसार को अपनी अमृत-मय किरणोंसे भर देनेके लिये, क्या चन्द्रमा उदय हुआ है ?

तिमिर शारद चन्दिरचन्द्रिकाः कमलविद्रुम चम्पककोरकाः ।
यदि मिलकति तदापि तदाननं खलु तदा कलया तुलयामहे ॥६॥

घोर अन्धकार, शरद्का चन्द्रमा, चाँदनी, कमल, मूँगा और चम्पाकली,—ये सब अगर किसी समय एकही पदार्थमें इकट्ठे पाए जायें, तो मैं उस नायिकाके चेहरेके एक अंशकी तुलना कर सकूँ ; यानी घोर अन्धकारसे उसके काले-स्याह बालोंकी, शरद्

के चाँद्से उसके मुखकी, चाँदनीसे लावण्यकी, कमलसे नेत्रोंकी, प्रबालसे होठोंकी और चम्पाकी कलियोंसे दाँतोंकी तुलना करूँ।

उर्दू कवियोंकी मनोहर उक्तियाँ।

कोई स्त्रियोंके दाँतोंकी तारीफ़ करता है, तो कोई उसके होठोंकी प्रशंसामें कविता रचता है, और कोई उसके गालके तिल पर ही अपनी शायरीका खातमा करता है। उर्दू-कवियोंकी तारीफ़ोंके नमूने भी देखिये:—

दाँत यूँ चमके, हँसीमें रात उस माहपाराके।
मैंने जाना, माहतावाँ पारा-पारा होगया ॥१॥
अश्क़के क़तरे, नहीं देखते हैं उस रुख़ पर।
सितारे धूपमें, हम दोपहरको देखते हैं ॥२॥
बहरमें मोती पानी पानी, लाल का ख़ूँ पत्थर में।
देखो, लबो दन्दाँसे, तुम्हारे लालो गुहरके झगड़े हैं ॥३॥
न क्यों तेरे दाँतोंसे, झूठा हो मोती।
कि दावा किया था, सफ़ाईका झूठा ॥४॥

वह चन्द्रमुखी रातको जो हँसी, तो उसकी दाँतों की क़तार की चमकसे मुझे ऐसा मालूम हुआ; गोया चन्द्रमाके टुकड़े-टुकड़े हो गए ॥१॥

माहतावाँ = चाँद। माहपारा = चन्द्रवदनी। पारा पारा हो गया = टुकड़े-टुकड़े हो गया। अश्क़ = आँसू। रुख़ = गाल। क़तरा = बूँद। बहर = समुद्र। लब = होठ।

उसके गाल पर पसीनेकी बूँदें नहीं हैं, वे तो दोपहरके समय धूपमें तारे दिखाई दे रहे हैं ॥२॥

तेरे दाँतों की आभाको देखकर, समुद्रमें मोती शर्मके मारे पानी-पानी हो रहा है और तेरे ओठों की सुर्खीको देखकर लाल का दिल पहाड़ की गुफ़ामें स्पर्द्धाके मारे ख़ून हो गया है । देख तो सही, तेरे दाँत और होठोंके कारण, मोती और लालों की कैसी बुरी दशा हो रही है ॥३॥

मोतीने तेरे दाँतोंसे सफ़ाईमें बढ़ जानेका दावा किया था; मगर वह तेरे दाँतोंके मुक़ाबलेमें झूठा निकला ॥४॥

एक हिन्दी कवि की भी काव्यकला-कुशलताका नमूना देखिए:—

गोरे मुख पर तिल लसत, ताहि करूँ प्रणाम ।
मानो चन्द्र बिछाय कर, पौढ़े शालग्राम ॥

गोरे मुँह पर जो तिल शोभायमान है, उसे मैं प्रणाम करता हूँ; क्योंकि मुझे ऐसा जान पड़ता है, मानो चन्द्रमाको बिछाकर शालग्राम सो रहे हों ।

मियाँ 'नज़ीर' अकबराबादीकी तारीफ़ोंके भी चन्द नमूने देखिये:—

छोटासा ख़ाल, उस रुख़ ख़ुरशीद ताब में ।
ज़र्रा समा गया है, दिले आफ़ताब में ॥

उस सूर्यकी भाँति चमकनेवाले मुख पर छोटासा तिल देखने में ऐसा मालूम होता है, जैसे सूर्यमें एक छोटा सा कण।

सहर इस झमकसे आया, नज़र एक निगार राना।
कि ख़ुद उसके हुस्न रुख़को, लगा तकने ज़र्रा आसा॥

सवेरे ही मुझे एक सुन्दर प्रतिमा दिखाई दी कि, मैं सूर्य-कण की भाँति उसके मुखारविन्द की शोभाको देखने लगा; यानी सूर्य उसके सामने कण की तरह था।

वुतोंकी मजलिसमें शबको माहरू,
जो और टुक भी कयाम करता।
कनिश्त वीराँ सनमको बन्दा,
बरहमनोंको ग़ुलाम करता॥

अगर वह चन्द्रमुखी मूर्त्तियों की सभामें रातको ज़रा देर और ठहर जाती, तो मन्दिर उजड़ जाते, मूर्त्तियाँ उसकी ग़ुलाम हो जातीं और ब्राह्मण—पुजारी उसके सेवक हो जाते। उसके सौन्दर्य पर देवता और मनुष्य दोनों मोहित हो जाते हैं।

सफ़ाई उसकी झलकती है, गोरे सीने में।
चमक कहाँ है, य अलमासके नगीनेमें॥

उसके गोरे सीनेमें जो सफ़ाई और चमक-दमक झलक रही है, अलमासके नगीनेमें वह चमक कहाँ है?

नहीं हवामें य बू नाफ़ए ख़ुतनकी सी ।
लपट है य तो, किसी जुल्फे पुरशिकनकीसी ॥

हवामें जो महक आ रही है, यह ख़ुतन देशकी कस्तूरीकी नहीं है । मुझे तो यह उसकी घूँघर वाली लटोंकी महक-सी मालूम होती है ।

महाकवि 'ग़ालिब' के भी चन्द नमूने देखियेः—

जहाँ तेरा नक़शे क़दम देखते हैं ।
ख़याबाँ-ख़याबाँ इरम देखते हैं ॥

जहाँ हमें तेरा चरण-चिह्न दिखाई देता है, उसी स्थानको हम स्वर्गसे बढ़कर समझते हैं ।

महाकवि 'दाग़'का भी एक नमूना लीजियेः—

बुझ गया गुलरूके आगे, शमा और गुलका चिराग़ ।
बुलबुलोंमें शोर, परवानोंमें मातम हो गया ॥

उसके सुन्दर मुखके आगे दीपक और फूल दोनोंकी प्रभा फीकी पड़ गई । तभी तो बुलबुलें शोर कर रही हैं और परवाने (पतङ्ग) शोक मना रहे हैं ।

कहाँ तक लिखें, विद्वानोंने स्त्रियोंकी तारीफ़ में पोथे-के-पोथे लिख डाले हैं ।

उपदेशक की सलाह ।

अगर कोई ज्ञानी पुरुष इन स्त्री-दासोंको नसीहत देता है, उनको स्त्रियोंकी प्रीतिका नफ़ा-नुक़सान समझता है, तो ये

चिढ़ते और उसे खोटी-खरी सुनाते हैं। अगर कोई कहता है—भैया! यह राह—प्रेमकी राह—बड़ी ख़राब है। इसमें बड़ी तकलीफें हैं। महाकवि 'दाग़'ने कहा है:—

बुरी है ऐ दाग़! राहे उल्फ़त।
ख़ुदा न ले जाय ऐसे रास्ते।
जो अपनी तुम ख़ैर चाहते हो।
तो भूलकर दिल्लगी न करना।

ऐ दाग़! प्रेमकी राह बुरी है। भगवान् इस राहसे किसी को न ले जाय। जो तुम अपना भला चाहते हो, तो भूलकर भी इस राह पर क़दम न रखना।

उस्ताद 'जौक़' ने भी कहा है:—

मालूम जो होता अञ्जामे मुहब्बत।
लेते न कभी भूलके हम नामे मुहब्बत॥

अगर मुझे प्रेमका नतीजा मालूम होता, तो मैं कभी भूलके भी प्रेमका नाम न लेता।

भाई! प्रेमका नाम लेना सहज है, पर प्रेम करना कठिन है। भाँग खाना सहज है, पर उसकी लहरें सहना मुश्किल है। इस राहमें मजनूँ और फ़रहाद की जो दुर्दशा हुई, वह क्या तुम्हें नहीं मालूम? इसमें जान तकके लाले पड़ जाते हैं। इन बातोंको सुन कर स्त्री-दास फ़रमाते हैं:—

स्त्री-हास्यका जवाब ।

मर गये तो मर गये, हम इश्क़में, नासह को क्या ।
मौत आनेके लिये है, जान जाने के लिये ।
जिसने दिल खोया, उसी को कुछ मिला ।
फ़ायदा देखा, इसी नुक़सान में ॥

हम इश्क़में मर गये तो मर गये, उपदेशक महाशयकी क्या हानि ? मौत आनेको है और जान जानेको है। जिसने किसीको दिल दिया, उसे ही कुछ मिला। हमने तो इसी हानिमें लाभ देखा।

उपदेशकजी! प्रेममय जीवन ही जीवन है। जिसमें प्रेम नहीं, उसका जीवन सारशून्य—थोथा है। गुलाबमें काँटे हैं, पर क्या काँटोंके भयसे लोग गुलाबको छोड़ सकते हैं ? चन्दनके वृक्षोंपर सर्प लिपटे रहते हैं, तो क्या सर्पोंके भयसे कोई चन्दनको ग्रहण नहीं करता ? मधुके छत्ते पर विषैली मधु-मक्खियाँ छाई रहती हैं, तो क्या कोई मधुका छत्ता तोड़ कर मधु नहीं लेता ? हज़ार दुःख-कष्ट झेलने पड़ें, मैं झेलूँगा; क्योंकि मुझ अपनी माशूक़ा-बिना नहीं सर सकता। किसीने कहा है:—

है तेरी राहे मुहब्बत में, हज़ारों फ़ितने ।
देख मुझको, बजुज़ इस राहके चलता ही नहीं ॥

देखिये मिस्टर शिलर महोदय कहते हैं—"I have experienced earthly happiness; I have lived and I have loved." मैंने पार्थिव जीवनका अनुभव किया है। मैंने जीवनोपयोग किया है और प्रेम भी किया है।

होल्टी महोदय कहते हैं—"Love converts the cottage into a palace of gold." प्रेम झोंपड़ेको सुवर्णमय महलमें परिणत कर देता है।

कोरनर महोदय कहते हैं—"Only since I loved is life lovely; only since I loved knew I that I loved." जबसे मैंने प्रेम किया, तभीसे मैंने अनुभव किया कि, मैं जीवित हूँ।

कहिये पाठक! विद्वानोंके ये जवाब सुनकर आपका दिल भरा या नहीं? जब विद्वानोंका यह हाल है, तब मूर्खोंका क्या कहना? उनको दोषी ठहराना अन्याय है। जब शास्त्र-ज्ञाता पण्डित ही इन मोहिनियोंके जालोंमें फँस जाते हैं, तब और इनसे कौन बच सकता है? कहा है:—

मनुष्यं दुर्लभं प्राप्य, वेदशास्त्राण्यधीत्य च।
बध्यंते यदि संसारे, को विमुच्यते मानवः? ॥

दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर और वेदशास्त्र पढ़कर भी यदि मनुष्य संसार-बन्धनमें बँध जावे, तो संसार-बन्धनसे कौन छूटेगा?

और भी—

पाठकाः पाठितारश्च ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः ।
सर्वेव्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् सपण्डितः ॥

जो शास्त्र पढ़ने और पढ़ानेवाले केवल शास्त्रोंको विचारते हैं, पर उन पर अमल नहीं करते, वे मूर्ख और व्यसनी हैं। जो उनको पढ़ कर स्त्री-पुत्र और धन-दौलत प्रभृतिसे विरक्त होते हैं, वही पण्डित हैं।

स्त्रियाँ जगत् की झूँठन, नरक-कूप, महागन्दी और अपवित्र हैं। इनके भीतर राध, लोहू, पीप और खखार प्रभृतिके पनारे बह रहे हैं। यह गुम्बद की क़लई की तरह ऊपर हीसे सोहनी मालूम होती हैं। देखिये, 'गिरिधर' कविराय क्या कहते हैं:—

कुण्डलिया ।

नारी श्रोणी नरककी, है प्रसिद्ध नहीं लुकी ।
यथा समान परकीया, तथा जान ले स्वकी ॥
तथा जान ले स्वकी, तिनको एकै रूपम् ।
अस्थि माँस नख चर्म, रोम मल मूत्रहि कूपम् ॥
कह "गिरिधर" कविराय, पुरुप इन कियो अजारी ।
ऐसा दुष्ट न और, जगत्में जैसी नारी ॥

कुण्डलिया ।

कान्ता उत्पल-लोचना, प्रिया कृशोदरि वाल ।
घटस्तनी पङ्कजमुखी, कामिनि-अधर प्रवाल ॥
कामिनि-अधर प्रवाल, सुभ्रु कहि-कहिके बोलें ।
आनँद अधिक उछाह, मत्त वन पण्डित डोलें ॥
अशुचि-पूतरी नारि, ताहि मन जाने शान्ता ।
महा नरककी खान, मोह-वस माने कान्ता ॥

अपनी और पराई, रूपवती और कुरूपा सभी नारियाँ मलमूत्रकी खान और नरकद्वार की कुन्जी हैं; पर मोहान्ध होनेसे पण्डितों और विचारवानोंको भी यह असली बात समझ नहीं पड़ती। इसीसे वे इनकी प्रशंसाके पुल बाँधते हैं ।

72. How wonderful is the action of delusion because people at the sight of the woman who is impurity personified eagerly describe her thus —"How beautiful is she", "she is lotus-eyed', "her hips are very big in size", "her breasts are high and full-grown", "her lotus-like face is very handsome and her brows are very fascinating" at her sight they are charmed, become infatuated, constantly remember her and praise her.

स्मृता भवति तापाय, दृष्टा चोन्मादवर्द्धिनी।
स्पृष्टा भवति मोहाय, सा नाम दयिता कथम् ॥७३॥

जो स्त्री स्मरणमात्र करनेसे सन्ताप करती है, देखते ही उन्माद बढ़ाती है और छूते ही मोह उत्पन्न करती है, उसे न जाने क्यों प्राणप्यारी कहते हैं ? ॥७३॥

खुलासा—जिसके खाली याद आनेसे ही मनमें वेदना-सी होने लगती है, जिसके देखनेसे मनुष्य मतवाला और पागल-सा हो जाता है और जिसके छूनेसे ही विवेक और ज्ञानका नाश होकर, मोहकी बढ़ती होती है, ऐसी क़दम-क़दम पर दुःख देने-वाली स्त्रीको लोग प्यारी, प्राणप्यारी, प्रिया, कल्याणी, प्राणा-धिका प्रभृति क्यों कहते हैं, यह बात समझमें नहीं आती ?

वास्तवमें स्त्री दुःख और आपदाओंकी खान है, पर लोगोंको यह बात मालूम नहीं होती। वजह यह है कि, हिप्नोटाइज़ करने वालोंकी तरह, स्त्री नज़र-से-नज़र मिलते ही, अपनी जादूभरी आँखोंसे, मदिरा की तरह, मोह पैदा कर देती है। उस मोहसे मनुष्यका ज्ञान नष्ट हो जाता है। ज्ञान नष्ट हो जानेसे उसे कुछ-का-कुछ दीखने लगता है। जिस तरह मोहान्ध पुरुष अभक्ष्यको भक्ष्य, अकार्यको कार्य और दुर्गमको सुगम समझने लगता है; उसी तरह, साक्षात् विष होने पर भी, मोहान्धको स्त्री विष-सी न दीखकर अमृत-सी दीखती है। अमृत-सी दीखनेकी वजहसे ही कामान्ध पुरुष उसे "प्राणप्यारी" कहते हैं।

दोहा।

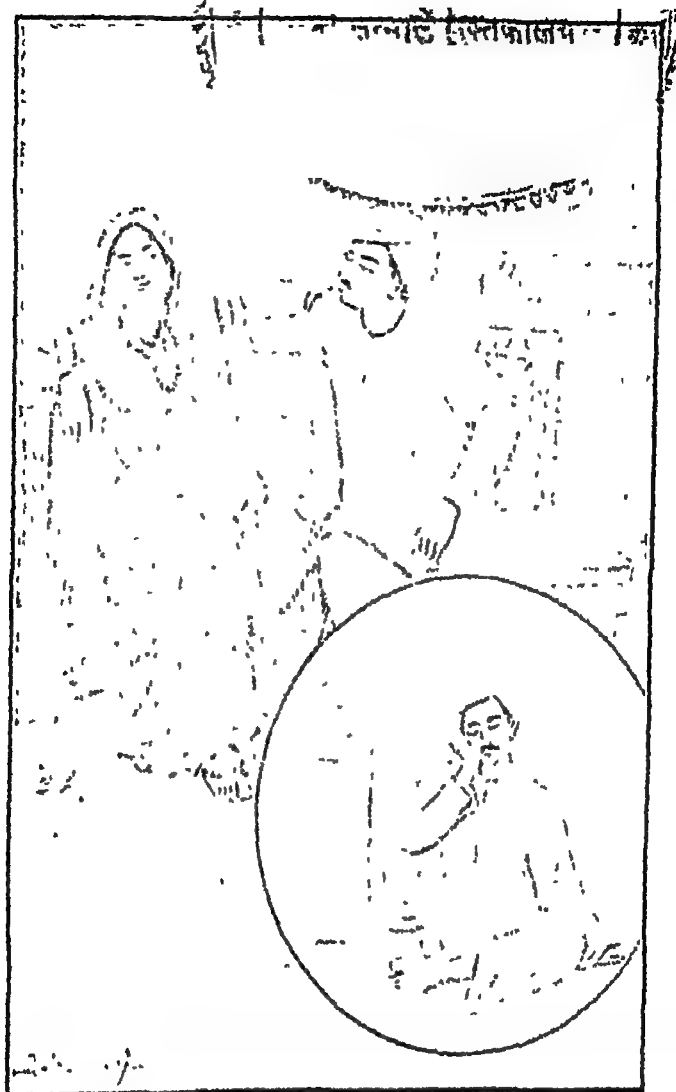
सुधि आये सुधि-बुधि हरत, दरसन करत अचेत।
परसत मन मोहित करत, यह प्यारी किहि हेत? ॥७३॥

73. How can we call a woman "beloved" whose recollection even gives pain, whose very sight increases intoxication of mind and whose touch creates a great sensation in us.

तावदेवामृतमयी यावल्लोचनगोचरा।
चक्षुः पथादपगता विषादप्यतिरिच्यते ॥७४॥

स्त्री जब तक आँखोंके सामने रहती है, तब तक अमृत-सी मालूम होती है; किन्तु आँखोंकी ओट होते ही, विषसे भी अधिक दुःखदायिनी हो जाती है ॥७४॥

खुलासा—स्त्री पुरुषके पास होनेसे निश्चय ही अमृत-सी मालूम होती है; क्योंकि वह अपने हाव-भाव, कटाक्ष और मधुर वचन तथा सेवा प्रभृतिसे पतिके चित्तको हाथमें लिये रहती है; पर अलग होते ही मनमें भारी विरह-वेदना करती है। वियोग-विकल पुरुषका खाना-पीना और नियमित समय पर सोना प्रभृति छूट जाता और साथ ही स्वास्थ्य तक नष्ट हो जाता है। स्त्रीका विरह पुरुषके शरीर पर जहरका काम करता है। उसके मनमें घोर सन्ताप होता है। इसीसे कहा है कि, स्त्री आँखोंके सामनेसे हटते ही विषवत् हो जाती है।



स्त्री जब तक आँखों के सामने रहती है, अमृत सी मालूम होती है ; आँखों की ओट होते ही विष से भी अधिक दुखदायिनी हो जाती है। इस चित्र में, ऊपर पुरुष स्त्री के सामने बैठा हुआ मुख-सुधा पान कर रहा है ; किन्तु नीचे जुदाई से दुखी है यही भाव दिखाया है। [पृष्ठ १८८]

ऐसी ही बात महाकवि कालिदासने "शृंगार-तिलक" में कही है:—

अपूर्वो दृश्यते वह्निः, कामिन्याः स्तनमण्डले ।
दूरतो दहते गात्रं, हृदि लग्नस्तु शीतलः ॥

कामिनीके स्तनमण्डलोंमें अपूर्व अग्नि है, जो दूरसे तो शरीर को जलाती है और हृदयसे लगाने पर शीतल हो जाती है।

मतलब यह है कि, स्त्री स्मरण करनेसे सन्ताप करती, देखनेसे चित्तको हर लेती और मनुष्य को अन्धा बना देती, छूनेसे बल नाश करती, सम्भोग करनेसे वीर्यका नाश करती और नेत्रोंके सामनेसे हटने पर विरहाग्निमें जलाती है। स्त्री से किसी तरह भी पुरुषको सुख नहीं। स्मरण करनेमें सुख, न देखनेमें सुख; छूनेमें सुख, न भोगनेमें सुख; पास रहनेमें सुख, न अलग होनेमें सुख। फिर भी लोग स्त्री पर जान देते हैं, यह क्या कम आश्चर्यकी बात है ?

वियोगियोंके सम्बन्धमें उर्दू-कवियोंकी उक्तियाँ ।

प्राणप्यारी स्त्री अथवा आशनाकी जुदाईमें पुरुष पागल-सा हो जाता है। उसके शरीरमें ख़ून और मांसका नाम नहीं रहता—हाड़ोंका कङ्काल रह जाता है। जिन्दगी भार मालूम होती है। विरही पुरुष हर क्षण मौतकी याद करता है; पर मौत भी उस विपत्तिके समयमें, उससे वैर-सा कर लेती है। यहाँ

इम, अपने मनचले पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ, उर्दू-कवियोंकी चन्द कवितायें देते हैं। पाठक देखें कि, विरही पुरुषोंकी क्या हालत होती है:—

वह मैं, कि मुझे आलमे वालाकी ख़बर थी।
ऐ बेख़बरी! ख़ाक नहीं अपनी ख़बर आज॥

एक दिन था कि, मुझे पृथ्वी ही नहीं—स्वर्ग तककी बात मालूम थीं; पर आज मुझे अपनी भी ख़बर नहीं कि हूँ या नहीं हूँ। बेख़बरी! तेरा भला हो। प्यारीकी जुदाई की वजहसे अजब बेख़बरी—बेहोशी छाई हुई है।

बेकसी सदमये हिजराँकी मुझे ताब नहीं।
काश दुश्मन ही चले आयें जो अहबाब नहीं॥

एक तो विरहका दुःख और उस पर विजनता; बताइये, किस तरह कोई दुःख उठाये। मैंने माना कि, मेरे मित्र नहीं हैं, जो आकर मुझे धीरज दें; पर शत्रु तो हैं, वही चले आवें; जिससे विजनता तो किसी तरह कम हो।

सब्र आना तो मुहब्बतमें; बहुत मुश्किल है।
मौत भी तो नहीं इसको, वह काफ़िर दिल है॥

आलमेवाला = स्वर्ग। बेकसी = मजबूरी। सदमये = तकलीफ़। हिजराँ = वियोग। काश = ख़ुदा करे। अहबाब = मित्र।

प्रेममें धीरज आना तो बहुत कठिन है। इस काफ़िर दिलको मौत भी नहीं आती! यह प्रेमकी आगमें तप कर ऐसा कठोर हो जाता है कि, मौत भी इसे शान्ति नहीं दे सकती। बेचारे धैर्य्यकी तो बात ही क्या?

कौन ग़मख्वार इलाही शबेग़म होता है।
अब तो पहलूमें मेरे दर्द भी कम होता है॥

दुःखकी रातमें कोई किसीका साथी नहीं होता। मुझे आज अत्यन्त दुःख है। शायद, इसीलिये, हज़रते दर्द भी मेरे दिलसे आज खिसक गये हैं। उनके होनेसे तबियत बहलती रहती थी। (शायराना नाज़ुक खयालीका अन्त हो गया)।

'अमीर' महोदय कहते हैं—

पुतलियाँ तक भी तो फिर जाती हैं, देखो दम निज़ा।
वक़्त पड़ता है, तो सब आँख चुरा जाते हैं॥

जब बुरा समय आता है, तब पुतलियाँ तक फिर जाती हैं। अपने-बेग़ाने सब आँख चुरा जाते हैं; कोई काम नहीं आता।

कोई और कवि कहता है:—

होता नहीं है, कोई बुरे वक्तमें शरीक।
पत्ते भी भागते हैं, ख़िज़ाँमें शजरसे दूर॥

ग़मख्वार = ग़म खाने वाला; दोस्त। शब = रात। शबेग़म = रञ्जकी रात। ख़िज़ाँ = पतझड़। शजर = वृक्ष।

बुरे समयमें कोई साथी नहीं होता; पतझड़में पत्ते भी वृक्षको छोड़ भागते हैं।

वियोगी कहता है, कि मेरा यार मेरे पास नहीं। उसकी जुदाईकी मुसीबतका पहाड़ मुझ पर फट पड़ा है। ऐसे वक्तमें मौत आकर मेरे दुःखोंका अन्त कर दे तो भला हो; पर हाय! वह भी ऐसे कठिन समयमें, बुलानेसे भी, नहीं आती!

एक विरही कहता है:—

मैं जाग रहा हूँ हिज्रकी शब।
पर मेरे नसीब सो रहे हैं॥

इस वियोगकी रातमें मैं जाग रहा हूँ, पर मेरे नसीब सो रहे हैं; यानी मेरा यार मेरे पास नहीं आता।

हिज्रकी यह रात, कैसी रात है!
एक मैं हूँ या ख़ुदा की ज़ात है॥

वियोग—जुदाईकी यह रात कैसी रात है कि, एक मैं हूँ या मेरा ख़ुदा है; दूसरा कोई नहीं।

तारे ही गिनके काटते, रात फिराककी मगर।
निकला सितारह भी कहीं, कोई तो ख़ाल-ख़ालसा॥

वियोगकी रातको हम तारे गिन-गिन कर ही काट देते, पर हमारा ही दुर्भाग्य तो देखिये कि, उस रातको तारे भी निकले तो बहुत ही कम निकले।

हिज्र = वियोग। ख़ाल-ख़ालसा = दूरी पर; बहुत कम।

आशिक़को ज़रा-सी जुदाई भी कैसी अखरती है, उसका भी नमूना देखिये:—

शबे वस्ल खिली चाँदनी।
वह घबराके बोले सहर हो गई॥

मिलनकी रातको चाँदनी ऐसी खिली कि, दिन-सा मालूम होने लगा। वह घबरा कर बोले—"हाय! सवेरा हो गया, अब जुदाई के सदमे उठाने होंगे।

दी मुअज्ज़नने शबे-वस्ल, अज़ाँ पिछली रात।
हाय कम्बख़्तको, किस वक़्त ख़ुदा याद आया॥

मिलनकी रातको, तड़का होनेसे कुछ पहले, मुल्लाने अज़ाँ दी, तो वह घबराके बोले—"हाय! कम्बख़्तको किस वक्त ख़ुदा याद आया। अब हम अलग-अलग हो जायँगे!"

किसी विरहीसे किसीने उसकी मिज़ाज-पुर्सी की—कुशल-प्रश्न किया; तो आप कहने लगे:—

न पूछो, कि दिल शाद है या हज़ीं है।
ख़बर भी नहीं, कि है या नहीं है॥

शबेवस्ल=मुलाक़ातकी रात। सहर=सवेरा। मुअज्ज़न=मुल्ला जो मसजिदमें चार घड़ी रात रहे अज़ाँ देता है। उस समय दीनदार मुसल्मान हाथ मुँह धोकर मसजिदमें जा नमाज़ पढ़ते हैं। अज़ाँ=बाँग। शाद=ख़ुश। हज़ीं—रञ्जीदा।

क्या पूछते हो हमारा दिल .खुश है या नाख़ुश ? हमें तो यह भी खबर नहीं कि, वह है भी या नहीं।

विरहकी रातका वर्णन उस्ताद 'ज़ौक़'ने .खूब किया है। उसका ज़रासा नमूना हम देते हैं; जिन्हें सबका आनन्द लेना हो, वे हरिदास एण्ड कम्पनी, मथुरा, से "उस्ताद ज़ौक़" मँगा देखें।

कहूँ क्या 'ज़ौक़' ! अहवाले शबे हिज्र ।
कि थी एक-एक घड़ी, सौ-सौ महीने ॥१॥
कहा जी ने, मुझे यह हिज्र की रात ।
यक़ीं है, सुबह तक देगी न जीने ॥२॥

ऐ ज़ौक़ ! वियोग—जुदाईकी रातका हाल क्या कहूँ ? एक-एक घड़ी सौ-सौ महीनेसी मालूम होती थी।

दिलने कहा कि, यह वियोग की रात है। निश्चय है, कि यह सबेरे तक ज़िन्दा न रहने देगी।

महाकवि 'नज़ीर' की शायरीकी बानगी भी देख लीजिये—

किया जो यारने हमसे, पयाम रुख़सतका ।
तो दम निकल गया, सुनते ही नाम रुख़सतका ॥

यारने जो हमसे विदाई की बात छेड़ी, तो विदाईका नाम सुनते ही हमारा दम निकल गया।

शबे हिज्र = वियोगकी रात। पयाम = पैग़ाम। रुख़सत = विदाई, छुट्टी।

अब ज़रा विरहीकी कमज़ोरीके नमूने भी मुलाहिज़ा फ़रमाइये:—

मुझ ज़ुल्फ़के मारेको, ज़ञ्जीर मत पिन्हाओ।
काफ़ी हैं मेरी क़ैदको, एक मकड़ीका जाला॥

मुझ ज़ुल्फ़ोंके मारे को जञ्जीर मत पहनाओ। मेरे बदनमें ज़रा भी दम नहीं। मैं जुदाईके कष्ट उठाते-उठाते एक-दम दुर्बल हो गया हूँ। मेरे क़ैद करनेके लिये एक मकड़ीका जाला ही काफ़ी है।

और भी:—

ये नातवा हूँ, कि आया जो यार मिलनेको।
तो सूरत उसकी, उठाकर पलक न देख सका॥

यारकी जुदाईमें ऐसा कमज़ोर हो गया हूँ कि, जब यार मुझसे मिलनेको आया, तो मैं पलक उठाकर उसकी सूरत तक न देख सका।

कहिये पाठक! अब तो आपने देख लिया कि, प्यारीकी जुदाईमें वियोगी पुरुषोंकी क्या दुर्दशा होती है। जब तक स्त्रियाँ सामने रहती हैं, तभी तक सामने स्वर्ग दीखता है; उनके नज़रोंकी ओट होते ही प्राण निकलने लगते हैं—मृत्यु-कालसे भी अधिक वेदना होती है।

ज़ुल्फ़ = लट।

सूचना—यदि ऐसी-ऐसी शेरों और ग़ज़लोंका आनन्द लूटना चाहते हैं; तो श्रीमान् पण्डित ज्वालादत्तजी शर्मा कृत "उस्ताद ज़ौक़", "महाकवि

दोहा ।

जौलों सन्मुख नयनके, अबला अमृत-रूप ।
दूर भये ते सहज ही, होय यही विष-कूप ॥७४॥

सार—स्त्री सामने हो तो अमृत है, पर दूर हो तो विष है ।

74. A woman is like nectar so long as she is in front of the eyes. She becomes more painful than poison when removed from before the eyes.

नामृतं न विषं किञ्चिदेकां मुक्त्वा नितम्बिनीम् ।
सैवामृतलतारक्ता विरक्ता विषवल्लरी ॥७५॥

सुन्दरी नितम्बिनीको छोड़कर न और अमृत है न विष । वो अगर अपने प्यारेको चाहे तो अमृतलता है और जब वह उसे न चाहे, तो निश्चय ही विषकी मञ्जरी है ॥७५॥

खुलासा—इस जगत्‌में स्त्री ही अमृत है और स्त्री ही विष है। जब वह अपने आशिक़को चाहती है, तब तो अमृत-सी दीखती है और वही जब अपने आशिक़से नाराज हो, उसे नहीं चाहती, तब विष हो जाती है। इस बातको पुरुषमात्र आसानी से समझ सकते हैं। स्त्री जब अपने प्यारेको प्यार करती है, तब उसका प्यारा उसपर जी-जान निछावर करता है; उसके इशारोंपर कठपुतलीकी तरह नाचता है; पर ज्योंही वह अपने चञ्चल स्वभाव-अनुसार, उसे छोड़, दूसरेको चाहने लगती है; त्योंही उसका वही प्यारा, उसे विष-सी समझ कर, उसके प्राण-नाश पर भी उतारू हो जाता और अपनी भी जान दे देता है।

"पञ्चतन्त्र"में भी लिखा है:—

नामृतं न विषं किञ्चिदेकां मुक्त्वा नितम्बिनीम् ।
यस्याः संगेन जीव्येत म्रियेत च वियोगतः ॥

स्त्रीके सिवा अमृत और विष दूसरी कोई चीज़ नहीं है; क्योंकि उसके सङ्गसे प्राणी जीता और उसके वियोगसे मरता है।

"भामिनी-विलास"में भी लिखा है:—

श्यामं सितं च सुदृशो न दृशोः स्वरूपं,
किं तु स्फुटं गरलमेतदथामृतं च।
नो चेत्कथं निपतनादनयोस्तदेव,
मोहं मुदं च नितरां दधते युवानः॥

सुलोचनी स्त्रीकी आँखोंमें जो श्यामता और शुभ्रता— कलाई और सफ़ेदी दीखती है, वह कलाई और सफ़ेदी नहीं है; किन्तु विष और अमृत है। यदि यह बात न होती, तो युवा पुरुष उसकी नज़र-से-नज़र मिलते ही मोहित और आनन्दित न होते।

स्त्रीकी आँखोंमें जो श्यामता या कलाई है, वह विष है और जो शुभ्रता या सफ़ेदी है, वह अमृत है। जिसे वह ख़ुश होकर अमृत की नज़रसे देखती है, उसे परम आनन्द होता है और जिसे वह नाराज़ होकर विषकी नज़रसे देखती है, उसे मोह या दुःख होता है। क्या ख़ूब कहा है! वाह! पण्डितराज वाह!

दोहा।

नहिं विष नहिं अमृत कहूँ, एक तिया तू जान।
मिलवे में अमृत-नदी, बिछुरे विषकी खान॥७५॥

सार—स्त्रीही अमृत और स्त्री ही विष है। जब वह चाहे तब तो अमृत है और जब न चाहे तब विष है।

75. There is no better nectar than a woman and no worse poison than a woman also. If she is loving, she is a creeper of nectar, but if she forsakes, she is verily a creeper of poison.

आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां।
दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम्॥
स्वर्गद्वारस्य विघ्नो नरकपुरमुखं सर्वमायाकरण्डं।
स्त्रीयन्त्रं केन सृष्टं विषममृतमयं प्राणिनां मोहपाशः॥६७

सन्देहोंका भँवर, अविनयका घर, साहसोंका नगर, पाप-दोषोंका खज़ाना, सैकड़ों तरहके कपट और अविश्वासका क्षेत्र, स्वर्ग-द्वारका विघ्न, नरक-नगरका द्वार, सारी मायाओंका पिटारा, अमृतके रूपमें विष और पुरुषोंको मोह-जालमें फँसाने वाला स्त्री-यन्त्र न जाने किसने बनाया ?

सुन्दरी स्त्रियाँ ऊपर से गोरी पर भीतरसे काली होती हैं। इनका शरीर फूलकी तरह कोमल और कमनीय होता है, पर इनका हृदय वज्रवत् कठोर होता है। ये दान, मान, सेवा, अस्त्र और शस्त्र किसीसे भी वशमें नहीं होतीं। न कोई इनको

प्यारा है और न कोई कुप्यारा । इनका स्वभाव है कि, ये नये-नये पुरुषोंकी अभिलाषा किया करती हैं। लज्जा, नीति, चतुराई और भयके कारणसे ये सती नहीं बनी रहतीं, केवल चाहने वाला न मिलने या मौक़ा हाथ न आनेसे ही ये सती बनी रहती हैं। असत्य, साहस, माया, मत्सरता और लोभ,— इनमें स्वभावसे ही होते हैं। पुरुषोंसे इनमें दूनी क्षुधा, चौगुनी शर्म, छैगुनी हिम्मत या बुद्धि होती है और कामदेव तो अठ-गुना होता है। जब ये अपनी बराबर वालियोंके साथ एकान्तमें बैठती हैं, तब कहा करती हैं:—'अहो, वेश्याएं बड़ा आनन्द करती हैं; वे स्वतन्त्रता-पूर्व्वक नये-नये पुरुषोंको भोगतीं और इच्छानुसार उनका धन ख़र्च करती हैं !" अथवा कोई-कोई कहती हैः—"मेरा मर्द तो पशु है। भोग-विलासकी बातें तो जानता ही नहीं। संझा होते ही भैंसकी तरह पड़ जाता है। मैंने इसका हाथ पकड़ कर कुछ भी सुख न पाया। देख ! फलानीका पति कैसा छैलछबीला नट नागर है इत्यादि।" जो पुरुष इनकी ख़ूब ख़ुशामद करता है, इनकी फ़रमायशोंको ज़बान से निकलते ही पूरी करता है—साथ ही रूपवान्, विद्वान्, धनवान और गुणवान होता है, उसे छोड़ कर ये महा धूर्त्त, नीच और अधमके साथ चली जाती हैं। कोई पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं:—"A woman in love is very poor Judge of character." स्त्री जिसे चाहती है या जिससे आशनाई करती है, उसके चरित्र की परख नहीं करती। कहा है—

गुणाश्रयं कीर्त्तियुतं च कान्तं, पतिंरतिज्ञं सधनं युवानम्।
विहाय शीघ्रं वनिता व्रजन्ति, नरान्तरं शीलगुणादिहीनम्॥

गुणाधार, कीर्त्तिमान, सुन्दर, रतिक्रीड़ा-कुशल, धनवान् और जवान पुरुष को भी त्यागकर स्त्रियाँ नीच, निर्गुण और कुरूपके साथ चली जाती हैं।

दुष्टा स्त्रियाँ मिथ्या विलास-चिह्न दिखाकर अपने पतिको पागल रखती हैं और उससे पैर तक दबवाती हैं। एकको नेत्र-विकारोंसे रिझाती हैं; दूसरेके साथ वचन-विलास करती हैं, तीसरेको चेष्टाओंसे प्रसन्न करती हैं और चौथेको मोहमें फँसाती हैं। स्त्रियाँ बहुरूपिणी हैं। जब यह कामवती होती हैं और पर-पुरुषसे मिलती हैं, तब ऐसे-ऐसे छलबल और कौशल करती हैं, कि चतुर-से-चतुर पुरुषकी भी अक़्ल काम नहीं करती। उस समय, ज़रूरत होनेसे, ये अपने पति-पुत्र और पिता-माता तककी हत्या कर सकतीं* हैं। स्त्रीके मनमें क्या है, वह कब क्या करेगी,

---

* संसारमें ऐसा कौनसा नीचे-से-नीचा काम है, जो इस प्रेमके कारण नहीं करना पड़ता? प्रेम-पन्थके पथिकोंको ज़ात-पाँत तो क्या चीज़ है, अपने प्यारे माता-पिता, बहन-भाई और अपनी औलाद तकसे मुँह मोड़ना और नाता तोड़ना पड़ता है। अभी हाल ही में सुना है कि, हमारे एक परिचितकी बेवा बहन अपने प्यारे, आँखोंके तारे, पाले-पनासे दो पुत्र-रत्नोंको छोड़, एक यवनके साथ भाग गई। किसीने ठीक ही कहा है:— Cruel love! what is there to which thou dost not drive mortal hearts." ऐ निर्दयी प्रेम! संसारमें ऐसा क्या है, जिसे करने पर तू मनुष्यों को विवश नहीं करता।

इन बातोंका जानना बड़ा कठिन है※। लोकमें कहावत भी मशहूर है—"त्रिया चरित्र जाने नहीं कोई, खसम मार कर सत्ती होई।" शास्त्रोंमें भी कहा है:—

नृपस्य चित्तं कृपणस्य वित्तं, मनोरथं दुर्जनमानवानाम् ।
स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः॥

राजाके चित्त, सूमके धन, दुर्जनके मनोरथ, स्त्रीके चरित्र और पुरुषके भाग्यकी बात, देवता भी नहीं जानते, मनुष्य बेचारा कौन चीज़ है ?

स्त्रियोंके संशयोंका भँवर, साहसोंका नगर और नाना प्रकार की माया और अविश्वासका पिटारा होनेमें ज़रा भी सन्देह नहीं। जो इनका विश्वास करते हैं, वे बुरी तरह मारे जाते हैं। इसलिये चतुर पुरुषोंको स्त्रियोंका विश्वास भूलकर भी न करना चाहिये। इनसे सदा सावधान और सतर्क रहना चाहिये। जितनी विद्या

※ थैकरेने कहा है:—"I think woman have an instinct of dissimulation; they know by nature how to disguise their emotions far better the most than the most consummate male courtiers can do. मेरे विचारमें, स्त्रियोंमें कपटाचार स्वाभाविक होता है। नितान्त कार्य्य-कुशल राज-सभासदोंकी अपेक्षा भी वे अपने भावोंको अधिक उत्तमतासे छिपा सकती हैं। स्त्रियाँ अपनी बातको जितनी अच्छी तरह छिपा सकती हैं, और कोई नहीं छिपा सकता।

शुक्र और वृहस्पतिमें है, उतनी तो इनमें स्वभावसे ही होती है* ।

शास्त्रकारोंने कहा है:—

नदीनांच नखीनांच, शृंगिणां शस्त्रपाणिनाम् ।
विश्वासो नैव कर्त्तव्य:, स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥

नदीका, नाखुनवाले जानवरोंका, सींग वाले पशुओंका, हथियार बाँधनेवालों का, स्त्री का और राजा का विश्वास कभी न करना चाहिये ।

"श्री शङ्कराचार्यजी ने अपनी" "प्रश्नोत्तर मालामें" भी कहा है—विश्वासपात्रं न किमस्ति ? नारी। अर्थात् कौन विश्वास-योग्य नहीं है ? स्त्री। इतने सब औगुणोंके सिवा; यह पुरुषकी मोक्ष-प्राप्तिमें भी बाधास्वरूप है। इसकी तिरछी नज़रके तले पड़ने से ही पुरुष इसका दास हो जाता है और ऐसा दास हो जाता है कि, फिर पीछा नहीं छूटता। जवानीमें तो इसे छोड़नेको आप ही जी नहीं चाहता। जब कुछ विरक्ति होने लगती है, तब इसकी औलादमें मन फँस जाता है। ज्ञानका उदय होने पर भी, पुरुष विचारने लगता है, अगर मैं स्त्री-बालकोंको छोड़ कर वनमें

---

* लेसिङ्ग महोदय कहते हैं:—"There are certain things in which a woman's vision is sharper than a hundred eyes of the males." कुछ ऐसी भी बातें हैं, जिनमें स्त्री की नज़र पुरुषोंकी सौ आँखोंसे तेज़ होती है।

चला जाऊँगा, तो इनका लालन-पालन कौन करेगा? मेरे न रहनेसे इनको अमुक कष्ट होगा, इन पर अमुक आफ़त आयेगी। अच्छा तो, लड़के लड़कियोंकी शादी-विवाह करके बनको चला जाऊँगा और तभी भगवान्‌का भजन करूँगा।' इस तरह वह विचारही करता रहता है कि, मौत आ जाती है और उसके विचार धरे-के-धरे रह जाते हैं। ठीक उस तोतेका-सा हाल होता है, जो मनमें विचार कर रहा था कि, आदमी हट जाय, तो मैं पिंजरेसे निकल भागूँ। आदमी हटा, तोता निकलनेकी चेष्टा करने लगा कि, एक काल सर्पने आकर उसे अपना भोजन बना लिया।" स्त्री के सम्बन्धमें महात्मा 'कबीर' कहते हैं:—

नारी कहूँ कि नाहरी, नख-सिख सों यह खाय।
जल बूड़ा तो ऊबरे, भग-बूड़ा बहि जाय॥
नैनों काजल पायके, गाढ़ा बाँधे केश।
हाथों मेंहदी लायके, बाघिन खाया देश॥

छप्पय।

परम भवन को भौंर, भवन है गूढ़ गरब को।
अनुचित कृत को सिन्धु, कोष है दोष अबरको॥
प्रगट कपटको कोट, खेत अप्रीति करनको।
सुरपुरको बटमार, नरक पुर द्वार करनको॥

यह युवती-यन्त्र कौन रच्यो, महा अमृत-विपको भर्‌यौ ? ।
थिर चर नर किन्नर सुर असुर, सबके गल-बन्धन कर्‌यौ ॥७६॥

सार—स्त्री बड़ा ज़बर्दस्त जाल है। फिर भी लोग इसमें जाकर फँसते और बड़े खुश होते हैं, यह आश्चर्य्यकी बात है। इसमें एक बार फँसने पर, इससे निकलना कठिन है।

76. Who has created this machine in the form of woman who is the very seat of doubts, the house of insolence, the city of courage, the object of vices, the field of misbelief, full of hypocrisy, the obstructer to the gates of heaven, and the very gate of the city of hell, the basket of delusion, the poison in the garb of nectar and the snare for catching men ?

सत्यत्वेन शशांक एष वदनीभूतो नवेन्दीवर-
द्वन्द्वे लोचनतां गते न कनकैरप्यंगयष्टिः कृता ।
किं त्वेवं कविभिः प्रतारितमनास्तत्त्वं विजानन्नपि,
त्वङ्मांसास्थिमयं वपुर्मृगदृशां मन्दो जनः सेवते॥७७॥

अगर हमसे पक्षपात-रहित सच्ची बात पूछी जाय, तो हमको कहना होगा कि, चन्द्रमा स्त्रीका मुख नहीं, कमल उसके नेत्र नहीं; उसका भी शरीर और सब प्राणियोंकी तरह

हाड़, चाम और माँसका है। इस बातको जानकर भी, कवियों की मिथ्या उक्तियोंके भुलावेमें पड़कर, हमलोग स्त्रियोंपर आसक्त रहते और उन्हें सेवन करते हैं ॥७७॥

खुलासा—जिस तरह संसारके और प्राणियोंके शरीर हाड़, मांस और रक्त प्रभृतिसे बने हैं; उसी तरह स्त्रियोंके शरीर भी इन्हीं पदार्थोंसे बने हैं, इस बातको हम लोग जानते हैं; पर कवियोंके झूठे बढ़ावों में आकर, हम लोग भी उनके मुखको चन्द्रमा, नयनों को कमल और देह को सुवर्ण-निर्म्मित समझ कर उन पर मरे मिटते हैं। यह हमारी बड़ी भारी ग़लती है।

वैराग्यपक्ष ।

भला कहाँ पीयूष-निधि चन्द्रमा और कहाँ स्त्रियोंका कफ़, थूक और खखारसे भरा मुँह ? कहाँ भगवान्के हाथमें विराजने वाला सुदर्शनीय कमल और कहाँ गन्दे पदार्थोंसे बने स्त्रियोंके नेत्र ? कहाँ सूर्यकी-सी आभा वाला सुवर्ण और कहाँ हाड़, चाम और माँससे बने स्त्रियोंके शरीर ? सच बात तो यह है कि, हम नरकके कीड़ोंका-सा आचरण करते हैं। नरकके कीड़े मल, मूत्र, राध, लोहू प्रभृति गन्दे पदार्थों में रमते और सुखी रहते हैं। हम भी उन्हींकी तरह हाड़, चाम, मांस, राध, ख़ून और मलमूत्र प्रभृतिके भण्डारमें रमण करते और अपने तईं भाग्यवान् समझते हैं। हम में और नरकके कीड़ोंमें कोई भेद है कि नहीं, यह बात ज़रा विचार करनेसे ही समझमें आजायगी।

कुण्डलिया।

नहिं शशांक-सम वदन तिय, नील जलज सम-नैन।
अङ्ग कनक-सम है नहीं, कोकिल सम नहीं बैन॥
कोकिल-सम नहिं बैन, झूठ कवि उपमा दीन्ही।
जानत हैं सब भेद, तऊ पट आँखिनि कीन्ही॥
हाड़-चाममय नारि, मन्दमति निशिदिन सेवहिं।
करें उपाय अनेक, ग्लानि चित नेंक न देवहिं॥७७॥

सार—सब प्राणियोंकी तरह-स्त्रियोंका शरीर भी हाड़, चाम और मांस का है। उन्हें चन्द्रमुखी, कमल-नयनी और सुवर्ण-सी कान्तिवाली समझना सरासर भूल है।

77. In reality neither the moon has transformed itself into the face of a woman nor the lotus has turned itself into her eyes, nor is her body made up of gold; knowing all these facts however but being deceived by the false analogy of the poets, senseless people indulge in the body of woman which consists of skin, flesh and bones.

लीलावतीनां सहजा विलासास्त
एव मूढस्य हृदि स्फुरन्ति।
रागो नलिन्या हि निसर्गसिद्ध-
स्तत्र भ्रमत्येव मुधा षडंघ्रिः॥७८॥

जिस तरह मूर्ख भौंरा कमलिनीकी स्वभाविक ललाईको देखकर उसपर मुग्ध होजाता और उसके चारों ओर गूँजता फिरता है; उसी तरह मूढ़ पुरुष लीलावती स्त्रियोंके स्वाभाविक हाव-भाव और नाज़-नज़रोंको देखकर उनपर मुग्ध हो जाते हैं ॥७८॥

खुलासा—कमलिनीमें जो एक प्रकारकी सुर्ख़ी होती है, उसे भौंरा प्यारकी निशानी समझता है और इसीलिये उस पर आशिक़ होकर उसके चारों ओर गूँजता हुआ घूमा करता है। कमलिनीकी तरह नवयौवना स्त्रियोंमें भी विलास—हाव-भाव और नाज़-नख़रे स्वभावसे ही होते हैं; पर अज्ञानी लोग उनके हाव-भावोंको देखकर मनमें समझते हैं कि, ये स्त्रियाँ हमें चाहती हैं; पर असलमें वे चाहती-वाहती नहीं, हाव-भाव दिखाना तो उनका स्वभाव है। उनके हावभावोंको प्यारके चिह्न समझना महामूर्खता है। स्त्रियोंको पुरुषोंको तड़फते देखनेमें भी एक प्रकारका मजा-सा आया करता है; इसीलिये चञ्चल स्त्रियाँ जहाँ पुरुषोंको देखती हैं, वहाँ नाज-नख़रे किया करती हैं और जब उनका शिकार मछली की तरह तड़पता है, तब मनमें बड़ी ख़ुश होती हैं।

दोहा।

कामिनि बिलसत सहजमें, मूरख मानत प्यार।
सहज सुगन्धित कुसुमिनि; भौंरा भ्रमत गँवार ॥७८॥

सार—लीलावती चंचल स्त्रियोंके हाव-भाव और नाज़-नखरोंको मुहब्बतकी निशानी समझना नादानी है। यह तो उनका स्वभाव है।

78. The amorous plays of sportful women are quite natural to them but they arouse passion in the hearts of foolish men, just as a black bee hovers over a lotus being attracted by its redness which is natural to it.

यदेतत्पूर्णेन्दुद्युतिहरमुदाराकृतिधरं—
मुखाब्जं तन्वंग्याः किल वसति यत्राधरमधु ॥
इदं तावत्पाकद्रुमफलमिवातीवविरसं—
व्यतीतेऽस्मिनकाले विषमिव भविष्यत्यसुखदम् ॥७६॥

स्त्रीका पूर्णिमाके चन्द्रमाकी छविको हरनेवाला कमल-मुख, जिसमें अधरामृत रहता है, मन्दारके फलकी तरह अज्ञात या यौवनावस्था तक ही अच्छा मालूम होता है; समय बीतने यानी बुढ़ापा आने पर, वही कमल-मुख अनारके पके और सड़े फलकी तरह विष-सा हो जाता है ॥७६॥

खुलासा—जिस तरह अनारका फल अपने समयमें अमृत का मज़ा देता है, पर समय निकल जाने पर बदज़ायके और कड़वा हो जाता है; उसी तरह स्त्रीका पूनोंके चाँदको शर्माने

वाला कमल-सा मुँह उठती जवानी या भर-जवानीमें ही अमृत-सा रहता है। जवानी दीवानीके जाते ही, वह सड़े हुए अनारके फलकी तरह निकम्मा और विष-सा हो जाता है; क्योंकि बुढ़ापा आते ही दाँत गिर जाते हैं, गाल पिचक जाते हैं, चमड़ेमें झुर्रियाँ पड़ जाती हैं और सुर्खी चली जाती है। बेकन महोदय कहते हैं—Beauty is as summer fruits which are easy to corrupt and can not last. सौन्दर्य ग्रीष्म ऋतुके फलोंके समान है, जो जल्दी ही सड़ जाते और अधिक समय तक नहीं ठहर सकते।

दोहा।

अधर मधुर मधु सहित मुख, हुतो सघन शिरमौर।
सो अब बिगरै फलन-सम, भयौ और सों और ॥७६॥

सार—स्त्रीकी सारी शोभा जवानीमें ही है। जवानी गई, फिर कुछ नहीं।

79. The beautiful lotus-like face of a woman that surpasses the beauty of the full-moon having honeyed lips in it is very pleasant in young age only but when that time is past it becomes painful like poison just like the fruit of Mandara.

उन्मीलत्त्रिवलीतरङ्गनिलया प्रोत्तुङ्गपीनस्तन-
द्वन्द्वेनोद्यतचक्रवाकमिथुना वक्त्राम्बुजोद्भासिनी ॥

कान्ताकारधरा नदीयमभितः क्रूराशया नेष्यते
संसारार्णवमज्जनंयदिततोदूरेणसंत्यज्यताम् ॥८०॥

खुलासा—स्त्री एक नदी है। उसके पेट पर जो त्रिवलीके समान तीन रेखासी हैं, वही उस नदीकी लहर हैं, उसके दोनों कठोर कुच चकवेके जोड़े हैं और उसके जो क्रूर अभिप्राय हैं, वही भँवर हैं—जिस तरह और नदियाँ समुद्रमें जाकर गिरती हैं; उसी तरह स्त्री-नदी भी संसार-सागरमें जाकर गिरती है। जिस तरह और नदियोंमें गिरी हुई चीज़ नदीके प्रवाहके साथ बहती हुई समुद्रमें जा पड़ती है; उसी तरह स्त्री-नदीमें गिरी हुई वस्तु भी संसार-सागरमें जा पड़ती है। जो पुरुष इस स्त्री-नदीमें स्नान या क्रीड़ा प्रभृति करते हैं, वे उसके तेज़ बहावमें बहते-हुए संसार-सागरमें जा पड़ते हैं। समुद्रमें गिरे बाद बचना कठिन हो जाता है, इसलिये जो पुरुष संसार-सागरमें डूबनेसे बचना चाहें, वे स्त्री-नदीसे दूर रहें। इस भयङ्कर नदीके पास भी न जाँय। इस स्त्री-नदीका ज़ोर साधारण नदियोंकी अपेक्षा बहुत अधिक है। और नदियोंमें तो वही डूबता है, जो उनके अन्दर घुसता या पैर देता है; पर स्त्री-नदी तो सामने आये हुए पुरुषको अपने बलसे, अजगरकी तरह, भीतर खींच लेती और फिर उसे संसार-सागरमें लेजा पटकती है। "भामिनी विलास"—कर्त्ता पण्डितवर जगन्नाथ महाराजने और ही तरह रूपक बाँधा है। उसका आशय कुछ और है, फिर भी उसका रसास्वादन कीजिये:—

रूपजला चलनयना नाभ्यावर्तांकचावलि भुजंगा ।
मज्जन्ति यत्र सन्तः सेयं तरुणी तरंगिणी विषमा ॥

रूप ही जल है, चंचल नयन मछलियाँ हैं, नाभि भँवर है और सिरके बाल सर्प हैं—यह तरुण स्त्री-रूपी नदी दुस्तर नदी है। इन नदीमें शृंगारशास्त्र-प्रवीण सज्जन स्नान करते हैं।

महाकवि 'कालिदास'के एक रूपकका भी रस आस्वादन कीजिये। उसमें कुछ और ही मजा है:—

बाहू द्वौ च मृणालमास्यकमलं, लावण्यलीलाजलं,
श्रोणी तीर्थशिला च नेत्रशफरी, धम्मिल शैवालकम् ।
कान्तायाः स्तन चक्रवाक युगलं, कन्दर्पवाणानलैर्दग्धा-
नामवगाहनाय, विधिना रम्यं सरो निर्मितम् ॥

ब्रह्माने कामदेवके बाणोंकी अग्नि-ज्वालासे जलते हुए पुरुषों के स्नान करनेके लिये स्त्री-रूपी सुन्दर तालाब बनाया है। इस तालाबमें क्या-क्या चीजें हैं? इस तालाबमें स्त्रीकी दोनों भुजायें तो कमलकी डंडी हैं, उसका मुँह कमल है, उसके लावण्यका विलास जल है, कमर उतरनेकी सीढ़ी है, उसके नेत्र मछलियाँ हैं, उसके बँधे हुए केश—बाल सिवार हैं और दोनों स्तन चक्रवाकके जोड़े हैं।

इसमें कोई शक नहीं, कि कन्दर्प-तापको स्त्रीके पयोधर—कुच ही शान्त करते हैं। शरीरमें कामबाणोंकी ज्वाला उठने पर, स्त्री ही उस ज्वाला को शान्त करती है; पर बीमार होकर



स्त्री का पूर्णमासी के चाँद की छवि हरने वाला कमल-मुख, जिसमें अधरामृत रहता है, जवानी में ही अच्छा मालूम होता है : बुढ़ापा आने पर वही कमल-मुख अनार के पके और सड़े फल की तरह विप-जैसा हो जाता है।

[पृष्ठ २०९]

दवा खाने और आरोग्य होनेकी अपेक्षा बीमार न होना कहीं अच्छा है।

छप्पय।

त्रिवली तरल तरंग, लसत कुच चक्रवाक-सम।
प्रफुलित आनन कञ्ज, नारि यह नदी मनोरम।
महा भयानक चाल, चलत भवसागर-सन्मुख।
हाथ धरत ही ऐंच लेत, जितको अपनो रुख।
संसार-सिन्धु चाहत तर्‌यो, तौ तू यासौं दूर रह।
जाको प्रवाह अतिही प्रबल, नेक न्हात ही जात बह ॥८०॥

सार—स्त्री-रूपी दुस्तर नदी से सदा दूर रहो, क्योंकि इसके सामने जानेवाले की भी ख़ैर नहीं।

80. A woman who is compared to a river, having the beautiful linings on the stomach like waves (of the river), having developed breasts like the pair of Chakrabak and the face shining like the lotus, but whose intention is very crooked should be shunned carefully if one does not wish to be drowned in it. (A river may appear very pleasing in sight but anything falling in it is taken to the deep ocean, so also the woman may appear attractive but any one indulging in her is ruined.)

जल्पन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः ।
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम योषिताम् ? ॥८१॥

स्त्रियाँ बात तो किसीसे करती हैं, देखतीं किसी औरको हैं, और दिलमें चाहतीं किसी और को हैं। विलासवती स्त्रियोंका प्यारा कौन है ? ॥८१॥

खुलासा—वास्तवमें, स्त्रियोंका प्यारा कोई भी नहीं। जो एक ही समयमें बात एकसे करती हैं, देखतीं दूसरेको और दिलमें चाहतीं तीसरेको हैं, उनका प्रेम किससे हो सकता है ?

स्त्री स्वभावसे ही चञ्चल है। इसका चित्त एक जगह स्थिर नहीं रहता। इसके मनमें कुछ, बातोंमें कुछ और आँखोंमें कुछ। इसके चित्तका पता नहीं। यह सदा किसी एकसे मुहब्बत नहीं रखती। बेईमानी, धोखेबाज़ी, छल, कपट, झूठ और बेवफ़ाई तो परमात्माने इसे ख़ूब ही दी है। महाकवि 'दाग़'ने ख़ूब कहा है—

तुमसे बचकर इक वफ़ा, हिस्सेमें अपनी लग गई।
तुमने ख़ूबी कौनसी, छोड़ी ज़मानेके लिये ॥

सच है, सभी अच्छी चीजें तुम्हारे हिस्सेमें आगईं। एक वफ़ा ज़रूर तुमसे बचकर मेरे हिस्सेमें आगई है। इस ख़ूबीको छोड़ कर और सब ख़ूबियाँ तुम्हारे पास मौजूद हैं।

स्त्री बाहरसे जैसी मनोहर दीखती है, भीतरसे वैसी नहीं होती। उसका शरीर मनोहर होता है, पर हृदय बज्रवत् कठोर

होता है। वह अपने चन्द्रमुखसे मधु-जैसी मीठी-मीठी बातें करती है और तीक्ष्ण चित्तसे चोट मारती है। इसीलिये कहते हैं कि, उसकी जीभमें मधु और हृदयमें हालाहल विष रहता है। पर जिन्होंने संसार नहीं देखा है, जिन्हें इस जगत्की टेढ़ी-सीधी बातें नहीं मालूम, वे नातजुर्बेकार नौजवान, इन बातोंको न समझ कर, इन कुटिला कामिनियोंका पूर्ण विश्वास कर बैठते हैं। इनके यह कहने पर, कि आप ही हमारे सूरज, आप ही हमारे चाँद और आप ही हमारे परमेश्वर हो, आप ही से हमें जगत्में उजियाला है; नवयुवक पागलसे हो जाते हैं और इन्हें सती सीता और सावित्री समझ कर इनके क्रीतदास हो जाते हैं। जब कामी पुरुष सोलह आने इनके क़ाबूमें हो जाते हैं, तब ये निरङ्कुश होकर अपनी माया रचने लगती हैं। एकको आँखोंके इशारोंसे, दूसरेको बातोंसे, तीसरेको चेष्टाओंसे प्रसन्न करतीं और चौथे—अपने पति—को अपनी मायामें पागल बनाये रखती हैं। उसे सूझता होने पर भी अन्धा कर देती हैं। उसके मौजूद रहते कुकर्म करती हैं; पर उस भौंदूको कुछ नहीं सूझता। बुद्धिमानोंको इनके सतीत्व पर हरगिज़ विश्वास न करना चाहिये; क्योंकि किसी एक की होना तो विधाता ने इनके भालमें लिखा ही नहीं। किसीने ठीक ही कहा है:—

यदि स्यात्पावकः शीतः, प्रोष्णो वा शशलाञ्छनः।
स्त्रीणां तदा सतीत्वं स्याद्, यदि स्याद् दुर्जनो हितः॥

अगर आग शीतल हो जाय, चन्द्रमा गरम हो जाय और दुर्जन हितकारी हो जायँ, तभी स्त्रियोंके सतीत्वका विश्वास किया जा सकता है।

और भी कहा है:—

यो मोहान्मन्यते मूढ़ो रक्तेयं कामिनी।
स तस्या वशगो नित्यं भवेत् क्रीड़ाशकुन्तवत् ॥

जो मूढ़ मनुष्य यह समझता है कि, यह स्त्री मुझे प्यार करती है, वह उसके वश होकर खेलके पक्षीकी तरह हो जाता है। पर वास्तवमें, वह उसे नहीं चाहती। उसको न कोई प्यारा है और न कुप्यारा। जिस पर तबियत आजाय, वह उसी की है; पर उसकी भी सदा-सर्वदा नहीं। चञ्चल नारी-जातिका चित्त कभी भी स्थिर हो सकता है ?

दोहा।

मनमें कछु बातन कछु, नैननमें कछु और।
चितकी गति कछु और ही, यह प्यारी किहि ठौर ? ॥८१॥

सार—स्त्री बेवफ़ा है। उसकी मुहब्बत सर्वदा किसीके साथ रह ही नहीं सकती। जिसकी स्त्री वफ़ादार और सती हो, वह निस्सन्देह पूर्ण पुण्यात्मा है।

81. A woman while talks with one man, looks amorously towards some other and at the same time, she thinks in her mind of a quite different person, who can be said to be the true lover of a woman ?

एक भलेघर की कुलटा की सनसनी पैदा करने वाली कहानी

——::o::——

ग़ज़बका त्रियाचरित्र ।

एक शख्स कहने लगा—यद्यपि दिल्लीके आखिरी बादशाहके उस्ताद महाकवि 'ज़ौक़'ने कहा है:—

सोहबते अहले सफ़ासे, तीरह दिल कब साफ़ हो ।
ज़ंगसे आलूदा हो जाता है, आहन आबमें ॥

महात्माओं की संगतिसे कलुषित-हृदय पुरुषों की चित्तशुद्धि नहीं होती। लोहा अगर पानीमें डाला जाता है, तो साफ होनेके बजाय उसमें ज़ंग ही लग जाती है।

यद्यपि उस्तादके कलाममें शक करनेकी गुञ्जाइश नहीं—अनेक स्थलोंमें ठीक ऐसा ही होता भी है, पर मेरा विश्वास नीचेके श्लोक और 'कबीरदास'के निम्नलिखित दोहों पर अधिक था:—

नोट—इन आगे की कहानियों को पढ़कर, बाज़-बाज़ लोग इन्हें हमारी गढ़ी हुई कहानियाँ समझते हैं। पर यह ठीक नहीं, कहानियों की असलियत सच्ची है। ये दूसरे ग्रन्थों से लीगई हैं। कुछ सुनी हुई हैं। हाँ, सजावट वगैरः हमारी अपनी है।



सत्संगः केशवे भक्तिर्गङ्गाम्भसि निमज्जनम् ।
असारे खलु संसारे त्रीणि साराणि भावयेत् ॥

सत्पुरुषोंका संग, कृष्ण की भक्ति और गङ्गाजलका स्नान—इस असार संसारमें ये तीन ही सार समझे जाते हैं।

एक घरी आधी घरी, आधी सोंभी आध ।
'कबिरा' संगति साधुकी, कटै कोटि अपराध ॥
'कबिरा' संगति साधुकी, नितप्रति कीजै जाय ।
दुर्मति दूर बहावसी, देसी सुमति बताय ॥

एक घड़ी, आधी घड़ी और पाव घड़ी, जितना भी समय मिले, सत्पुरुषोंकी संगति अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि उनकी संगतिसे करोड़ों अपराध नष्ट हो जाते हैं।

साधु पुरुषोंकी संगति नित्य ही करनी चाहिये, क्योंकि उससे कुमति दूर होती और सुमति आती है।

इस संसार रूपी कड़वे वृक्षके दो ही फल हैं:—(१) मीठा बोलना, और (२) सज्जनों का संग। लेखनीमें सामर्थ्य नहीं, जो सत्संग की महिमा बखान सके। यद्यपि लोहा पानीमें जाकर साफ़ नहीं होता, उस पर उल्टी जंग चढ़ जाती है; तोभी पारसके साथ मिलनेसे वह सोना हो जाता है। उसी तरह सत्संगसे नीच भी महापुरुष हो जाता है। सप्त ऋषियों की संगतिसे नित्य प्रति हत्या करने वाला व्याधा महामुनियोंकी

गणनामें आगया। कहना क्या—सत्संग की महिमा मेरे दिल पर अच्छी तरह जमी हुई थी, इसलिए मुझे बाल्यावस्थासे ही साधु-महात्माओं की संगति जियादा पसन्द थी। मेरे गाँवमें कोई भी महात्मा आता, तो मैं उसके आनेका समाचार पाते ही उसके पास जरूर पहुँचता।

एक बार हमारे गाँवके श्मशानमें एक संन्यासी आकर ठहरे। वह जातिके ब्राह्मण, पूर्ण विद्वान, सच्चे त्यागी और वास्तविक महात्मा थे। उनकी उम्र भी जियादा न थी, कोई चालीस बरसके होंगे। उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट और गठीला था। उनके चेहरेसे एक प्रकारका अपूर्व तेज टपका पड़ता था। उनको देखते ही हर मनुष्यके दिलमें उनके प्रति श्रद्धा और भक्तिका भाव उदय होता था। उनकी शोहरत सारे गाँवमें फैल गई—इसलिए सैकड़ों स्त्री-पुरुष उनके दर्शनोंके लिए श्मशानमें जाते और उनके दर्शन करके नेत्र सफल करते थे। अधिक क्या कहूँ, मेला-सा लगा रहता था। मैं भी नित्य-बिला नागा उनके दर्शनोंको जाया करता था। वह हर समय वेदान्त-चर्चा किया करते थे। उनकी तर्क-शक्ति, विद्वत्ता और प्रबल युक्तियोंको देखकर लोग दंग रह जाते थे। हरेकके मुँहसे वाह-वाह निकलती थी। पर एक बात उनमें विशेष रूपसे देखनेमें आती थी। वह यह कि, उन्हें स्त्रियोंका—खासकर जवान स्त्रियोंका—वहाँ आना पसन्द नहीं था। उनके ढँग-ढौलसे ऐसा प्रतीत होता था, मानो उन्हें युवतियोंके दर्शन से

घृणा है। वे हमलोगोंको संसारकी असारता और देहकी क्षणभङ्गुरता इस तरह समझाते थे कि, हम सभी श्रोताओंके दिलों पर उनकी बातों का असर फ़ौरन ही हो जाता था। हमारे दिलोंमें सच्चे वैराग्यका उदय हो आता था। उनके मुँहसे निकली हुई स्त्रियोंकी निन्दा सुनकर तो स्त्रियोंका नाम सुननेसे भी घृणा-सी हो जाती थी। वे अपनी बात-चीतके दौरानमें संस्कृतके श्लोक बहुतायतसे कहा करते थे। नीचे लिखा हुआ श्लोक तो वे एक-दो बार नित्य ही कहा करते और शेषमें दर्दभरी आह सी खींचा करते थे। वह श्लोक यह था:—

सुचिन्तितमपि शास्त्रं परिचिन्तनीयम्
आराधितोऽपि नृपतिः परिशंकनीयः।
क्रोडेस्थितापि युवतीः परिरक्षणीयः
शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशीत्वम्॥

शास्त्रको अच्छी तरह पढ़ लेने पर भी उसका पाठ हमेशा करते रहना चाहिये। राजाको अपने ऊपर मिहरबान देखकर भी उससे डरते रहना चाहिये। गोदमें बैठी हुई भी जवान स्त्रीकी रक्षा बड़ी होशियारीसे करनी चाहिये। क्योंकि शास्त्र, राजा और जवान स्त्री ये किसीके भी वशीभूत होकर नहीं रहते।

उनके मुखसे यह श्लोक बारम्बार सुननेसे मुझे कुछ शङ्का-सी हुआ करती थी। मैं पूछना चाहता था कि महाराजा! आप युवतियोंकी इतनी निन्दा क्यों किया करते हैं; पर उनके तेज-

प्रताप या रौबसे पूछनेकी हिम्मत न कर सका। एकबार हिम्मत बाँधकर मैं कह ही तो उठा—"भगवन्! स्त्रियाँ न हों, तो ईश्वरकी सृष्टि ही लोप हो जाय, यह संसार सूना हो जाय, यहाँ कुछ भी दिखाई ही न दे। पुरुष और प्रकृतिसे ही यह सृष्टि है। अकेला पुरुष सृष्टि-रचना नहीं कर सकता। जगत्‌की रचनामें प्रकृति की सहायता की परमावश्यकता है। भगवान् रामचन्द्र, भगवान् श्रीकृष्ण, महाराजा हरिश्चन्द्र, महाराज भरत और प्रह्लाद प्रभृति स्त्रीसे ही पैदा हुए हैं। किसीने कहा है—

नारी-निन्दा मत करो, नारी नरकी खान।
नारीसे नर ऊपजे, ध्रू-पहलाद-समान॥

नारी-जातिकी निन्दा मत करो, क्योंकि नारी ही नरोंकी खान है। नारीसे ही ध्रुव और प्रह्लाद जैसे महापुरुषोंने जन्म लिया है।

मेरी बात सुनकर वे कहने लगे—"भैया! तुम्हारी बात सच है। निस्सन्देह, स्त्री-बिना ईश्वरकी सृष्टि नहीं चल सकती। स्त्री से ही जगत्‌की उत्पत्ति है। इस विषयमें मेरा मत-भेद नहीं। मेरा तो कहना है कि, स्त्रियोंकी प्रीति निश्चल नहीं होती। उनका दिल बड़ा चञ्चल होता है। क्षण-भरमें वे पराई हो जाती हैं। जिस तरह गाय नयी-नयी घास चरना चाहती है; उसी तरह स्त्रियाँ नित-नये पुरुषोंको भोगना चाहती हैं। बलवान पुरुषोंसे भी उनकी कामाग्नि शान्त नहीं होती। अब मैं तुम्हें

चन्द ऐसी कहानियाँ सुनाता हूँ, जिनसे तुझे मेरी बातोंकी सत्यतामें अणुमात्र भी सन्देह न रहेगा। ध्यान देकर सुन—

"किसी शहरमें एक विद्वान्, रूपवान और रतिशास्त्रपारङ्गत ब्राह्मण रहता था। वह अपनी स्त्रीको प्राणसे भी अधिक प्यार करता था; लेकिन उसकी स्त्री कलहकारिणी थी। वह अपनी सास-ननद और दिवरानी-जिठानियोंसे रोज़ तकरार किया करती थी; इसलिये वह ब्राह्मण नित्यके क्लेशसे दुःखी होकर, अपनी प्यारी स्त्रीको लेकर, किसी दूसरे नगरको चल दिया। चलते-चलते वे दोनों एक घोर वनमें पहुँचे। ब्राह्मण की स्त्रीको बड़े ज़ोरसे प्यास लगी। उसने अपने पतिसे कहा— 'मुझे प्यास बहुत ज़ोरसे लगी है, आप कहीं से जल लावें तो मेरी जान बचे।' ब्राह्मण लोटा डोर लेकर पानीकी खोजमें गया। बड़ी खोजसे उसे एक कूआ मिला। वह पानी भर कर वापस लौटा। लेकिन आकर क्या देखता है कि, उसकी प्राणप्यारी मरी हुई पड़ी है और पास ही एक काल भुजंङ्ग बैठा है। ब्राह्मणको देखते ही साँप जङ्गलमें भाग गया। ब्राह्मणने समझ लिया कि, मेरी स्त्री को सर्पने डसा है।

उसने बहुत देरतक तो विलाप किया; फिर जङ्गलसे लकड़ी लाकर चिता बनाई और उस चितामें स्त्री सहित जलनेकी तैयारी की। इतनेमें आकाशवाणी हुई—'हे विप्र! अगर तू अपनी आयुमें से आधी आयु इसे दे दे, तो यह जी सकती है।' यह वाणी सुनते ही ब्राह्मणने स्नान-ध्यानसे पवित्र हो, तीन बार

संकल्पका मंत्र कहकर, अपनी स्त्रीको आधी उम्र दे दी। ब्राह्मणी तत्काल जी उठी। ब्राह्मणने उससे यह बात न कही। जङ्गलसे फल-मूल लाकर उसे खिलाये और आप खाये। फिर वहाँसे दोनों चल दिये।

चन्द रोज बाद वे दोनों स्त्री-पुरुष एक बड़े नगरमें पहुँचे। नगरके बाहर एक मनोहर बाग़ था। ब्राह्मण वहीं ठहर गया। स्नान-पूजासे निपटकर उसने ब्राह्मणीसे कहा—'मैं शहरमें जाकर खाने-पीनेका सामान ले आता हूँ, तुम यहीं बैठी रहो, आकर भोजन बनाऊँगा और फिर दोनों खायँगे।' यह कहकर ब्राह्मण तो शहरमें चला गया और ब्राह्मणी अकेली बैठी रही। उस बागके कूएँकी सीढ़ियों पर एक लँगड़ा आदमी बैठा हुआ मनोहर स्वरसे गीत गा रहा था। उसके गानेसे स्त्रीका काम जाग उठा। वह काम-पीड़ित हो, लँगड़ेके पास जाकर बोली—'हे भद्र पुरुष! तू मेरे साथ भोग कर। अगर तू मेरी कामशान्ति न करेगा, तो तुझे मुझ अबलाकी हत्या लगेगी। स्त्री-हत्या बहुत बड़ा पाप है।' लँगड़ा बोला! 'हे कल्याणि! मैं रोगी हूँ, अङ्गहीन हूँ, मुझसे तेरी शान्ति न होगी।' स्त्री बोली—'मैं तेरी एक बात नहीं सुनूँगी। अगर तू मेरा कहना न मानेगा, तो मैं अभी हल्ला करके तुझे राजाके सिपाहियोंसे पकड़वा दूँगी।' आखिरकार वह लँगड़ा भयसे या और किसी वजहसे उसकी बात पर राजी हो गया। उसने उससे संगम किया। संगम हो चुकने पर वह बोली—'हे भद्र! तुम बड़े अच्छे पुरुष

हो। मेरी आत्मा तुमसे सन्तुष्ट है। अबसे मैं तुम्हारी हो चुकी। मैंने तुम्हें आत्मसमर्पण किया। अब तुम भी हमारे साथ चले चलो।' लँगड़े ने कहा—'मैं न तो चल सकता हूँ और न कमा सकता हूँ, इसलिये मुझे ले चलनेसे तुझे कष्ट होगा।' स्त्री ने कहा—'तुम चुप रहो, मैं सब इन्तज़ाम कर लूँगी।'

इन दोनोंमें ये बातें हो ही रही थीं कि, ब्राह्मण शहरसे आटा, दाल, घी और लकड़ी लेकर आ गया। भोजन बनाकर खानेकी तैयारी करने लगा, तब ब्राह्मणी बोली—'हे स्वामिन! यह लँगड़ा भी भूखा है। इसे बिना खिलाये खाना उचित नहीं। इसलिये इसे भी परोस दीजिये।' भोले ब्राह्मणने आप खाया, स्त्री और उस लँगड़ेको भी खिलाया। खा-पीकर जब वे आगे चलने लगे, तब स्त्री बोली—'हे पतिदेव! आप मैं दो ही जने हैं, आप कहीं चले जाओगे तो अकेलेमें मेरा मन न लगेगा। इसलिए इस लँगड़ेको आप कन्धे पर रखकर ले चलें, तो मुझे बातचीत का सहारा हो जायगा।' ब्राह्मण बोला—'प्यारी! मुझे अपना शरीर ही भारी हो रहा है, मैं इसे न ले चल सकूँगा।' तब स्त्रीने स्वयं उसे गाँठमें बाँधकर अपने सिर पर धर लिया। ब्राह्मण ने उसकी बातोंमें आकर इँकार नहीं किया। कुछ दिनों बाद वे एक और गाँवके निकट पहुँचे। ब्राह्मण कूएँसे पानी भरने लगा। उसकी स्त्रीने उसे कूएँमें धकेल दिया और अपनी गठड़ी को लेकर आगे चल दी। पुलिसने चोरीका माल समझ कर

उसकी गठड़ी खुलवाई, तो उसमें लँगड़ा निकला। सिपाही उसे हाकिमके पास ले गये। हाकिमने पूछा—"यह क्या मामिला है? तूने मर्दको गठरीमें क्यों बाँध रखा है?'

ब्राह्मणीने जवाब दिया—यह मेरा पति है। यह चल नहीं सकता, इसलिये मैं इसे गठरीमें धरकर घूमती हूँ। महाराज! पतिव्रताका यही धर्म है।' हाकिम उसकी बातसे ख़ुश होकर उसे राजाके पास ले गया। राजा उसका पतिस्नेह देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसे आनन्दसे जीवन बितानेके लिए दो गाँव इनाममें दिये।

कुछ रोज बाद, वह ब्राह्मण भी किसी तरह कूएँसे निकलकर उसी नगरमें आया। उस स्त्रीने उसे देखते ही राजासे प्रार्थना की, कि महाराज! यह आदमी मेरे पतिका शत्रु है। राजाने सुनते ही बिना विचार किये, ब्राह्मणको शूली पर चढ़ानेकी आज्ञा दे दी। तब ब्राह्मणने राजासे कहा—'आप धर्मात्मा राजा हैं, आपने मुझे दण्ड दिया, सो तो मैं भोगूँगा ही, पर इसके पास मेरी कुछ संक्रान्त वस्तु है, वह मुझे दिला दीजिये। इसके बाद मुझे फाँसी पर चढ़वाइये।' राजाने कहा—'हे पतिव्रते! तूने इसकी कुछ संक्रान्त वस्तु ली है?' ब्राह्मणीने कहा—'मैंने तो इससे कुछ भी नहीं लिया है।' ब्राह्मण बोला—'तू हाथमें पानी लेकर तीन बार यह कह दे, कि इसने मुझे जो कुछ भी दिया हो, वह मैं वापस देती हूँ।' स्त्री राजाके भयसे इस बात पर राजी हो गई और तीन बार

वैसा ही कहकर संकल्प छोड़ दिया। संकल्पका जल छोड़ते ही वह मर गई। राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। राजाने विप्रसे इस घटनाका रहस्य पूछा। ब्राह्मणने सारा क़िस्सा ज्योंका त्यों सुना दिया। सुनते ही राजाने ख़ुश होकर वह दोनों गाँव ब्राह्मणको दे दिये और अपने दरबारमें एक उच्च पद भी प्रदान किया।

इसीसे मुझे कहना पड़ता है कि, जिस ब्राह्मणने अपनी स्त्रीके लिये माँ-बाप और भाई-बन्धु छोड़े, अपना आधा जीवन दिया, उसी स्त्रीने उसके साथ ऐसे-ऐसे जाल किये, उसके प्राण-नाशमें भी कोई बात उठा न रखी। अब कहो, स्त्रियोंकी प्रीतिका क्या विश्वास किया जाय? किसीने ठीक ही कहा है—

एताः स्वार्थपरा नार्य्यः, केवलं स्वसुखे रताः।
न तासां वल्लभः कोऽपि, सुतोऽपि स्वसुखं विना॥

स्वार्थपरायणा स्त्रियाँ केवल अपना सुख ही चाहती हैं। अपने सुखके आगे उन्हें कोई भी प्यारा नहीं—यहाँ तक कि अपने पेटसे पैदा हुआ पुत्र भी प्यारा नहीं।

अच्छा और भी एक कहानी सुनः—

"किसी नगरमें एक वैश्य रहता था। वह अपनी स्त्रीको अत्यधिक प्यार करता था। उसके मित्रोंने कहा—'भाई! तुम अपनी स्त्रीका इतना विश्वास मत करो; स्त्रीकी प्रीतिका ज़रा

भी भरोसा नहीं। रूखी चीज़में चिकनाई हो, कठोर वस्तुमें नरमी हो और नीरसमें रस हो, तो स्त्रियोंमें प्रेम हो सकता है।

'मित्र ! तुम अपनी स्त्रीके झूठे प्रेममें पागल मत बनो। अगर मेरी बातपर विश्वास नहीं है, तो आज उससे विदेश जाने की बात कहो, पर जाओ कहीं नहीं; दिनभर मेरे घरमें रहो, रातको अपनी स्त्रीके पलँगके नीचे घुस जाओ और तमाशा देखो।'

उस वैश्यने अपने मित्रके कहनेके मुताबिक़ ही अपनी स्त्रीसे विदेश जानेकी बात कही। वह भी सुनते ही प्रसन्न हो गई और उसके लिए पूरी मिठाई प्रभृति बनानेमें लग गई। किसीने कहा है—

दुर्दिवसे घनतिमिरे वर्षातिजलदे महाटवी प्रभृतौ ।
पत्युर्विदेशगमने परमसुखं जघन चपलायाः ॥

घटाटोप दिन या बुरे दिनसे, गहरे अँधेरेसे, मेह बरसनेसे, महावनसे और पतिके परदेश जानेसे चपल जाँघोंवाली परपुरुषरता स्त्रियाँ बहुत खुश होती हैं।

बहुत क्या, वैश्य की स्त्रीने पूरी मिठाई बाँधकर पतिको विदा कर दिया। चलते समय कहा—'आप जल्दी आजाना। मुझे आपके बिना यह मनोहर शय्या काँटोंसे भरी मालूम होगी। रातभर नींद न आवेगी। खैर, काम है, इसलिए जैसे-तैसे दिन काटूँगी।'

पतिके चले जानेपर शामको उसने साबुनसे मल-मलकर खूब स्नान किया। नये-नये कपड़े और गहने पहने। कसकर पलँग तैयार किया और दूधके समान सफ़ेद चादर बिछाई। रातको उसका यार आया और पलँग पर बैठ गया। उधर वह वैश्य भी चिराग़ जलते ही, दूसरे द्वारसे आकर, पलँगके नीचे छिप गया। ज्योंही वह स्त्री पलँग पर चढ़ने लगी कि, उसका पैर खाटके नीचे छिपे हुए उसके पतिसे छू गया। वह फौरन ताड़ गई कि, दुष्ट पति मेरी परीक्षा लेनेके लिए यहीं छिपा है। अब कोई त्रिया-चरित्र करना चाहिये। ज्योंही उसका यार उसे आलिङ्गन करनेको तैयार हुआ, वह बोली—'हे महानुभाव ! आप मेरा शरीर न छूएँ। मैं पतिव्रता और महा सती हूँ। अगर छूओगे तो शाप देकर भस्म कर दूँगी'। ये बातें सुनतेही उसका यार बोला—'फिर तूने मुझे बुलाया ही क्यों है ? अगर सती थी, तो मुझे न बुलाती।' वह बोली—'सुनो, मैं आज देवीके दर्शन करने गई थी। देवी बोली—'पुत्री ! तू मेरी भक्त है, पर दुःख है कि तू आगामी छः महीनोंमें विधवा हो जायगी। हाँ, अगर तू आज रातको पर-पुरुषको बुलाकर उसे आलिङ्गन करे, तो तेरे पतिकी उम्र बढ़ जाय और उस पुरुषकी उम्र घट जाय। बस इसी मनोरथ-सिद्धिके लिए मैंने आपको बुलाया है।' नीचेसे अपनी स्त्रीकी बातें सुनकर वैश्य बोला—'धन्य ! पतिव्रते धन्य ! कुलका आनन्द वर्द्धन करनेवाली धन्य ! मैंने दुष्टोंकी बातोंमें आकर तेरी परीक्षा लेनी चाही थी। लेकिन तू तो पतिव्रताओंमें

मुख्य है। तूने पतिकी आयु बढ़ानेके लिए ऐसा घोर तप किया, जो परपुरुषके साथ आलिङ्गन करनेको तैयार हो गई! मेरा जैसा भाग्यवान् कौन है? आ! मेरे कन्धे पर चढ़जा।' फिर उस स्त्रीके यारसे कहने लगा—'हे महानुभाव! आप मेरे पूर्वजन्मके पुण्यसे आये हैं। आपकी कृपासे मेरी आयु बढ़ गई। आपको धन्यवाद है। आप भी मेरे कन्धेपर चढ़िये।' वह यार तो चढ़ना नहीं चाहता था, पर उसने उसे ज़बर्दस्ती चढ़ा लिया और दोनोंको कन्धोंपर लिये हुए नाचता फिरा। साथ ही उन दोनोंका गुणानुवाद भी करता रहा।

देखा बच्चा! स्त्रीमें कितनी तेज़ अक़्ल है। सरासर कुकर्म देखकर भी वैश्य शान्त हो गया; उल्टा अपनी स्त्रीकी बड़ाई करने लगा। यह सब वैश्यकी स्त्रीकी चतुराईका फल था। स्त्रियोंको जितनी जल्दी बात सूझती है, उतनी जल्दी पुरुषों को नहीं। इसीसे कहा है—

'भोजनं द्विगुणं स्त्रीणां, बुद्धिः कृत्ये चतुर्गुणा।
निश्चयः षड्गुणः पुंभ्यः, कामाश्चाष्टगुणः स्मृतः॥
स्त्रीणां द्विगुणाहारो, लज्जा चापि चतुर्गुणा।
साहसं षड्गुणञ्चैव कामाश्चाष्टगुणाः स्मृतः॥

(स्त्रियाँ मर्दोंकी अपेक्षा दूना खाती हैं। उनमें मर्दोंसे चौगुनी अक़्ल, छः गुना निश्चय और अठगुना काम होता है।)

स्त्रियोंमें पुरुषोंकी अपेक्षा दूनी भूख, चौगुनी शर्म, छः गुना साहस और अठगुना काम होता है।

उशना वेद यच्छास्त्रं यच्च वेद बृहस्पतिः।
स्त्री बुद्ध्या न विशिष्यंत्, तस्माद्रक्ष्याः कथं हि ताः॥

शुक्र और बृहस्पति जितने शास्त्रको जानते हैं, उतना स्त्रीकी बुद्धिके सामने कुछ भी नहीं है। फिर स्त्रियोंकी रक्षा की जाय, तो कैसे की जाय?

क्यों बच्चा सन्तोष हुआ या और भी सुनना चाहता है? अच्छा ले, एक बात और भी सुनाता हूँः—

जाटनी और नाइनका त्रिया चरित्र

"किसी नगरमें एक जाट रहता था। उसकी स्त्री कुलटा थी, पर उस बेचारेको यह बात मालूम नहीं थी। हाँ, उसके यार-दोस्त उसकी स्त्रीका हाल जानते थे। वह कहते—"यार! स्त्रीकी प्रीति किसी एकसे नहीं होती। स्त्री पर विश्वास करना बड़ी भूल है।" उसके दिलमें अपने मित्रोंकी बात जम गई। वह उसकी फिराक़ में रहने लगा। एक दिन उसने एक संन्यासीको अपने घर भोजन कराना चाहा, इसलिये वह उसे अपने घर लिवा लाया। स्त्रीसे कहा—तू महाराजकी सेवा कर, मैं बाजारसे खीर का सामान ले आता हूँ, क्योंकि महात्माजी कहते हैं—

अमृतं शिशिरे वह्निरमृतं प्रियदर्शनम् ।
अमृतं राजसम्मानममृतं क्षीरभोजनम् ॥

जाड़ेमें आग अमृत है, प्यारेका दर्शन अमृत है, राज-सम्मान अमृत है और खीरका भोजन अमृत है। इसलिये आज खीर ही बनेगी। देख, इधर-उधर मत टरख जाना। वह तो ऐसा कहकर चल दिया। उसके जाते ही स्त्री गहने-कपड़े पहनकर संन्यासी से बोली—'आप बैठिये, मैं अपनी सखीसे मिलकर अभी आती हूँ।' संन्यासीसे ऐसा कहकर वह चल दी। दैवयोगसे, राहमें उसका पति उसे मिल गया। उसने देखते ही कहा—'राँड ! मैं लोगोंकी बात झूठी समझता था। पर आज मालूम हुआ, कि उनकी बात सच है। चल, तुझे आज सजा दूँगा। ऐसा कहता हुआ, वह उसे अपने घर ले आया। घरमें आकर, उसे ख़ूब मारी-पीटी और कसकर एक खंभेसे बाँध दी। फिर अपने हाथोंसे ही पकाकर साधुको खीर खिलाई और आपने भी खूब शराब पीकर खीर खाई। फिर वह नशेमें सो गया।

आधी रात बीतने पर, जाटको सोता समझकर, उसकी एक सखी या दूती-नाइन उस स्त्रीके पास आकर कहने लगी—'देख, तेरा यार तेरे बिना मर रहा है! तू क्यों नहीं जाती?' उसने कहा—'देखती नहीं, इस हालतमें कैसे जाऊँ?' नाइन ने कहा—'कठिन स्थानमें जाकर जो स्वादु फल खाते हैं, उन्हींका

जन्म में, ऊँटोंकी तरह, सार्थक समझती हूँ। परलोकमें सन्देह है, जनापवाद चित्र-विचित्र होता है और दूसरेके साथ रमण करना अपने हाथ की बात है। जवानीके फल भोगनेवाली स्त्रीं ही धन्य है। दैवयोगसे, एकान्त स्थानमें, दूसरा कुरूप पुरुप भी मिल जाय, तो स्त्रीको चाहिये कि, अपने सुन्दर पतिको त्यागकर उससे रमण करे। मैं तेरी जगह बँध जाती हूँ, तू उसके पास जाकर उसकी इच्छा पूरी कर।' यह कहकर नाइनने उसे खोल दिया। फिर उस स्त्रीने नाइनको अपनी जगह बाँधकर यारके घरकी राह ली।

ज्योंही वह स्त्री गई कि, जाट जागा और गाली देता हुआ खंभेसे बँधी हुई स्त्रीके पास आया और उसकी नाक काट ली। नाइन कुछ न बोली। जाटने समझा कि, मैंने अपनी स्त्री की नाक काट ली है। थोड़ी देर बाद, वह स्त्री आई। उसने नाइनसे पूछा—'कहो सखी! ख़ैर तो है?' नाइनने कहा—'हाँ बहन! सब ख़ैर है, केवल नाक नहीं है।' फिर नाइन वहाँसे अपने घर चली गई और स्त्रीको वहीं बाँधती गई। तड़काऊ वह जाट फिर जागा और कहने लगा—'राँड, अभी तो नाक काटी है, अब कान काटता हूँ।' सुनते ही स्त्री बोली—'अगर मैंने कभी स्वप्नमें भी परपुरुषका ध्यान न किया हो, तो ईश्वर मेरी नाक जोड़ दे और यदि मैं कुलटा हूँ तो मुझे भस्म कर दे।' फिर थोड़ी देर बाद बोली—'अरे दुष्ट! देख! मेरी नाक फिर जुड़ गई; अब भी क्या मैं सती

नहीं हूँ ?' यह बात सुनते ही उसके पतिने आकर देखा, तो ज़मीन पर खून पड़ा पाया और नाक ज्यों-की-त्यों पाई। वह हज़ार जानसे अपनी स्त्रीकी तारीफें करने लगा। उधर वह महात्मा, जो चुपचाप पड़ा हुआ इस अद्भुत लीलाको देख रहा था, मन-ही-मन कहने लगा—

शम्बरस्य च या माया, या माया नमुचेरपि।
बलेः कुम्भीनसेश्चैव, सर्वास्ता योषिता विदुः॥

शम्बरकी, नमुचिकी, बलि और कुम्भीनस की जितनी माया है, उस सबको स्त्रियाँ जानती हैं।

अनृतं सत्यमित्याहुः, सत्यं चापि तथानृतम्।
इति यास्ताः कथं धीरैः, संरक्ष्याः पुरुषैरिहः॥

जो झूठको सच और सचको झूठ कहती हैं, धीर पुरुष, इस संसारमें, उनकी रक्षा कैसे कर सकते हैं?

नाति प्रसंगः प्रमदासुकार्यो,
नेच्छेद्बलं स्त्रीपु विवर्द्धमानम्।
आति प्रसक्तैः पुरुषैर्युतास्ताः,
क्रीडान्ति काकैरिव लूनपक्षैः॥

स्त्रियोंको जियादा मुँह न लगावे और उनका बल न बढ़ने दे, क्योंकि अति आसक्त हुए पुरुषोंसे वह पंखनुचे हुए कव्वेके समान खेलती हैं।

आगे चलकर नाईकी स्त्री अपने घर पहुँची। सवेरे ही नाई ने किसीकी हजामत बनानेके लिये उससे अपना उस्तरा माँगा। नाइन ने उस्तरा दूरसे फैंक मारा। यह देख, नाई ने भी क्रोधमें भर कर उस्तरा उसीकी तरफ फैंक मारा। बस, ऐसा होते ही नाइन चिल्लाने लगी—'अरे कोई मुझे बचाओ, मेरे पतिने मुझ निरपराधिनीकी नाक काट ली है।' लोग इकट्ठे हो गये। पुलिस नाईको पकड़ कर ले गई। राजाने नाईको शूली चढ़ानेकी आज्ञा दी। तब नाईको बेक़ुसूर मारे जाते देखकर, वह संन्यासी राजसभामें जाकर बोला—'महाराज! नाई बेक़ुसूर है। यह सब स्त्री-चरित्र है।' फिर संन्यासीने रातकी सारी घटना कह सुनाई। राजाने नाईको छोड़ दिया और स्त्री को जेलकी सज़ा दी।

संन्यासीकी कही हुई कहानियाँ सुनकर, मुझे उन पर अत्यन्त श्रद्धा हो गई। हम लोग सन्ध्या हुई देख, अपने-अपने घर जाना चाहते थे, कि इतनेमें संन्यासीकी पींठका कपड़ा हवासे उड़ गया। उनकी आदत थी, कि वे अपनी पीठ कभी किसीको न देखने देते थे। पीठ पर हर समय कोई कपड़ा रखते थे। आज पीठका कपड़ा उड़ जानेसे, मैंने उनकी पीठपर घावका एक भारी निशान देखा। मुझे उस चिह्नको देखकर कुछ कौतुहल-सा हुआ। मैंने हिम्मत करके पूछा—'महाराज! आपकी पीठपर यह कैसा दाग़ है? अगर हर्ज न हो, तो इसका भी वृत्तान्त कृपा करके मुझसे कहिये।' मेरी बात सुनते ही संन्यासी महाराज

सिहर उठे। उनका चेहरा पीला पड़ गया। उन्होंने मेरी बात उड़ाकर, पीठ फिर कपड़ेसे ढकली; पर मेरा मन उस चिह्नका कारण जाननेको अधीर हो उठा। सब आदमी चले गये, पर मैं रातके ग्यारह बज जानेपर भी न उठा, वहाँ बैठा ही रहा। जब एकान्त हो गया, तब मैंने फिर वही बात छेड़ी। संन्यासीने मेरा हठ देख कर कहा—

कोई दिलसोज़ हो तो कीजे बयाँ।
सरसरी दिलकी वारदात नहीं॥ हाली॥

भैया, कोई सहृदय हो तो दिलका हाल सुनावें। यह साधारण घटना नहीं, जो हर किसीको सुना दी जाय।

मुसीबतका, इक-इक से अहवाल कहना।
मुसीबत से है, वह मुसीबत ज़ियादा॥

जिस-तिससे अपनी मुसीबतकी कहानी कहते फिरना—मुसीबत से भी जियादा मुसीबत है।

मैंने कहा—"महाराज! मैं आपका हूँ। मैं आपके लिए जान देने तकको तैयार हूँ। आपकी कही हुई बात जीवन-भर मेरे ही अन्दर रहेगी। मेरे, आपके और ईश्वर के सिवा उसे और कोई न जानेगा। आप कृपा करके मुझसे सारी बात बेखटके कहिये।" तब महात्मा जी बोले—'अच्छा बच्चा! सुनोगे ही; बिना सुने न मनोगे? अच्छा, लो सुनोः—

संन्यासी की आत्म-कथा ।

मैंने एक धनी घरमें जन्म लिया था। छोटी ही उम्रमें, मुझे बचा छोड़कर, मेरे माँ-बाप स्वर्गको सिधार गये, पर मेरे लिए अच्छी खासी सम्पत्ति और आमदनी छोड़ गये। चूँकि मेरा जन्म शुक्ल-घरानेमें हुआ था, इसलिये मेरे जिजमान भी बहुत थे। हमारे यहाँ पुरोहिताई होती थी, जिजमानोंके यहाँ से .खूब धनधान्य मिलता था। हर तरह पौ बारह थे। पाँचों उँगली सदा घी में रहती थीं। मेरे बेहद आमदनी थी, तोभी, मैं धन बढ़ानेकी इच्छासे लैन-दैन या बोहरगत करता था। अड़ौस-पड़ौस मुहल्ले-टोले और दूर-दूरके गाँवोंके आदमियोंको मैं हैण्डनोट, तमस्सुक, और हुण्डी लिखा-लिखाकर सूद पर क़र्ज़ देता था। पुरोहिताईकी आमदनी तो थी ही, अब व्याजसे भी .खूब रुपया बढ़ने लगा। उस नगरमें मैं ही सबसे बड़ा धनी गिना जाने लगा। धनकी वजहसे मेरा रौब-दौब भी .खूब था। थोड़े दिनोंमें, मैं म्यूनिसिपैलिटीका चेयरमैन हो गया। सरकारने भी मुझे राय बहादुरीकी पदवी से विभूषित किया। ज़िन्दगी .खूब आरामसे बसर हो रही थी। .खुशामदी हर वक्त घेरे रहते थे। कह चुका हूँ, कि मेरे माँ-बाप मुझे छोटा ही छोड़कर मर गये थे, इसलिये अब तक मेरा विवाह न हुआ। यार-दोस्त और नाते-रिश्तेदार सभी मुझे शादी कर लेनेको दबाने लगे। कोई कहता, बिना स्त्रीके यह धन-

वैभव किसी कामका नहीं। घरवाली बिना घर कैसा ? कहा है:—

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
गृहं हि गृहिणीहीनमरण्यसदृशं मतम्॥
माता यस्य गृहे नास्ति, भार्या च प्रियवादिनी।
अरण्ये तेन गन्तव्यं, यथारण्यं तथा गृहम्॥

घरका नाम घर नहीं है; किन्तु स्त्रीका नाम घर है। गृहिणी-बिना घर वनके समान है।

जिसके घरमें माता नहीं है और मधुरभाषिणी स्त्री भी नहीं है, उसको घर छोड़कर वनमें चला जाना चाहिये; क्योंकि माता और स्त्री-हीन घर वनके समान है।

किसीने कहा "वराह मिहिरजी" कह गये हैं—

जये धरित्र्याः पुरमेव सारं
पुरे गृहं सद्मनि चैक देशः।
तत्रापि शय्या शयने वरा
स्त्रीरत्नोज्ज्वला राज्यसुखस्य सारः॥

कोई कहने लगा—

अपत्यं धर्मकार्य्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्चह॥

उत्पादनमपत्यस्य जातस्यपरिपालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षंस्त्रीनिबन्धनम् ॥

बच्चे जनना, धर्म-कार्य करना, बीमारीमें तीमारदारी करना, उत्तम रतिसुख एवं पुरखोंके और अपने लिए स्वर्गकी प्राप्ति—ये सब काम एकमात्र स्त्री पर ही निर्भर हैं।

स्त्री ही बच्चे जनती है, जनकर वही उन्हें पालती है और घरके तमाम काम वही करती है। सभी कामों में वही गृहस्थ की एक मात्र सहायता करनेवाली है।

भाई ! संसारकी उत्पत्ति ही स्त्री-पुरुषोंसे है। पितरोंका ऋण चुकानेके लिए सन्तति की दरकार है। बिना पुत्रके कुलका नाम नहीं चलता और पुत्र बिना स्त्रीके हो ही नहीं सकता, इसलिए आप को विवाह अवश्य करना चाहिये। लोगोंके समझाने-बुझानेसे मैं विवाह के लिए राज़ी हो गया। चूंकि मैं धनवान था, रूपवान था और कुलीन था, इसलिये एक उत्तम कुलीन की रूपवती कन्या मुझे मिल गई। यथा-विधि विवाह-कार्य सम्पन्न हो गया।

विवाह होनेसे पहले मेरे घरका काम नौकर-नौकरानियोंसे चलता था, पर स्त्रीने आते ही बरस दिनके भीतर सबको धता बताई। वह कहा करती थी—"मैं भी तो आपकी दासी ही हूँ। ऐसा कौनसा काम है, जिसे मैं नहीं कर सकती ? मैं सब काम कर सकती हूँ, फिर इनको रखकर धन नाश करनेकी

क्या दरकार ? सिर्फ दो मियाँ-बीवियों का खाना ही तो पकाना पड़ता है। मैं ब्राह्मणकी पुत्री और ब्राह्मणकी स्त्री हूँ; अगर मुझ से इतनासा काम भी न होगा, तो क्या होगा ? इतनी अमीरी और आराम-तलबी अच्छी नहीं। स्त्रीका दिनभर हाथ-पर-हाथ धरे बैठा रहना, अच्छा नहीं। बेकाम बैठे रहनेसे मनमें सौ तरह के बुरे खयालात पैदा होते हैं। इसीसे बड़े लोग बहूबेटियोंको कभी खाली बैठने नहीं देते। घरमें कुछ भी काम नहीं होता, तो चरखा ही कतवाते हैं।

'मैंने अँगरेजी तो नहीं पढ़ी है, पर हिन्दीकी पाँचवीं पुस्तकमें पढ़ा है कि, बैंजमिन फ्रैंकलिन महोदय कहा करते थे—"काहिली और घमण्डका टैक्स राजाओं और पार्लीमैण्टोंके लगाये हुए टैक्सोंसे कहीं बहुत जियादा भारी होता है (1)।" जीन पाल महाशयका कहना है कि, सुस्ती बहुतसी आपद-विपदोंका एक नाम है (2) अँगरेजोंमें एक कहावत है कि, बेकारी कमजोर-दिलोंकी पनाह और बेवकूफोंकी तातील है (3)। जर्मनीमें भी एक कहावत है कि, सुस्ती संसारमें सबसे भारी फिजूलखर्ची है (4) एनसेम महोदय कहते हैं,—"बेकारी जिन्दा आदमीकी गोर है (5)।" फ्रैंच कहते हैं—"आलस्य सारी बुराइयोंकी जड़ है (6)।" वर्टन साहब कहते हैं—'काहिली या बेकारी शरीफोंकी पहचान है, शरीर और मनका विप है, शरारतकी दाया है, तालीमकी सौतेली माँ है, हानियोंकी मुख्य जन्मदातृ है, सात भयानक पापोंमेंसे एक है, शैतानके आराम करनेका मुख्य गद्दा है।

एवं चिन्ता और खेद ही नहीं, इनके सिवा और औरभी बहुत-से रोगोंको बड़ा कारण है (7)।" स्पेनवाले कहते हैं, कि काहिली से दिलपर ज़ङ्ग लगता है (8)। अब आप ही कहिये कि, मुझे आलस्य त्यागना चाहिये या आलसी होना चाहिये। एमील महाशयने ठीक ही कहा है कि, स्त्रीके हाथमें ही कुटुम्ब की रक्षा और नाश है। मुझे हर तरह घरका पैसा बचाना चाहिये। इन्सान काम करनेकेलिए पैदा हुआ है। मौतके बाद आराम-ही-आराम है। देखिये मौलाना हालीने क्या कहा है:—

---

1. Idleness and pride tax with a heavier hand than kings and parliaments. *Ben. Franklin.*

2. Idleness is many gathered miseries in one name. *Jean Paul.*

3. Idleness is only the refuge of weak minds and the holiday of fools. *Pr.*

4. Idleness is the greatest prodigalty in the world. *Ger Pr.*

5. Idleness is the sepulchre of a living man. *Anselm.*

6. Idleness is the root of all evils. *Fr. Pr.*

7. Idleness is the badge of gentry, the bane of body and mind, the nurse of naughtiness, the stepmother of discipline, the chief author of mischief, one of the seven deadly sins, the cushion on which the devil chiefly reposes and a great cause not only of melancholy but of many other diseases. *Burton.*

8. Idleness rusts the mind. *Sp. Pr.*

फ़राग़त से दुनियामें, दम भर न बैठो।
अगर चाहते हो, फ़राग़त ज़ियादा॥
है जानके साथ, काम इन्साँके लिये।
बनती नहीं ज़िन्दगीमें, बेकाम किये॥
जीते हो तो कुछ कीजिये, ज़िन्दों की तरह।
मुर्दों की तरह जिये, तो क्या ख़ाक जिये ?॥

अगर आप चाहते हैं कि, हम आरामसे रहें, तो दम-भर भी ख़ाली मत बैठो—क्षणभर भी बेकार मत रहो।

आदमीकी जानके साथ काम लगा हुआ है। ज़िन्दगीमें बिना काम किये काम नहीं चलता।

जीते हो तो ज़िन्दोंकी तरह काम भी करो। मुर्दोंकी तरह जीनेसे क्या फ़ायदा ?

मैं अपनी बीबीकी पाण्डित्य-पूर्ण बातें सुनकर दंग हो गया। आज मुझे मालूम हुआ कि, मेरी पत्नी कोरी रूपवती ही नहीं—पूर्ण विदुषी और गुणवती है। ऐसी सुलक्षणा स्त्री पानेसे मैं अपने तईं भाग्यवान् समझने लगा। हाँ, इतना ज़रूर हुआ कि, पुराने नौकरोंके विदा करते समय, मेरे दिलमें एक तरहकी वेदना हुई, पर धीरे-धीरे इन बातोंको भूल गया। फिर भी; उनमेंसे यदि किसीको मैं कष्ट पाते देखता, तो अपने यहाँसे खानेको आटा दाल वगैरः दिलवा दिया करता, क्योंकि मेरे यहाँ इन चीज़ोंकी कमी नहीं थी।



मेरी स्त्री सवेरे ही मुझसे बहुत पहले उठती, घरको साफ़ करती, बर्तन मलती, चीज़ोंको यथास्थान रखती, समय पर सुन्दर सुस्वादु भोजन बनाती, मुझे बड़े स्नेहसे परोसकर खिलाती, रातको मेरे पाँव दाबती और जब तक मेरी आँख न लगती, पाँव दाबती ही रहती। बहुत क्या, वह मुझे हर तरहसे सन्तुष्ट रखती थी। दिन-पर-दिन-उसकी श्रद्धा-भक्ति मुझमें बढ़ती ही जाती थी। इसलिए मुझे भी उस पर मुग्ध होना पड़ा। पति-प्राणा और सती-साध्वी स्त्री पाकर कौन प्रसन्न नहीं होता? कौन अपने भाग्य की सराहना नहीं करता?

यद्यपि स्त्रीके मुँह-सामने स्त्री की तारीफ़ करना नीतिकारोंने बुरा कहा है, तोभी जब-कभी उस की सेवासे मेरी अन्तरात्मा बहुत ही प्रसन्न और सन्तुष्ट हो उठती, मैं उसके सामने ही उस की बड़ाई करने लगता। मेरी प्रशंसापूर्ण बातें सुनकर वह सिर नीचा कर लेती और कहती—"पतिदेव! आप मेरे परमेश्वर हैं। मेरा तन-मन-धन सर्वस्व आप पर निछावर है। हमारे भारतमें ही सीता, सावित्री, द्रौपदी, दमयन्ती और गान्धारी प्रभृति अनेकों प्रातःस्मरणीया पतिव्रताएँ होगई हैं, उनके मुक़ाबलेमें मैं तुच्छ हूँ। मैं आप की क्या सेवा करती हूँ? स्त्रीका धर्म ही पति-सेवा है।" गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है:—

एकै धर्म एक व्रत नेमा।
काय-बचन-मन पतिपदप्रेमा॥

स्त्री का एक ही धर्म, एक ही व्रत और एक ही नेम है कि, वह काय, वचन और मन से पति के चरणों में प्रेम रखे।

"पराशर संहिता" में लिखा है—

दरिद्रं व्याधितं मूर्खं भर्त्तारं यावमन्यते।
सा मृता जायते व्याली, वैधव्यं च पुनः पुनः॥

जो स्त्री अपने दरिद्री, रोगी और मूर्ख पति की भी अवज्ञा करती है, वह मरने पर साँपिन होती और कितने ही जन्मों तक उसे विधवा होना पड़ता है।

"मनुसंहिता" में लिखा है—

वैवाहिको विधिः स्त्रीणाम्, संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौवासो गृहार्थोऽग्निपरिष्क्रिया॥

स्त्रियों के लिये विवाह ही उनका वैदिक संस्कार है, पति की सेवा ही उनके लिये गुरु-कुलवास है और घरके धन्धे करना ही अग्निहोत्र है।

और भी :—

भर्त्ता देवो गुरुर्भर्त्ता, धर्म तीर्थ व्रतानि च।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य, पतिमेकं समर्चयेत्॥

स्त्री अपने पति ही को देवता, पतिको ही गुरु, पतिको ही धर्म और पति को ही व्रत समझे,—सबको छोड़कर केवल एक पतिको ही पूजे।

नास्ति स्त्रीणां पृथक् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम् ।
पतिं शुश्रूषते येन, तेन स्वर्गे महीयते ॥

शास्त्रोंमें स्त्रियोंके लिए यज्ञ, व्रत और पूजा—उपासना की आज्ञा नहीं है। केवल पति-सेवासे ही उन्हें स्वर्ग मिलता है।

"पञ्चतंत्र" में लिखा है—

न सा स्त्रीत्यभि मन्तव्या यस्यां भर्त्ता न तुष्यति ।
तुष्टे भर्त्तरि नारीणां तुष्टा स्युः सर्वदेवताः ॥

उसे स्त्री न समझो, जिससे कि उसका स्वामी ख़ुश नहीं रहता। पति के प्रसन्न होने से स्त्री पर सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं।

दावाग्निना विदग्धेव सपुष्पस्तबकालता ।
भस्मी भवतु सा नारी यस्यां भर्त्ता न तुष्यति ॥

जिस तरह फूल और फलोंके गुच्छेवाली लता दावाग्निसे भस्म हो जाती है; उसी तरह वह स्त्री नष्ट हो जाती है, जिसका पति प्रसन्न नहीं होता।

मितं ददाति हि पिता, मितं भ्राता मितं सुतः ।
अमितस्य हि दातारं भर्त्तारं को न पूजयेत ॥

पिता परिमित सुख देता है, भाई परिमित सुख देता है। लेकिन पति अमित सुख देता है, इसलिये अमित सुख देनेवाले भर्त्ता की पूजा किसे न करनी चाहिए?

उस दिन मैं अपनी प्यारी बीबीकी तक़रीर सुनकर दिलो-जानसे .खुश हो ही गया था; आजकी तकरीर सुनकर मैं और भी सन्तुष्ट हुआ। बेसाख़्ता मेरे मुँहसे "पञ्चतंत्र" का यह श्लोक निकल गया:—

पतिव्रता पतिप्राणा पत्युः प्रियहितेरता।
यस्य स्यादीदृशी भार्य्या धन्यः स पुरुषो भुवि ॥

जिसकी स्त्री पतिव्रता है, पतिप्राणा है, पतिके प्रिय और हितमें तत्पर है, वह पुरुष पृथ्वी पर धन्य है।

मैं ऐसी पतिव्रता का मिलना अपने पूर्व जन्मके पुण्योंका फल समझता था। मैं मन-ही-मन कहा करता था कि, यह स्त्री अवश्य ही मेरी पूर्वजन्मकी स्त्री है, तभी तो मुझे इतना चाहती है। कहा है—

सती च योषित प्रकृतिश्च निश्चला
पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि ॥

सती स्त्री और निश्चल प्रकृति जन्म-जन्मान्तरमें भी पुरुषके साथ रहती हैं। यही बात ठीक है। निश्चय ही यह मेरी पहले ज़न्मकी भार्या है।

यों तो वह जिस दिनसे मेरे घरमें आई थी, उसी दिनसे मैं उस की .खूब ख़ातिर करता था। वह जो कहती थी, सोई करता था; जो मँगाती थी, सोई ला देता था। लेकिन अब उस की

श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, स्नेह, पाण्डित्य और विद्वत्ता आदि अपूर्व गुणोंका परिचय पाकर उसका क्रीतदास ही हो गया। मुझपर मनु महाराजके निम्नलिखित श्लोकोंका बड़ा प्रभाव था:—

यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रिया: ॥
जामयो यानि गेहानि शपन्तयप्रतिपूजिता: ।
तानिकृत्याहतानीव विनश्यन्तिसमन्तत: ॥
तस्मादेता: सदा पूज्या भूपणाच्छादनशनै: ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेपूत्सवेपु च ॥

जिन घरोंमें स्त्रियोंका आदर होता है, उन घरोंपर देवताओं की कृपा रहती है। जहाँ स्त्रियोंका आदर नहीं होता, वहाँ देवताओंके नाराज रहनेसे सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं।

जिस घरमें स्त्रियोंका निरादर होता है, उस घरकी स्त्रियाँ दुखित होकर शाप दे देती हैं। उनके शाप या बद्दुआसे वह घर इस तरह नष्ट हो जाता है, मानों किसीने विप देकर सबको मार डाला।

इसलिए, जो पुरुप समृद्धि चाहते हों, उन्हें चाहिये कि नित्यप्रति उत्सव प्रभृतिके समय गहने, कपड़े और खाने-पीनेके पदार्थोंसे स्त्रियोंकी पूजा करें—उनका सत्कार करें।

मैं अक्षर-अक्षर मनुमहाराजकी आज्ञा पर चलता था। घरमें सोने-चाँदीके जेवर तो पहलेसे ही थे। अब मैंने दीवालीके

त्योहार पर, उसे कोई दो लाखके मोतियोंकी माला, हीरे पन्नेका हार और हीरेका काँटा प्रभृति अमूल्य गहने ला दिये। इतना ही नहीं, अपना सारा रुपया-पैसा उसके हाथमें देकर निश्चिन्त हो गया। आजकल मेरे दिन वड़े ही आनन्दमें कट रहे थे।

एक दिन मैं अपने मित्रोंके साथ वैठकर हुक्का पी रहा था। वातों-ही-वातोंमें, मेरे मुँहसे अपनी स्त्री की तारीफ़की वातें निकल गईं। मैंने कहा—"भाइयो, मेरी स्त्री स्वर्गकी देवी और वड़ी ही सती-साध्वी है। आजकल मुझे इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग दीख रहा है। मुझे घरद्वार कहीं की फिक्र नहीं—मैं अपने सारे काम तुम्हारी भौजाईके हाथोंमें सौंप कर वेफिक्र हूँ।" एक मित्रने मेरी वात काट कर कहा—"शुक्लजी, घरसे एक-दम लापर्वा रहना अक़्लमन्दी नहीं। थोड़ा वहुत ख़याल रक्खा करो। शास्त्रमें लिखा है:—

वृहस्पतेरपि प्राज्ञो न विश्वासे व्रजेन्नरः।
य इच्छेदात्मनो वृद्धिमायुष्यञ्च सुखानि च॥

जिस वुद्धिमानको अपनी आयु और सुखकी वृद्धिकी इच्छा हो, उसे देवगुरु वृहस्पतिका भी विश्वास न करना चाहिये।

विश्वास तो किसीका भी न करना चाहिये, जिसमें स्त्रीका विश्वास तो किसी हालतमें भी न करना चाहिये। कहा है:—

नदीनां च नखीनां च शृङ्गिणां शस्त्रपाणिनाम् ।
विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषुराजकुलेषुच ॥

नदीका, नाखूनवाले पशुओंका, सींगवाले जानवरोंका, हथियार बाँधनेवालोंका, स्त्रीका और राजकुलका विश्वास हरगिज न करना चाहिये ।

महाराजा 'भर्तृहरि' ने भी कहा है:—

को वा वीचिषु बुद्बुदेषु च ताडिल्लेखासु ।
च स्त्रीषु च ज्वालाग्रेषु च पन्नगेषु च सरिद्वेगेषु च प्रत्ययः ॥

जलकी तरंग, बुलबुले, बिजली, स्त्रीलोग, आगकी शिखा, साँप और नदीके प्रवाह में विश्वास करना सर्वथा अनुचित है ।

मैंने कहा—"मित्रवर ! आपकी बातको मिथ्या और असंगत नहीं कहता, पर पाँचों उँगलियाँ समान नहीं होतीं; संसारकी सभी औरतें बदकार और व्यभिचारिणी नहीं हैं। इस जगत्में पिंगलासी कुलटा भी हैं और सीता सावित्रीसी सती भी हैं। जिस तरह मर्द भले और बुरे दोनों तरहके हैं; उसी तरह स्त्रियाँ भी नेक और बद हैं। मैंने कामशास्त्र पढ़ा है। मुझे सती और असती स्त्रियोंकी पहचान मालूम है। मैंने आपकी भाभीको ख़ूब देख लिया है। वह सौ टञ्चका खरा सोना है।" मेरी बातें सुनकर वह चला गया, कुछ न बोला;

साल भर चैनसे कट गया। इस बीचमें किसीने कुछ भी शिकायत न की।

एक दिन गाँवके कई आदमियोंके साथ मैं दो-तीन कोस पर मेलेमें गया। हमलोग वहाँसे लौटे आ रहे थे, कि एक और मित्रने कहा—"भाई स्त्री-जाति बड़ी ही चालाक है। उसकी मायाको समझना बड़ा कठिन काम है। स्त्रीके दिलमें क्या है, इस बातको देवता भी नहीं जानते, पुरुषकी तो ताक़त ही क्या है, जो उसके मनकी जाने। स्त्री कितनी ही भक्ति क्यों न दिखावे, कितना ही प्यार क्यों न करे, उसे सदा सन्देहकी नज़रसे देखना चाहिये। मैं समझता हूँ, मेरी स्त्री जैसी पतिव्रता है, संसारमें और नहीं हैं। अहा! कैसी अच्छी बातें हैं! कैसा स्वर्गीय प्रेम है! हम दोनोंका कैसा मेल है! लेकिन भाई यह हमेशा याद रखो, कि रोशनीके नीचे ही अँधेरा रहता है। जिसके हाथोंमें चिराग़ है, वह कुछ नहीं देख सकता; बल्कि दूसरे ही देख सकते हैं कि, कहाँ ऊँचा है और कहाँ नीचा है। भाई! साफ़ बात कहनेके लिए क्षमा करना। लोग तुम्हें निरा औरतका ग़ुलाम कहते हैं। सुनते हैं, आपके घरमें कुछ गोल-माल है। परमात्मा करे, यह बात क़तई झूठी हो; लेकिन तुम्हें होशियार अवश्य रहना चाहिये। एक बात और है, अपने तईं जो प्यार करे, उसकी कभी न कभी परीक्षा जरूर करनी चाहिये। भगवान् सबके दिलोंकी भीतरी बातोंको जानते हैं, तो भी अपने भक्तोंकी परीक्षा लिया करते हैं। बिना

परीक्षा तुम कैसे समझ सकते हो कि, तुम्हारी स्त्री तुम्हें प्यार करती है या धोखा देती है। अगर तुम्हारा यह खयाल है, कि मैं हृष्टपुष्ट और बलिष्ट हूँ, मेरी स्त्री मुझसे अवश्य सन्तुष्ट होगी,—तो यह आपकी भूल है। सुनिये शास्त्रकारोंने कहा है:—

नाग्निस्तृप्याति काष्ठानां, नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां, न पुंसां वामलोचना ॥१॥

काकेशौचं द्यूतकारे च सत्यं,
सर्पेक्षान्तिः स्त्रीपुकामोपशान्तिः।
क्लीवे धैर्य्यं मद्यपे तत्वचिन्ता,
राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ? ॥२॥

यदन्तस्तन्न जिह्वायां यज्जिह्वायां न तद्बहिः।
यद्बहिः तन्न कुर्वन्ति विचित्रचरिताः स्त्रियः ॥३॥

अन्तर्विषमया ह्येता बहिश्चैव मनोरमाः।
गुञ्जाफलसमाकाराः स्वभावादेवयोषितः ॥४॥

तडिता अपि दण्डेन शस्त्रैरपि विखण्डिताः।
न वशं योषितो यान्ति न दानैर्नचसंस्तवैः ॥५॥

काठोंसे आगकी तृप्ति नहीं होती, नदियोंसे समुद्रकी तृप्ति नहीं होती, सारे ही जीवोंसे कालकी तृप्ति नहीं होती और पुरुषों से स्त्रियोंकी तृप्ति नहीं होती।

कव्वेमें पवित्रता, ज्वारीमें सच, सर्पमें क्षमा, स्त्रीमें कामकी शान्ति, नपुंसकमें धीरज, शराबीमें तत्त्वविचार और राजामें मित्रता—ये बातें न किसीने सुनी· न देखीं।

जो स्त्रीके भीतर है वह उसकी जीभ पर नहीं है, जो जीभ पर है वह बाहर नहीं है। विचित्र चरित्रवाली स्त्रियोंसे भलाई नहीं होती।

स्त्रियाँ स्वभावसे ही चिरमिटीके फलकी तरह भीतरसे जहरीली और बाहरसे मनोहर होती हैं।

सोटेसे मारनेसे, तलवारसे टुकड़े-टुकड़े कर देनेसे, और तारीफ करनेसे—किसीसे भी स्त्री वशमें नहीं होती।

मित्रवर! तुम तो कौन चीज हो, बड़े-बड़े बलवान भी स्त्रियोंके आगे कायर हो जाते हैं। वह चाहती हैं सो करते हैं और माँगती हैं सो देते हैं। महाराजा भर्तृहरि और पिंगला की बात क्या नहीं सुनी? कहा है;—

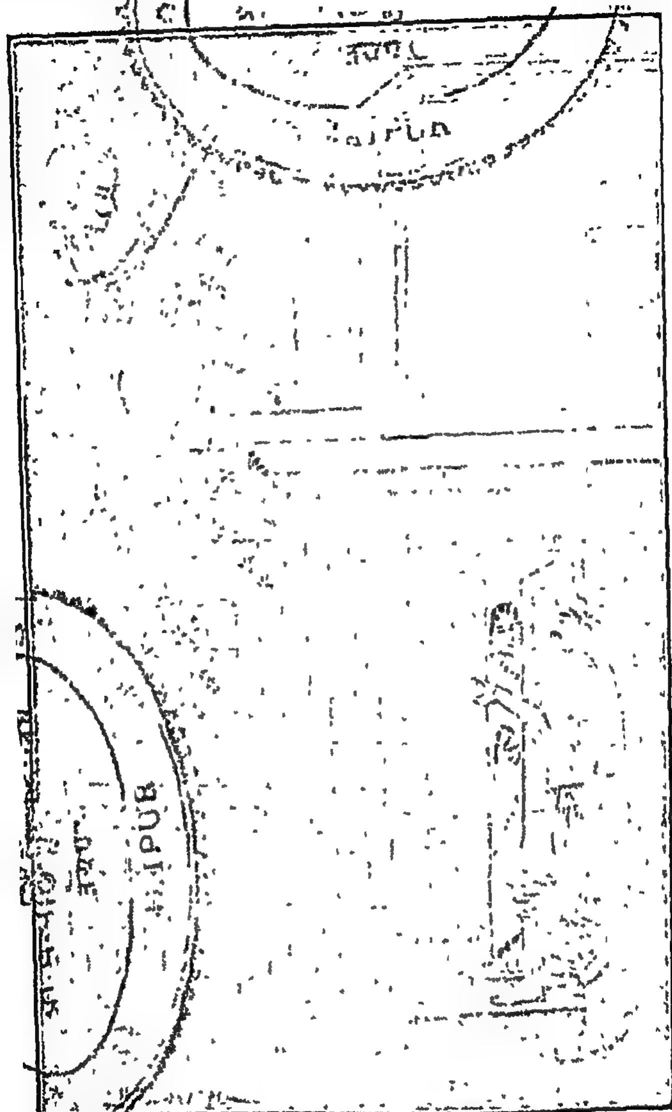
व्याकीर्णकेशरकरालमुखा मृगेन्द्रा
नागाश्चभूरिमदराजिविराजमाना:।
मेधाविनश्च पुरुषा: समरेषु शूरा:
स्त्रीसन्निधौ परम कापुरुषा भवन्ति ॥

न किं दद्यान्न किं कुर्य्यात्स्त्रीभिरभ्यार्थितोनर:।
अनश्वा यत्र हेषन्ते शिर: पर्वणिमुण्डितम् ॥

बिखरे हुए अयालोंवाला भयंकर-मुखी केशरी—सिंह, अत्यन्त मदमत्त हाथी, बुद्धिमान और समर-शूर पुरुष भी स्त्रीके सामने परम कायर—डरपोक हो जाते हैं।

स्त्रीके चाहनेसे पुरुष क्या नहीं दे देता और कौनसा काम नहीं कर बैठता ? स्त्रीकी इच्छासे, पुरुष घोड़े न होने पर भी, घोड़ेकी तरह हींसते और अपनी पीठ पर नारीको चढ़ाकर चलते हैं तथा पर्वके दिन—सिर मुँडानेकी मुमानियत होने पर भी—सिर मुँडाकर स्त्रीके चरणोंमें गिरते हैं।

भाई ! स्त्री जब पुरुषको अपने क़ाबूमें कर लेती है, तब उसे मदारीके बन्दर की तरह इच्छानुसार नचाती है । पुरुष भी, कार्य-अकार्यका ज्ञान गँवाकर, उसकी इच्छा पर चलता है। ख़ैर, बहुत हुआ; आप एक बार मेरे अनुरोधसे भाभीकी परीक्षा अवश्य करें।।" यह कह वह अपने घर चला गया। मैंने भी विचार किया, तो उसकी बातें ठीक जान पड़ीं। भगवान् सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं। वे प्राणिमात्रके घटघटकी जानते हैं। उनसे कुछ भी छिपा नहीं है, इसवास्ते उन्हें अपने भक्तोंकी परीक्षा करनेकी जरूरत नहीं; फिर भी; वे उनकी परीक्षा करते हैं और जो भक्त उनकी परीक्षामें पास या उत्तीर्ण हो जाते हैं, उन्हें वे अपना दास बनाते और सब तरहसे सुखी करते हैं। फिर; मैं भी भगवान् की तरह अपनी स्त्रीकी परीक्षा क्यों न करूँ ? परीक्षा करने में हानि ही क्या है ? परीक्षाका फल मेरे बड़े काम आयेगा। अगर खरा सोना निकला, तो मैं अपने प्यार की मात्रा



मैं पेड़ पर बैठाही था, कि इतने में किसी ने आकर खिड़की के किवाड़ खटखटाये और धीरे से कहा—'करुणा ! किवाड़ खोल।' करुणा मेरी स्त्री का नाम था। करुणा ने आकर दरवाज़ा खोल दिया। तब उस आगन्तुक ने कहा—'मैं थोड़ी देर में नशेपत्ते से टिचन होकर आता हूँ। तुम खाने पीने का इन्तज़ाम करो।'

औरभी बढ़ा दूँगा। लोग भी फिर इस तरह की दिल बिगाड़ने-वाली बातें न बनायेंगे। भगवान् रामचन्द्र जानते थे कि, सीता एकदम निर्दोष है, खरा सोना है; चन्द्रसा कलङ्की है, पर सीता निष्कलङ्क है। इतने पर भी, उन्होंने सीताकी अग्नि-परीक्षा की। उसका नतीजा अच्छा ही हुआ। सीताका और उनका—दोनोंका ही मुँह संसारके सामने उज्ज्वल हुआ। मैं भी वैसा ही क्यों न करूँ?

इस तरह सोच-विचारकर, एक दिन मैंने अपनी स्त्रीसे कहा—"आज मुझे बड़ा जरूरी काम है। वह काम बिना बाहर जाये हो नहीं सकता।" वह मेरी बात सुनते ही मेरे गले लगकर जार-जार रोने लगी और कहने लगी—"स्वामिन्! आपका एक क्षणभरका वियोग भी मैं सहन नहीं कर सकती। आपके बिना मेरा जीवन ख़तरेमें समझिये। आप मुझे छोड़कर कहीं न जाइये।" उसका उस समयका रोना-कलपना देखकर मेरा दिल कमजोर होने लगा। मैं मन-ही-मन कहने लगा—'हाय! मैं ऐसी सतीको वृथा क्यों दुःख दे रहा हूँ? लोगोंकी ऊल-जलूल बातोंमें आकर, मैं क्यों अपने सुखको मिट्टी कर रहा हूँ? अचल हिमालय चलायमान हो तो हो सकता है, सुमेरु अपने स्थानसे डिगे तो डिग सकता है, सूर्य पूरबकी जगह पच्छिममें उगे तो उग सकता है, समुद्र अपनी मर्य्यादा उल्लङ्घन करे तो कर सकता है, अग्नि अपनी दाहक शक्ति त्यागे तो त्याग सकती है; पर मेरी यह प्राणप्यारी असती या कुलटा

नहीं हो सकती। मैं ऐसे ही विचारोंमें ग़ोते खा रहा था कि; अन्दरसे मेरी अन्तरात्माने कहा—'कदाचित तुम्हारा ख़याल ठीक हो, पर परीक्षा कर लेनेमें ही कौनसा हर्ज है? एक बार परीक्षा कर लेनेसे सदाको वहम मिट जायगा। मैंने स्त्रीसे कहा —"काम ज़रूरी न होता, तो मैं तुम्हें इतनी तकलीफ़ न देता। इस बार मुझे जाने दो, भविष्यमें कहीं न जाऊँगा।" उसने कहा—"तुम्हारे बिना मैं रातभर अकेली कैसे रहूँगी? मुझे घर खानेको दौड़ेगा। अपने एकमात्र आश्रय तुम्हें छोड़कर मैं कैसे जीऊँगी? तुम्हारे बिना मुझे एक पल प्रलयके समान मालूम होता है।" यह कहते-कहते वह फिर फूट-फूटकर रोने लगी। उसकी कमल-सी आँखोंसे गङ्गा-जमुनाकी-सी धारें बहने लगीं। आँसुओंके मारे उसका आँचल और मेरा कुर्त्ता तर हो गये। मैंने कहा—"बिना जाये काम न चलेगा, बड़ा नुक़सान होगा। अब मेरे दिलको कच्चा न करो। श्यामा की माँसे कहे जाता हूँ। वह आकर रातको तुम्हारे पास सो रहेगी।" उसने कहा—"नहीं, नहीं, मैं आपका नुक़सान नहीं चाहती, आपका नुक़सान भी तो मेरा ही नुक़सान है। लाचारी है। आप चिन्ता छोड़िये। श्यामाकी माँको मैं ही बुला लूँगी। आप भगवान्‌का नाम लेकर यात्रा कीजिये। देखो, राह-बाटमें सब तरहसे होशियार रहना।"

मैं उसे दम-दिलासा देकर घरसे बाहर निकल गया। उस समय सन्ध्याके पाँच-साढ़े-पाँच बजे होंगे। थोड़ा-सा दिन

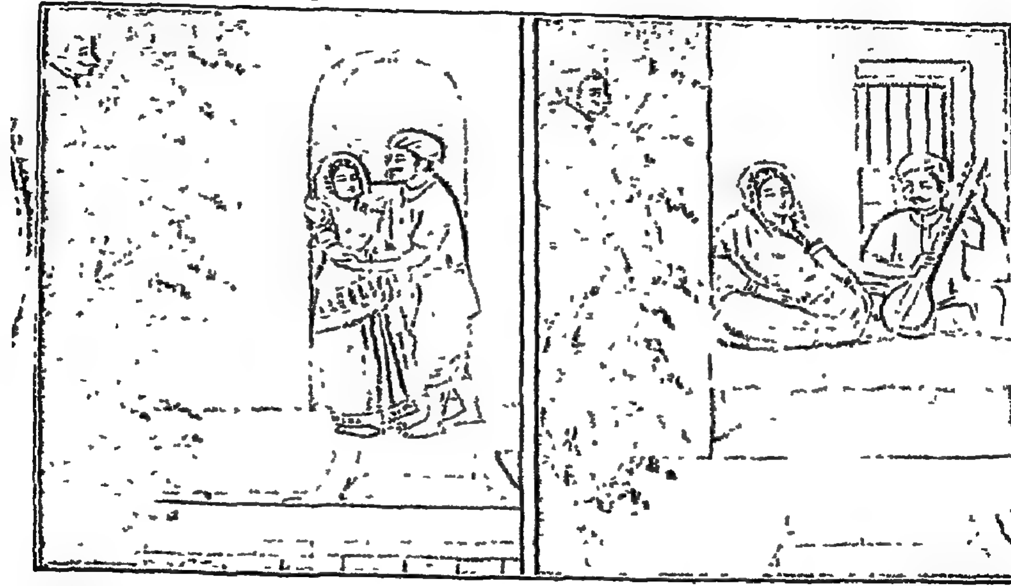
बाक़ी था। कुछ रात होने तक, मैं इधर-उधर फिरता रहा। ज्योंही अन्धकारका पूर्ण राज्य हो गया, हाथको हाथ न सूझने लगा, मैं अपनी खिड़कीके सामने खड़े हुए इमलीके पेड़पर चढ़ गया। ध्यान रहे कि, मेरे घरके चारों तरफ़ एक चहारदीवारी थी। उस वृक्षसे मेरे घरका क़रीव-क़रीव वहुतसा हिस्सा दिखाई देता था। मैं पेड़ पर बैठा ही था कि, इतनेमें किसीने आकर खिड़कीके किवाड़ खटखटाये और धीरेसे कहा—"करुणा! किवाड़ खोल।" आनेवालेकी आवाज़ मेरी जानी हुई सी मालूम हुई। करुणा मेरी स्त्रीका नाम था। करुणाने आकर दरवाजा खोल दिया। तब उस मर्दने कहा—'मैं थोड़ी देरमें नशे-पत्तेसे टिचन होकर आता हूँ। तुम खाने-पीनेका इन्तज़ाम करो।'

यह कहकर वह आदमी चला गया। करुणा खिड़कीके किवाड़ बन्द करके, रसोईकी धुनमें लगी। सड़कपर सामने लालटेन जल रही थी। जब वह लालटेनके नजदीक पहुँचा, तब मैंने रोशनीमें उसका चेहरा देखकर पहचान लिया। वह और कोई नहीं; हमारे पाड़ेका चौकीदार था। वह कभी-कभी मेरे घर आया-जाया करता था।

'खाने-पीनेका इन्तज़ाम करो'—इस फ़िक़रेको सुनते ही मेरे रोंगटे खड़े हो गये। शरीर थर-थर थर-थर काँपने लगा। ज़मीन घूमती हुई मालूम होने लगी। आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। ऐसा मालूम होने लगा, मानो मैं अभी पेड़से नीचे

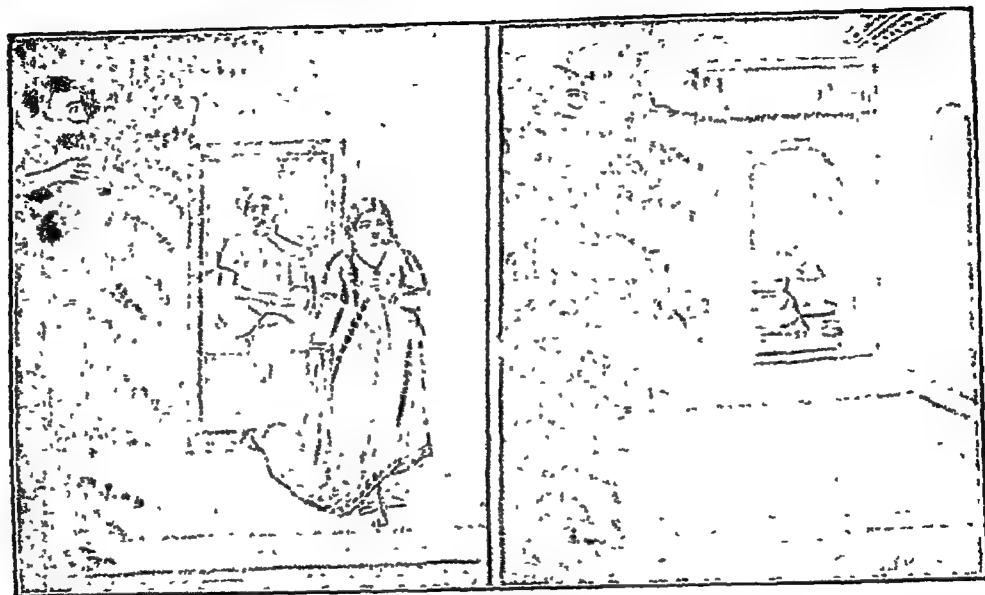
गिर पड़ूँगा। थोड़ी देरमें अपने दिलको मजबूत करके, मैं सम्हल बैठा और निश्चय किया कि, देखना चाहिये, आगे क्या होता है। कोई दो घण्टे बाद उसी चौकीदारने आकर फिर आवाज़ दी। आवाज़ सुनते ही करुणा दौड़ी आई और दरवाज़ा खोल दिया। दरवाज़ा खुलते ही, उसने करुणाको गोदमें उठा, उसका मुँह चूम लिया। इतना ही नहीं; उसने द्वार पर ही उसे ज़ोरसे छातीके चिपटा लिया और बोसे-पर-बोसे लेने लगा। फिर वह उसे गोदमें लिये हुए ही घरके भीतर दाखिल हो गया। मैं अन्दाज़ से समझ गया कि, दोनों मेरे पलँग पर जा बैठे हैं। कुछ देरमें उनकी धीरे-धीरे आनेवाली आवाज़से मालूम हुआ कि, मज़ेमें गाना गाया जा रहा है। कभी-कभी हँसी-मज़ाक़ भी होता है। ऐसा मालूम होता था, मानों दोनों बेखटके हैं। उन्हें ज़रा भी डर या ख़ौफ़ नहीं है।

इधर खिड़की तो बन्द कर दी गई, पर जल्दीमें साँकल बन्द नहीं की गई। उस समय मेरी बुरी हालत थी, क्रोधके मारे काँप रहा था। दिलमें इतना जोश आया कि, उसी समय उनके सामने जाकर खड़े हो जानेकी इच्छा होने लगी; पर अक़्ल कहती थी, ज़रा धीरजसे काम लो। इसलिए मनको रोक कर कहा—'ओह! यह तो परले सिरेकी व्यभिचारिणी है, कुलटा है, नीच है, दग़ाबाज़ है, बेवफ़ा है। इस पर क्रोध करने-से क्या फ़ायदा? पिसेको पीसनेसे क्या लाभ? जो हो गया



उसने द्वार पर ही उसे ज़ोर से छाती से चिपटा लिया और बोसे पर बोसे लेने लगा। फिर वह उसे गोद में लिये हुए ही घर के भीतर दाखिल हो गया। कुछ देर में, उनकी धीरे-धीरे आनेवाली आवाज़ से मालूम हुआ कि मज़े में गाना गाया जा रहा है।



कुछ देर बाद देखा कि करुणा बाहर की तिदरी में आकर खड़ी है, उसके सिर के बाल बिखर रहे हैं और धोती बिलकुल खुली हुई है। उसने मेरे हुक्के में तमाखू चढ़ाई और उसे भीतर दे आई ; फिर वह रसोई में घुसी ।

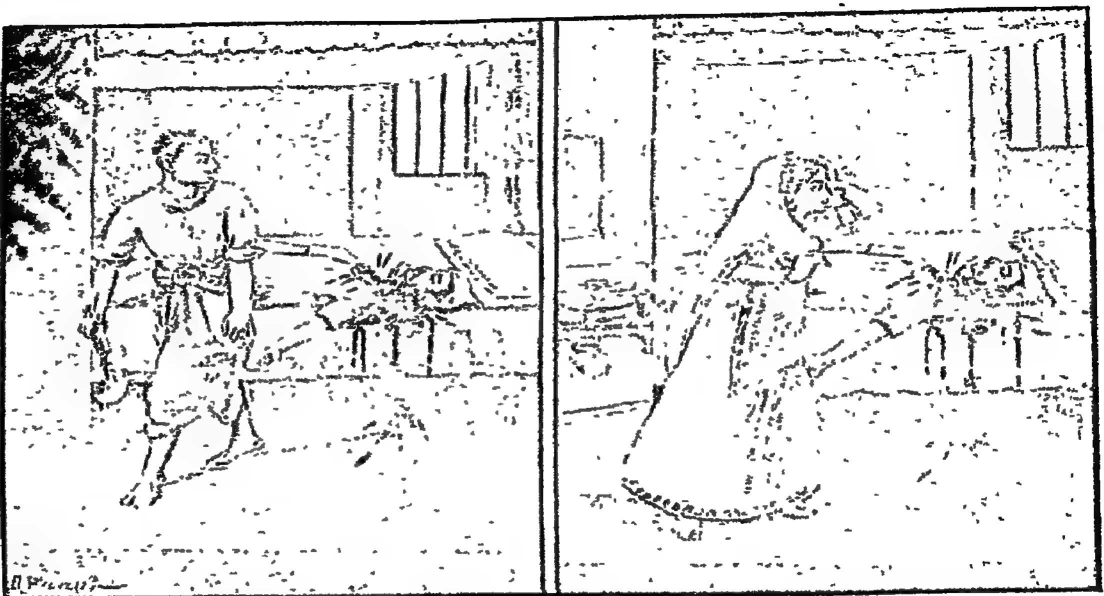
है, वह तो अब मिट नहीं सकता। अगर यह आज पहले-पहल ही कीचमें फँसती, तो इसे न फँसने देता; पर यह तो कब की भ्रष्ट हो चुकी है। मैं बहुत दिनोंसे धोखा खा रहा था। अब क्या? इसलिये धीरज धरकर देखना चाहिये कि, आगे क्या-क्या होता है।

इस तरह दिलको समझा-बुझाकर, आगेकी नयी घटना देखनेकी राह देख रहा था। कुछ देर बाद देखा, कि करुणा बाहरकी तिदरीमें आकर खड़ी है। उसके सिरके बाल बिखर रहे हैं और धोती बिल्कुल खुली हुई है। यह तमाशा देखकर मेरी तबियत फिर भड़क उठी। लेकिन थोड़ी देरमें फिर सम्हल गई। मुझे खूब याद है, उसने धोती पहन कर, मेरे हुक्केमें तमाखू चढ़ाई और उसे भीतर दे आई। फिर वह रसोईमें घुसी। वहाँ जाकर उसने देखा कि, वह जो कुछ चूल्हे पर चढ़ा गई थी वह जलकर खाक हो गया है। उसने जली हुई चीजको धोकर बर्तन साफ़ किया और उसमें फिर कोई चीज़ पकनेको रक्खी। इन कामों में उसे एक घण्टेके क़रीब लगा। भोजन तैयार हो जानेपर, उसने आसन बिछा दिया। आसनके सामने चौकी रखकर, बग़लमें जलसे भरा एक चाँदीका लोटा और गिलास रख दिया। फिर वह रसोईमें जाकर थाल सजाने लगी। ये सब—कुछ तो देखकर और कुछ अटकल लगा कर मैंने समझ लिया।

अब ज़ियादा बर्दाश्त न हुई। एकदमसे जोश आ गया। मैं

धीरे-धीरे वृक्षसे उतरा और चुपचाप खिड़कीकी राह घरमें घुस गया। जाकर क्या देखता हूँ, कि धूलसे भरे हुए पैरोंसे चौकीदार मेरे दूधके समान सफ़ेद और नर्मानर्म पलँग पर बेख़बर सो रहा है। भाई, उस समय मेरे दिलकी क्या हालत हुई होगी, इस बातका अन्दाज़ा तुम ख़ुद ही कर सकते हो। मैं तो उसे अपने पलँग पर सोते हुए देखते ही जल कर ख़ाक हो गया। एड़ीसे चोटी तक ख़ून गर्म हो गया। क्रोधकी हद न रही। सच तो यह है, कि मैं गुस्सेसे अन्धा हो गया। मुझे ज़रा भी होश न रहा। सामनेसे देखा कि, चौकी पर चाँदीका थाल रख दिया गया है। सामने ही एक गँडासा पड़ा दीखा। मैंने आव देखी न ताव, चटसे गँडासा उठाकर चौकीदारकी गर्दन पर मारा और उसका सिर धड़से जुदा कर दिया। इन बातोंके कहनेमें देर लगी है, पर उसका काम तमाम करनेमें देर न लगी। मैं, फौरन ही उल्टे पैरों बाहर आकर, उसी वृक्ष पर चढ़ गया।

मेरे वृक्षपर चढ़ जानेके बाद, करुणा रसोईसे निकल कर चौकीदारको भोजनके लिए बुलानेको कमरेमें घुसी। वहाँ जाकर उसने देखा कि, बिस्तर ख़ूनसे लथपथ हो रहा है और चौकीदारका सिर धड़से अलग पड़ा हुआ है। वह वहाँका दृश्य देखकर घबरा गई, क्योंकि उसके सरसे पसीना टपक रहा था और होश-हवाश फ़ाख्ता थे। बाहर एक शमादान जल रहा था। वह उसके सामने खड़ी होकर, सिरपर हाथ रखकर, कुछ



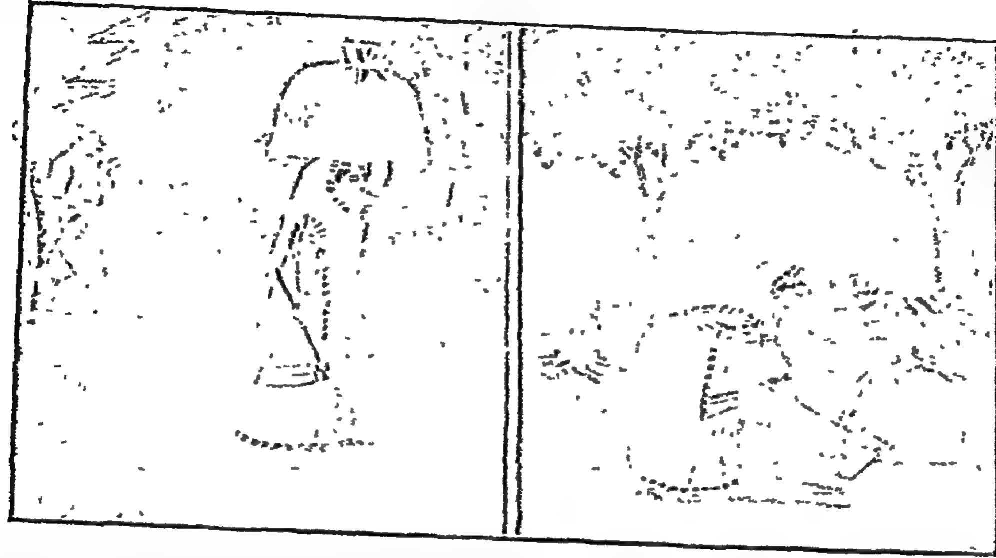
सामने ही एक गँड़ासा पड़ा देखा। मैंने आव देखी न ताव; चट से गँड़ासा उठाकर चौकीदार की गर्दन पर मारा और उसका सिर धड़ से जुदा कर दिया। मैं फौरन ही उलटे पैरों आकर उसी वृक्ष पर चढ़ गया। करुणा रसोई से निकल कर चौकीदार को भोजन के लिये बुलाने को कमरे में घुसी। वह वहाँ का दृश्य देखकर घबरा गई। उसके सर से पसीना टपक रहा था; होश हवास फ़ाख़्ता हो गये थे। वह उसके सामने खड़ी होकर, सिर पर हाथ रख कर, कुछ सोचने लगी।

सोचने लगी और रह-रहकर लम्बे साँस लेने लगी। फिर वह बैठ गई और क़रीब आध घण्टे तक उसी तरह बैठी रही। इसके बाद उसने खानेका सामान चौकीसे उठाकर रसोईमें रख दिया। पीछे उसने एक टाटकी बोरी लाकर, उसमें चौकीदार की लाश रक्खी और उसका मुँह अच्छी तरहसे बाँधकर उसे सर पर उठा लिया और एक कुदाल हाथमें लेकर घरसे बाहर निकली। कहनेकी ज़रूरत नहीं कि, वह घरसे बाहर जाते समय खिड़कीका ताला बन्द करती गई। उसके कुछ दूर चले जानेपर, मैं भी पेड़से नीचे उतर, कुछ फ़ासिलेसे, उसके पीछे हो लिया। वह उस लाशको सरपर रखे हुए, दो कोस दूरके एक श्मशान-घाट पर पहुँची। लाशको नीचे पटक कर, उसने एक गहरा खड्डा खोदा और उसमें लाश दफ़ना दी। इसके बाद वह फिर घर लौटी और थोड़ी देरमें घर पहुँच गई। मैं भी उसके पीछे-पीछे आकर उसी पेड़ पर चढ़ गया।

मैं उसी वृक्षसे फिर देखने लगा, कि अब वह क्या करती है। घरमें आकर उसने दरवाज़ा बन्द कर दिया और बिस्तर, चादर और लिहाफ़ वग़ैरः गोबर और पानीसे मलमलकर धोने लगी; लेकिन ख़ून न छूटा, तब उसने उन्हें एक बड़ी बाल्टीमें भिगो दिया। तख़्तपोश और ज़मीन पर जो ख़ूनके दाग़ थे, वे सब उसने गोबर और मिट्टीसे साफ़ कर दिये। ये सब काम करके, वह दालानमें आकर कुछ सोचने लगी।

इस समय मेरा क्रोध कुछ कम हो गया, लेकिन दिल नफ़-

रतसे भर गया। मैं मन-ही-मन कहने लगा—'जो स्त्री पतिकी गोदमें बैठकर रह-रहकर काँप उठती थी, जो घरमें चूहेके खड़का करनेसे डर जाती थी, वही आज मोटी-ताज़ी लाशको, जिसे दो आदमी भी आसानीसे उठा नहीं सकते, सिरपर रखकर, अकेली, रात के एक बजे श्मशान पर पहुँची! जो स्त्री अपना मतलब साधनेके लिए ऐसे-ऐसे काम कर सकती है, उसके लिए ऐसा कौनसा काम है, जिसे वह न कर सकती हो? यह अबला कुल-कामिनी है या आदमीको कच्चा ही चबा-डालने वाली सबला राक्षसी है? क्या मेरे आदर और प्यारका यही नतीजा है? कौन कह सकता है कि, यह किसी दिन मुझे भी न मार डालेगी? रोशनीके नीचे अँधेरा है, अब यह बात मेरी समझमें अच्छी तरहसे आगई। अब मेरी आँखें खुल गईं। मेरे मित्रोंने मुझे कितनी ही बार सावधान किया, पर उस समय मेरी आँखों पर पर्दा पड़ा हुआ था। मेरी मति मारी गई थी। मेरे हाथमें चिराग़ था, इसलिए मुझे कुछ न दीखता था। अब मोहका पर्दा हटाते ही, चिराग़ दूसरेके हाथमें जाते ही—मुझे अपना बुरा-भला दीखने लगा। अब मैं भी सावधान हो सका हूँ, इसके लिए मैं अपने तईं धन्यवाद देता हूँ। अस्तु, सवेरा होनेमें विशेष देरी न देखकर, मैं पेड़से नीचे उतर आया और खिड़की के पास जाकर आवाज़ लगाई। मैंने इतनी जल्दी दो-तीन आवाजें लगाईं कि, वह और कुछ सोचनेका मौक़ा न पा सकी। अतः उसने फौरन दरवाजा खोल दिया।



उसने एक टाट की बोरी लाकर उसमें चौकीदार की लाश रखी और उसका मुँह अच्छी तरह से बाँधकर उसे सिर पर उठा लिया और एक कुदाल हाथ में लेकर घर से बाहर निकली। मैं भी कुछ फासले से उसके पीछे हो लिया। वह लाश को सिर पर रखे हुए श्मशान घाट पर पहुँची। लाश को नीचे पटक कर, उसने एक गहरा गड्ढा खोदा और उसमें लाश दफना दी।

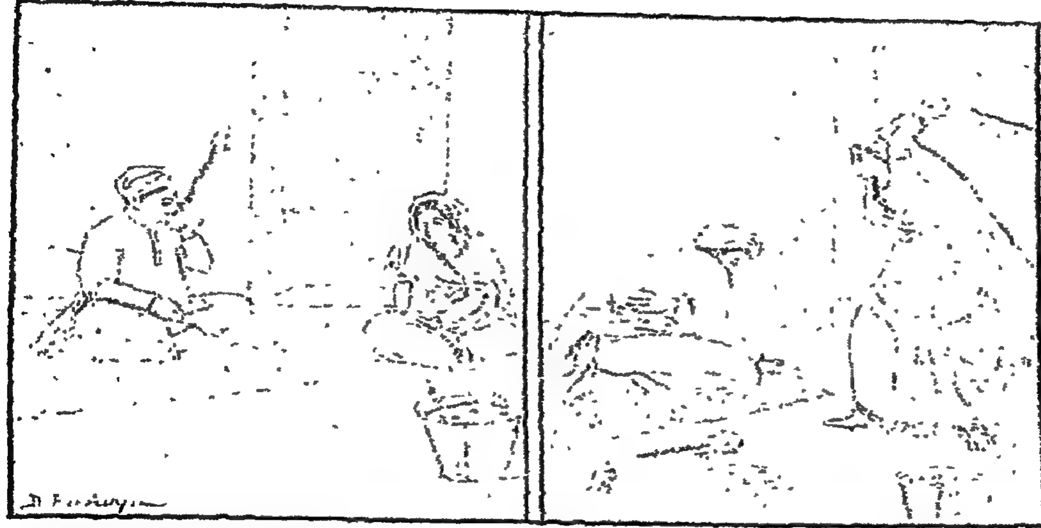
मेरे घरमें घुसते ही, उसने झटपट बैठनेके लिए आसन बिछा दिया। इसके बाद उसने हुक्का चढ़ाकर मेरे हाथोंमें दे दिया और कहने लगी—"तुम कह गये थे, पता नहीं मैं कितनी रात रहे चला आऊँ, इसलिये अभी तक दिया बाले बैठी हूँ। तुम-जैसा कठोर कोई न होगा। श्यामाकी माँको बुलाने आदमी भेजा था, मगर मालूम हुआ, कि वह घर में नहीं है। इसीसे चिराग़ जलाये बैठी हुई, तुम्हारी राह देख रही हूँ। मालूम होता है, सवेरा होनेमें अब देर नहीं है।"

हुक्केका जल ख़राब होनेका बहाना करके, मैंने जेब से सफ़री हुक्का निकाला और उस पर चिलम रखकर पीने लगा। साथ ही उसकी बातचीत का ढँग और चेहरेका उतार-चढ़ाव देखने लगा। देखा, आज रातको घरमें इतनी गड़बड़ी हो गई है, ऐसी भयङ्कर घटना घटी है, लेकिन उसके चेहरेसे वह बात मालूम नहीं होती। वह पहले जिस तरह प्यार-मुहब्बतसे बातें किया करती थी, आज भी वैसे ही कर रही है। किसी बातमें ज़रा भी फ़र्क़ नहीं। मैंने पूछा—"बिस्तर चौकमें क्यों पड़ा है?" उसने झट जवाब दिया—"अकस्मात् बिल्लीने आकर पेशाब कर दिया। क्या करती, लाचार होकर कपड़े पानीमें भिगो दिये हैं? रातको तालाब पर कैसे जा सकती थी?" मैंने पूछा—"यह आसन किस लिए बिछा हुआ है?" उसने कहा—"आपके सिवा और किसके लिये? आप आयेंगे, इस-लिये सब तरहकी तैयारी कर रखी है। भोजन-ओजन सब तैयार

है। सिर्फ खाने-भरकी देर है। लाऊँ क्या? आप थके हुए हैं, इसीसे विलम्ब कर रही हूँ।" मैंने कहा—"अभी नहीं खाऊँगा। रातको बहुत खा लिया था, इसलिये पेट भरा हुआ है। ज़रा बड़ी बोरी तो लाओ। कुछ काम है।" उसने कहा—"उस पर बिल्लीने हग दिया था, इसलिये वह भिगो रखी है।" मैंने कहा—"यहाँ जो कुदाल रखा था, वह कहाँ गया?" उसने कहा—"अमृत बाबूका लड़का ले गया था, पर जब उसने लौटा कर दिया तो वह कीचमें सना हुआ था, इसलिए उसे भी पानीमें भिगो रखा है।" उसके ये सब जवाब सुनकर मैंने झुंझलाते हुए कहा—"इस बड़े थैलेमें कुछ रख और फिर उसे श्मशान-घाट ले जाकर क्या किया था?" मेरी यह बात सुनते ही, उसके समझनेमें कुछ शेष न रहा। उसने एकदमसे जल-भुनकर कहा—"ओह! तुही वह कलमुँहा है?" यह कहते हुए, उसने सामने रखा हुआ गंडासा उठा कर मेरी पीठ पर मारा। मैं उससे कुछ न कह, अपनी पीठपर पट्टी बाँध, चुपचाप घरसे निकल आया। इस समय सूरज खूब ऊँचा चढ़ आया था। लोग अपने-अपने काम-धन्धोंमें लग गये थे। मैंने कहा शास्त्रमें ठीक ही लिखा है:—

आस्तां तावत्किमन्येन दौरात्म्येनेह योषिताम्।
विधृतं स्वोदरेणापि घ्नन्ति पुत्रं स्वकं रुषा॥

स्त्रियोंके दौरात्म्यकी हद नहीं—ये नाराज़ होकर अपने पेटसे निकले हुए पुत्रको भी मार डालती हैं।



उसने मेरे बैठने के लिये झटपट आसन बिछा दिया। इसके बाद हुक्का चढ़ाकर मेरे हाथ में दे दिया। मेरी बात सुनते ही वह सब समझ गई और जल भुन कर बोली—अरे! तुही वह कलमुहा है। यह कहते हुए उसने सामने रखा हुआ गँड़ासा उठाकर मेरी पीठ पर मारा।

इस समय यहाँसे निकल भागनेमें ही जीवनकी ख़ैर है। यह हत्यारी मुझे मारे बिना न छोड़ेगी। अगर और तरह न मार सकेगी, तो विष खिलाकर या किसी और तरह मार डालेगी। जीवन रहेगा, तो अपनी मोक्ष या अपने उद्धारका उपाय तो कर सकूँगा। ऐसा विचार करके, मैं वहाँसे फौरन ही नौ-दो ग्यारह हुआ। गलियोंमें छिपता हुआ, अपने उसी उपदेशक मित्रके पास पहुँचा। मित्रने मेरी हालत देखकर पूछा—"कहो, ख़ैर तो है? यह क्या हाल है? पीठमेंसे ख़ून क्यों बह रहा है?" मैंने पहले महाकवि 'अकबरका' यह शेर कह सुनाया:—

जिसकी उल्फ़त का बड़ा दावा था अकबर! कल तुम्हें।
आज हम जाकर उसे देख आये, हरजाई तो है॥

भाई, जिसकी मुहब्बतका हमें कल बड़ा घमण्ड था, आज उसे हमने देख लिया; वह तो कुछ नहीं, निरी हरजाई है। मित्र! तुमने सच कहा था; पर समय आये बिना काम नहीं होता। बिल्वमंगलको महात्मा नारदने बहुत समझाया, पर उन्होंने वेश्याका संग न छोड़ा। लेकिन समय आने पर फौरन ज्ञानोदय हुआ और उन्होंने उसे त्याग दिया। मैंने आपकी बात मानकर, कल रातको स्त्रीकी परीक्षा की। वह तो अव्वल दर्जे की कुलटा निकली। वह अपनी गलीमें पहरा देनेवाले नीच चौकीदारसे फँसी थी। इसके बाद मैंने सारी कहानी आदिसे

अन्त तक सुना दी। मित्रने पुलिसके भयसे मुझे एक गुप्त स्थानमें छिपा दिया और जब तक मुझे पूरी तरहसे आराम न हो गया, मेरी ख़ूब ही सेवा-शुश्रूषा की।

इस घटनासे मेरा दिल ऐसा खट्टा हुआ, कि मैंने अपनी सारी दौलत उसी कुलटाके पास छोड़कर जंगल की राह ली। मुझे अब संसार अत्यन्त बुरा मालूम होता है। जब कभी मेरे मनमें वेदना होती है, वह श्लोक मेरे मुँहसे निकल जाता है। अब तो मैं सभीको उपदेश देता रहता हूँ कि भाइयो! स्त्री-जातिसे सावधान रहो। इस काली नागिनका विश्वास मत करो। जो इसके फन्देमें फँसकर ईश्वरको भूलता है, अपना मनुष्य-जन्म वृथा गँवाता है। 'स्वामी शंकराचार्य्य' ने बहुत ठीक कहा है:—

का ते कान्ता, कस्ते पुत्रः।
संसारोऽयमतीव विचित्रः॥
कस्य त्वं कः कुतः आयातः।
तत्त्वं चिन्तय यदिदं भ्रातः!॥
भजगोविन्दं, भजगोविन्दं, गोविन्दं भज, मूढ़ मते॥

कौन तेरी स्त्री है? कौन तेरा पुत्र है? यह संसार अतीव विचित्र है। हे भाई! इस असल बातको विचार कर कि, तू कहाँ से आया है? कौन तेरा है? अरे मूढ़! सबको तज और गोविन्द को भज।

वक़ौल मौलाना हाली—

रंजिशो इल्तफ़ातो नाज़ो नियाज़ ।

हमने देखे बहुत नशेबो फ़राज़ ॥

सुख-दुख, मिलन और विरह प्रभृति संसारके उतार-चढ़ाव हमने खूब देख लिये। अब हमारी तो यह राय है कि, इस संसारमें अपना कोई नहीं है। सभी अपना-अपना मतलब गाँठनेको हमारे बने हुए हैं। सच्ची मुहब्बत किसीमें भी नहीं। यद्यपि दुनिया धोखेकी टट्टी है, तोभी सारा संसार इसमें फँसा हुआ है। क्या किया जाय, बिना फँसे काम भी तो नहीं चलता? सब फँसते हैं, पर कोई दाना—विचारवान नहीं फँसता। जो नहीं फँसता, वही इह लोक और परलोकमें सुख पाता है। किसी कविने खूब कहा है:—

दुनिया ने किसका, राहे फ़नामें दिया है साथ ? ।

तुम भी चले चलो यूँही, जब तक चली चले ॥

संसारने किसीका साथ नहीं दिया। इसलिये जबतक यह चल रहा है, तुम भी चले चलो—इससे दिल मत लगाओ। दिल लगाओ तो—इसके बनानेवालेके साथ लगाओ; क्योंकि अन्तमें वही दयामय काम आयेगा। यों तो वह दयामय, धर्मात्मा और पापात्मा, सभी पर दया करता है; पर धर्मात्मा उसे विशेष प्यारे हैं। इसलिये धर्म संग्रह करना चाहिये। कहा है:—

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः, कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥

शरीर अनित्य है—हमेशा नहीं रहेगा, ऐश्वर्य्य भी सदा नहीं रहेगा और मृत्यु सदैव निकट है, इसलिये धर्म-संग्रह करो ।

यस्य धर्मविहीनानि दिनान्यायान्ति यान्ति च ।
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥

धर्मके बिना जिसके दिन आते और जाते हैं, वह लुहार की धौंकनीकी तरह साँस लेता हुआ भी नहीं जीता ।

मधु तिष्ठति वाचि योषितां, हृदि हालाहलमेव केवलम् ।
अतएव निपीयतेऽधरो, हृदयं मुष्टिभिरेव ताड्यते ॥८२॥

स्त्रियोंकी बातोंमें अमृत और हृदयमें हलाहल विष होता है; इसीलिए पुरुष उनका अधरामृत पान करते और उनकी छातियोंका मर्दन करते हैं ।

ख़ुलासा—मनुष्य का स्वभाव है कि, वह अमृतको शौक़से पीता और विषसे घृणा करता है; इसलिये पुरुष स्त्रियोंके नीचले होठोंको चूसते और उनके कुचोंको मलते (पीटते) हैं। क्योंकि उनके होठोंमें अमृत और कुचोंके नीचे हृदयमें विष रहता है ।

महाकवि 'कालिदास' स्त्रियोंके मनमोहन रूपसे .खुश और उनके हृदय की कठोरतासे दुःखित होकर कहते हैं:—

इन्दीवरेण नयनं मुखमंबुजेन कुन्देन दन्तमधरं नवपल्लवेन ।
अंगानि चम्पकदलैः स विधायवेधा कान्ते ! कथं घटितवानुपलेनचेतः॥

हे प्यारी ! उस ब्रह्माने, नील कमल-से नेत्र, कमल-सा मुख, कुन्दसे दाँत, नये पत्तों-जैसे होठ और चम्पाके पत्तोंके समान अन्यान्य अङ्ग बनाकर, स्त्रीका हृदय पत्थर-सा क्यों बनाया ?

स्त्रियोंका हृदय पत्थरके समान होता है, इसमें शक नहीं। इस हृदयके कठोर होनेके कारणसे ही उनमें दया, वफ़ा और मुहब्बत नहीं होती। जो उनके ऊपर जान देता है, जो उनकी इच्छा पूरी करनेके लिये दिन-को-दिन और रात-को-रात नहीं समझता, जो उनके लिये घोर परिश्रम करता और तरह-तरह की जिल्लतें सहता है, उनको धन और गहने देता, उनका मान रखता और .खुशामद करता एवं रतिक्रीड़ासे उनको अच्छी तरह सन्तुष्ट करता है, उसको भी वे निर्दयता-पूर्वक, जरा-सी देरमें, त्याग कर चली जाती हैं। ऐसी स्त्रियोंका हृदय यदि पत्थरका नहीं, तो किसका है ?

दोहा ।

अधरन में अमृत बसत, कुच कठोरता वास ।
यातें इनको लेत रस, उनको मर्दन त्रास ॥८२॥

सार—स्त्रीका दिल पत्थरसे बना है और उसमें विष भरा है; इसीसे उसमें वफ़ादारी नहीं, किन्तु निर्दयता, छल, कपट, दग़ाबाज़ी और फ़रेब प्रभृति दुर्गुण भरे हैं।

82. There is sweetness in the speech of a woman and poison in her heart; therefore, the lips are tasted and the breasts are pressed by the fist.

एक स्त्रीकी परले सिरेकी बेवफ़ाई।

अपूर्व त्रियाचरित्र।

प्राचीन कालमें, अमरावती नामकी एक नगरी बहुत ही उन्नत दशामें थी। चारों दिशाओंसे व्यापारी देश-देशोंका माल लेकर वहाँ आते थे और उस प्रान्त का माल दूर देशोंमें ले जाते थे। व्यापारकी वजहसे उस नगरकी समृद्धि दिन-रात बढ़ती थी। उस नगरमें सैकड़ों करोड़पति थे। लखपतियोंकी तो गिन्ती ही न थी। शहरके सारे साहूकारोंमें रतनसेन नामका एक साहूकार सबसे अधिक धनी था। उसे कोई अरबपति और कोई खरबपति कहता था। उसका धन-वैभव देखकर, धनेश—कुबेर लाजके मारे मुँह छिपाकर, हिमाचलके एक अञ्चलमें जा छिपा था। आजकलके अमेरिकन धन-कुवेर रॉकफैलर,

कारनीगो और फोर्ड भी उसके सामने तुच्छ थे। भारतमें तो आजकल वैसा धनी मशाल लेकर ढूँढ़नेसे भी न मिलेगा। उसके धनका अन्दाजा इसीसे लगा लीजिये, कि वह नित्यप्रति नौ लाखका एक रत्न-जटित कम्बल ओढ़ता और सवेरा होते ही उस कम्बलकी रक़म ग़रीबोंको बाँट दी जाती थी।

संसारमें सर्वसुखी कोई नहीं रहता। भगवान्ने सुखिया-से-सुखियाके पीछे एक-न-एक दुःख लगा रखा है। यद्यपि रत्नसेन सारे भारतमें अद्वितीय धनशाली था। उसके सुख-वैभवको देख कर स्वर्गके देवताओंको भी ईर्ष्या होती थी। पर रत्नसेन, अटूट धन-सम्पत्ति होने पर भी, सन्तानके लिए दुःखी रहता था; क्योंकि इस अपार सम्पत्तिको भोगनेवाला कोई न था। उसने सन्तानके लिये तन्त्र-मन्त्रके जाननेवाले पण्डितोंसे अनेकों यज्ञ, हवन और अनुष्ठान कराये। इन सब कर्मकाण्डोंके फलस्वरूप या पूर्वजन्मके पुण्योंका समय आनेसे, उसके एक अपूर्व रूप-लावण्यवती परमा सुन्दरी कन्याने जन्म लिया। सेठ के महलों में नौबत बजने लगी। ग़रीब और मुहताजोंको इतना धन लुटाया गया कि, उस नगरमें एक भी कंगाल न रहा। कितने ही जन्म-दरिद्री तो लखपती बन गये।

रत्नसेनने उस कन्याका नाम कन्दर्पकला रक्खा। जन्मभरमें एक कन्या पानेसे, सेठ उसका लालन-पालन राजकुमार और राजकन्याओंसे भी अच्छा करने लगा। कन्या भी चन्द्रकलाकी

तरह बढ़ने लगी। समय बीतते क्या देर लगती है? कन्दर्प-कला पाँच बरस की हो गई। सेठने कन्या की शिक्षा प्रभृतिके सम्बन्धमें पण्डितोंसे राय ली। पण्डितोंने कहा—"सेठ साहब! कन्याको पहले अच्छी शिक्षा दिलाइये। जिस तरह पुत्रको विद्याभ्यास कराना चाहिये; उसी तरह कन्याको भी विद्या पढ़ानी चाहिये। अशिक्षिता कन्या गृहस्थी-रूपी गाड़ीको उचित रूपसे चला नहीं सकती। "हेमाद्री-धर्मशास्त्र" में लिखा है:—

कुमारीं शिक्षयेद्विद्यां; धर्मनीतौ निवेशयेत्।
द्वयोः कल्याणदा प्रोक्ता, या विद्यामाधिगच्छति॥
ततो वराय विदुषे, कन्या देया मनीषिभिः।
एषः सनातनः पन्था, ऋषिभिः परिगीयते॥
अज्ञातपतिमर्य्यादाम्, अज्ञातपतिसेवनाम्।
नोद्वाहयेत पिता बालाम्, अज्ञानधर्मशासनाम्॥

कुँवारी कन्याको विद्या पढ़ानी चाहिये और धर्मनीति सिखानी चाहिये, क्योंकि जो कन्या विदुषी होती है, वह माँ और बाप—दोनोंके कुलोंका कल्याण करती है।

जब कन्या विद्या और धर्मनीतिमें दक्ष हो जाय, तब किसी विद्वान् वरके साथ उसका विवाह कर देना चाहिये। ऋषियोंने यही सनातन रीति बतलाई है।

जब तक कन्या पति की मर्य्यादा और पतिसेवा की विधि न जान ले और धर्मशासनसे अनजान रहे, तब तक उसकी शादी न करनी चाहिये।

पण्डितों की व्यवस्था लेकर सेठने कहा—"महाराज ! विद्या पढ़ाने की बात तो मुझे स्वीकार है; पर जितनी विद्या, धर्मनीति और समाजनीति पढ़ाने की बात शास्त्रमें लिखी है, उतना पढ़ने-सीखनेके लिये, कम-से-कम दस बरस तो चाहिएँ। अगर कन्दर्पकलाको इतनी ही शिक्षा देनी होगी, तो वह कम-से-कम पन्द्रह-सोलह बरस की हो जायगी। उतनी उम्रमें विवाह करनेसे तो हम लोगोंको नरकमें जाना होगा; क्योंकि शास्त्रमें लिखा है:—

असम्प्राप्तरजा गौरी, प्राप्ते रजसि रोहिणी।
अव्यञ्जता भवेत्कन्या, कुचहीना च नग्निका॥
व्यञ्जनैस्तुसमुत्पन्ने, सोमोभुङ्क्तेहिकन्यकाम्।
पयोधराभ्यां गन्धर्वा, रजस्यग्निःप्रतिष्ठितः॥
तस्माद्विवाहयेत्कन्यां, यावन्नर्तुमती भवेत्।
विवाहश्चाष्टवर्षाया: कन्यायास्तुप्रशस्यते॥
व्यञ्जनं हन्ति वै पूर्वं, परं चैव पयोधरौ।
रातिरिष्टांस्तथा लोकन्हन्याच्चपितरं रजः॥
ऋतुमत्यां तु तिष्ठन्त्यां स्वेच्छा दानं विधीयते।
तस्मादुद्वाहयेन्नग्नां मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत॥



पितृवेश्मनि या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ।
अविवाह्या तु सा कन्या, जघन्यावृषली स्मृता ॥

जब तक लड़की रजोवती नहीं होती, उसे "गौरी" कहते हैं और रजोवती होनेपर "रोहिणी" कहते हैं। जब तक यौवनके चिह्न प्रकट नहीं होते, उसे "कन्या" कहते हैं और कुच या स्तन न आने तक "नग्निका" कहते हैं।

जवानीके चिह्न प्रगट हो जाने पर, कन्याको चन्द्रमा भोगता है; स्तन आ जाने पर, गन्धर्व और रजोवती हो जाने पर अग्नि भोगता है।

इसलिये कन्याको रजोवती या ऋतुमती होनेसे पहले ही—आठ बरसकी उम्रमें—विवाह देना चाहिये।

स्तनादि स्त्री-चिह्न प्रकट हो जाने पर, शादी न कर देनेसे, पहलेके पुण्य-कर्म नाश हो जाते हैं; स्तन आ जाने पर विवाह न करनेसे, परत्र लभ्य पुण्योंका नाश होता है। सुरत या मैथुन-योग्य होने पर, शादी न करनेसे स्वर्ग आदि लोक नहीं मिलते और रजोवती होने पर भी विवाह न कर देनेसे, पितर या पुरखे नरकमें जाते हैं, इसलिये स्त्री-चिह्न आनेसे पहले ही कन्या का विवाह कर देना चाहिये।

अगर कन्या शादीसे पहले ही ऋतुमती हो जाय, तो उस का विवाह उसकी अनुमतिसे करना चाहिये। स्वायम्भुव मनुने कहा है, इसलिये कन्याका विवाह उसके नग्निका या रजोरहित होनेकी हालतमें ही कर देना उचित है।

जो कन्या बापके घरमें, विना विवाह हुए, रजोदर्शन करती है—रजस्वला होती है, वह विवाहके अयोग्य और शूद्राके समान होती है।"

पण्डितोंने कहा—"सेठजी ! ये श्लोक स्वार्थियोंने पीछेसे धर्मशास्त्रोंमें घुसेड़ दिये हैं। अगर ऐसा होता, तो "हेमाद्री" वाला यह कभी न लिखता कि, जब तक कन्या विद्या न पढ़ ले, धर्मनीति न जान ले, पति-मर्य्यादासे अनजान रहे, शादी न करनी चाहिये। सीता, सावित्री, द्रौपदी और दमयन्ती प्रभृतिकी शादी पूर्णयौवना होनेपर ही—स्वयम्वर-प्रथाके अनुसार हुई थीं। आठ-दस सालकी कन्या धर्मनीति और पतिमर्य्यादा आदि नहीं जान सकती। अगर पहलेके समयमें, आठ सालकी कन्याकी शादि होती होती, तो महर्षि "सुश्रुत" सोलह सालकी स्त्री और पच्चीस सालके पुरुषको गर्भाधानके लिए मैथुनकी राय न देते। उन्होंने स्पष्ट कहा है—

पञ्चविंशे ततोवर्षेपुमान्नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्य्यौ तो जानीयात्कुशलोभिषक ॥

सुश्रुत-सूत्रस्थान, अध्याय ३५।

ऊनषोडषवर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम्।
यदाधत्ते पुमान् गर्भं, कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥
जातो वा न चिरंजीवेत्, जीवेद्वादुर्बलेन्द्रियः
तस्मादत्यन्त बालायां, गर्भाधानं न कारयेत् ॥

सुश्रुत-शारीरस्थान, अध्याय १०।

"गर्भाधानके समय पुरुषकी उम्र २५ सालकी और कन्याकी १६ सालकी होनी चाहिये, क्योंकि इन अवस्थाओंमें पुरुष और स्त्रीमें समान बल-वीर्य हो जाता है।"

"सोलह बरससे कम उम्रकी स्त्रीमें, अगर पचीस बरससे कम उम्रका पुरुष गर्भाधान करता है, तो गर्भ कोखमें ही बिगड़ जाता है—बालक पैदा नहीं होता; अगर पैदा भी होता है, तो बहुत दिन जीता नहीं; अगर किसी तरह जी भी जाता है, तो कमज़ोर और रोगी होता है। इसलिये अत्यन्त छोटी उम्र की यानी १६ सालसे कम उम्रकी स्त्रीमें गर्भाधान हरगिज़ न करना चाहिये।"

"अब आप ही सोचिये, जब सोलह सालसे कम अवस्था की कन्यामें गर्भाधान करनेकी ही मनाही है, तब पहले शादी करनेसे क्या लाभ? जब तक वर और बधू 'विवाह' किस चिड़ियाका नाम है, इस बातको न समझें, तब तक विवाह में क्या आनन्द है? अतः आप बाईकी शादी सोलह बरसकी उम्रमें ही करें।" सेठने ब्राह्मणोंकी बात ठीक समझी, अतः स्वीकार कर ली।

समय जाते देर नहीं लगती। कन्दर्पकलाने सोलहवें बरसमें क़दम रखा। माता-पिताको वर खोजनेकी फ़िक्र पड़ी। नगर-नगर और गाँव-गाँवमें नाई और ब्राह्मण भेजे गये। ईश्वर की दयासे, कुल-शील-धन-वैभव प्रभृतिमें समान घर और सुन्दर रूपवान, विद्वान्, बलवान् और वीर्यवान् वर मिल गया। वरका

नाम गुणनिधि था। गुणनिधि वास्तवमें ही गुणोंका भाण्डार था। जिस तरह कन्दर्पकला अपने बापकी इकलौती और लाड़ली बेटी थी; उसी तरह गुणनिधि भी अपने पिताका इकलौता और लाड़ला पुत्र था। लड़की-लड़केने एक दूसरेके चित्र देखकर एक-दूसरेको पसन्द कर लिया। सेठ-सेठानीने भी लड़केमें जामाताके सब उत्तम गुण देखकर, उसे अपना जमाई बनाना स्वीकार कर लिया। सेठने सेठानीसे कहा कि, शास्त्रमें भले और बुरे जमाईके लक्षण इस प्रकार लिखे हैं—

जमाई के गुण।

विद्याशौर्य्यधनाश्रयो गुणनिधिः ख्याता युवा सुन्दरः।
सच्चारः सुकुलोद्भवोमधुरवाग् दाता दयासागरः॥
भोगी भूरिकुटुम्बवान् स्थिरमतिः पापार्त्तिहीनो बली।
जामाता परिवर्णितः कविवरैरवंविधः सत्तमः।

"विद्वान्, बहादुर, धनवान्, गुणवान्, सच्चरित्र, अच्छे कुलमें पैदा हुआ, मीठा बोलनेवाला, दातार-फ़ैयाज़, दयाका समुद्र, भोगी, बहुतसे कुटुम्बियोंवाला; स्थिरबुद्धि, धर्मात्मा और बलवान् जमाई अच्छा होता है।"

जमाईके दोष।

वृद्धो दुर्व्यसनी दयाविरहितो रोगी महापापवान्।
षण्ढो दुष्कुलोद्भवश्च पिशूनो धूर्त्तोऽतिवद्धस्पृहः॥

निर्वित्तः कृपणोऽतिचंचलमतिर्नित्यप्रवासी ऋणी ।

भिक्षुः स्नेहविवर्जितः सुमतिभिः कार्योवरोनेदृशः ॥

"बूढ़े, बुरे-बुरे व्यसनोंमें फँसे हुए, निर्दयी, रोगी, घोर-पापी, नामर्द, नीच कुलमें पैदा हुए, चुगलखोर, धूर्त्त, इच्छाओंको बहुत ही रोकने वाले, निर्धन, कंजूस, बहुत ही चञ्चल-बुद्धि, हमेशा परदेशमें रहने वाले, क़र्ज़दार, भिखारी और स्नेह-हीन पुरुषको जमाई न बनाना चाहिये।"

"कन्दर्पकी मा ! अपने गुणनिधिमें सभी उत्तम गुण हैं, दूषणोंका नाम भी नहीं। सच पूछो तो, जमाई यथा नाम तथा गुण है, इसलिए गुणनिधिको ही कन्या देना ठीक है।"

शुभ लग्नमें विवाहकी तैयारी शुरू की गई। दोनों ओरसे विराट् आयोजन हुआ। नियत समय पर, गुणनिधिकी बारात आई। शुभ मुहूर्त्तमें गुणनिधिने कन्दर्पकलाका पाणिग्रहण किया। कन्याके पिताने अपनी इकलौती बेटीके दहेजमें करोड़ोंकी सम्पत्ति, हाथी, घोड़े, दास-दासी, रथ और पालकी वगैरः दिये। बाराती और गुणनिधिके पिता अपने नगरको चले गये। दहेजका सामान उनके साथ भेज दिया गया, पर गुणनिधिको कन्दर्पकलाके पिताने अपने घर ही रख लिया। गुणनिधिका बाप सज्जन पुरुष था। उसने अपने समधीकी बात, बिना किसी विशेष आपत्तिके, मान ली। गुणनिधि सुसरालमें घर-जमाईकी तरह रहकर, स्वर्गीय सुख भोगने लगा। कन्दर्पकला भी उससे सब तरहसे प्रसन्न और सन्तुष्ट थी।

माता-पिता भी अपनी पुत्री और जामाताको प्रेमपूर्व्वक रहते हुए देखकर फूले नहीं समाते थे।

कुछ समय बीतने पर, रत्नसेनकी आढ़तमें सुमात्रा, जावा, बोर्न्यू, चीन, लंका, फ़ारस और रूम देशके व्यौपारी तरह-तरहके मसाले, रेशम, रेशमी कपड़े, मोती और शीशा प्रभृति नाना प्रकारका माल लाये। उन व्यौपारियोंको मालकी बिक्रीसे प्रचुर धन-लाभ हुआ। अब वे लोग अमरावतीसे यहाँका माल खरीद कर, फिर उन देशोंको जानेकी तैयारी करने लगे। उन लोगोंको ख़ूब धन कमाते देखकर, गुणनिधिका दिल भी यहाँसे माल भर कर उन देशोंमें जानेको हुआ। उसने सास-ससुरसे आज्ञा माँगी। सास-ससुरने इंकार किया। कहा—"बेटा! अपने धनकी कमी नहीं; अटूट धन-भाण्डार है। तुम्हीं भोगने वाले हो, विदेश जाकर क्या करोगे?" गुणनिधिने कहा—पिता जी! वैश्यका धर्म ही धन-वृद्धि करना है। अक्षय धनराशि होने पर भी, वैश्यको सन्तोष न करना चाहिये। देखिये, शास्त्रमें लिखा है—

कोऽतिभारः समर्थानां, किं दूरं व्यवसायिनाम्।
को विदेशः सुविद्यानां, कः परः प्रियवादिनाम्॥

सामर्थ्यवानोंके लिए बहुत भारी क्या है? व्यापारियोंके लिए दूर क्या है? विद्वानोंको परदेश क्या है? मधुरभाषियोंको गैर या पराया कौन है?

क्लेशस्यांगमदत्वा सुखमेव सुखानिनेहलभ्यन्ते ।
मधुभिन्मथनायस्तैराश्लिष्यति बाहुभिर्लक्ष्मीम् ॥
दुरधिगमः परभागो यावत् पुरुषेण साहसं न कृतम् ।
जयतितुलामधिरूढो भास्वानिह जलदपटलानि ॥

"इस संसारमें, शरीरको दुःख दिये बिना सुख नहीं मिलता। मधुसूदन भगवान् ने समुद्र मथनेसे थकी हुई भुजाओं द्वारा ही लक्ष्मी पाई।

"जब तक पुरुष साहस न करे, तब तक उसे पराया भाग मिलना कठिन है। तुला राशिको प्राप्त होकर ही सूर्य बादलोंको जीतता है।"

गुणनिधिकी बातें सुनकर रत्नसेन राज़ी हो गया। दस-बीस लाखका माल देकर उसे विदा कर दिया। क़न्दर्पकला पतिके विदेश जानेसे दुखी ज़रूर हुई, पर उसने भी रो-धो कर अपनी ओरसे विदाई देदी। सब व्यौपारियोंके साथ गुणनिधि विदेश-यात्राको चल दिया।

अपने प्रिय पतिके विदेश चले जाने पर, कन्दर्पकला अपनी सखियोंके साथ चौसर-शतरञ्ज प्रभृति खेल-खेल कर दिन काटने लगी। कन्दर्पकला इन दिनों काम-मदसे मतवाली हो रही थी। एक दिन, सन्ध्याके समय, वह अपनी सखियोंके साथ, महलकी छत पर बैठकर, शतरञ्ज खेल रही थी। महल ठीक लबे सड़क था। उसके सामने होकर हज़ारों आदमी और गाड़ी-

घोड़े प्रभृति निकल रहे थे। खेलते-खेलते उस मृगशावकनयनी की दृष्टि एक सुन्दर, रूपवान, बलवान, यौवनमदोन्मत्त गठीले जवान पर पड़ी। क्षण-भरमें उसकी मति बदल गई। वह पातिव्रत धर्मका महात्म्य भूल कर, व्यभिचार-कर्म करने पर आमादा हो गई। प्रबल कामदेवके वशमें होकर, उसे इस नीच कर्मके परिणामका कुछ भी ध्यान न हुआ। उसने अपने वैभवशाली पिता की इज़्ज़त धूलमें मिलनेका भी विचार न किया। कहा है—

कुलपतनं जनगर्हां, बन्धनमपि जीवितव्यसन्देहम् ।
अंगीकरोति कुलटा, सततं परपुरुषसंसक्ता ॥

कुलमें दाग़ लगना, लोकनिन्दा, बन्धन और जीवनमें सन्देह इन सबको परपुरुषरता कुलटा स्वीकार कर लेती है।

बहुत लिखनेसे क्या—वह चञ्चलनयनी अपने काम-विकारको न रोक सकी। उसका शरीर काम-तापसे जलने लगा, होठ सूखने लगे, दिल धड़कने लगा और कामज्वर चढ़ आया। उसने काम-शान्तिके लिए, उस नौजवानको अपने पास बुलानेका विचार स्थिर कर लिया। उसकी अन्तरात्मा—कॉनशेन्स (conscience) ने उससे कहा—"अयि चपले! आज तू अपने जीवनको भ्रष्ट करने पर क्यों उतारू हुई है? अपना शीलव्रत क्यों भंग करती है? देख, नदी अपनी कछार रूपी मर्य्यादाका नाश नहीं करती, उसी तरह तुझे भी अपने कुलकी मर्य्यादा

नाश न करनी चाहिये। सतीत्वरत्न अनमोल है। स्त्रीमें यही सबसे क़ीमती चीज़ है। इसके बिना स्त्री वैसी ही है, जैसा कि बिना आबका मोती। इस क्षण-भरके मिथ्या सुखके लिए, क्यों अपने लोक-परलोक बिगाड़ती है?" अन्तरात्माने उसे बहुत-कुछ समझाया, डराया-धमकाया, पर वह अपने निश्चयसे न डिगी—अन्तरात्माकी बात पर ज़रा भी ध्यान न दिया। ध्यान तो तब देती, जबकि वह होश-हवासमें होती। कामदेवने तो पुष्पबाण मार-मार कर उसे बेहोश कर दिया था।

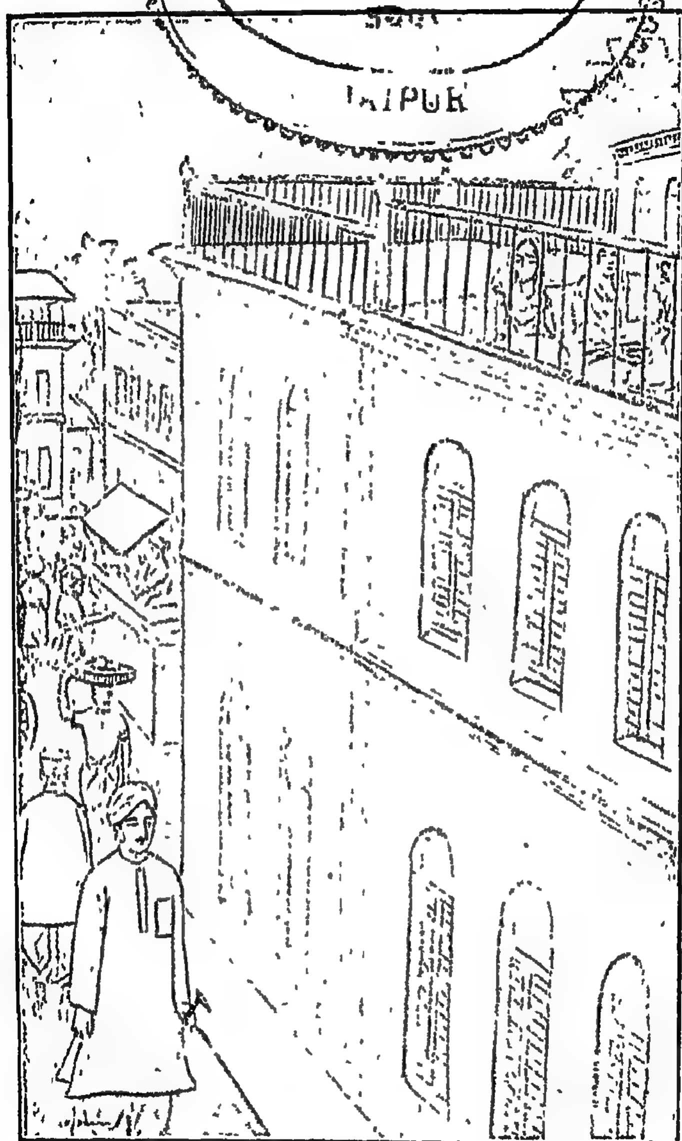
कन्दर्पकला कन्दर्पके बाणोंसे जर्ज्जरित होकर मन-ही-मन विचारने लगी—"इस समय कौन मेरे काम आ सकती है? कौन प्राणप्यारेको बुलाकर यहाँ ला सकती है? कामशास्त्रमें मालिन, धोबन, नाइन, सखी और दासी प्रभृति-स्त्रियाँ स्त्रीपुरुषोंका सन्देशा लाने-ले-जाने या दूती-कर्म* के लिए उत्तम लिखी हैं, तब

---

* दासी वारवधूर्नटी च विधवा बाला च धात्री तथा।
कन्या प्रव्रजिता च भिक्षुवनिता सम्बन्धिनी शिल्पिनी॥
मालाकार नितम्बिनी प्रतिसखी दौत्ये स्मृता योषितः।
आलाप्यः कविभिः सदैव मदनव्यापार लीलाविधौ॥

और भी—

मालाकारवधूः सखी च विधवा धात्री नटीशिल्पनी।
सैरन्ध्री प्रतिगेहिकाथ रजकी दासी च सम्बन्धिनी॥
बाला प्रव्रजिता च भिक्षुवनिता तक्रस्य विक्रेयिका।
मालाकार वधूर्विदग्धपुरुषैः प्रेष्या इमा दूतिकाः॥



उँगली से उस नौजवान को दिखाते हुए कहा—'प्यारी सखी ! तू उस छैल-छबीले-रसीले युवक को हमारे पास बुला ला।'

पृष्ठ ३४१

मैं अपनी सखियोंमें से किसी एकसे यह काम क्यों न लूँ ?” यह विचार स्थिर करके, उसने अपनी एक बहुत ही मुँह-लगी सखीको पास बुलाकर, उँगलीसे उस नौजवानको दिखाते हुए कहा—“प्यारी सखी ! तू उस छैल-छबीले-रसीले युवकको मेरे पास बुला ला। मेरी कामाग्नि इस समय बड़े जोरोंसे प्रज्ज्वलित हो रही है। अगर वह बाँका छैला न आयेगा, तो मैं प्रचण्ड विरहानलमें भस्म हो जाऊँगी।” काम-विकार हलाहल विषकी तरह प्रचण्ड होता है। उसे कोई विरली ही कामिनी रोकनेमें समर्थ होती है। उस नीच सखीने, अपनी सखीकी ऐसी भयानक पापपूर्ण बात सुनकर, उसे जघन्य कर्मसे रोका तो नहीं—फौरन ही नीचे उतरी और उसे बुलाकर महलमें ले आई।

उस पुरुषने कन्दर्पकलाकी बातें सुनकर, उसकी कामशान्ति की, पर चलते समय कहता गया, “प्यारी ! इसमें शक नहीं कि, तू अप्सराओंको भी लजानेवाली अनिन्द्य सुन्दरी है। तेरे एक दिन भी न मिलनेसे मेरा जीवन न रहेगा; लेकिन मैं तेरे इस महलमें आजके बाद कभी न आऊँगा। मैं नगरसे बाहर अमुक

दासी, रण्डी, नटनी, विधवा, लड़की, दाई, कन्या, संन्यासिनी, भिखारिन, सम्बन्धिनि, कारीगरनी, मालिन, सखी, पड़ोसन, नाइन, धोबन, और दहीछाछ बेचने वाली गूजरी वग़ैरः स्त्रियाँ—स्त्रियोंको बिगाड़ने और लाने का काम करती हैं। ये पुरुषोंका सन्देशा औरतोंके पास और औरतोंका मर्दोंके पास पहुँचाती हैं। इनके द्वारा अच्छे-अच्छे घरों की स्त्रियाँ ख़राब हो जाती हैं।

बाग़में रहता हूँ। वह स्थान भोगविलासके लिये अत्युत्तम है। ऐश-आराम के सारे ही सामान वहाँ भी मौजूद हैं। तुझे हर दिन, रातके समय, वहीं आना होगा; क्योंकि काम-शास्त्रमें, पराये घर रहकर, सुरत करनेकी मनाही लिखी है। कहा है—

वह्नि ब्राह्मणपूज्यवर्गनिकटे नद्यां च देवालये।
दुर्गादौ च चतुष्पथे परगृहेऽरण्येश्मशानेदिवा॥
संक्रान्तौ शशीसंक्षयेऽथ शरदि ग्रीष्मे ज्वरार्त्तौव्रते।
संध्यायाञ्च परिश्रमेषु सुरतं कुर्यान्न विद्वान् क्वचित्॥
विस्तीर्णेललिते सुधाधवलिते चित्रादिनालंकृते।
रम्ये प्रोन्नत चत्वरेऽगुरु महाधूपादिपुष्पान्विते॥
संगीतांगविराजिते स्वभवने दीपप्रभाभासुरे।
निःशंक सुरतं यथाभिलषितं कुर्य्यात्समंकान्तया॥

"अग्नि, ब्राह्मण, माँ-बाप, गुरु और बड़े भाई प्रभृति गुरुजनों के पास, नदी-किनारे, मन्दिरमें, क़िले वग़ैरः में, चौराहे पर, पराये घरमें, जङ्गलमें, श्मशान-भूमिमें, दिनमें, संक्रान्त में, चन्द्रमाके क्षय-कालमें, शरद् ऋतुमें, ग्रीष्म ऋतुमें, ज्वर चढ़ा होने पर, व्रत रखने पर, सन्ध्या-समय और मिहनत करके—विद्वान् को सुरत या स्त्री-प्रसंग न करना चाहिये।

"जो मकान मनोहर हो, लम्बा-चौड़ा हो, जिसमें सुन्दर सफ़ेदी हो रही हो, तरह-तरहके चित्रादिसे सजा हो, जहाँ धूप वग़ैरः सुगन्धित पदार्थ खेये गये हों, फूलोंकी ख़ुशबू आती हो, गाने

बजानेके सितार तबला आदि बाजे रक्खे हों—ऐसे अपने मनोहर और ऊँचे मकानकी छत या आँगनमें, जो दीपकोंकी रोशनीसे देदीयमान हो, अपने समान स्त्रीसे, निःशंक होकर, इच्छानुसार, भोग करना चाहिये।

प्यारी! कामशास्त्रके रचियताओंने जो कुछ भी लिखा है, वह बड़े अनुभवके बाद लिखा है। मैं रतिशास्त्र के विरुद्ध काम नहीं करता; इसलिये आज रातको तुम मेरे बाग़में आना। मैं तुम्हारी इन्तजारी करूँगा।" यह कहकर वह युवक चला गया।

उस युवकको कन्दर्पकला एक क्षण को भी छोड़ना नहीं चाहती थी। पहली मुलाक़ातमें ही उस नौजवानने उसके दिलमें गहरी जगह करली। एक तो वह रूपवान्, बलवान, वीर्यवान और शौक़ीन छैला था ही; दूसरे उसने उसे, कामशास्त्र-विशारद होने से, भोग-विलास द्वारा सन्तुष्ट कर दिया, इसीसे वह उस पर जी-जानसे फ़िदा हो गई। ऐसी प्रीति को "अभ्यासिकी प्रीति" कहते हैं।

※ "निसर्गजा या नैसर्गकी, विषयजा और अभ्यासिकी" इस तरह मुख्य तीन तरहकी प्रीति होती हैं। नैसर्गकी प्रीति अभ्यास से या माला, अतर, मिठाई और कपड़े—गहने देनेसे नहीं होती, वह पूर्वजन्मके सम्बन्ध से होती है। वह बड़ी मज़बूत मुहब्बत है। वह किसीके हज़ार चेष्टा करने से भी नहीं छूट सकती। वैसी प्रीति छोटी उम्रके दूलह-दुलहनोंमें नहीं हो सकती—१४। १५। १६ साल की कन्या और २०। २५ सालके लड़के की शादी होनेसे ही हो सकती है।

जो प्रीति इत्र, फुलेल, फूलमाला, गुलदस्ते, चन्दन-केशर और कस्तूरीके

वह व्यभिचारी नवयुवक सदा कन्दर्पकलाको अपने क़ाबूमें रखनेकी अनेक चेष्टायें किया करता था। उसने सबसे पहले इस बातका पता लगाया कि यह मुझ पर क्यों आसक्त हुई है; क्योंकि इसके यहाँ धनकी कमी नहीं, धनके सिवा और भी किसी वस्तुका अभाव नहीं। यह हमारे शहरके सबसे बड़े सेठ की पुत्री है। इसका पति यहाँ नहीं है। उसे गये बहुत दिन हो गये और आजकल वसन्तका मौसम है—जान पड़ता है, इन्हीं कारणोंसे इसने मुझे अपनाया है। कहा है—

मार्गादि श्रान्तदेहा चिराविरहवती मासमात्रप्रसूता।
गर्भालस्या च नव्याज्वरकृततनुता त्यक्तमानप्रसन्ना॥

लेप, उत्तमोत्तम कपड़े, नाना प्रकारके गहने, लज़ीज़ और ज़ायकेदार मिठाइयाँ लेने-देनेसे होती है, उसे "विषयजा प्रीति" कहते हैं।

जो प्रीति शिकार खेलने जानेसे जंगलमें हो जाती है, जो मन्दिरोंमें देवदर्शनोंको जानेसे हो जाती है, जो सजधजकर एक दूसरेको रिझानेसे हो जाती है, जो मनोहर गाना सुननेसे हो जाती है और जो आनन्ददायी सुरतसे हो जाती है, उसे "अभ्यासिकी प्रीति" कहते हैं।

यशोधरा और सिद्धार्थ (महात्मा बुद्ध) की प्रीति "नैसर्गकी" थी। शकुन्तला और दुष्यन्तकी प्रीति शिकारके समय हुई थी; अतः "अभ्यासिकी" थी। बहुत मर्द औरतोंके गाने पर और औरतें मर्दोंके गाने पर रीझकर प्रीति कर लेते हैं, वह भी "अभ्यासिकी प्रीति" कहाती है। कन्दर्पकला इस पुरुष की रूपच्छटा और सुरत की कारीगरी पर रीझी थी, [illegible] हमने इसे "अभ्यासिकी" प्रीति कहा है।



उस नीच सखी ने अपनी सखी की ऐसी भयानक पापपूर्ण बात सुन कर उसे जघन्य कर्म से रोका तो नहीं ; फौरन ही नीचे उतरी और उसे बुलाकर महल में आई। उस पुरुष ने कन्दर्पकला की बातें सुन, उसकी शान्ति की।

स्नाता पुष्पावसाने नवरतिसमये मेघकाले वसन्ते ।
प्रायः सम्पन्नरागा मृगशिशुनयना स्वल्पसाध्या रते स्यात् ॥

मार्ग चलनेसे थकी हुई या राह भूली हुई, बहुत दिनोंसे पति-समागम न होने वाली, महीना-भरकी बच्चा जननेवाली, पाँच-छै महीनेकी गर्भवती, आलस्यवाली, नये बुखारवाली, मान-हीना, बहुत ही ख़ुश रहने या हँसनेवाली, मासिक धर्मके बाद नहा कर उठी हुई, पहले-पहल जवानीकी तरंग आनेवाली, वर्षा-काल और वसन्त ऋतुमें—रूपवान, धनवान और विलासी पुरुषों के हाथ, ऊपर लिखे लक्षणों वाली स्त्रियाँ, स्वयं कोशिश करने या दूतियाँ लगानेसे बड़ी आसानीसे आ जाती हैं। ख़ैर, अब मैं तरह-तरहके वाजीकरण और स्तम्भन योगोंकी सहा-यतासे इसे अपनी क्रीतदासी बनाऊँगा।

कई बरस तक हमारा गुणनिधि विदेशसे नहीं लौटा; इधर कन्दर्पकला अपने धर्मसे पतित हो गई, पतिव्रतासे कुलटा हो गई। उसे रात-दिन अपने यार का ही ध्यान रहता था। दिन उसे एक युगके समान बीतता था। साँझ होते ही वह नहा-धोकर तैयार हो जाती और रातको सारे कुटुम्बके सो जाने पर, चोरद्वारसे निकल कर, अपने प्यारेके पास, बिला नागा पहुँ-चती थी। अगर घरका कोई आदमी भूलसे भी गुणनिधि का नाम ले लेता, तो उसके दिलमें काँटासा खटकता था। वह रात-दिन यही मनाती थी, कि गुणनिधि विदेशमें ही मर जावे या कभी न आवे। शास्त्रकारोंने कहा है कि, अच्छे कुलोंकी स्त्रियाँ

भी सदा बापके घरमें रहने और पतिके अधिक समय तक विदेश में रहनेसे बिगड़ जाती हैं। ऐसी-कुलटा नारियोंको पतिका परदेशमें रहना अच्छा मालूम होता है। कहा है:—

पितृसदननिवासः संगतिः पुंश्चलीभिः,
प्रवसनमथ रोगो वार्द्धकं चापि पत्युः।
वसतिरपरपुंभिः दुष्टशीलैरवश्यं,
च्युतिरपि निजवृत्तेर्योषितां नाशहेतुः॥
दुर्दिवसे घनतिमिरे दुःसञ्चरासु घनवीथीसु,
पत्युर्विदेशगमने परमसुखं जघन चपलायाः॥

सदा पीहरमें रहनेसे, व्यभिचारिणी स्त्रियोंकी सुहबतसे, पतिके परदेशमें रहनेसे, पतिके सदा रोगी रहनेसे, पतिके बूढ़े होनेसे, दुश्चरित्र ऐयाश-तबियत लोगोंके वशमें रहनेसे और अपनी आजीविकाके मारे जानेसे स्त्रियाँ ख़राब हो जाती हैं।

आकाशमें बादलोंके छाये रहनेसे, घोर अँधेरेसे, सुनसान जनहीन गलियोंसे और पतिके विदेशमें रहनेसे परपुरुपरता स्त्रियों को परम सुख होता है।

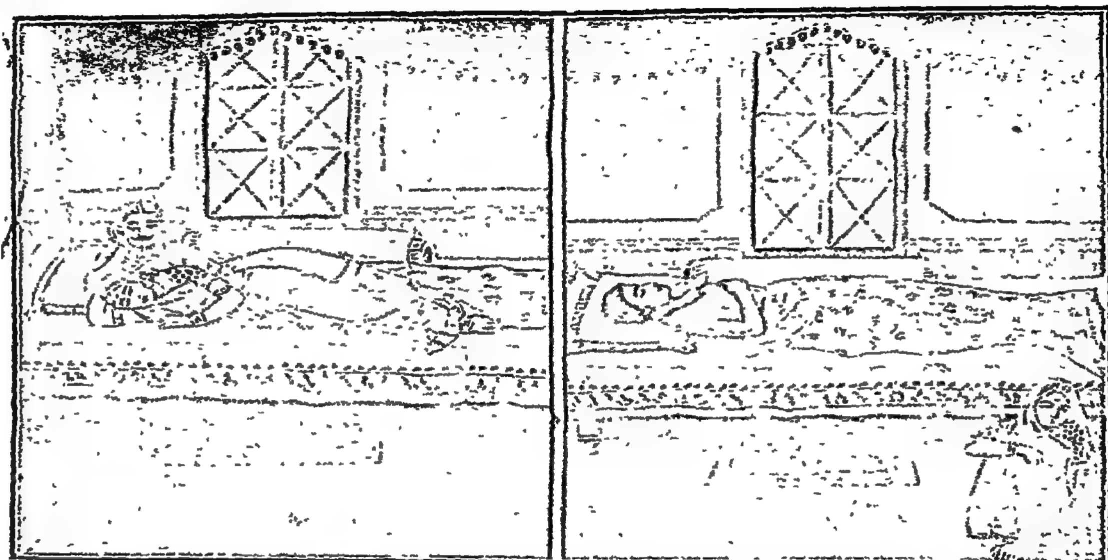
अब ज़रा गुणनिधिकी ख़बर भी लेनी चाहिये। जिस दिनसे वह अपनी स्त्री कन्दर्पकलाको छोड़कर विदेश गया, उस दिनसे उसे एक दिन भी सुखकी नींद न आई! जब कभी उसे कामसे फ़ुर्सत मिलती, वह अपनी प्यारीको याद करता। रातें तो उसे

करवटें बदलते और तारे गिनते ही बीतती थीं। ख़ैर, बरस-डेढ़-बरस चलकर, वह राम नगरमें पहुँचा। भगवान्‌की दयासे उसका सारा माल गहरे मुनाफ़ेसे बिक गया। अब उसे अपनी प्यारीसे मिलनेकी उत्कण्ठा औरभी बढ़ गई। एक दिन शरद्‌की चाँदनी रातमें, सोते-सोते उसे अपनी प्राणप्यारीसे मिलनेकी इच्छा इस ज़ोरसे हुई, कि उसने उसी समय नौकरोंको असबाब बाँधकर जहाज़ पर रखने और तत्क्षण वहाँसे चल देनेका हुक्म दिया। हुक्म पाते ही नौकरोंने सारा सामान जहाज़ पर लाद दिया। सब लोग सवार हो गये और जहाज़ने भारतकी ओर रुख़ किया। कुछ दिनोंमें, समुद्र-यात्राकी तकलीफें उठाता हुआ, वह अपनी सुसरालमें आ पहुँचा।

जिस दिन गुणनिधि अपनी सुसरालमें आया, उस दिन उसकी सुसरालमें कोई महोत्सव मनाया जा रहा था। कुटुम्बके सब लोग उसीमें लगे हुए थे। यह भी उनमें शामिल हो गया। उसके सास-ससुर और साली-सरहज वग़ैरः उसके आनेसे परमानन्दित हुए; पर कन्दर्पकलाका चेहरा उल्टा उतर गया। वह मन-ही-मन बहुत दुःखी हुई, पर प्रकटमें कुछ न कह सकी। उसके मन-मन्दिरमें तो उसका यार हँस-खेल रहा था। इसके आजानेसे उसका सारा मज़ा किरकिरा हो गया। इसका आना उसे अच्छा न लगा।

रातके समय, बहुत दिनोंका बिछुड़ा हुआ गुणनिधि, देव-मन्दिरके समान सजे हुए महलमें, बड़ी उमंगके साथ, अपनी

प्राणप्यारीसे मिलने गया। वहाँ अति सुन्दर कमनीय धवल शय्या बिछी हुई थी। चारों ओर काफूरी वत्तियाँ जल रही थीं। सुगन्धित धूप हर ओर महक रही थी। गुलाब, खस, हिने और मोतियेके इत्रोंकी ख़ुशबू उड़ रही थी। चन्दनके छिड़कावके कारण मलय मारुतका आनन्द आ रहा था। कमरेके खम्भोंमें जड़े हुए मणि-माणिक रोशनीमें जगमगा रहे थे। उस समय वह कमरा इन्द्रभवनको लजा रहा था। गुणनिधि अपनी परम-प्रियाको आलिंगन कर लेट रहा, पर कन्दर्पकलाका दिल तो अपने प्यारे यारकी यादमें लगा हुआ था। उसे अपना ब्याहता पति कालसर्पके उगले हुए विषके समान मालूम होता था। वह वारम्बार अपनी कमल-सी आँखोंको बन्द करके, योगिनकी तरह, अपने यारका ध्यान करती थी। वह हर क्षण निःश्वास फैंक-फैंककर, अपनी आतुरता और शोक प्रकट करती थी; परन्तु सरलचित्त गुणनिधि इस भेदको न जानता था; इसलिये वह चुम्बन कर, शृंगारके हाव-भाव बता, अपने सरल और सप्रेम हृदयसे मीठे-मीठे शब्दोंमें रतिकेलकी प्रार्थना करने लगा; पर वह वज्रहृदया कुलटा कामिनी ज़रा भी न पसीजी। उसने पतिके प्रेमरससे पूर्ण शब्दोंका कुछ भी उत्तर न दिया; तब कामातुर पतिने उसकी साड़ी खींच ली। वह अपने अंगोंको ढककर और सुकड़ कर एवं पलँगसे नीचे उतर कर एक कोनेमें जा बैठी; क्योंकि उसे तो अपने यारका ध्यान था। वह पतिके साथ भोग-विलास करना पसन्द न करती थी। भोले-भाले गुणनिधिने



इन्द्रभवन-सदृश महल में गुणनिधि अपनी परम प्रिया को आलिंगन करके लेट रहा ; पर कन्दर्पकला का दिल तो अपने प्यारे यार की याद में लगा हुआ था, अतः वह मुँह फेर और करवट बदल कर सो गई। जब उसके पति ने उसकी साड़ी खींच ली, तब वह पलंग से उतर एक कोने में जा बैठी।

समझा कि, यह कुप्रयण-पिता है। मैं बहुत दिनोंमें आया हूँ; इससे नाराजी दिखाती और नखरे करती है। वह उसे बारम्बार प्रणाम करके और अत्यन्त मीठी बातें कह-कह कर समझाने लगा—"प्यारी! पहले तो तू ऐसी नहीं थी, यह तुझे क्या हुआ? तू तो मेरी जीवन-डोरी है। तेरे बिना मैं क्षण-भर भी जी नहीं सकता। अगर तू मुझसे न बोलेगी, मेरी ओर न देखेगी, तो मैं अपनी जान खो दूँगा। अरी मधुर मल्लिका! एक बार तो मेरी तरफ़ नजर भरके देख। देख, तेरा यह दास तेरे प्रेमकी आशासे तेरी सेवा करनेके लिए तड़फ रहा है। मुझ जैसे आज्ञाकारी सेवकको इस तरह निराश करना क्या उचित है? मेरी समझमें, मैं निरपराध हूँ। अगर मुझसे कोई अपराध हो गया है, तो मुझे क्षमा कर। देख, ईश्वर भी भयङ्कर-से-भयङ्कर अपराधीको क्षमा कर देता है। क्या तू अपने सेवकको क्षमादान न देगी?"

गुणनिधिने इस तरह सैकड़ों दीनताकी बातें कहीं, हाथ जोड़े, प्रणाम किया, तरह-तरहसे मुहब्बत जताई; पर वह जरा भी न पसीजी। उस वज्रहृदयाके कठोरतम हृदयमें लेशमात्र भी प्रेमका सञ्चार न हुआ। प्रेमका सञ्चार हो कहाँ से? वह तो दूसरे पर मरती थी और उसीको चाहती थी। उसे अपना पति तो हलाहल विषसे भी बुरा और वह यार अमृतसे भी उत्तम मालूम होता था। गुणनिधि सब तरहसे बुद्धिमान और चतुर होनेपर भी, स्त्रियोंके छल-कपट जाननेमें निरा अबोध था। कामने

उसकी बुद्धि और भी हर ली थी। कन्दर्पकलाकी तरह अनेकों स्त्रियाँ, अपने व्याहता पतियोंको धोखा देकर, पर-पुरुषोंके साथ रमण करती हैं। उनके पति उनका भीतरी हाल न जानकर, उनकी बारम्बार .खुशामद करते और प्रेमकी भित्ता माँगते हुए लम्पटपन दर्शाते हैं। ऐसे लोगोंका जीवन किरकरा हो जाता है। अगर स्त्री अपने साथ प्रेम करे, अपने ऊपर ही आसक्त रहे, तब तो इस संसारमें ही स्वर्ग है, अन्यथा नरक है। जो स्त्री पराये मर्दको प्यार करती है, अपने पतिको धोखा देती है, उसके जीनेको धिक्कार है। और जो भोला-भाला पुरुष अपनी स्त्रीके दुश्चरित्र का हाल न जानकर, उससे प्रेम करता, उसकी .खुशामद करता है उसका भी जीवन भ्रष्ट है।

कामशास्त्रमें लिखा है:—

नाभिपश्यन्ति भर्त्तारं नोत्तरं संप्रतीच्छति।
वियोगेसुखमाप्नोति संयोगे चाति सीदति॥
शय्यामुपगताशेते वदनमार्ष्टिचुम्बिता।
तन्मित्रैर्द्वेष्टिमानञ्च विरक्ता नाभिवांछति॥

जो स्त्री अपने पतिको नहीं चाहती, उसकी तरफ़ नहीं देखती; हँसकर बोलना तो दूरकी बात है, पूछी हुई बातका भी जवाब नहीं देती; जब तक पति घरमें रहता है, दुखी रहती है और उसके घरसे चले जाने पर सुखी होती है; उसके साथ एक पलँग पर नहीं सोती; अगर लेट भी जाती है, तो या तो

नींदमें सो जाती है या मुँह फेर लेती है; अगर पति मुख चूमता है, तो गालको पोंछ डालती है; पतिके मित्रसे द्वेष रखती है; पति उसे कितना ही चाहे, पर वह राज़ी नहीं होती, मुँह फुलाये रहती है।

"पञ्चतन्त्र" में लिखा है—

पर्य्यङ्केष्वास्तरणं पतिमनुकूलं मनोहरं शयनम्।
तृणमिव लघु मन्यन्ते कामिन्यश्चौर्य्यरतलुब्धाः॥

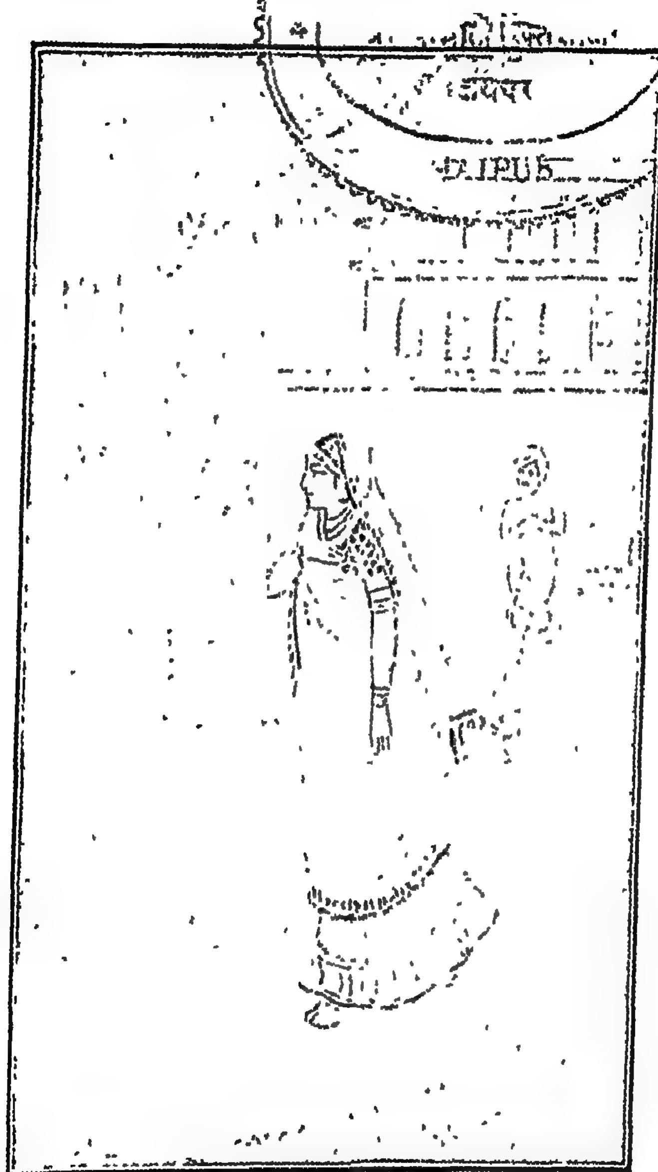
पलँग पर सोना, पतिकी अनुकूलता और मनोहर शयन इनको चोरीसे रत करनेकी इच्छा रखनेवाली स्त्रियाँ तिनकेके समान समझती है।

अगर गुणनिधि इन बातोको जानता होता, तो उस हरजाई की इतनी .खुशामद न करता।

बहुत देर तक कन्दर्पकलाकी .खुशामद करता-करता गुण-निधि थक गया। उस बेवफ़ा औरतको ज़रा भी रहम न आया। उसका दिल गुणनिधि की ओर ज़रा भी न झुका और अपने यार से मिलनेका उत्साह कम न हुआ। अन्तमें थका-माँदा गुण-निधि रतकी आशा छोड़कर सो गया; मगर उसे अच्छी तरह नींद न आई। इन्हीं बातोंमें आधी रात बीत गई। घड़ियाली ने टन टन करके बारह बजाये। सारे शहरमें सन्नाटा छा गया। सड़कों पर आदमियोंका चलना-फिरना बन्द हो गया। कोई इक्का-दुक्का आदमी इधर-से-उधर जाता नज़र आता था। सारा

संसार निंद्रादेवीकी गोदमें चला गया। ऐसे समयमें कन्दर्पकला को अपने यारकी फिर याद आई। वह मन-ही-मन कहने लगी—"मेरा प्राणप्यारा उस उपवनकी लताकुञ्जोंमें मेरी बाट जोह रहा होगा, मुझसे मिलनेके लिए घबरा रहा होगा। हाय! मेरे बिना आज उसका कैसा हाल होगा! आज इस दुष्टके यकायक आ जानेसे, मैं उसके पास नियत समय पर न पहुँच सकी। प्यारे! मुझे क्षमा करना; आज मैं मजबूर हूँ, मेरा दोष नहीं। आज मेरे-तुम्हारे सुखमें बाधा पहुँचाने वाला आ गया है।" ये शब्द मन-ही-मन कहती हुई, वह बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ी। गुणनिधि इस समय भी पूरी तरह न सोया था। वह धमाका सुनते ही अच्छी तरह जाग पड़ा। उस प्रेमान्धने कन्दर्पकलाको जमीन परसे उठाया और छातीसे लगाकर पंखा करने लगा। ज्योंहीं उसे होश हुआ वह अपने तईं पतिकी गोदमें देखकर लम्बे-लम्बे साँस लेने लगी और गोदसे उतर कर फिर अलग जा बैठी। पतिने पत्नीको मनानेके फिर भी बहुत यत्न किये, पर सब व्यर्थ। इस विघ्नकारीके विनय-वचन उस परपुरुषरता कामिनीके वियोगाग्निसे दग्ध हुए हृदयको कैसे शान्त कर सकते थे?

जब गुणनिधि सो गया। घोर नींदमें निमग्न हो जानेसे ख़ुर्राटे लेने लगा, तब कन्दर्पकलाने उसे नींदके वशीभूत जान यारसे मिलनेकी ठानी। उसने उठकर सोलह शृंगार किये और सज-धज कर यारसे मिलने चली। आज घरमें महोत्सव था,



कन्दर्पकला ने, उसे नींद के वशीभूत जान, यार से मिलने की ठानी। उसने उठकर सोलह शृंगार किये और सजधज कर यार से मिलने चली। घर में चोरी करने की ग़रज़ से आया हुआ चोर भी राह में उसके क़ीमती ज़ेवरात छीन लेने की इच्छा से उसके पीछे लग लिया।

भोगनेवाला—चैतन्य-चन्द्र उसकी देहसे सदाके लिए अलग हो चुका था। हंसा उड़ गया था, ख़ाली देह लटक रही थी। घरमें रहनेवाला ग़ायब हो गया था, ख़ाली घर पड़ा था। प्राणविहीन देह लटक रही थी। उस लाशके आस-पास कुछ पशु-पक्षी उड़ रहे थे। फाँसी लगाते समयकी आवाज़ सुनकर पक्षी जाग पड़े थे और उस लाशके इर्द-गिर्द जमा हो गये थे। इन पशु-पक्षियोंको देखकर वह नाना प्रकारकी आशंका करने लगी। उसके चित्तमें एक-पर-एक संकल्प-विकल्प उठने लगे। वह अत्यन्त भयभीत हुई। ख़ैर, अन्तमें वह उसके पास पहुँची और उसके गले लगनेकी आशासे झुकी, तो उसे मरा हुआ पाया। बस, वह कुलटा तत्क्षण ज़मीनपर गिर कर मूर्च्छित हो गई। थोड़ी देर पड़ी रहनेके बाद, उसे स्वतः ही होश हुआ। वह उठकर उस लाशके पास बैठ गई और विलाप करने लगी। जिस तरह गूँजते हुए भौंरोंके बैठनेसे कोमल लता नीचे झुक जाती है; उसी तरह आह! कहते ही वह फिर पृथ्वी पर गिर कर बेहोश हो गई। इस बार बहुत देरके बाद उसे होश हुआ। होश होते ही वह ज़ार-ज़ार रोने और कूकने लगी। उस लाश पर नज़र पड़ते ही वह अचम्भित और दुःखित हो कहने लगी—"हाय! मेरे प्राणाधार! हा! मेरे नयनानन्द! प्यारे! आप कहाँ सिधारे? नाथ! इस दासीका साथ क्यों छोड़ दिया? मेरे जीवन–सर्वस्व! आपका उदार चित्त ऐसा अनुदार क्यों हो गया? महाराज! इस दासीका अपराध क्षमा करते। प्राणेश! कुछ तो धीरज धरते। हा! बिना कुछ कहे,

बिना बोले, बिना मिले, इस दासीको सदाके लिए अनाथ करके, चले जाना उचित न था। प्यारे! अब यह अभागिन आपका मुखचन्द्र कहाँ देखेगी? हाय! यह क्या हुआ! मेरे प्यारे! प्रीतम! प्राणवल्लभ! हृदयके हार! सुनो, यह दासी कबकी पुकार रही है? हा! आप ऐसे कठोर कब से हो गये? हा! प्राणेश! मुझ मन्दभागिनीको रोते-कलपते और तड़पते देख, आपको ज़रा भी दया नहीं आती! हाय! हाय! कुछ तो मुहब्बत निवाही होती। चित्तचोर! एक बार तो दौड़कर गले लगो। प्यारे! एकबार तो मीठी और रसीली बातें और सुना दो। यह दासी भी आपके पास ही आती है।" यह कहती हुई वह बेहोश होकर गिर पड़ी। इसके कुछ देर बाद धीरज धरकर अपने प्रेमी का मुँह चूमने लगी—मानों उस मुर्देमें जान आ गई हो। इसके बाद उसने अपने मुँहका पान भी उसके मुँहमें रख दिया और बारम्बार उसके ख़ूबसूरत चेहरेको देखने लगी। फिर कभी रोने लगती और कभी धीरज धरके कहती—"प्यारेको आँखों-भर देख तो लूँ, जो होना था सो तो हो ही गया।

अब एक नई बात सुनिये:—ईश्वरकी गति बड़ी ही विचित्र है। उस लीलामयकी लीलाका पार नहीं। वह बड़ा विलक्षण है। उसकी रचनाका भेद पाना असम्भव है। कोई नहीं कह सकता कि, थोड़ी ही देरमें क्या होने वाला है। उस मुर्दे के शरीर पर चन्दन-अरगजा चर्चित था। इत्र प्रभृति ख़ुशबूदार चीज़ोंसे उसके कपड़े महक रहे थे। उसके बदन पर के सुगन्धित पदार्थों से



हंसा उड़ गया था, ख़ाली देह लटक रही थी। वह नाना प्रकार की आशंका करने लगी। वह उसके गले लगने की आशा से झुकी, तो उसे मरा हुआ पाया ; तब वह अचम्भित और दुःखित हो कहने लगी—'हाय ! मेरे प्राणाधार ! हा ! मेरे नयनानन्द ! आप कहाँ सिधारे ? ज्योंही कदर्पकला अपने यार का होठ अपने मुँह में लेकर चूमने लगी, त्योंही मुर्दे में घुसे हुए प्रेत ने उस दुष्टा की नाक काट खाई। पृष्ठ २५६

वह वन-का-वन सुगन्धिमय हो रहा था। कोसों तक सुगन्धि फैल रही थी। उस वनमें एक प्रेत भी रहता था। उसने सुगन्ध पर मोहित होकर, उसके शरीरमें अपना घर बना लिया; यानी वह मुर्देके भीतर घुस गया। ज्योंही कन्दर्पकलाने अपने यारकी लाशसे आलिंगन किया, उसका होठ अपने मुँहमें रखकर चूसने लगी, त्योंही उस मुर्दे में घुसे हुए प्रेतने उस दुष्टाकी नाक काट खाई। इस तरह दुराचारिणी स्त्रीने अपने कुकर्मका फल पाया*। संसारमें जगदीशकी इच्छा विना एक

---

* बहुतसे नई रोशनीवाले बाबू इस घटनाको कल्पित और मनगढ़न्त समझेंगे। उनके लिए हम अभी दस-पाँच दिनकी ऐसी ही अकचकानेवाली नई घटना, जो कल-परसों ता० २०।२५ जुलाई सन् १९२५ के हिन्दी अख़बारोंमें छपी है सुनाते हैं, उससे मालूम हो जायगा, कि ईश्वरकी लीला कैसी विचित्र है। वह पापियोंको किस तरह दण्ड देता है। भागलपुरमें रहनेवाला एक नाई अपनी पुत्रीको लिवा लानेके लिए पुत्रीकी सुसरालमें गया। लड़कीको लेकर वह पैदल किसी जङ्गलमें होकर आ रहा था। उसकी पुत्री गर्भवती थी और उसका रूप-लावण्य अपूर्व था। चेहरेसे नूर टपका पड़ता था। पिताकी नीयत पुत्री पर बिगड़ी। उसने पुत्रीकी राज़ीसे या बेराज़ीसे—पता नहीं—उससे भोग किया। उसकी लिंगेन्द्रिय उसकी पुत्रीकी योनिमें अटक गई। उसने इन्द्रिय निकालनेकी हज़ारों कोशिशें कीं; मगर वह कामयाब न हुआ। वह दोनों अस्पताल ले जाये गये। डाक्टरोंने उन्हें अलग किया। गर्भका बच्चा मर गया, वह भी निकाला गया। क्या किसीने आज तक सुना है कि, पुरुषकी लिंगेन्द्रिय स्त्रीकी योनिमें कभी अटकी हो? ईश्वरको उस महा अधम

पत्ता भी नहीं हिलता, इससे मालूम होता है कि, जगदीशकी ऐसी ही इच्छा थी कि, उस भ्रष्टा कुलटाको दण्ड मिले, और वह जीवन-भर ऐसे कुकर्म करने-योग्य न रहे। आगे देखिये क्या-क्या गुल खिलते हैं।

चेहरेकी सुन्दरता नष्ट होने या नाक कट जाने पर, कन्दर्पकला उस लाशको वहीं छोड़कर, वहाँसे नौ दो ग्यारह हुई और घर पहुँचकर चुपचाप अपने पतिके पास सो रही। कुछ देर लेटी रहनेके बाद, उसने त्रिया-चरित्र रचना शुरू किया। सोते-सोते मानो अचानक चौंक उठी हो—इस तरहका भाव बनाकर चिल्लाने लगी—"हायरे हाय! इसने मेरी नाक काट ली, कोई दौड़ो, मुझे बचाओ।" इस तरहकी भयानक चीख़ सुनकर घरके लोग दौड़े आये। इस आवाज़को सुनकर बेचारा अनजान गुणनिधि भी जाग उठा। वह आँखें खोलकर क्या देखता है कि, लोग उसे चारों ओरसे घेरे हुए खड़े हैं और क्या हुआ! क्या हुआ! का शोर कर रहे हैं। उसकी अपनी विवाहिता स्त्री कन्दर्पकला कह रही है—"आप लोग नहीं देखते, इसने मेरी नाक काट ली है? मुझे बचाइये, नहीं तो अब मेरी जान भी नहीं बचेगी, यह मुझे मार डालेगा।" ये बात सुनकर गुणनिधिका ससुर और अन्य लोग कहने लगे—"तुमने यह क्या

नाईको सज़ा देनी थी, उसे मुँह दिखाने योग्य न रखना था। इसीसे ऐसी अपूर्व—देखी न सुनी—घटना घटी। ईश्वर पापियोंको इसी तरह दण्ड देता है।

किया ? अफ़सोस ! तुमने इस निरपराधिनीकी नाक वृथा ही काट ली ! इसका क्या अपराध था ?" ये बातें सुनते ही गुणनिधिका चेहरा पीला पड़ गया। वह हक्का-वक्का हो गया। होश-हवास जाते रहे। उसके मुँहसे एक अक्षर भी न निकला। उधर कन्दर्पकला फूट-फूटकर रो रही थी। उसके पिता और चाचा वग़ैरः गुणनिधिसे नाक काटनेकी वजह पूछ रहे थे। इतनेमें सवेरा हो गया। गुणनिधिके ससुरालवाले कोतवालीमें दौड़े गये; रिपोर्ट लिखाई। पुलिसने आकर गुणनिधिको गिरफ़्तार कर लिया। फिर वह राजाके सामने पेश किया गया। राजाने सब तरहसे पूछ-ताछ और गवाही वग़ैरः लेकर गुणनिधिको १ सालकी क़ैद और दस हजार रुपया जुर्माना किया। गुण-निधिने एक शब्द भी अपनी ज़बानसे नहीं कहा।

यह बात सारे शहरमें फैल गई। हर आदमीके मुँह पर यही चर्चा थी कि, नगरसेठके जमाईने अपनी स्त्रीकी नाक काट ली। वह कल ही परदेशसे आया था। न्यायके समय वह चोर, जो रातको कन्दर्पकलाके पीछे लगा था, अदालतमें मौजूद था। उसने देखा कि, निरपराध गुणनिधि वृथा मारा जाता है—बेचारेको वृथा इतनी कड़ी सज़ा दी जाती है। उसके दिलमें जोश आया और उसने सारी घटना राजाको कह सुनाई। राजा अपने आदमियोंके साथ स्वयं उपवनमें गया। चोरने कन्दर्पकलाके पदचिह्न, अपने छिपनेका स्थान और कन्दर्पकलाके यारकी लाश ये सब दिखा दिये। साथ ही उस मुर्देके मुँहमेंसे कन्दर्पकलाकी नाक

निकालकर दिखा दी और उस लाशपर पड़ी हुई ख़ूनकी बूँदोंपर भी ध्यान दिलाया। सारी घटना राजाकी समझमें आगई। राजाने गुणनिधिको दण्ड-मुक्त किया, कन्दर्पकलाको जेलख़ाने भेजा, चोरको कई लाख रुपये इनाम दिये और गुणनिधिको अपना दीवान बनाकर, उसे अपनी कन्या ब्याह दी। बुरेको बुरा और भलेको भला फल मिला।

नतीजा इस कहानीका यही है, कि अधिकांश स्त्रियाँ अत्यन्त कुटिल, क्रूरकर्म करनेवाली, लज्जाहीना और चञ्चलमति होती हैं। ये लोग अपने पति,पिता-माता,भाई-बन्धु और अपनी पेटकी औलाद तकसे द्रोह करने और उनका सर्व्वनाश करनेमें नहीं चूकतीं।

जिस पतिने कन्दर्पकलाकी मुहब्बतमें, उसे ख़ुश करनेमें, कोई बात उठा न रखी; जिस पिताने उसे पालने-पोषने और पढ़ाने-लिखानेमें कोई त्रुटि न की, उसकी शादीमें करोड़ों ख़र्च कर दिये—उन पिता और पतिकी इज़्ज़तका उसने कुछ भी ख़याल न किया। इससे बढ़कर और दौरात्म्य क्या हो सकता है? कुलटा नारी कुलगौरव-हानि, लोकनिन्दा, जेल और फाँसी किसीकी भी परवा नहीं करती। ऐसी नारीसे जगदीश बचावे! किसीने कहा है:—

आवर्त्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां
दोषाणां सन्निधानं कपटशतगृहं क्षेत्रमप्रत्ययानाम्।
दुर्ग्राह्यं यन्महद्भिर्नरवरवृषभैः सर्व्वमायाकरण्डं
स्त्रीयंत्र केन लोके विषममृतयुतं धर्मनाशाय सृष्टम्?॥



राजा ने गुणनिधि को दण्डमुक्त किया, कन्दर्पकला को जेलखाने भेजा, चोर को कई लाख रुपये इनाम दिये और गुणनिधि को अपना दीवान बनाकर, उसे अपनी कन्या भी व्याह दी। बुरे को बुरा और भले को भला फल मिला।

पृष्ठ ३५९।६०

सन्देहोंका भँवर, अविनयका घर, साहसका नगर, दोषोंका ख़ज़ाना, कपटका शतगृह, अविश्वासका क्षेत्र, बड़े-बड़े नरश्रेष्ठोंके भी क़ाबूमें न आनेवाला, सारी मायाका पोटला—स्त्री-रूपी यंत्र, जिसमें विष और अमृत दोनों ही हैं, धर्मनाशार्थ, किसने बनाया ?

अपसर सखे दूरादस्मात्कटाक्षविषानला—
त्प्रकृतिविषमाद्योषित्सर्पाद्विलासफणाभृतः ॥
इतरफणिना दष्टः शक्यश्चिकित्सितुमौषधै—
श्चतुरवनिताभोगिग्रस्तं त्यजन्तिहि मन्त्रिणः ॥८३॥

हे मित्र ! सहज ही क्रूर, विलास रूपी फण वाले और कटाक्षरूपी विषाग्नि धारण करनेवाले स्त्री-रूपी सर्पसे दूर भाग; क्योंकि और सर्पोंका काटा हुआ तो मन्त्र तथा औषधियोंसे अच्छा हो सकता है; पर चतुर स्त्री-रूपी सर्पके डसे हुए को झाड़-फूँक वाले गारुड़ी भी छोड़ भागते हैं ॥८३॥

खुलासा—स्त्री सर्पके समान है। इसका विलास इसका फण और कटाक्ष विषाग्नि है तथा यह स्वभावसे ही सर्पके समान क्रूर या विषैली है। यह स्त्री-सर्प और सर्पोंसे अधिक भयङ्कर है; क्योंकि और सर्पोंका खाया हुआ मनुष्य मन्त्र या दवा अथवा झाड़फूँकसे कदाचित अच्छा हो भी जाता है; पर



इस सर्पके खायेका तो इलाज ही नहीं। इसका काटा हुआ भी, कालेसर्पके काटे हुए की तरह, न खेलता है और न बकरता है।

उस्ताद 'जौक़' फ़रमाते हैं:—

डसा हो कालेने जिसको काफ़िर
तो वह फ़िसूँके असरसे खेले।
दहानो गेसूका तेरा मारा,
न मुँहसे बोले न सरसे खेले ॥

मसल मशहूर है, कालेका काटा हुआ नहीं खेलता—नहीं अच्छा होता। फिर तेरे मुँह और ज़ुल्फ़ोंका काटा हुआ आदमी यदि मुँह से नहीं बोलता और सरसे नहीं खेलता, तो क्या आश्चर्य्य है ?

महात्मा 'कबीर' भी कहते हैं:—

नागिनके तो दोय फन, नारीके फन बीस।
जाको डस्यो न फिर जिये, मरिहै बिस्वा बीस ॥
कामिनि काली नागिनी, तीन लोक मंझार।
नाम-सनेही ऊबरा, विषिया खाये झार ॥
नारी निरखि न देखिये, निरखि न कीजै दौर।
देखत ही तें विष चढ़ै, मन आवे कछु और ॥

स्त्री-मात्र नागिन-स्वरूपिणी है। जैसी ही अपनी स्त्री, वैसी ही पराई। विष तो सभी में होता है। विषका अपना

और पराया क्या ? मनुष्य अपने विषसे भी मरता है और पराये विषसे भी। अपने कुएँ में गिरनेसे भी डूब जाता है और पराये कूएँ में गिरनेसे भी। स्त्रियोंसे सुखकी आशा करना, मृगमरीचिकामें जल पानेकी आशा करनेके समान है। "भामिनी-विलास" रचयिता पण्डितेन्द्र जगन्नाथ महाराज कहते हैं और सच कहते हैं:—

अलकाः फणिशावतुल्यशीला
नयनांता परिपुंखितेपुलीलाः।
चपलोपमिता खलु स्वयं यावत
लोके सुखसाधनं कथं सा ? ॥

जिसकी अलकावलि साँपके बच्चेके से स्वभाव वाली है और जिसकी आँखोंके कटाक्ष सपुँखवाणों की तरह लीला करने वाले हैं और जिस की स्वयं विद्युतलतासे उपमा दी जाती है, हा ! वह स्त्री इस लोकमें किस तरह सुखदायी हो सकती है ?

सारांश यह है कि, स्त्रियाँ नागिनोंसे भी अधिक भयङ्कर हैं, अतः अपना भला चाहने वालोंको इनसे दूर रहना चाहिये। इनमें सुख नहीं, घोर दुःख है; अमृत नहीं, हलाहल विष है। सर्पके काटेकी दवा है, पर इनके काटेकी दवा नहीं❀।

❀ संसार की सभी स्त्रियाँ नागिन के समान नहीं होतीं, पर हाँ ज़ियादातर ऐसी होती हैं।

दोहा।

मन्त्र-यन्त्र-औषधनते; तजत सर्प विष लाग।
यह क्यों हूँ उतरत नहीं, नारि-नयनको नाग ॥८३॥

सार—स्त्री-रूपी सर्पसे दूर रहो, क्योंकि उसके काटेका इलाज नहीं है।

83. O my friend, keep yourself aloof from a woman who is like a serpent. Both are crooked and cruel by nature and the oblique glances of the woman are like the flames of an arrow and whose gay activities are her hood. Serpent-bite may be cured by medicine, but even the charmers give them up who are bitten by this serpent-like clever woman.

विस्तारितं मकरकेतनधीवरेण
स्त्रीसंज्ञितं बडिशमत्र भवाम्बुराशौ ॥
तेनाचिरात्तदधरामिषलोलमर्त्य-
मत्स्यान्विकृष्य स पचत्यनुरागवह्नौ ॥८४॥

इस संसार-रूपी समुद्रमें कामदेव-रूपी धीमरने स्त्री-रूपी जाल फैला रक्खा है। इस जालमें वह अधरामिष-लोभी पुरुष-रूपी मछलियों को, शीघ्रतासे, खींच-खींच कर, अनुराग-रूपी अग्निमें पकाता है ॥८४॥

खुलासा—क्या अच्छा रूपक है ? इसमें सागर "संसार-सागर" है । मछली पकड़नेवाला मछुआ या धीमर स्वयं "कामदेव" है। मछली पकड़नेका जाल "स्त्री" है। मछलियाँ "पुरुष" हैं। उनका चारा, जिसके लोभसे पुरुष-रूपी मछलियाँ जालमें फँसती हैं, "अधरामिष" है। मछलियोंको, भाग जानेके डरसे, शीघ्र ही पका डालने की अग्नि "अनुराग" है।

अजब मज़ेदार मामला है। कामदेव-धीमर बड़ा ही चालाक है। वह पुरुष-रूपी मछलियोंके फँसानेके लिये जाल और चारा प्रभृति सभी सामान लैस रखता है। एकबार फँस कर मछलियाँ निकल न भागें, इसलिये वह आग भी तैयार रखता है। इधर मछली जालमें फँसी और उधर आग पर रक्खी। ऐसे चालाक धीमरके जालमें फँसकर कौन बच सकता है ? तात्पर्य्य यह कि, एक बार इश्क़ या प्रेममें फँसने पर, पुरुष निकल नहीं सकता। जब तक जालमें न फँसे, तभी तक ख़ैर है। अतः जो पुरुष कामदेव के जालमें फँसकर प्राण न गँवाना चाहें, वे कामदेवके "स्त्री-जालसे" दूर रहें।

महाकवि 'कालिदास'ने स्वयं स्त्रीको व्याध बनाकर और ही तरह रूपक बाँधा है। उनकी उक्ति का भी मजा चख लीजिये:—

इयं व्याधायते बाला भ्रूरस्याः कार्मुकायते ।
कटाक्षाश्च शरायन्ते मनो मे हरिणायते ॥

यह नवयौवना बाला मेरे फँसाने या मारनेके लिये व्याध—शिकारी-सी हो रही है। इसकी भौंहें धनुपके समान हैं; यानी यह बाला अपने भौंह-रूपी धनुपसे मेरे मनको व्याकुल करती है—अपनी तिरछी नजरोंसे मुझे घायल करे देती है।

बात एक ही है, स्त्रीके सामने जाने, उसे घूरकर देखने और उसकी नजर-से-नजर मिलानेसे ही पुरुप मारा जाता है। जो स्त्रीसे दूर रहें अथवा उसे देखकर नीची नज़र कर लें, उससे आँखें न मिलावें, वे वेशक़ उसके जाल या बाणोंसे बच सकते हैं। जिन्हें अपने कल्याणकी इच्छा हो, वे स्त्रियोंकी छायाके भी पास न जायँ। उनसे दूर रहनेसे पुरुपको इस लोकमें सुख-सम्पत्ति और मरने पर सद्गति मिलेगी।

दोहा।

काम-भील भव-सिन्धुमें, वंसी-नारी डार।
मीन-नरनको गहि पचत, प्रेम-अग्निको बार ॥८४॥

84. The world is like the ocean and Kamdev the fisherman. He has spread the net in the form of woman and catches and burns, in the fire of love, those who are greedy enough to taste the bait in the form of her lips.

कामिनीकायकान्तारे कुचपर्वतदुर्गमे।
मा सञ्चर मनः पान्थ तत्रास्ते स्मरतस्करः ॥८५॥

सिवा साँपके काटेकी दवा भी जहाँ-तहाँ बिकती हैं। जङ्गलोंमें जड़ी-बूटियाँ भी पाई जाती हैं। इसलिये साँपके काटे हुए आदमीके बचनेकी उम्मीद रहती है; पर स्त्रीके नेत्रों-द्वारा काटे हुए आदमीका इलाज करनेवाले और उसकी दवा—दोनों ही नहीं मिलते; इसलिये स्त्रीके काटे हुए का बचना कठिन हो जाता है। अतः प्राणरक्षा चाहने वालोंको स्त्रीके नेत्रों से सदा दूर रहना चाहिये, जिससे कि ये काट न सकें।

छप्पय।

महा भयंकर चपल वक्रगति, अरु फणधारी।
डसे कालिया नाग, नहीं कछु विपता भारी॥
करें चिकित्सा वैद्य, धर्म-हित देयँ जिवाई।
पै नहिं कोउ वैद्य, चिकित्सा और उपाई॥
जेहि डसत भुजंगीनि-त्रिय चपल, करि कटाक्ष सो नहिं जियत।
यह जानि विदुपजन जगत्में, विषय-रूप-विष किमि पियत ?॥८६॥

सार—स्त्री-सर्पके काटेका इलाज नहीं है।

86. It is better to be bitten by a snake long, restless, crooked, bright fanged and colored like blue lotus than to be pierced by the oblique glances of a woman. For there are many virtuous men in every country to cure those that are bitten by snakes but there is neither a physician nor any medicine to cure those who have been glanced for a short while through the eyes of a good-looking woman.

इह हि मधुरगीतं नृत्यमेतद्रसोऽयं,
स्फुरति परिमलोऽसौ स्पर्श एष स्तनानाम् ।
इति हतपरमार्थैरिन्द्रियैर्भ्राम्यमाणो,
ह्यहितकरणदक्षैः पञ्चभिर्वञ्चतोऽसि ॥८७॥

यह कैसा मधुर गाना है, यह कैसा उत्तम नाच है, इस पदार्थका स्वाद कैसा अच्छा है, यह सुगन्ध कैसी मनोहर है, इन स्तनों को छूनेसे कैसा मज़ा आता है ! हे मनुष्य ! तू इन पाँच विषयोंमें भ्रमता हुआ—परमार्थ-नाशिनी नरकादिकी साधनभूत पाँचों इन्द्रियोंसे—ठगा गया है ॥८७॥

खुलासा—कान निरन्तर गाना सुनना चाहते हैं, नाक अतर फुलेल और फूल प्रभृति चाहती है, चमड़ा सुन्दरी पोडशी बालाके कठोर कुचोंको मर्दन करना चाहता है और रसना—जीभ खट्टे-मीठे पदार्थोंका स्वाद लेना चाहती हैं। कान, नेत्र, नाक, त्वचा और जीभ—इन पाँचों इन्द्रियोंका स्वभाव अपने-अपने विषय—शब्द, रूप, गन्ध, स्पर्श और रसकी ओर जानेका है। बस; ये पाँचों इन्द्रियाँ पुरुषको अपने-अपने विषयोंमें फँसा कर बेकाम कर देती हैं। इनमेंसे एक-एक विषय भी मनुष्यका सर्व्वनाश कर सकता है। अगर ये पाँचों हों, तब तो कहना ही क्या ? सर्व्वनाशको पञ्जाब मेलकी तरह अत्यन्त शीघ्रतासे पास आया समझिये। सुनिये, एक-एक विषयसे ही प्राणीका सर्व्वनाश किस तरह हो जाता है:—

घास और दूब खानेवाला हिरन, बहुत दूर होने पर भी, शिकारीके गीत पर मोहित होकर, प्राण गँवा देता है; यानी एक "कान" नामक इन्द्रियके वश होकर मारा जाता है। अगर हिरनकी श्रवण-इन्द्रिय—कानको शब्द या गाना सुनने का चसका न हो; तो वह क्यों शिकारीके जालमें फँसकर प्राण-नाश करावे ?

पर्वतके शिखरके समान आकारवाला और खेलमें ही वृक्षों को उखाड़ फेंकनेवाला महाबलवान हाथी, केवल हथनीकी भोग-लालसासे, शिकारियोंके घेरेमें आकर बँध जाता है; यानी एक लिङ्गेन्द्रियके वशीभूत होनेसे, अपनी आज़ादी खोकर, क़ैद हो जाता है।

पतङ्ग दीपक की रमणीय शिखाके रूप पर मुग्ध होकर, उसे आलिङ्गन करनेको, उसके ऊपर बारम्बार गिरता और अन्तमें जलबल कर ख़ाक हो जाता है। पतङ्ग केवल एक नेत्र-इन्द्रियके वशीभूत होकर अपने प्राण गँवाता है।

अगाध जलमें डूबी हुई मछली, चारेके लोभसे, कँटियामें मुँह देकर अपने प्राण गँवाती है; यानी एक जिह्वा—जीभ-इन्द्रियके वशीभूत होकर, मछली अपने प्राण गँवाती है।

भौंरा कमलको कतर सकता है और अपने पङ्खोंसे उड़ भी सकता है; किन्तु वह सुन्दर मनभावन गन्धके लोभसे, कमलमें बन्द होकर, अपने प्राण गँवा बैठता है; यानी अपनी नाक-इन्द्रियके वश होकर, भौंरा अपने प्राण गँवा देता है।

कहा है:—

कुरंगमातंगपतंगभृंगमीना: हता: पञ्चभिरेव पञ्च ।
एक: प्रमादी स कथं न हन्यते य: सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥

जबकि हिरन, हाथी, पतङ्ग, भौंरा और मछली—ये पाँचों एक-एक विषयके प्राणी होते हुए, विषयोंमें फँस कर, मौतके निवाले होते हैं, तब मनुष्य जोकि रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श—पाँचों विषयोंके फेरमें फँसा रहता है, कैसे बेमौत न मरता होगा ? संसारमें बन्धन भी बहुत होते हैं, पर प्रेम-रूपी रस्सीका बन्धन सबसे बुरा है। कड़ी-से-कड़ी बाँसकी गाँठको काट सकनेवाला भौंरा, कमलके फूलमें बन्द होकर, उसकी नर्म पाशको नहीं काट सकता और उसके भीतर बैठा हुआ अपने मनमें यह विचारता है—

रात्रिर्गमिष्याति भविष्याति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्याति हासिष्यातिपद्मजालं ।
इत्थं विचिन्तयाति कोशगते द्विरेफे
हाहन्त-हन्त नलिनीगज उज्जहार ॥

जब रातका अन्त होगा और सवेरा होगा; तब सूर्य भगवान् उदय होंगे और कमल खिलेगा, उस समय मैं इस कमलके बन्धनसे निकल कर इधर-उधर घूमूँगा और दूसरे फूलोंका रस प्रान करूँगा—भौंरेके ऐसा विचार करते-करते ही, अचानक एक जङ्गली हाथी तालाबके किनारे आता है और तालाबमें घुस

भौंरे-समेत कमलके वृक्षको खा जाता है। बेचारे भौंरेके विचार उसके मनमें ही रह जाते हैं।

अब पाठक अच्छी तरह समझ गये होंगे कि, एक-एक इन्द्रियके वश होकर ही प्राणी किस तरह मारे जाते हैं; पर जो प्राणी अपनी पाँचों इन्द्रियोंके वशीभूत रहते होंगे, उनकी क्या गति होती होगी ? जो मनुष्य मधुर गान सुनते होंगे, सुन्दरी वाराङ्गनाओंका नाच देखते होंगे, तरह-तरहके स्वादिष्ट भोजन करते होंगे, उत्तमोत्तम इत्र, फुलेल, सैण्ट, ओडीकलन प्रभृति सूँघते होंगे और कठोर कुचोंवाली सुन्दरी तरुणी स्त्रियों को छातीसे लगाते होंगे—वे क्या सर्व्वनाशसे बच सकेंगे ?

यह जीवात्मा-रूपी भौंरा भी, कमलके भौंरेकी तरह, संसार-रूपी तालाब और शरीर-रूपी कमलमें बैठा हुआ, पञ्चेन्द्रियोंका सुख लूटता हुआ, उत्तमोत्तम ग्रन्थ पढ़ और महात्माओंके उपदेश सुनकर विचार किया करता है कि, कलसे मैं ईश्वर-भजन करूँगा, परसों या अमुक दिनसे मैं अमुक दान-पुण्य करूँगा। जीवात्मा यह विचार करता ही रहता है और काल-रूपी हाथी, अचानक आकर, इसे अपने मुखमें धर कर खा जाता है। इस तरह इसके सारे विचार धरे-के-धरे ही रह जाते हैं। इसलिये मनुष्यको अपनी इन्द्रियाँ अपने वशमें करनी चाहियें।

आँख-नाक प्रभृति पाँचों ज्ञानेन्द्रियों और हाथ, पाँव, गुदा, लिंग और मुख—पाँचों कर्मेन्द्रियोंको चलानेवाला एक "मन" है। 'मन' जिधर चाहता है, ये पाँचों इन्द्रियाँ उधर ही जाती हैं,

इसलिये 'मन' दसों इन्द्रियों का संचालन-कर्त्ता है। अब जो प्राणी दुःख और क्लेशोंसे बचना चाहें, जो जगत्को अपने वशमें करना चाहें, जो परमात्मा से मिलना चाहें अथवा जो परमपद या मोक्ष चाहें, उनका पहला काम—अपने 'मन और इन्द्रियों' को पूर्णरूपसे अपने वशमें करना है। पर मन बड़ा चञ्चल और तेज चलने वाला है। इसकी चाल हवा और बिजलीकी चमक से भी तेज है। इसको वश करना सहज नहीं, क्योंकि इसका स्वभाव ही इन्द्रियोंको विषयोंकी ओर झुकाना है और विषयोंमें फँसे हुए मनुष्यका कहीं ठिकाना नहीं। मनको वश करना कठिन होने पर भी, अभ्याससे वह सहजमें वश हो जाता है। अँगरेजी में एक कहावत है—"Where is a will, there is a way." जहाँ इच्छा होती है, वहाँ राह भी हो जाती है। यदि मनुष्य इस बात पर कटिवद्ध हो जाय, मनको वशमें करने के लिये कमर कस ले, तो मन अवश्य वशमें हो जायगा। मन वशमें हुआ और मनुष्य देवता हुआ। फिर उसे दुःख क्या ?

मनके सम्बन्धमें 'गिरिधर' कविकी कुण्डलियाँ पाठकों को सुनाते हैं:—

कुण्डलिया।

हे मन ! शब्द स्पर्श जो, रूप पुनः रस गन्ध।
सर्व दुःखोंका बीज यह, तू नहिं समझत अन्ध !॥

तू नहिं समझत अन्ध ! सदा इन्हीं को चाहे।
अपनी हत्थी आप, आपने तन को दाहे॥
कह "गिरिधर" कविराय, जो प्रत्यक आनन्द घन रे।
तिसहि मांहिं रह लीन, सुखी तब होवे मन रे॥

और भी—

कुण्डलिया।

रे मन ! भौतिक वर्ग में, तू महन्त परधान।
तेरे पाछे हैं सबै, देह बुद्धि इन्द्रिय प्रान॥
देह बुद्धि इन्द्रिय प्राण, इन्होंमें तू है नायक।
क्रिया तेरे आधीन, मानसी-वाचिक-कायिक॥
कह "गिरिधर" कविराय, होवे तबही धन-धन रे।
जब निर्विकार हो रहे, सर्वथा इक रस मन रे॥

छप्पय।

काम निरन्तर गान-तान, सुनिबोही चाहत।
लोचन चाहत रूप, रैन-दिन रहत सराहत॥
नासा अतर-सुगन्ध, चहत फूलन की माला।
त्वचा चहत सुख-सेज, संग कोमल-तन बाला॥
रसनाहू चाहत रहत, नित खाटे मीठे चरपरे।
इन पंचन या प्रपंच सों, भूपनको भिक्षुक करे॥८७॥

सार—अगर मनुष्य नित्य-सुख चाहे, तो इन्द्रियोंको विषयोंकी ओर न जाने दे, उन्हें अपने वशमें करे।

87. O men, you have been made to run about cheated by these five senses, which obstruct the way for the other world and are skilful in doing evils. (Ear):—How sweet is this song; (Eye) how beautiful is this dance; (Taste) how tasteful is this; (Smell) how sweet is this scent, and (Touch) how very pleasing are these breasts to touch.

न गम्यो मन्त्राणां न च भवति भैषज्यविषयो,
न चापि प्रध्वंसं व्रजति विविधैः शान्तिकशतैः।
भ्रमावेशादङ्गे किमपि विदधद्भङ्गमसमं,
स्मरोऽपस्मारोऽयं भ्रमयति दृशं घूर्णयति च ॥८८॥

जब कामदेव-रूपी अपस्मार—मृगी—रोगका, भ्रमके आवेशसे, दौरा होता है, तब शरीरमें असह्य वेदना होती है, शरीर दूखता है, मन घूमता है और आँखें चक्कर खाती हैं। यह रोग मन्त्र, औषधि, नाना प्रकारके शान्ति-कर्म और पूजा-पाठ किसीसे भी नाश नहीं होता।

खुलासा—अपस्मार या मृगी रोग शोक-चिन्ता प्रभृतिसे होता है। उसके दौरेके समय मनुष्यका ज्ञान नष्ट हो जाता है,

नेत्र टेढ़े-तिरछे घूमने लगते हैं, हाथ-पाँवोंका सत्त्व निकल जाता है और स्मरणशक्ति नष्ट हो जाती है। कामदेव-रूपी अपस्मार रोगमें भी प्रायः ऐसे ही लक्षण होते हैं। कामार्त्त रोगीका मन और नेत्र घूमने लगते हैं। होश-हवास हवा हो जाते हैं। मुँहसे कहना कुछ चाहता है और निकलता कुछ है। साधारण अपस्मार और कामदेवके अपस्मारमें एक बड़ा भेद है। वह यह कि, अपस्मार तो घृत, ब्राह्मी घृत, कुष्माण्ड घृत, स्वल्प पञ्चगव्य घृत और महापञ्चगव्य घृत तथा त्रिफला तैल एवं भूतोंके रोगमें जो झाड़-फूँक मन्त्र-जन्त्र किये जाते हैं, उन से आराम हो जाता है; पर कामदेव-रूपी अपस्मार की कोई भी औषधि, आज तक, किसीने नहीं निकाली; इसलिये भगवान् न करे जो किसीको यह रोग हो। जिन्हें इस भयङ्कर प्राणनाशक और परमार्थ-नाशक रोगसे बचना हो, वे कामिनियों के चञ्चल नेत्रोंसे दूर रहें, क्योंकि स्त्रियों की तेज नजरोंसे बचने वालों को यह रोग नहीं होता। यदि कोई उनकी चपेट में आ जाय, उनका विष उस पर चढ़ जाय, तो 'विषस्य विषमौषधम्' अर्थात् विष की औषधि विष है। उनका विष वे ही उतार सकती हैं। महाकवि 'कालिदास' ने अपने "शृङ्गार तिलक" में कहा भी है:—

दृष्टिं देहि पुनर्बाले ! कमलायतलोचने !
श्रूयते हि पुरालोके, विषस्य विषमौषधम् ॥

हे बाले! हे कमलनयनी! मेरी ओर फिर अपनी दृष्टि फेंक, क्योंकि सुनते हैं कि, विषकी दवा विष है। मुझ पर तेरा जहर चढ़ा है, अगर तू ही उतारे तो वह उतर सकता है।

किसीने किसी इश्क़के मरीजके इलाजके लिये किसी हकीमको बुलाया। हकीम साहब नब्ज़ टटोलने लगे, तो किसी बुद्धिमानने कहा:—

जूँ पञ्जशाखा, तू न जलां उँगलियाँ तबीब।
रख-रखके, नब्ज़ आशिक़े तफ्ता जिगर पे हाथ॥ ज़ौक़।

हकीम साहब! क्यों अपने हाथको पञ्ज शाखेकी तरह दिल-जले आशिक़की नब्ज़ पर रख कर वृथा जलाते हो? इश्क़ का मरीज आपकी दवासे आराम न होगा।

दोहा।

मन्त्र दवा अरु आपसों, वेदन मिटै न वैद!।
कामबान सों भ्रमत मन, कैसे मिटहैं कैद? ॥८८॥

सार—साधारण अपस्मार या मृगीरोगका इलाज है, पर कामके अपस्मारका इलाज नहीं है।

88. This Kamdev(Cupid)like Epilepsy gives much pain due to senselessness, overcasts the mind and rolls the eyes. Neither any charm nor any medicine has any effect on those attacked by it, nor is it cured by various pacifying worships.

जात्यन्धाय च दुर्मुखाय च जराजीर्णाखिलाङ्गाय च,
ग्रामीणाय च दुष्कुलाय च गलत्कुष्ठाभिभूताय च।
यच्छन्तीषु मनोहरं निजवपुर्लक्ष्मीलवश्रद्धया,
पण्यस्त्रीषु विवेककल्पलतिकाशस्त्रीषु रज्येत कः ॥८६॥

कुरूप, बुढ़ापे से शिथिल, गँवार, नीच और गलित कुष्टीको, थोड़ेसे धनकी आशासे, जो अपना सुन्दर शरीर सौंप देती है और जो विवेक-रूपी कल्पलता के लिये छुरीके समान है, उस वेश्यासे कौन विद्वान् रमण करना चाहेगा ?

वेश्या एकमात्र धनकी दासी है।

वेश्या पैसों को प्यार करती है, पुरुषको नहीं। उसे जो पैसा देता, वह उसीकी हो जाती है; चाहें वह भङ्गी, चमार या चाण्डाल ही क्यों न हो। जातिहीन, कुलहीन, जन्मान्ध, कुरूप, बूढ़ा, दुर्बल, काना और गलित कुष्ठी भी अगर धनी हो और उसे धन दे, तो वेश्या—बिना किसी तरह के विचार और पशोपेशके—उसके नीचे अपना सोने-सा शरीर बिछा देती है। वेश्या को जवान और बूढ़े, खूबसूरत और बदसूरत, काने और अन्धे, लूले और लँगड़े, निर्बल और सबल, चोर और ठग, ज्वारी और शराबी, सदाचारी और कदाचारी, हिन्दू और मुसलमान

सब समान हैं। उसको न किसीसे मुहब्बत है और न किसीसे परहेज। वह धन देने वाले को चाहती है और न देने वाले से परहेज करती है।

किसी कविने कहा है और विल्कुल ठीक कहा है:—

वित्तेन वेत्ति वेश्या स्मरसदृशं कुष्ठिनं जराजीर्णम् ।
वित्तं विनापि वेत्ति स्मरसदृशं कुष्ठिनं जराजीर्णम् ॥

पैसेवाले कोढ़ी और जराजीर्ण पुरुष को वेश्या कामदेवके समान सुन्दर समझती है; और बिना पैसे वाले धनहीन को, चाहे वह कामदेव के समान सुन्दर ही क्यों न हो, कोढ़ी और बुढ़ापेसे जीर्ण समझती है।

वेश्या जगत की जूठन, गन्दगी का पिटारा और नरक-कूप है। कौन बुद्धिमान ऐसी वेश्या के नर्म-नर्म ओठों को चूमना और उसे आलिङ्गन करना पसन्द करेगा ?

वेश्याओंमें और स्त्रियोंसे अधिक मोहन-शक्ति है।

यों तो संसार में जितनी स्त्रियाँ हैं, सभी पुरुषके चित्तको हरने वाली हैं; पर साधारण स्त्रियोंकी अपेक्षा वेश्यामें चञ्चलता बहुत जियादा होती है, इसी से उसमें पुरुष को मोहित कर लेने की शक्ति भी उनसे हजार गुणी जियादा होती है। वेश्यायें अपने गाने-बजाने का जाल बिछाकर और रूपका

चुगा दिखाकर नौजवान पक्षियोंको, सहजमें, अपने फन्देमें फँसा लेती हैं। वेश्याओंकी लपक-झपक, चटक-मटक, नाज़ो-अदा और हाव-भाव तथा नख़रों पर उठती जवानी के नातजुरबेकार नौजवान फ़िदा होकर, शीघ्र ही फँस जाते और इनके ग़ुलाम हो जाते हैं। जो इनके दास या शिष्य हो जाते हैं, वे फिर किसी के नहीं रहते। उन्हें अपनी घर-गृहस्थी, अपने पूज्यपाद माता-पिता और अर्द्धाङ्गी कहलाने वाली स्त्री तक विषवत् बुरे लगते हैं।

साधारण नवयुवकोंको पागल बनाना, तो वेश्याओंके बाँये हाथ का खेल हैं, जब इन्होंने एकान्त वनमें रहनेवाले, वृक्षोंके पत्तों और जल पर गुज़ारा करनेवाले महान् तपस्वी शृङ्गी और मरीचि तकको अपना चेला बनाकर छोड़ा, उनको अपने रूप-जालमें फँसाकर, उनके कठिन परिश्रम से किये हुए तपको क्षणभर में नष्ट कर दिया; तब इनके लिये नादान नौजवानों को फन्देमें फाँसना कितनी बड़ी बात है ? ऐसी शिकार मारनेमें तो इन्हें ज़रा भी कठिनाई नहीं होती।

ये, दिव्य मणिधारी सर्प की तरह, देखने में बड़ी मनोहर होती हैं। ये अपनी रूपच्छटा से पुरुषों के मनों को मोह लेतीं, मधुर-मधुर बातों से चित्तोंको चुरा लेतीं तथा हाव-भाव और नाज़ो-अदासे हिये को हर लेती हैं। योद्धाओं के अग्नि-बाणोंसे चाहे रक्षा हो जाय, पर इनके नयनबाणोंसे किसी का निस्तार नहीं। इन के चञ्चल नेत्र प्रायः सभी के हृदयों में क्षोभ

करते हैं। किसी विरली ही सती का सपूत इनके नेत्र-बाणों से बचे तो बच सकता है।

वेश्या सच्ची राक्षसी है।

वेश्यायें पुरुष का रक्त-माँस खा जानेवाली सच्ची डायन हैं; क्योंकि जो काम डायनोंके सुने जाते हैं, वेही काम ये करती हैं। डायनें जिसे नज़र-भरकर देख लेती हैं, वह गल-गल कर मरता है और वे उसका कलेजा निकाल कर खा जाती हैं। वेश्यायें भी जिस पर अपने कटाक्षबाण चला देती हैं, वह पगला हो जाता है और फिर वे उसका कलेजा निकाल खाती हैं। वेश्यायें लड़के और नौजवान सब को खा जाती हैं; ख़ासकर धनियों की तो चटनी ही कर जाती हैं। इन से न राजा की रक्षा है और न प्रजा की। इनकी झपेट में जो आ जाता है, ये उसी का करम-कल्याण कर देती हैं। ये देखते ही पुरुषों को घायल कर देती हैं और पीछे अपनी नज़र से उनके प्राण खींच लेती हैं। सर्प का डसा हुआ आदमी बच भी सकता है, पर इन डायनोंका डसा हुआ नहीं बचता। साँपोंके तो मुँहमें विष रहता है, पर इन के समस्त शरीरमें विष रहता है। सर्प मनुष्य के पास आकर डसता है; पर इन का विष तो दूरसे ही, इनके देखनेमात्र से ही, चढ़ जाता है। इनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग और एक-एक बाल तकमें ज़हर भरा रहता है, इसीसे इनका कोई

अङ्ग भी, यदि पुरुष की नजरोंमें आ जाता है, तो उस पर बुरी तरहसे जहर चढ़ने लगता है। ज़हर चढ़नेसे फिर उस पुरुषकी ख़ैर नहीं। किसीने कहा है:—

धर्म-कर्म-धन-भच्छिणी, सन्तति-खावनहार।
वेश्या है अति राच्छसी, बुधजन कहत पुकार॥

और भी:—

दर्शनात् हरते चित्तं, स्पर्शनात् हरते बलम्।
मैथुनात् हरते वीर्य्यं, वेश्या प्रत्यक्ष-राक्षसी॥

वेश्या साक्षात् राक्षसी है, क्योंकि वह देखने से चित्त को, छूने से बलको और मैथुन से वीर्य को हरती है।

वेश्याओं के कारण कुल-वधुएँ भ्रष्ट होती हैं।

वेश्याओंकी वजह से श्रेष्ठ कुलवती और पतिपरायणा अबलायें नाना प्रकारके कष्ट भोगती हैं। वेश्याभक्त न अपनी सहधर्म्मिणियों के पास आते, न उनसे बोलते और न उनका आदर-सम्मान करते हैं। पतिव्रता स्त्रियोंको खानेको अन्न और तन ढाँकनेको कपड़ा भी नसीब नहीं होता; पर वेश्याओंको, जो अपने पतियोंको तज, ससुरकुल एवं पितृकुलको बदनाम कर, वेश्यावृत्ति करती हैं, सब तरहके सुख मिलते हैं। पतिपरायणा

नारियोंको मरनेके लिये ज़हर तक नहीं मिलता, पर वेश्याओं को हज़ारों-लाखोंके जेवर मिलते हैं। वेश्याभक्तोंकी सती स्त्रियाँ मिहनत-मजदूरी करके पेट भरती हैं। अनेक कुलाङ्गनायें चरखे कात-कात कर और आटा पीस-पीस कर अपनी शिशु-सन्तानों को पालती हैं। इस तरह नासमझ लोग बड़ा अन्याय करते हैं। उनके अन्याय-आचरणके फल-स्वरूप इन दुष्टा वेश्याओंकी संख्या दिनों-दिन बढ़ती है; क्योंकि जब धर्म-मार्ग पर चलनेसे भी कुलवधुओंको अन्न-वस्त्र तक नहीं मिलते, पतिका सुख नसीब नहीं होता; तब वे अन्तसकी अग्नि शान्त न होने और नाना प्रकारके दुःख पानेसे दुखित हो, अपना धर्मत्याग, अधर्म-मार्गका अवलम्बन करतीं और वेश्या हो जाती हैं। इसमें उनका अपराध नहीं; क्योंकि जैसी इन्द्रियाँ मर्दोंके होती हैं, वैसी ही इन्द्रियाँ स्त्रियोंके भी होती है। काम मर्दोंको सताता है, तो स्त्रियों को भी सताता है। जिस चीजकी ख्वाहिश पुरुषोंको होती है, उसीकी स्त्रियोंको भी होती है। जो पुरुष आप खाते, रण्डियोंको खिलाते, आप मौज करते, वेश्याओंको मौज कराते; किन्तु घरकी स्त्रियोंकी सुध भी नहीं लेते, उनकी स्त्रियाँ उनका मुँह काला करतीं और— उनके जीतेजी ही, उनकी बदनामी कराती हैं। वह जैसा करते हैं, वैसा फल भोगते हैं; अतः अपना सुख चाहनेवाले समझदारोंको, आगा-पीछा सोचकर, वेश्याओंसे सदा दूर रहना चाहिये।

वेश्याभक्तोंकी दुर्दशा।

नासमझ नादान लोग जब वेश्याओंके कटाक्ष-बाणोंसे घायल होते हैं, तब रात-दिन अष्ट पहर चौंसठ-घड़ी उन्हें वही वह दीखती हैं। वे उन्हें स्वर्गीय देवी समझ, उनकी हर तरह से स्तुति, पूजा और उपासना करते हैं। कोई कहता है—

दिलसे मिटना, तेरी अंगुश्त हिनाईका ख़याल।
हो गया गोश्तसे, नाख़ुनका जुदा हो जाना॥

कोई कहता है—

दिल वह क्या, जिसको नहीं तेरी तमन्नाये विसाल।
चश्म वह क्या, जिसको तेरे दीदकी हसरत नहीं॥

इस तरह उनके उपासक और भक्त उनकी स्तुति किया करते हैं। उनकी ज़बानसे बात निकलती नहीं कि, उनके भक्त उसे फौरन ही पूरी करते हैं। उनकी फ़रमायशें पूरी करने के लिये उनके सेवक अपनी ज़मीन-जायदाद गिरवी रख देते हैं, अपनी घरकी स्त्रीका ज़ेवर तक उतार कर उनके हवाले कर देते हैं। इतने पर भी, यदि कोई त्रुटि या ग़लती हो जाती है, तो वेश्यायें सख्त नाराज़ी ज़ाहिर करती हैं। उनकी नाराज़ी, वेश्याभक्तोंके लिये रुद्रके तीसरे नेत्र खुलने या महाप्रलय होनेके समान होती है। वे घबरा कर उनके चरणों में लोटते और क़दमोंमें नाक रगड़-रगड़ कर माफ़ी माँगते हैं।

जब वेश्यायें देखती हैं कि, हमारे उपासकोंके पास धन नहीं रहा, घर-घूरा सब बिक चुका; तब वे उन्हें जूतियोंसे पिटवाकर अपने घरोंसे निकलवा देती हैं। पर वे बेहया, इतनी बेइज़्ज़ती और ज़िल्लतें उठाने पर भी, उनको छोड़ना नहीं चाहते; पैरोंमें गिरते हैं, अनेक तरह की ख़ुशामदें करते हैं, तब उन्हें ये अपने नीचे दर्जेके सेवकोंमें रहने देती हैं। अच्छे-अच्छे ख़ानदानी अमीरोंके लड़कोंसे घरमें झाड़ू लगवातीं, खाना पकवातीं, पीकदान साफ़ करवातीं और हुक्के भरवाती हैं। कहाँ तक लिखें, वेश्या-दासोंकी अन्तमें बड़ी मिट्टी ख़राब होती है। भगवान् दुश्मनको भी वेश्याके फन्देमें न फँसावे। वेश्या बुरी बला है। यदि वेश्याओंकी पूरी तारीफ़ लिखी जाय, तो एक पोथा हो जाय, इसलिये हम इस विषय को यहीं ख़तम् करते हैं।

वेश्या है अवगुण भरी, सब दोषोंका सिन्धु।
अल्प दोष वर्णन किये, लखो सिन्धुमें बिन्दु॥

ऐसी औगुणोंकी खान, धन-धर्म नसाने वाली, अबलाओं पर अन्याय करने वाली, कुलवधुओंको दुष्कर्मोका पाठ पढ़ाने वाली, बाल-हत्या, पुत्री-हत्या और गोहत्या तक करानेवाली वेश्याको जो देखते, छूते और उससे रमण करते हैं, उनको धिक्कार है! नाचते समय वेश्या स्वयं कहती है:—

जब पूरण पापके भाण्डे तें,
भगवन्त-कथा न रुचे जिनको॥

एक गणिका नारी बुलाय लेइँ,
नचवावत हैं दिनको-रनको ॥
मृदङ्ग कहे—'धिक् है ! धिक् है !!'
मंजीर कहे—'किनको किनको ? ॥'
तब हाथ उठायके नारि कहे,
'इनकों, इनकों, इनकों, इनकों ॥'

वेश्याकी चालें ।

वेश्यायें अपने यारोंको रिझाने और नये-नये शिकार फँसानेके लिये, मन्दिरों, मेलों-तमाशों और तीर्थ-स्थानों तथा बाग़-बग़ीचोंमें जातीं और नाना प्रकारके मनोमोहक वस्त्राभूषण पहनती हैं। कितनीही अपने यारोंकी इच्छानुसार शृंगार करतीं और कहती हैं "प्यारे तुम्हारे बिना हमें क्षण-भर भी कल नहीं पड़ती। माँके मारे हमारी नहीं चलती। माँके नाराज़ होनेके भयसे आपसे रुपया-पैसा लेना पड़ता है; वरना हमारी इच्छा नहीं कि, आपसे कुछ लें। आप हमारे सूरज और चाँद हो, आपही हमारे पान का चूना, बिछौनेकी चादर, हुक्केकी चिलम और थूकनेकी पीकदानी हो।" नादान लोग इन की झूठी और मक्कारीकी बातोंपर लट्टू होकर, इनको अपनी सच्ची प्रेमिका समझ लेते हैं; पर जहाँदीदा लोग जानते हैं कि, वेश्याओं में प्रीतिका नाम भी नहीं। अगर सूर्य्यमण्डलमें शीतलता हो, चन्द्रमा अग्नि उगलने लगे, विन्ध्याचल समुद्र में तैरने लगे, तो वेश्या में प्रीति हो सकती है।

आज तक जुए में सत्य, कव्वे में पवित्रता, सर्पमें सहनशीलता, स्त्रियोंमें काम-शान्ति, नपुंसकों में धैर्य्य, शराबी में तत्त्वचिन्ता, राजा में मैत्री और वेश्या में सतीत्व न किसीने देखा और न सुना। वेश्यागामी कामकन्दला का नाम पेश करते हैं; पर कामकन्दला वेश्या नहीं, गणिका थी। वेश्या और गणिका में वड़ा भारी भेद है। गणिका वेश्या से वहुत अच्छी होती है। वेश्या धन के लिये प्रेम प्रकट करके विषयी पुरुषों को तृप्त करती है; गणिका अनेक प्रकार की विद्यायें जानती और प्रेम-प्रतीति को समझती है। वेश्या नीच उपायों से कामियों को ठगती है; पर गणिका उच्च प्रीतिरीति बाँध कर धन हरती है। वेश्या केवल धन की साथिन होती है; पर गणिका गुण, रूप और विद्वत्ता की भी ग्राहिणी होती है। लेकिन आजकल गणिका कहाँ? जिधर देखो, वेश्या-ही-वेश्या नज़र आती हैं। सच पूछो तो न गणिका भली और न वेश्या। दोनों से ही पुरुष के रूप, धन और यौवन की क्षति है; अतः बुद्धिमानों को दोनों से ही बचना चाहिये। भूलकर भी, इनका नाम न लेना चाहिये।

एक राजा और वेश्या की कहानी।

किसी पुराने ज़माने में एक रणधीरसिंह नामका राजा राज्य करता था। वह राजा था तो वड़ा प्रतापी और बलवान्,

पर कई राजाओंने मिल कर उसे हरा दिया। पराजय होते ही, वह राजधानीसे भाग गया। उसका प्रधान मन्त्री गुणसिन्धु भी उसके साथ हो लिया। दोनों घूमते-घूमते एक और नगरमें पहुँचे। उस नगरमें कामिनी नामकी एक परमा सुन्दरी वेश्या रहती थी। उस वेश्याके धन-भाण्डार को देख कर कुवेर भी लजाता था। अपार धन होनेकी वजहसे, वह वेश्या किसी भी अमीरका आदर न करती थी। यद्यपि वह, वेश्या होनेसे, धना-कांक्षिणी और निर्धन-अपमान-कारिणी थी; तथापि उसने दरिद्री रणधीर सिंहका बड़े आदरसे आगत-स्वागत किया। अपने धन-भाण्डार राजाके लिए खोल दिये और भव्य भवन टिकनेके लिये बता दिये। उसकी सेवाके लिए अनेक दास-दासी नियुक्त कर दिये। अपने खजाने की चावियाँ राजाके हाथोंमें दे दीं और कह दिया कि, यह धन आपही का है। अपनी इच्छानुसार खर्च कीजिये; दिलमें जरा भी सङ्कोच न कीजिये। राजा रणधीर राज्य-रहित होने पर भी, उस वेश्या का इतना सहज प्रेम देख, मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय, विश्वासपात्री और सती समझ कर, एक दिन एकान्तमें अपने मन्त्रीसे कहने लगा—"हे प्रधान! यह वेश्या विना किसी स्वार्थके मेरे साथ इतना प्रेम रखती है। इसने अपना सर्वस्व मुझे सौंप दिया है और व्याहता स्त्रीसे भी अधिक आज्ञाकारिणी है। यह सब देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। समझमें नहीं आता, इस की क्या वजह है। सभी

जानते हैं कि, वेश्याएँ किसीके साथ प्रीति नहीं करतीं। इनका प्रेम एकमात्र धनके साथ होता है और .खूब धन पाने पर भी ये किसी की नहीं होतीं; परन्तु यहाँ तो सब उल्टा ही दीखता है। यह सती और अविचल प्रेमवती है, इसमें मुझे ज़रा भी शक नहीं होता।" गुणसिन्धु अपने मालिक की आज़ादी को रण्डी की बातों की धारामें बहती देख, दिल्लगी करता हुआ, कहने लगा,—"राजन्! वेश्याका विश्वास विश्वमें कौन करता है? कागा जती नहीं होता और वेश्या सती नहीं होती। यह जात विश्वासयोग्य नहीं। यह किसीको प्यार नहीं करती। इसका एक मात्र प्यारा रुपया है। यह अपने वचनको कभी पूरा नहीं करती। यह कभी किसीसे नेह निर्वाह नहीं करती। झूठ बोलना इसका नियम और व्रत है। इसके मनकी बात, इसके सङ्कल्प और इसकी महत कामनाको सहजमें ही कोई जान नहीं सकता। यह आपका अत्यन्त आदर करती है। आपके साथ अटल प्रेम प्रकट करती है; पर यह सुख क्षणिक है। मतिहीन लोग वेश्याके बुरे विचारोंको न जान कर, उसकी ऊपरी बातों पर मर-मिटते हैं। वह ऊपरसे अमृत है, पर भीतरसे हलाहल विष है। वेश्या—आशाकी तरह, आरम्भमें अतिशय आनन्ददायिनी होती है; परन्तु अन्तमें अमित दुःखसे पददलित कर छोड़ती है। हरि और हर प्रभृति देवता भी वेश्या और मायाके सच्चे स्वरूप को नहीं जानते; तब आदमी बेचारा किस खेतकी मूली है?

राजा पर मन्त्रीकी उपरोक्त बातों का बड़ा असर हुआ। उनके दिलमें तरह-तरहके विचार उठने लगे। उन्होंने वेश्या की प्रीतिकी परीक्षा लेनेकी ठानी। वह एक दिन साँस चढ़ा कर मुर्दा हो गये। राजाकी अन्त्येष्टि क्रिया करनेके लिये लोग उन्हें श्मशान पर लेगये। वेश्या भी सफेद कपड़े पहन कर, सती होनेके लिये, चिताके पास पहुँची। वह ज्योंही चितामें गिरने लगी, त्योंही राजाने चितासे उठकर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—"प्यारी" ! सच्ची सती ! ठहर ! ठहर ! मैं जिन्दा हूँ।"

उस दिनसे राजा रणधीरसिंह उस वेश्याके एकदम ग़ुलाम हो गये। उन्हें मन्त्री पर बड़ा क्रोध आया। वे उसे मूर्ख समझने लगे। अब राजाके दिन फिरने और मन्त्रीकी बात सच्ची होनेका समय आया। राजाने वेश्याकी अपार सम्पत्ति खर्च करके, कई लाख पैदल, पचास हज़ार सवार और दस हज़ार हाथी वग़ैरः अपने हाथमें कर लिये। उस सेनाको लेकर उन्होंने अपने शत्रु पर चढ़ाई की और उसे पराजित कर अपना राज्य ले लिया। वेश्या पटरानी बनाई गई। सब रानियोंसे अधिक उसका मान होने लगा।

एक रोज़ राजाको बहुत ही प्रसन्न देखकर वेश्याने कहा—"महाराज" ! मैंने आपके साथ जो भलाई की है, उसे आप यावज्जीवन नहीं भूलेंगे। क्या आप, उसके बदलेमें, मेरी भी एक मनोकामना पूरी करेंगे ?" राजाने कहा—"प्यारी ! तू जो कहे

मैं वही करनेको तैयार हूँ।" वेश्याने कहा—"महाराज! मेरा एक प्राणाधार, परम प्यारा, नयनोंका तारा है। वह निरपराध, चोर समझा जाकर, विदर्भ नगरमें पकड़ा गया और आज तक जेलमें बन्द है। आप उसे कठिन कारागारसे छुड़ाकर, दासी को कृतार्थ कीजिये।"

वेश्याकी उपरोक्त बात सुनते ही राजाके होश-हवास जाते रहे। अक्ल, हवा हो गई, सन्नाटा छा गया, वे ठगेसे हो गये और एकटक वेश्याके मुँह की तरफ़ देखने लगे। कुम्हलाये हुए कमलके फूलकी तरह, उनका सिर नीचेको झुक गया। इस समय उन्हें मन्त्रीकी बातें याद आईं। उनके दिलमें, समुद्रकी लहरोंकी तरह, एक-पर-एक सङ्कल्प-विकल्प उठने लगे। बड़ी देरके बाद वह बोले:—

"प्यारी! सुख-दुःखकी साथन! तुझे आज क्या हो गया है? क्या तूने आज शराब पी ली है? तू आज ऐसी बेहूदी बातें क्यों कर रही है?" राजाने उसे बहुत तरहसे समझाया, पर वह अपनी बातसे ज़रा भी न डिगी। उसने कहा—"महाराज! आप बहुत भोले हैं। जगत्में बिना स्वार्थके कोई भी मुहब्बत नहीं करता, जिसमें हमारा तो स्वार्थपरायण व्यवहार जगत्में प्रसिद्ध है। अगर आपको मेरे उपकारका लेशमात्र भी ध्यान है और आपके चित्तपर कृतज्ञताका ज़रा भी संस्कार है, तो आप मेरी इस प्रार्थनाको स्वीकार कीजिये।" लाचार, राजाने सेना भेजकर विदर्भ नगरको फ़तह

किया और उस वेश्याके यारको जेलसे छुड़ाकर उसके हवाले किया।

बुद्धिमानो! वेश्यासे सदा सावधान रहो। वह तुमसे प्रेम रखती है, तुम्हें चाहती है, ऐसा कभी मत समझो। अगर ऐसा समझोगे, तो धोखा खाओगे। वेश्या यारसे बातें करती है; पर उसका मन और जगह रहता है। वेश्या अपना तन हर किसीको सौंप देती है, पर मन किसीको नहीं सौंपती। वह क्षण-क्षणमें नई-नई बातें कहती है। एक शब्द दूसरेके प्रतिकूल कहना, तो उसका कर्त्तव्य है। बातोंका लौटफेर और फ़रेबका ढेर सदा उसके पास मौजूद रहता है। वेश्या झूठकी पुतली है। उसे यथार्थ रूपसे कोई भी जान नहीं सकता। वेश्या पाँच तरहके यार रखती है—(१) एक की तो वह तारीफ़ ही किया करती है, (२) दूसरेका धन लूटती है, (३) तीसरेसे सेवा कराती है, (४) चौथेको अपनी रक्षाके लिये रखती है, और (५) पाँचवेंकी सदा मसख़री किया करती है। वेश्या किसीसे भी प्रीति नहीं करती। जो नर वेश्याके बन्धनमें फँस जाता है, उसकी मुक्ति त्रिकालमें भी नहीं होती। उसका सत्यानाश हो जाता है। सुख-शान्ति उससे किनारा कर जाते हैं। कुटुम्ब परिवार वाले उसे धिक्कारते हैं। वेश्यागामी इस लोक और परलोकमें अनेक तरहके कष्ट और क्लेश भोगता हुआ, चौरासी लक्ष योनियोंमें भ्रमता रहता है। जिस तरह साँप अपनी पुरानी कैंचलीको त्याग देता है; उसी तरह वेश्या अपने करोड़पति यारको भी निर्धन होते

ही, जूते मारकर निकाल देती है। इसलिये जिन्हें संसारमें सुख भोगना हो, वे वेश्याके नजदीक न जावें।

किसीने क्या खूब कहा है:—

गाना नं० १

रण्डी नहीं किसी की यार, ओ घरबार लुटाने वाले।
तीखे नयन चलाने वाले, रण्डी नहीं किसी की यार॥
इनका झूठा है जञ्जाल, इनका खोटा है व्यवहार।
इसमें नफ़ा नहीं है यार, ओ घरबार लुटाने वाले॥
इनके नख़रे इनकी चाल, इनके चिकने-चिकने गाल।
इनके लम्बे-लम्बे बाल, आफ़त करने वाले॥
रण्डी नहीं किसी की यार, ओ घर-बार लुटाने वाले।
इनकी सुहबत, इनकी बातोंमें मत आना॥
इन पर दिल मत ललचाना, इनकी सुहबतसे घबराना।
आफ़त आ जाय जाने वाले॥
रण्डी नहीं किसी की यार।
ओ घर-बार लुटाने वाले॥
जब तक पैसा तब तक रण्डी।
जबतक बिलसे तबतक मरण्डी॥
वह तो खा-खा हुई मुष्टण्डी।
तुम पर आने लगे तमाले॥
जब से रुक गई घरकी मोरी।
माँगो भीख करो या चोरी॥
अब तो हवा जेल की खा ले।
रण्डी नहीं किसी की यार।
ओ घर-बार लुटाने वाले॥

गाना नं० २

पहले तो घर में दाम बिछाती हैं रण्डियाँ ।
बे-दाने मुर्ग़-दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ ॥

करके सिंगार शामको, आ बैठीं बाम पर ।
करती हैं फिर इशारा, वह मक्कार बेख़तर ॥
देखा कि मालदार कोई आता है इधर ।
फ़ौरन किया सलाम, फिर उसने झुकाके सर ॥

फिर उसके मुर्ग़ जालमें लाती हैं रण्डियाँ ।
बे-दाने मुर्ग़-दिलको फँसाती हैं रण्डियाँ ॥

लेकर सलाम हो गये, गैंडासे फूलकर ।
कोठे पै उसके चढ़ गये, सोचा न कुछ मगर ॥
तकिया लगाके बैठ गये, सीना तानकर ।
रण्डीने देखते ही, करी माल पर नज़र ॥

हँस-हँसके नाज़-नख़रे, दिखाती हैं रण्डियाँ ।
बे-दाने मुर्ग़-दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ ॥

गर्दनमें हाथ डाल, बोली वह सीमबरः—
"पहलूमें लेके सोइये, मुझे कलको रातभर ॥
दोनों मज़े उड़ायेंगे, वल्लाह ता-सहर ।
फिर नायकाजी बोलीं, कि जल्दी शिकार कर ॥

दाम = जाल। बाम = छत; अटारी। बेदाने = बिना चारेके। मुर्ग़-दिल = यहाँ दिलको मुर्ग़ पक्षी कहा है। गैंडा = एक भयंकर मोटा जङ्गली जानवर। सीना = छाती। सीमबर = चन्द्रवदनी; चाँदी-जैसी गोरी। पहलू = बग़ल। ता = तक। सहर = सवेरा।

बातें बना-बनाके, लुभाती हैं रण्डियाँ।
बे-दाने मुर्ग़-दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ॥

मक्कार नायकाकी तो सुन लीजिये दास्तान।
जल्दीसे जाके अपना उठा लाई पानदान॥
बोली—"तम्बाकू छालियाँ, मँगा दीजियेगा पान"।
रण्डी बोली—"हाँ, अभी आता है मेरी जान!॥"

पहला सवाल तुमको सुनाती हैं रण्डियाँ।
बे-दाने मुर्ग़ दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ॥

जेबोंमें लगी देखने, वह हाथ डालकर।
मुट्ठीमें भरके लाई, कुछ थोड़ासा मालोज़र॥
उस्तादजी से बोली—'ज़रा आइयो इधर।
कत्था तम्बाकू छालियाँ, इन्हें लादे जल्दतर॥"

फौरन ही फिर तो, पान खिलाती हैं रण्डियाँ।
बे-दाने मुर्ग़-दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ॥

चिल्ला के बोली नायका—"यहाँ होते जाइये।
रबड़ी और दूध थोड़ासा, हलवा भी लाइये॥
दो पैसेकी अफ़यून भी, तुम खाते आइयो।
सदक़ा गई उस्ताद, ज़रा जल्दी आइयो॥"

थोड़ा-ही-थोड़ा करके मँगाती हैं रण्डियाँ।
बे-दाने मुर्ग़-दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ॥

दास्तान=कहानी। छालियाँ=सुपारी। मालोज़र=रुपया पैसा। अफ़यून=अफ़ीम। सदक़ा गई=बलायें लूँ; कुर्बान हूँ।

मत ग्रहण करे, तो भी यही समझो कि वह अपने असली स्वभाव के कारण नहीं, बल्कि ऊँचे आदर्श के अभाव के कारण ही, वैसा कर रहा है। यदि कोई आदमी असत्य की ओर जाता है, तो उसका कारण यही समझो कि वह सत्य को पकड़ नहीं पाता। अतएव, मिथ्या को दूर करने का एकमात्र उपाय यही है कि उसे सत्य का ज्ञान कराया जाय। उस ज्ञान को पाकर वह उसके साथ अपने मन के भाव की तुलना करे। तुमने तो उसे सत्य का असली रूप दिखा दिया—बस यहीं तुम्हारा काम समाप्त हो गया। अब वह स्वयं उस सत्य के साथ अपने भाव की तुलना कर देखे। यदि तुमने वास्तव में उसे सत्य का ज्ञान करा दिया है, तो निश्चय जानो, मिथ्या-भाव अवश्य दूर हो जायेगा। प्रकाश कभी अन्धकार का नाश किये बिना नहीं रह सकता। सत्य अवश्य ही उसके भीतर के सद्भावों को प्रकाशित करेगा। यदि सारे देश का आध्यात्मिक संस्कार करना चाहते हो, तो उसके लिए यही रास्ता है—एकमात्र यही रास्ता है। वाद-विवाद या लड़ाई-झगड़े से कभी अच्छा फल नहीं हो सकता। उनसे यह भी कहने की आवश्यकता नहीं कि तुम लोग जो कुछ कर रहे हो, वह ठीक नहीं है—खराब है। आवश्यकता तो इस बात की है कि जो कुछ अच्छा है, उसे उनके सामने रख दो, फिर देखो, वे कितने आग्रह के साथ उसे ग्रहण कर लेते हैं। मनुष्यमात्र के अन्दर जो अविनाशी ईश्वरीय शक्ति है, वह जो कुछ भी अच्छा कहलाने योग्य है केवल उसे ही हाथ फैलाकर ग्रहण करती है।

जो हमारी समग्र जाति के सृष्टिकर्ता और रक्षक हैं, जो हमारे पूर्व-पुरुषों के ईश्वर हैं—चाहे वे विष्णु, शिव, शक्ति या गणपति जो कोई हों—साकार हों या निराकार—जिन्हें जानकर हमारे पूर्व-पुरुषों ने "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" कहा है, वे अपना अनन्त प्रेम लेकर हमारे अन्दर प्रवेश करें—हमारे ऊपर अपने शुभाशीर्वाद की वर्षा करें, ताकि उनकी कृपा से हम एक दूसरे को समझ सकें, हम वास्तविक प्रेम और प्रबल सत्या-

कहने लगे—"सीं दो इसे, जल्दी सजाकर।"
रण्डीसे कहा, पहन लो, ऐ जान! पहले नहाकर॥"

इस शब फिर उसे, पास सुलाती हैं रण्डियाँ।
बेदाने मुर्ग़-दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ॥

शब-भर तो मज़ा सेठजीने, ख़ूब उड़ाया।
रण्डीने सेहर होते ही, एक फ़िकरा बनाया॥
ऐसा कोई मर्द नहीं, आज तक आया।
रग-रगमें मेरे दर्द था, तुमने मिटाया॥

बे-परकी देखो कैसी, उड़ाती हैं रण्डियाँ।
बेदाने मुर्ग़-दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ॥

ये सुनते ही फिर सेठजी, फूले न समाये।
घरमें था जो कुछ मालोज़र, सारा ही ले आये॥
गुलछर्रे कई रोज़ तक, ख़ूब उड़ाये।
जब कुछ न रहा पास, तो फिर फ़ाक़ोंपर आये॥

अब लुच्चा बेईमान, बताती हैं रण्डियाँ।
बेदाने मुर्ग़-दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ॥

रण्डीने मूँड़-मॉंड़के, जब घरसे निकाला।
आँखें जो खुलीं फिर, तो नज़र आया उजाला॥
जो कहता था बहनोई, वह कहता नहीं साला।
जब कुछ न रहा पास, तो जपने लगे माला॥

शब = रात। शबभर = रातभर। सेहर होते ही = सवेरा होते ही। रग-रग = नस-नस। बेपर की = बिना सिर-पैर की। फ़ाक़ों पर आये = उपवास करने लगे—भूखों मरने लगे।

लो इस तरह, हजामत बनाती हैं रण्डियाँ।
बेदाने मुर्ग़-दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ॥

इकतरफ़ा और ग़ज़ब, फ़लक़-पीरने डाला।
गरमी जो हुई, फिरते हैं पकड़े हुए आला॥
जुज़ बहुत नहीं, और कोई पूछनेवाला।
फिर नीमकी टहनीसे, पड़ा उनके पाला॥

दोज़ख़का मज़ा अब तो, चखाती हैं रण्डियाँ।
बेदाने मुर्ग़-दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ॥

जिस कमरे पै होती थी, बहुत आपकी इज़्ज़त।
अब कोई नहीं पूछता, यह हो गई हालत॥
बेज़ार हैं सूरतसे, ग़ज़ब हो गई नफरत।
भड़वोंका इशारा है, कहाँकी है ये मिल्लत॥

किस ज़िल्लतो ख़्वारीसे, उठाती हैं रण्डियाँ।
बेदाने मुर्ग़-दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ॥

अब भी तुम्हें कुछ शर्म, मियाँ सेठजी ! आई।
जब घरमें गये, जूतोंसे मारे है लुगाई॥
लो मुफ़्तमें रुसवा हुई, ज़िल्लत भी उठाई।
न माँ है वफ़ादार, न फ़रज़न्द न भाई॥

जूतों पै जो बैठें, तो उठाती हैं रण्डियाँ।
बेदाने मुर्ग़-दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ॥

ग़ज़ब = आफ़त। फ़लक = आसमान। पीर = देवता। गरमी = आतशक, उपदंश। आला = शिश्न, लिंगेन्द्रिय। दोज़ख़ = नरक। रुसवा = बदनामी। फ़रज़न्द = बेटा।

तरह हुए इश्क़ने, फिर आके सताया।
जाकरके लबे बाम, यह रो-रोके सुनाया॥
जो माल कि था पास मेरे, मैंने लुटाया।
अब रख लो मुलाज़िम, तो रहे आपका साया॥
क्या रङ्ग ज़मानेका, दिखाती हैं रण्डियाँ।
बेदाने मुर्ग़-दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ॥

"शहबाज़" क़लम रोक, अब आगे न बढ़ाना।
इतना ये बहुत है, जो तेरे कहनेको माना॥
रण्डीसे वफ़ा कब है? यह जानता है ज़माना।
इस शब वह होती हामिला, लिख उसका ज़माना॥
इसको नवाँ महीना, बनाती हैं रण्डियाँ।
बेदाने मुर्ग़-दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ॥

लो और सुनो सेठकी, क़िस्मतकी बुराई।
रण्डीके जो लड़की हुई, वह किसकी कहलाई॥
हरेकने फिर उनकी तरफ़, उँगली उठाई।
रण्डीकी जो लड़की है, इन्हींकी तो है जाई॥
अब रिश्तेदार तुमको, बनाती हैं रण्डियाँ।
बेदाने मुर्ग़-दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ॥

रण्डीने छठी नहाके, लो फिर रात जगाई।
हर भड़वा हरेक रण्डी, हरेक नायका आई॥

तरह हुए = दूर हुए। इश्क़ = प्रेम। मुलाज़िम = नौकर। साया = छाया। शहबाज़ = कविका नाम है, जिसने यह कविता बनाई। वफ़ा = भलाई। हामिला = गर्भवती। ज़माना = दुनिया। रात जगाई = रतजगा किया।

बोली कि मुबारक हो, यह दौलत तूने पाई।
सदक़े तेरी बच्ची, यह खिलायेगी कमाई॥
लो नुत्फ़ा नातहक़ीक़, कहाती हैं रण्डियाँ।
बेदाने मुर्ग़-दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ॥

इन सेठके लड़केने, उधर होश सँभाला।
लड़कीने जवान होते ही, जोबनको निकाला॥
शैतानने इन दोनोंको, फिर बौखला डाला।
लड़केने सेठकी, उसी लड़कीको सँभाला॥
भाई-बहनको, पास सुलाती हैं रण्डियाँ।
बेदाने मुर्ग़-दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ॥

शैतानकी शागिर्द हैं, ज़रियते शैतान?।
लाहौल नहीं पढ़ते, किधर है तुम्हारा ध्यान?॥
दौलत भी गई मुफ़्तमें, खोया गया ईमान्।
गर लाख रुपये दीजिये, तो क्या इनपर है ऐहसान?॥
और अपना ही ऐहसान, जताती हैं रण्डियाँ।
बेदाने मुर्ग़-दिलको, फँसाती हैं रण्डियाँ॥

छप्पय।

जातिहीन, कुलहीन, अन्ध; कुत्सित कुरूप नर।
जरा-ग्रसित कृशगात, गलितकुष्ठी अरु पाण्डर॥

मुबारक हो = फलो-फूलो; बधाई है। सदक़े = बलैयां लूँ; क़ुर्बान होऊँ। नुतफ़ा नातहक़ीक़ = जिसके बीजका पता न हो। बौखला डाला = पागल बनाया; गुमराह किया। शैतान = ख़ुदाका मुख़ालिफ़, जो लोगों को बुरी राह पर चलनेको बहकाता है। ज़रियते शैतान = शैतानकी औलाद। लाहौल = नफ़रतका कलमा।

ऐसेहू धनवान होय, तो आदर वाकौ।
अपनो गात बिक्राय, लेत रस सर्वस ताकौ॥
गानिका विवेक-वेलकों, कदन करनवारी।
निरख बच रहे कुलवन्त नर, रचत पचत मूरख हरषि॥८६॥

89. What sensible man would like to have sexual intercourse with those prostitutes who give away their beautiful bodies for the sake of a little wealth even to those who are born blind, are ugly, are inactive due to old age, are foolish, are of low caste and are suffering from leprosy. These prostitutes are like knives to cut the creeper of reasoning.

वेश्याऽसौ मदनज्वाला रूपेन्धनसमेधिता।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च॥६०॥

यह वेश्या सुन्दरता-रूपी ईंधनसे जलती हुई प्रचण्ड कामाग्नि है। कामी पुरुष, इस अग्निमें, अपने यौवन और धनकी आहुति देते हैं॥६०॥

ख़ुलासा—वेश्या तेज आगके समान है। जिस तरह आग लकड़ियोंसे जलती है; उसी तरह वेश्या-रूपी अग्नि वेश्या के रूप-रूपी ईंधनसे जलती है। जिस तरह होमकी अग्निमें घृत, चाँवल और तिल प्रभृतिकी आहुति दी जाती है; उसी तरह वेश्याग्निमें कामी लोग अपनी जवानी और धनकी आहुति देते हैं। होमकी अग्निमें घृत चाँवल प्रभति जिस तरह जल कर

राख हो जाते हैं; उसी तरह वेश्या-रूपी अग्निमें, कामियोंके रूप, यौवन और धनकी राख हो जाती है। सारांश यह कि, वेश्यासे प्रीति करने वालोंके रूप, यौवन और धन क़तई नाश हो जाते हैं। रण्डीबाजी करने वाले अनेकों करोड़पति ख़ाकपति और दर-दरके भिखारी हो गये। अतः बुद्धिमानोंको इस वेश्या-रूपी भयङ्कर अग्निसे सदा दूर रहना चाहिये; क्योंकि जिस तरह अग्निमें गिरनेवाला सर्वथा भस्म हो जाता है; उसी तरह वेश्या-रूपी अग्निमें गिरने वाला भी सर्वथा भस्म हो जाता है; क्योंकि रूप-यौवन तो चन्द रोज़में ही स्वाहा हो जाते हैं। जब तक धन रहता है, वेश्या प्यार (झूठा दिखावटी प्यार) करती है। कामी धनहीन हुआ कि, वेश्याने उसे घरसे धक्के देकर या जूतियाँ लगवा कर निकाला। जब कामी इस दुर्गतिको पहुँच जाता है, तब वह या तो विष प्रभृति खाकर या गलेमें फाँसी लगा कर मर जाता है अथवा चोरी वगैरः करनेसे पकड़ा जाकर जेलमें ठूँस दिया जाता है। वहाँ वह दुःख पाकर मर जाता है। अगर जेलकी अवधि पूरी करके चला भी आता है, तो फिर वेश्याके लिये धन देनेको चोरी प्रभृति करता है या किसीकी हत्या करके, उसका धन हथियानेकी चेष्टामें पकड़ा जाकर, फाँसी पर लटका दिया जाता है।

दोहा।

गनिका कनिका अगिन की, रूप समिध मज़बूत।
होम करत कामी पुरुष, धन यौवन आहूत॥६०॥

सार—वेश्या धन और प्राणोंके नाश करने वाली भयङ्कर अग्नि है।

90. The prostitutes are the flames of passion burning with the fuel of beauty. Lustful men throw into that fire their wealth and health.

कश्चुम्बति कुलपुरुषो वेश्याधरपल्लवं मनोज्ञमपि।
चारभटचौरचेटकनटविटनिष्ठीवनशरावम् ॥९१॥

वेश्याका अधर-पल्लव (ओंठ) यद्यपि अतीव मनोहर है; किन्तु वह जासूस, सिपाही, चोर, नट, दास, नीच और जारोंके थूकनेका ठीकरा है। इसलिये कौन कुलीन पुरुष उसे चूमना चाहेगा? ॥९१॥

ख़ुलासा—सुन्दरी वेश्या के होठ निश्चय ही बड़े मनोहर होते हैं, परन्तु उसके सुन्दर होठोंको चोर, बदमाश, गुण्डे, ग़ुलाम, डाकू और भाँड़ प्रभृति महानीच चूमते और चूसते हैं; इसलिये वह महाअपवित्र और गन्दे हो जाते हैं। ऐसे गन्दे और नापाक ओठोंको कौन प्रतिष्ठित और ऊँचे कुल का पुरुष चूमना चाहता है? अर्थात् उसे नीच लोग ही चूमना चाहते हैं, कुलीन पुरुष उस नीचोंके थूकनेके ठीकरेसे अपनी जीभ लगा कर उसे गन्दी नहीं करते।

पहले लिख आये हैं कि, वेश्या पैसेकी गुलाम है. उसे पैसे से प्रेम है। वह रूप, यौवन, गुण, विद्या और उत्तम वंश प्रभृति को नहीं देखती। उसे यदि भङ्गी और चमार धन दें, तो वह उन्हींकी हो जाती है। उसके सुन्दर ओठोंको वही चूमते-चाटते और उसके शरीरको गन्दा करते हैं। जिसे कुछ भी पवित्रता-अपवित्रताका ध्यान है, जिसने उच्च कुल और उत्तम वर्णमें जन्म लिया है, वह वैसी गन्दगीकी खानसे नेह लगाकर, क्यों अपनी आत्माको कलुषित करेगा ? वेश्या नीच पापियोंके योग्य है, अतः नीच लोग ही उसके पास जायँगे; भङ्गी और चमारोंका काम भङ्गी-चमार ही करेंगे; ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य उनके कामोंको हरगिज़ न करेंगे।

सोरठा ।

गनिकाके मृदु ओठ; को कुलीन चुम्बन करे ? ।
नट, भट, विट, ठग, गोठ; पीकपात्र है सबनको ॥९१॥

सार—वेश्याएँ महा अधम और पापियोंके द्वारा भोगी जाती हैं, अतः वे श्रेष्ठ-कुलोत्पन्न पुरुषोंके योग्य नहीं ।

91. Though the leaf-like lips of a prostitute are beautiful, yet what respectable person would kiss that which is the pot where cheats, rogues, rustics, thieves and knaves throw their saliva.

धन्यास्त एव चपलायतलोचनानां,
तारुण्यदर्पघनपीनपयोधाराणाम् ।
क्षामोदरोपरिलसत्त्रिवलीलतानां,
दृष्ट्वाऽकृतिं विकृतिमेति मनो न येषाम् ॥६२॥

चञ्चल और बड़ी-बड़ी आँखों वाली, यौवनके अभिमानसे पूर्ण, दृढ़ और पुष्ट स्तनों वाली एवं क्षीण उदर-भाग पर त्रिवलीसे सुशोभित युवती स्त्रियोंकी सूरत देखकर, जिन पुरुषोंके मनमें विकार उत्पन्न नहीं होता, वे पुरुष धन्य हैं ।

ख़ुलासा—बड़ी-बड़ी चञ्चल आँखों वाली, नारङ्गियोंके समान गोल और कठोर स्तनों वाली तथा पेटके अधोभाग पर तीन रेखाओं वाली जवान स्त्री को देखकर, किसी विरले ही माईके लालके मनमें अनुराग उत्पन्न नहीं होता। जिसके मनमें ऐसी सुन्दरीको देखकर उथल-पुथल नहीं मचती, जिसका मन ऐसी नारीको देखकर विचलित नहीं होता, वह पुरुष निश्चय ही क़ाबिल-तारीफ़ है। उसने संसारको जीत लिया है। उससे बढ़कर और शूरवीर नहीं। वह चेष्टा करनेसे सहजमें परमपद पा सकता है। जिसका मन ऐसी सुन्दरी पर नहीं चलता, उसका मन और किसी भी संसारी पदार्थ पर चल नहीं सकता। जिसे ऐसी तरुणीसे विराग है, उसे संसारसे विराग है। जिसे ऐसी नारीसे विरक्ति है, वह निश्चय ही महात्मा है। किसीने ठीक ही कहा है:—

सानुरागां स्त्रिय दृष्ट्वा, मृत्युं वा समुपस्थितम् ।
अविकलमनाः स्वस्थो, मुक्त एव महाशयः ॥

अनुराग-पूर्ण स्त्री और मौतको सामने देखकर भी, जिन का मन व्याकुल नहीं होता, वह महाशय मुक्त-रूप हैं।

दोहा ।

क्षीण लंक अरु पीन कुच, लखि तियके दृगतीर ।
जे अधीर नहिं करत मन, धन्य-धन्य ते धीर ॥६२॥

सार—परमा रूपवती नवीना नारी पर जिसका मन नहीं चलता, वह मनुष्य नहीं देवता है।

92. Blessed are those whose minds are not disturbed on looking at the woman who has restless big eyes, is young and handsome, has full grown and high breasts and on whose thin belly are the elegant lines.

बाले लीलामुकुलितममी सुन्दरा दृष्टिपाताः,
किं क्षिप्यन्ते विरम विरम व्यर्थ एष श्रमस्ते ।
सम्प्रत्यन्ये वयमुपरतं बाल्यमास्था वनान्ते,
क्षीणो मोहस्तृणमिव जगज्जालमालोकयामः ॥९३॥

हे बाले! लीलासे ज़रा-ज़रा खुले हुए नेत्रोंसे सुन्दर कटाक्ष हम पर क्यों फेंकती है? विश्राम ले! विश्राम ले! हमारे लिये तेरा यह श्रम व्यर्थ है। क्योंकि अब हम पहले-जैसे नहीं रहे; अब हमारा छछोरपन चला गया, अज्ञान दूर हो गया। हम वनमें रहते हैं और जगज्जालको तिनकेके समान समझते हैं।

93. Maiden! why are you casting your sweet and sportful glances at me? Pray, stop there. Your efforts in this connection are useless. I am a changed man now. Youth has passed away. I long to live in the woods now. My illusion is gone. I consider the worldly bondage as that of straw.

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दीवरदल—
प्रभाचोरं चक्षुः क्षिपति किमभिप्रेतमनया।
गतो मोहोऽस्माकं स्मरशबरबाणव्यतिकर—
ज्वलज्ज्वालाः शान्तास्तदपि न वराकी विरमति॥९४॥

इस बालाका क्या मतलब है, जो यह अपने कमल-दल की शोभाको तिरस्कार करनेवाले नेत्रोंको मेरी ओर चलाती है? मेरा अज्ञान नाश होगया और कामदेव-रूपी भीलके बाणोंसे उत्पन्न हुई अग्नि भी शान्त हो गई, तथापि यह मूर्खा बाला विश्राम नहीं लेती! ॥९४॥

94. What does this young woman mean by casting her eyes, which surpass the beauty of the

lotuses, constantly on me ? I 'am no longer under the charm of illusions. The fire of passion kindled by the arrows of Cupid, have subsided in me and yet this foolish girl would not desist.

शुभ्रं सद्म सविभ्रमा युवतयः श्वेतातपत्रोज्ज्वला
लक्ष्मीरित्यनुभूयते स्थिरमिवस्फीते शुभे कर्मणि ॥
विच्छिन्ने नितरामनङ्गकलहक्रीड़ात्रुटत्तन्तुकं
मुक्ताजालमिव प्रयाति झटिति भ्रश्यद्दिशो दृश्यताम्॥६५

जब तक मनुष्यके पूर्वजन्मके शुभ कर्मोंका प्रभाव रहता है, तब तक उज्ज्वल भवन, हाव-भाव-युक्त सुन्दरी नारियाँ और सफ़ेद छत्र चँवर प्रभृतिसे शोभायमान् लक्ष्मी—ये सब स्थिर भावसे भोगने में आते हैं; किन्तु पूर्वजन्मके पुण्योंका क्षय होते ही, ये सब सुखैश्वर्य्यके सामान—कामदेवकी क्रीड़ाके कलहमें टूटे हुए हारके मोतियोंके समान—शीघ्र ही जहाँ-तहाँ लुप्त हो जाते हैं ॥६५॥

खुलासा—जब तक मनुष्यके पहले जन्ममें किये हुए शुभ कर्म अथवा पुण्य-कर्मों का ओर-छोर नहीं आता, तभी तक सुन्दर-सुन्दर आलीशान महल, अपने हाव-भावों—नाजो-अदाओं से पुरुषका मन हरने वाली सुन्दरी ललनायें तथा छत्र, चँवर, रथ, घोड़े, हाथी, पालकी, जोड़ी, बग्घी प्रभृति सुख-ऐश्वर्य के सामान बने रहते हैं और पुरुष उन्हें स्थिरताके साथ भोगता है; किन्तु ज्योंही उसके पूर्व जन्मके पुण्य-कर्मोंका अन्त

हो जाता है, ईश्वरीय खातेमें पुण्य-कर्म नहीं रहते; त्योंही उपरोक्त महल-मकान, ज़मीन-जायदाद, बाग़-बग़ीचे, मनमोहिनी चन्द्रवदनी स्त्रियाँ और लक्ष्मी एवं क्षमता प्रभृति इस तरह विलाय जाते हैं; जिस तरह रति-केलिके समय—स्त्री-पुरुषोंमें खींचातानी और झगड़ा-झगड़ी होनेसे—हारके मोती टूट-टूट कर चारों ओर लुप्त हो जाते हैं।

दोहा।

शुभ कर्मनके उदयमें, गृह तिय वित सब ठौर।
अस्त भये तीनों नहीं, ज्यों मुक्ता बिन-डोर ॥६५॥

सार—जबतक मनुष्यके पूर्वजन्मके पुण्यों का क्षय नहीं होता, तब तक सारे संसारी सुखैश्वर्य बने रहते हैं; पुण्य क्षय होने पर, वे क्षणभर भी नहीं रहते।

95. A white palace, a good and loving young woman and the wealth with (royal) symbol of white umbrella, are enjoyed only so long as there is the growth of good virtuous acts, but when they (virtuous acts) diminish then all the enjoyments run away from the man to different directions like the pearls of a garland broken in the quarrel of amorous plays.

सदा योगाभ्यासव्यसनवशयोरात्ममनसो
रविच्छिन्ना मैत्री स्फुरति यमिनस्तस्य किमु तैः ॥

प्रियाणामालापैरधरमधुभिर्वक्त्रविधुभिः
सनिश्वासामोदैः सकुचकलशाश्लेषसुरतैः ॥९६॥

जो अपने मनको वशमें करके, आत्माको सदा योग्याभ्यास-साधनमें लगाये रहना ही पसन्द करते हैं—उन्हें प्यारी-प्यारी स्त्रियोंकी बात-चीत, अधरामृत, श्वासोंकी सुगन्धि-सहित मुखचन्द्र और कुच-कलशोंको हृदयसे लगाकर, काम-क्रीड़ासे क्या मतलब ? ॥९६॥

खुलासा—जिनको अपनी इन्द्रियाँ और मनको वशमें रखने तथा योग-साधनका अभ्यास करनेके लाभ नहीं मालूम, वह विषय-भोग भोगना ही अच्छा समझते हैं और सदा भोग भोगनेमें ही मस्त रहते हैं। ऐसे कामियोंको एकान्तमें स्त्रियोंसे बातचीत या गुफ्तगू करना, उनके ओंठ चूसना, उनके श्वाससे निकली मृगमद—कस्तूरीको लजानेवाली सुगन्धि सूँघना, चन्द्रमाके समान मुखको चूमना और सोनेके दो कलशों या नारङ्गियों अथवा कच्चे-कच्चे सेवोंके समान कुचोंको छातीसे लगा कर उनसे संगम करना ही अच्छा लगता है; किन्तु जिन्हें मन और इन्द्रियोंको क़ाबूमें करके सदा योगाभ्यासका व्यसन रखना ही अच्छा लगता है, उन्हें सुन्दरियोंकी मीठी-मीठी बातें सुनना, उनके निचले ओठको चूसना, उनके मुखकी सुगन्धिका आस्वादन करना, उनके चन्द्राननको देखना, उनके गुलाबी गाल चूमना और दो कलशोंके समान ऊँचे उठे हुए कठोर कुचोंको हृदयसे



लगा कर, उनके साथ संगम करना अच्छा नहीं लगता। वे इन सबको वृथा समझते हैं। उन्हें इनमें ज़रा भी आनन्द नहीं मालूम होता।

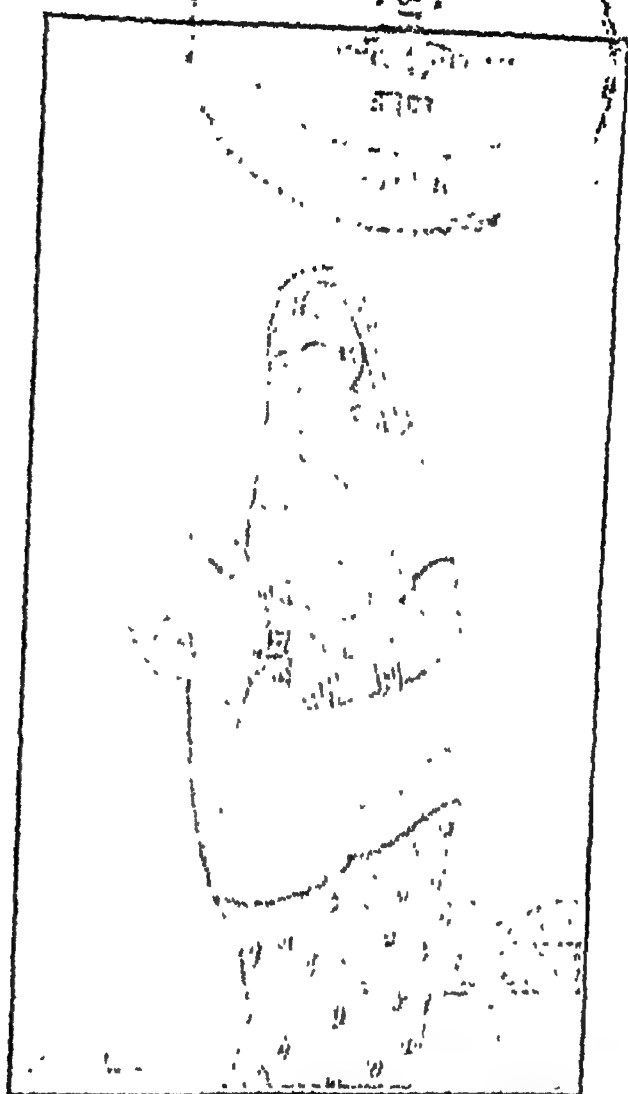
सार—विषयासक्त कामियोंको स्त्रियाँ अच्छी लगती हैं; पर इन्द्रिय-विजयी ज्ञानियों को निरन्तर योगाभ्यासमें लगे रहना ही अच्छा मालूम होता है।

97. Of what use are the sweet conversation with a lovely woman, the nectar of her lips, her moon-like face with scented breath and the sweet enjoyment of sexual intercourse while pressing her pot-like breasts to the bosom, to those whose mind and soul are constant friends and take delight in the practice of concentration.

अजितात्मसु सम्बद्धः समाधिकृतचापलः।
भुजङ्गकुटिलः स्तब्धो भ्रूविक्षेपः खलायते ॥९७॥

अजितेन्द्रिय मनुष्योंसे सम्बन्ध रखनेवाला, चित्तकी एकाग्रता या समाधिमें अतीव चञ्चलता करनेवाला, सर्पके समान कुटिल और स्तब्ध स्त्रियोंका भ्रूक्षेप या कटाक्ष खलके समान आचरण करता है ॥९७॥

ख़ुलासा—स्त्रियोंका कटाक्ष (चतुराई से भौंह चलाना) अजितेन्द्रियोंसे सम्बन्ध रखता है, चित्तको एकाग्र रहने नहीं देता



सुधामय चन्द्रमा अपने क्षय रोग की शान्ति के लिये, मोती का रूप धारण कर, कामिनी के होठों का अमृत पी रहा है। मतलब यह है कि, स्त्री के होठों में ऐसा उत्तम अमृत है कि, उसे पीने के लिए, सुधाकर—चन्द्रमा ने भी मोती का रूप धारण किया है। (पृष्ठ २५७)

और समाधिको भङ्ग करता है; अतएव वह साँपके समान कुटिल और दुष्टोंका सा-काम करने वाला है; पर ध्यान रहे कि, 'वही कटाक्ष जितेन्द्रियों से सम्बन्ध नहीं रखता। वह उनका कुछ भी नहीं कर सकता। न वह उनकी चित्तकी एकाग्रतामें खलबली डाल सकता है और न उनकी समाधि ही भंग कर सकता है।

दोहा :

तिय-कटाक्ष खल-सरिस है, करत समाधिहि भंग।
प्राकृत जन संसर्ग रत, शठ-इव कुटिल भुजंग ॥९७॥

सार—खलोंके समान आचरण करनेवाले स्त्रियोंके कटाक्षका ज़ोर केवल कामियों पर ही चलता है; जितेन्द्रियोंका वह कुछ भी नहीं कर सकता।

मत्तेभकुम्भपरिणाहिनि कुंकुमार्द्रे
कान्तापयोधरतटे रसखेदखिन्नः।
वक्षोनिधाय भुजपञ्जरमध्यवर्ती
धन्यः क्षपां क्षपयति क्षणलब्धनिद्रः ॥९८॥

जो पुरुष मैथुनके श्रमसे थककर, मतवाले हाथीके कुम्भों के समान विस्तीर्ण और केशरके भीगे हुए स्त्रीके स्तनों पर

अपनी छाती रखकर, उसके भुजा रूपी पञ्जरके बीचमें पड़ा हुआ, एक क्षण भी सोकर रात बिताता है, वह धन्य है ॥६८॥

खुलासा—मैथुनके बाद पुरुष का बल क्षीण हो जाता है, मिनट दो मिनटके लिये उसमें उठनेकी भी सामर्थ्य नहीं रहती; तब वह स्त्री की छातियों पर अपनी छाती रक्खे हुए, उसके दोनों हाथोंके बीचमें पड़ा हुआ, शान्ति की नींद-सी लेता या अपनी थकान दूर करता है। कवि महोदय कहते हैं, कि जो पुरुष क्षणभरके लिये भी, यह आनन्द उपभोग करता है वह भाग्यवान् है—उसने पूर्वजन्ममें पुण्य किये हैं।

छप्पय।

कुंकुम-कर्दम-युक्त, मत्तगज कुम्भ बने मनु।
कान्ता कुचतट माहिं सने, रस-खेद खिन्न जनु॥
तेहि भुज-पञ्जर मध्य, रहे सुख सों लिपटाने।
क्षण इक निद्रा लहें, क्षपा बीतत नाहिं जानें॥
इमि निज वक्षस्थल ताहि सों, जोरि रहे जे शुभग नर।
हैं तेई याहि संसारमें, धन्यवाद के योग्य वर॥६८॥

सुधामयोऽपिक्षयरोगशान्त्यैनासाग्रमुक्ताफलकच्छलेन
अनंगसञ्जीवनदृष्टिशक्तिर्मुखामृतं ते पिवतीव चन्द्रः॥६९

हे प्यारी! यह चन्द्रमा अमृतमय, अतएव काम चैतन्य करने वाला होनेपर भी, अपने क्षय रोगकी शान्तिके लिये,

नाकके अगले हिस्सेमें लटकते हुए मोतीके मिससे, तेरे अधरा-मृतको पी रहा है ॥६६॥

कवि महोदय स्त्रीकी नाकके अग्रभागमें लटकते हुए मोती को पूर्ण चन्द्रमा मान कर कहते हैं, कि हे सुन्दरि ! यद्यपि चन्द्रमा स्वयं अमृतमय है और वह पुरुषोंके हृदयोंमें कामोद्दीपन करनेकी शक्ति और सामर्थ्य रखता है; तथापि वह, अपने राज-रोग या क्षयके आराम करनेके लिये, बड़ेसे मोतीका रूप धरके, तेरी नाककी बुलाक या नथमें लटका हुआ, तेरे ओठोंके अमृत को पान कर रहा है।"रसिक" कवि कहते हैं:—

दोहा ।

प्रिये ! सुधाकर रोग निज, क्षयी-निवृत्ति-उपाय ।
चन्द पियत मधु अधरको, नथ-मोती-मिस आय ॥

दोहा ।

मनसिज-वर्द्धक अमृतमय, क्षयी-हरण शशि जान ।
नाशा-मोती मिस किये, करे अधरामृत पान ॥६६॥

सार—स्त्रीका अधरामृत सुधाकरके अमृत से भी अच्छा है ।

99. O lady ! although the moon is full of nectar and the sight of moon gives rise to sexual desires yet he is unable to cure his own disease of pthisis and in order to cure himself of that disease, the

moon has, as it were, transformed himself into a pearl pendant of your nose and is constantly tasting the nectar of your lips.

दिश वनहरिणीभ्यो वंशकाण्डच्छवीनां
कवलमुपलकोटिच्छिन्नमूलं कुशानाम्।
शुकयुवतिकपोलोपाण्डुताम्बूलवल्ली-
दलमरुणनखाग्रैः पाटितं वा वधूभ्यः॥१००॥

हे पुरुषो! या तो तुम वन-मृगियोंके लिये बाँसके दण्डे की समान छविवाली, पत्थरकी नोकसे कटी हुई मूलवाली, कुश नामक घासके ग्रास दो अथवा सुन्दरी बहुओं के लिये लाल-लाल नाखूनोंसे तोड़े हुए, सूई—तोतीके कपोलके समान, ज़रा-ज़रा पीले रंगके पान दो॥१००॥

ख़ुलासा—मनुष्यो! दो में से एक काम करोः—(१) या तो घर-गृहस्थीकी मोह-ममता तोड़, वनमें जा, ईश्वराराधनमें मन लगाओ और पत्थरकी नोकसे कुश-घासकी जड़ें काट-काट कर जंगली हिरनियोंको चुगाओ; अथवा घरमें रह कर सुन्दरी नवयुवतियोंको पके हुए पीले-पीले पानोंके बीड़े दो।

दोहा।

वन-मृगिनके देन को, हरे-हरे तृण लेहु।
अथवा पीरे पान को, बीरा बधुवन देहु॥१००॥

सार—दो में से एक काम करोः—(१) या तो बनमें जा ईश्वर-भजन करो, अथवा (२) घरमें रह नव-बधुओंको भोगो ।

100. O people, you are either to feed the wild deer with Kush grass cut by the sharp edges of stone resembling bamboo sticks or to offer betel of slight yellow color torn by red nails to beautiful wives.

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंचारजनितं,
तदा सर्वं नारीमयमिदमशेषं जगदभूत् ।
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनदृशां,
समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते ॥१०१॥

जब तक मुझमें कामका अज्ञान-अन्धकार था, तब तक मुझे सारा संसार स्त्रीमय दीखता था; लेकिन अब मैंने आँखों में विवेक-अञ्जन लगाया है, इसलिये मेरी समदृष्टि हो गई है, मुझे त्रिलोकी ब्रह्ममय दीखती है ॥१०१॥

खुलासा—जब तक मेरे ऊपर कामदेवका प्रभाव था, जब तक मेरे हृदयमें अज्ञानका अँधेरा था, जब तक मुझे सत्-असत् का ज्ञान नहीं था, जब तक मुझे स्त्रियों की असलियत मालूम नहीं थी, जब तक मुझे स्त्रियों की मुहब्बत सच्ची मालूम होती थी, तब तक मुझे सारे जगत्में स्त्रियाँ-ही-स्त्रियाँ दीखती थीं,

मेरा मन हर समय उन्हींमें लगा रहता था और उनके साथ रमण करना ही मुझे अच्छा लगता था। मैं समझता था, कि इस जगत्में जन्म लेकर कामिनियोंको भोगना ही—पुरुष का परम कर्त्तव्य है। इसीसे उन दिनों स्त्रियोंके सिवा मुझे और किसी भी काममें आनन्द नहीं आता था; लेकिन ज्योंही मैंने आँखोंमें विवेक-विचारका अञ्जन आँजा, मेरी आँखोंका अँधेरा दूर हो गया, मेरा अज्ञान नाश हो गया, मुझे सत्-असत् का ज्ञान हो गया, मुझे मालूम हो गया कि जगत्, सारहीन है, संसार असार और मिथ्या तथा नाशमान् है, स्त्रियोंका रूप-यौवन और उनकी प्रीति अनित्य एवं सदा रहनेवाली नहीं है, इस जगत्में कोई किसीका नहीं है, सभी एक दूसरेको धोखा देकर अपना-अपना मतलब साध रहे हैं, सभी स्वार्थकी जंजीरोंमें बँधे हुए हैं, स्वार्थ बिना कोई किसीसे बात भी नहीं करता; जिस में स्त्रियोंकी प्रीति तो बिल्कुल ही झूठी है। वे किसी काल और किसी दशामें भी विश्वास-योग्य नहीं। एकमात्र ब्रह्म—अपना आत्मा—ही सच्चा है। उसकी चिन्तामें कल्याण है। उस ब्रह्मके सुखके सामने त्रिलोकी के सभी सुख-भोग तुच्छ हैं। सब जगत्में, जगत्के प्राणिमात्रमें, एक पूर्ण ब्रह्म व्यापक है। इस ज्ञानके कारणसे, अब मुझे न कहीं स्त्री दीखती है, न पुरुष, न और ही कुछ; सर्वत्र एक ब्रह्म ही दीखता है। अतः अब मैं उसी के ध्यानमें लौलीन रहता हूँ, क्योंकि वैराग्यकी अग्निने संसारी भोग-विषयोंके खयालात जड़से ही भस्म कर दिये हैं।

101. So long as I was laboring under ignorance due to the darkness caused by Cupid, I could see nothing but woman in this whole world. Now, by applying the collyrium of better reasoning, my eye-sight has become normal and I find Brahma pervading the three worlds.

वैराग्ये सञ्चरत्येको, नीतौ भ्रमति चापरः ।
शृङ्गारे रमते कश्चिद् भुवि भेदः परस्परम् ॥१०२॥

कोई वैराग्यको पसन्द करता है, कोई नीतिमे मस्त रहता है और कोई शृङ्गारमें मग्न रहता है। इस भूतल पर, मनुष्योंमें परस्पर इच्छाओंका भेदाभेद है ॥१०२॥

इस दुनियाँमें सबकी रुचि एक नहीं। किसीको एक चीज़ अच्छी लगती है, तो दूसरे को दूसरी और तीसरे को तीसरी। सबके मन और रुचि एक नहीं; किसीको यह संसार बुरा लगता है; अतः वह इसे मिथ्या और असार समझ, सबको त्याग, परम परमात्माको भजता है । किसी को नीतिशास्त्रों का अध्ययन ही अच्छा लगता है; अतः वह रात-दिन नीति-ग्रन्थों का ही कीड़ा बना रहता है। किसीको न वैराग्य पसन्द है और न नीति; उसे एकमात्र विषयोंका भोगना ही अच्छा लगता है; अतः वह इन्हींमें आनन्द समझता है, दिन-रात विषय-सुखों में ही मतवाला रहता है, स्त्रियों को ही अपनी आराध्य देवी समझता है और उनकी तारीफ़ोंसे भरे हुए शृङ्गार रसके ग्रन्थ देखनेमें ही लगा रहता है। सबकी रुचि भिन्न-भिन्न है, इसीसे

भर्तृहरि महाराज ने "वैराग्य शतक" "श्रृङ्गार शतक" और "नीतिशतक"—तीन शतक, तीनों प्रकारके लोगों के लिये, लिखे हैं। जिसका दिल वैराग्यमें हो, वह "वैराग्य शतक" पढ़े; जिसे नीतिसे प्रेम हो, वह "नीति शतक" पढ़े और जिसे श्रृङ्गारसे प्रेम हो, वह "श्रृङ्गार शतक" पढ़े।

दोहा।

काहूके वैराग्य-रुचि, काहूके रुचि नीति।
काहूके शृङ्गार रुचि, जुदी-जुदी परतीति ॥१०२॥

102. Some one feels pleasure in renunciation, some study morality and some take delight in love. So there is diversity of desires in this world.

यद्यस्य नास्ति रुचिरं तस्मिंस्तस्यास्पृहा मनोज्ञेऽपि।
रमणीयेऽपि सुधांशौ न मनः कामः सरोजिन्याः ॥१०३॥

जिस चीज़में जिसकी रुचि नहीं होती, वह चाहे जैसी सुन्दर क्यों न हो, उसे वह अच्छी नहीं लगती। चन्द्रमा सुन्दर है, पर कमलिनी उसे नहीं चाहती।

दोहा।

जो जाके मन भावतौ, ताको तासों काम।
कमल न चाहत चाँदनी, विकसत परसत घाम ॥१०३॥

103. A man has no inclination for the thing which he does not like, though it may be a very good one. The moon is beautiful yet she is not liked by the lotus.

समाप्त।

शृङ्गारशतक



संसार में सबकी रुचि एकसी नहीं होती। किसी को शृङ्गार पसन्द है, कामिनियों का स्वर्गीय आनन्द लूटना पसन्द है, किसी को स्त्रियाँ विष से भी बुरी लगती हैं, उन्हें वैराग्य पसन्द है और किसी को नीति का अध्ययन पसन्द है। इसी से महाराज भर्तृहरि ने तीन तरह के मनुष्यों के लिये शृङ्गार, वैराग्य और नीति पर तीन शतक लिखे हैं (पृष्ठ २६१)